

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत उपन्यास

# आग और पानी

रघुवीर शरण 'मित्र'



सफेद बाल, विशाल मस्तक, बड़ी-बड़ी आँखें, स्कन्ध से वक्ष एवं नाभि तक लहराते हुए यज्ञोपवीत की गरिमा और देह पर ढाई गज वस्त्र धारण किये हुए वह दरिद्रता और गौरव के प्रमाण-सा राजपथ पर आया।

माथे पर चिन्ता के चित्र थे, पैरों में विश्वास की तेजी थी, विचारों में तर्क छिड़ा हुआ था और पुतलियों में हलचल हो रही थी। वह चल रहा था, पर ऐसे जैसे कोई भावुक धुन में चला जा रहा हो, जैसे कोई मृत्यु से होड़ लगाता हुआ बढ़ रहा हो, जैसे सूर्य का प्रकाश मेघों को चीरता हुआ जलजातों के लिए गतिमान हो।

आँखों के पानी और हृदय के दाह में सिन्धु की मर्यादा और प्रलय का वेग होता है। जीवन जब अत्याचारों से मेघ बनकर बरसता है तो उसमें बिजली की तड़प भी होती है। राजमहलों की रंगीनियों से दहकता हुआ पथिक राजपथ पार कर उस चौड़ी और सुन्दर सड़क पर आया जिस पर राजमन्त्रियों के इन्द्रमहल आकाश से होड़ लगा रहे थे। सड़क के दोनों किनारों पर तराशी हुई हरियाली और फूलों की तृषामृतत्व आभा थी, जिनसे फूटती हुई सुगन्ध कभी-कभी पथिक के विचारों का तर्क भंग कर देती थी।

गुलाब, गेंदे, चम्पा और चमेली से मिले हुए ये ही हैं वे मणिमण्डित राजमहल जिनमें राजकोष फुँका पड़ा है। संगमरमर से चिने हुए, रत्नों से जड़े हुए, मोतियों की झालरों से झिलमिलाते हुए, स्वर्ण चित्रित और सलमे-सितारों के पर्दों से अवगुण्ठित इन्हीं महलों में मनुष्य का भाग्य बन्दी है।

राह घटती जा रही थी और पथिक बढ़ता जा रहा था। सोचते-सोचते राही ने एक महल के द्वार में प्रवेश किया। द्वारपाल ने आगन्तुक को रोकते हुए कहा—“श्री श्री एक सौ आठ महागुणी महामात्य किसी विशेष कार्य में व्यस्त हैं। उनकी आज्ञा है, इस समय हमारे पास किसी को भी न आने दिया जाये।”

आगन्तुक ने नम्रता से द्वारपाल की ओर देखते हुए कहा—“तुम



नये द्वारपाल जान पड़ते हो। श्री श्री एक सौ आठ महागुणी महामात्य से कहो कि चणक द्वार पर खड़ा है। वह इसी समय आपके दर्शन करना चाहता है।”

द्वारपाल ने सिर हिलाते हुए कहा—“मुझे आज्ञा नहीं है कि मैं कोई भी सन्देश उन तक ले जा सकूँ।”

“लेकिन मुझे उनसे इसी समय मिलना है, बहुत आवश्यक! उनके ही कार्य के लिए आया हूँ। तुम डरो मत, वे तुम पर नाराज नहीं होंगे। जाकर कह दो कि चणक आया है।”

द्वारपाल ने जब देखा कि यह भयंकर बूढ़ा भूत की तरह चिपट ही गया है और महामात्य से बिना भेंट किये नहीं टलेगा तो वह नाक फुलाता हुआ महल में गया। महागुणी महामात्य महल की छत पर टहल रहे थे। चौक में द्वारपाल को देखते ही क्रोध से बोले—“क्या है द्वारपाल?”

द्वारपाल सिर झुकाकर अभिवादन करता हुआ बोला—“द्वार पर एक विचित्र बूढ़ा खड़ा है। वह इसी समय आपके दर्शन के लिए हठ कर रहा है। उसने अपना नाम चणक बताया है।”

सुनते ही महामात्य नीचे उतर आये। वे तेजी से द्वार की ओर लपके। दूर ही से आगन्तुक की ओर श्रद्धा से देखते हुए उन्होंने नमस्कार किया और फिर आदर सहित अतिथि को महल में ले चले।

भूलभुलैया—जैसे कितने ही द्वार पार कर, कमरे से कमरे में प्रवेश करते हुए महामात्य आगन्तुक को एक गुप्त गर्भ में ले आये। इस गर्भगृह की सज्जा भी अनूठी थी। नीली छत, नीली दीवारें और चौकियों पर नीले ही मखमल के गद्दे बिछे हुए थे। नीले शीशों के किवाड़, नीले शीशों की चिमनियों से झरता हुआ नीला प्रकाश एवं स्थान-स्थान पर जड़े हुए नीलमों की दमक से वह गुप्त गर्भ भी कौंध रहा था। किन्तु कौंध लोहे की दीवारों में इस प्रकार बंधी थी कि क्या सामर्थ्य जो एक किरण भी बाहर निकल जाये।

कोई नया व्यक्ति होता तो निश्चित ही गर्भगृह को देखता रह जाता। भला महलों का सौन्दर्य किसकी आँखें नहीं चौंधिया देता! यह वह इन्द्रजाल है जो आँखें निर्निमेष कर देता है, जो बिना जंजीरों के पैर जकड़ डालता है। लेकिन चणक के लिए चाह त्याग की वेदी पर चढ़ चुकी थी। निर्धनता की गोद में खेलने और खिलाने का अभ्यासी क्या



कभी धन के चमत्कारों में खो सकता है।

त्याग और सत्य के शरीर चणक एक चौकी पर बैठ गये। महामात्य भी उनके बराबर में विराजे। बैठते ही चणक बोले—“महागुणी महामात्य को आश्चर्य होगा कि चणक दीवाली की इस अर्धरात्रि में महामात्य शकटार के महल में क्यों!”

महामात्य शकटार ने गम्भीर किन्तु तेजस्वी मुद्रा में उत्तर दिया—“मैं त्यागी ब्राह्मण चणक से परिचित हूँ। उसे अपने लिए कुछ चाह नहीं है। हाँ, उसे महामात्य शकटार की चिन्ता अवश्य रहती है।”

“क्योंकि शकटार को राष्ट्र की चिन्ता रहती है, इसलिये मुझे शकटार की चिन्ता है। मगधाधिपति महानन्द की विलासिता और धर्मान्धता से राष्ट्र भयंकर कुचक्रों में फँस चुका है। किसी भी समय विस्फोट हो सकता है।” चणक ने चिन्तातुर वाणी में कहा।

“चिन्ता न करो चणक! शकटार की आँखें बन्द नहीं हैं। कुचक्रियों का कोई भी जाल शकटार की आँखों से छिपा नहीं है। मगध राज्य के कण-कण पर उसकी दृष्टि है। महाराज नन्द की हर पगध्वनि शकटार के कान सुनते रहते हैं। शकटार शत्रु और मित्र को भली-भाँति पहचानता है।”

**चणक**—यदि पहचानते हो तो ततैयों के छत्ते से निकले क्यों नहीं? अब तक शत्रुओं का नाश क्यों नहीं किया? आस्तीन में साँप घुसे हुए हैं और तुमने उन्हें अभी तक नहीं कुचला! देखते नहीं, देश को चारों ओर से विदेशी घूर रहे हैं! राजकोष लुटाया जा रहा है। महाराज को ढोंगियों ने घेर रखा है। मद और मानिनियों में मदान्ध मगधाधिपति मनचाही कर रहा है। मन्त्रिगण आँखें मूँदे बैठे हैं। नन्द मद में चूर है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ने उसे मूर्ख बना रखा है। महल में मधुर नागिनें राज्य डसने के लिए फण फैलाये नृत्य कर रही हैं। आश्चर्य है, महामात्य यह सब कैसे सहन कर रहे हैं! या कहीं मन्त्री राजा बनना चाहते हैं?

**शकटार**—मुझे और अपनी वाणी को कलंकित न करो चणक! शकटार लोभी नहीं है।

**चणक**—यदि स्वयम् राज्य के लोभी नहीं हो तो अपनी शिथिलता से किसी अन्य को अपना देश साँप दोगे और तब दासता तुम्हारी बुद्धि पर तरस खायेगी। इसलिये समय रहते कंचन में बन्दी बुद्धि के दरवाजे



खोल लो।

**शकटार**—बुद्धि भी कंचन की कोठरी में बन्दी नहीं है, यह अवश्य है कि वह अवसर की प्रतीक्षा कर रही है।

**चणक**—अवसर निकला जा रहा है महामात्य! यदि भारत का मगध राज्य किसी एक भी उँगली से दब गया तो सम्पूर्ण राष्ट्र पर विदेशी छा जायेंगे।

**शकटार**—किन्तु यह शकटार की मृत्यु के बाद होगा। जब तक राक्षस और कात्यायन जैसे दूरदर्शी अमात्य मगध राज्य में हैं तब तक मगध किसी की उँगली के नीचे नहीं दब सकता।

**चणक**—मुझे केवल शकटार की बुद्धि पर भरोसा है, कात्यायन और राक्षस अभी वन की आग बुझाने में दुर्बल दीखते हैं।

**शकटार**—यह भ्रम है चतुर ब्राह्मण! उनकी आँखें मुझसे पहले ही खुल चुकी हैं।

**चणक**—किन्तु वे खुली आँखों से सो रहे हैं।

**शकटार**—सो नहीं रहे, उन्होंने महाराज नन्द को समझाने का यत्न किया।

**चणक**—और यही उन्होंने भारी अपराध कर डाला। राजा नन्द को समझाने का परिणाम निकलेगा कि वह अपनी इच्छा के विरुद्ध सोचने वालों को पहचान लेगा।

**शकटार**—सीधी उँगलियों से घी निकालना क्या अपराध है?

**चणक**—अपराध ही नहीं, असफल प्रयत्न भी। यह ओस चाट कर प्यास बुझाने की कल्पना है।

**शकटार**—तो मैं उँगलियाँ टेढ़ी करने को तैयार हूँ।

**चणक**—किन्तु उँगली के नाखून को भी यह मालूम न हो कि उँगली टेढ़ी हुई है।

**शकटार**—योगाभ्यास के इस गर्भ-गृह से कोई बात बाहर नहीं जाती।

**चणक**—नन्द के हाथों में मगध का राज्य सुरक्षित नहीं है। आर्यावर्त का गौरव कच्चे धागे में लटक रहा है। छोटे-छोटे राज्य मगध पर आँखें गड़ाये बैठे हैं।

**शकटार**—जब तक मौर्य सेनापति और नीतिज्ञ मन्त्रियों की शक्ति



सुरक्षित है, तब तक मगध का बाल बाँका नहीं हो सकता, आर्यावर्त के गौरव पर आँच नहीं आ सकती। तुम इतने भयभीत क्यों हो रहे हो सखे! —

**चणक**—मेरा भय निर्मूल नहीं है। महाबलाधिकृत मौर्य की भुजाओं पर मुझे भरोसा है, किन्तु क्या वे हाथ महाराज नन्द की कुत्सित स्वर्ण जंजीरों में जकड़े हुए नहीं हैं? जब तक मगध का राज्य नन्द के हाथों में है, तब तक राष्ट्र की सुरक्षा कच्चे धागे में ही लटकती रहेगी।

**शकटार**—तो फिर? —

**चणक**—फिर क्या, नन्द को यमराज के राज्य में भेज दिया जाये और किसी को यह मालूम न हो कि नन्द मरे नहीं, मरवाये गये हैं।

शकटार ने स्तब्ध होकर चणक की ओर देखा और फिर चणक के कथन की गहराई में गोते लगाते हुए बोले—क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है जिससे साँप मरे, न लाठी टूटे? —

**चणक**—हाँ, हो सकता है, लेकिन तब जबकि लक्ष्य से पहले पैरों की गति की आहट किसी के कानों तक न पहुँचे। नन्द को मारना चाहते हैं, यह रहस्य मेरे और तुम्हारे अतिरिक्त तीसरे को न मालूम हो।

**शकटार**—तो फिर यह किस प्रकार करना होगा? —

**चणक**—तुम किसी भी तरह महाराज नन्द के सर्वाधिक विश्वासपात्र बन जाओ और कात्यायन को मन्त्री-पद से प्रथम तो अलग कराओ, पर इस तरह कि नन्द यह समझता रहे कि शकटार मेरा शुभचिन्तक है और कात्यायन यह समझता रहे कि महामात्य शकटार की मुझ पर अपार कृपा है। सावधान! कात्यायन को मन्त्री-पद से अलग करवा कर पुनः मन्त्री बनाना है। तदनन्तर मौर्य सेनापति सूर्यगुप्त को राज्य का लालच देकर अपनी ओर कर लो! —

**शकटार**—लेकिन जब तक अमात्य राक्षस महाराज नन्द के कवच हैं तब तक यह कैसे सम्भव हो सकता है! महाराज का राक्षस पर अटूट विश्वास है, और राक्षस भी महाराज की रक्षा में सर्वत्र उपस्थित रहते हैं। उस नवयुवक की भुजाओं में महाबल है, प्रतिभा में सरस्वती विराजती है और हृदय में महाराज नन्द का वास है।

**चणक**—कट्टर से कट्टर मनुष्य में कुछ अमिट दुर्बलताएँ भी होती हैं। तुम्हें उन दुर्बलताओं के सहारे ही षड्यन्त्र रचने होंगे। महाराज के महल में किसी ऐसी सुन्दरी का प्रवेश कराओ कि महल में उससे



सुन्दर कोई दूसरी न हो। उस सुन्दरी के स्पन्दनों में इतना अधिक आकर्षण हो कि पत्थर भी उसे देखकर पानी-पानी हो जाये। बस, यह चिंगारी पर्याप्त होगी।

**शकटार**—अत्यन्त सुन्दरी, निश्चित वह अद्वितीय सुन्दरी है! सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा! आपकी कामना सफल होगी चणक! मैं किसी न किसी कुचक्र से कल तक नायन जाति की बेला कुमारी मुरा का महल में प्रवेश करा दूँगा।

**चणक**—तो अब मुझे जाने की आज्ञा दो महामन्त्री! बेटी कहाँ है? बहुत दिन हो गये उसे देखे हुए।

**शकटार**—अपने कक्ष में बैठी कविता लिख रही होगी। चलिये, उधर ही चलते हैं।

कहते हुए आगे-आगे शकटार और पीछे-पीछे चणक गर्भगृह से निकल महल के प्रत्यक्ष कक्षों में आये। इनमें से एक कक्ष के द्वार में प्रवेश करते हुए शकटार ने कहा—‘सुवासिनी! देख, बाबा चणक आये हैं।’

सुवासिनी देखते ही हर्ष से उठ खड़ी हुई। “नमस्कार बाबा!” कहते हुए उसने महात्मा चणक को एक आसन पर विराजने का संकेत किया।

चणक ने आशीर्वाद का हाथ सुवासिनी के सिर पर रखते हुए कहा—‘क्या कर रही थी हमारी बिटिया! सुना है, कविता लिख रही थी। हमें भी तो सुनाओ बेटी! क्या कविता लिखी है तुमने?’

सुवासिनी के मुख पर लज्जा और हर्ष की किरण झिलमिला उठी। उसने संकोच भरे बाल-सुलभ स्वर में कहा—पिताजी तो ऐसे ही कहते रहते हैं बाबा जी! भला मैं कविता लिखनी क्या जानूँ?

**चणक**—क्या कोई ऐसी कला भी हो सकती है जिसे हमारी चतुर बेटी सुवासिनी नहीं जान सकती?

सुवासिनी ने बाबा की ओर भाव से देखते हुए कहा—आपका आशीर्वाद हुआ तो समस्त कलाओं में निपुण हो जाऊँगी। पर अभी तो मैं बहुत छोटी हूँ। जी चाहता है मुझसे पढ़ने-लिखने को कोई न कहे, सारा दिन खेलती रहूँ।

**शकटार**—तू जितनी छोटी है, उतनी ही खोटी। पर अब तू छोटी भी कहाँ! अब की कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को पूरे चौदह वर्ष की हो



जायेगी।

**सुवासिनी**—देख लो बाबा ! पिताजी हर समय मुझे डाटते हैं, कहते हैं, 'खेल मत, पढ़ !' मैंने इस अल्पायु में ही इतिहास, काव्य और दर्शन हृदयंगम कर लिये हैं, किन्तु फिर भी पिता जी मुझे खोटी बताते हैं।

**चणक**—यह तो पिता का प्यार है बेटी ! अच्छा बता तू कौन-कौन से खेल खेलती है ?

**सुवासिनी**—अब तो बहुत दिनों से खेलना बन्द कर रखा है। भला खेलूँ भी कैसे, कौटिल्य को तो आप कभी भेजते ही नहीं। जब वह आता था तो हम दोनों खेला करते थे। बाबा जी ! उन दिनों हमने नाटक भी खेला और शतरंज तो खूब ही खेलती थी। लेकिन कौटिल्य से जीती एक दिन भी नहीं। वह मोहरें कुछ ऐसे चलाता था कि मुझे तो मात ही खानी पड़ती। और न जाने क्यों मुझे कौटिल्य की जीत से इतनी प्रसन्नता होती थी जितनी कि चौपड़ के खेल में उससे जीत कर भी कभी नहीं हुई। आप उसे हमारे यहाँ क्यों नहीं भेजते ?

**चणक**—मैंने तो उसे यहाँ आने को कभी मना नहीं किया। वह है ही बड़ा कुटिल। मुझसे कहता था, 'मैं सुवासिनी के घर नहीं जाऊँगा, उससे मेरी लड़ाई हो गई।'।

**सुवासिनी**—क्या कौटिल्य नहीं आयेगा ? वह मुझसे नाराज हो गया ? मैंने तो खेल-खेल में प्यार से उसे चिढ़ा दिया था। सचमुच बाबा जी ! मेरा भाव कौटिल्य की हँसी उड़ाने का बिल्कुल नहीं था।

**चणक**—वह बड़ा क्रोधी है, बेटी ! जब उसे क्रोध आता है और किसी दूसरे पर उसका कुछ वश नहीं चलता तो वह अपने बड़े-बड़े बाल उखाड़ डालता है और फिर रक्त में उँगली भिगो-भिगो कर रेत में चित्र बनाने लगता है।

**सुवासिनी**—नहीं, नहीं, बाबा जी ! कौटिल्य जितना कठोर है उससे अधिक कोमल और सुन्दर है। औरों (दूसरों) को वह स्वाभिमानी कठोर दीखता है पर वस्तुतः वह मृदुता से भी मृदुल है। वह सौन्दर्य और तेज का शीतकालीन सूर्य है। क्या फूल उसके रूप के आगे लज्जित नहीं हो जाते ! क्या शास्त्र उसके गुणों से अपने को लघु नहीं मानने लगते ! कौटिल्य तो प्रतिभा का अद्भुत प्रकाश है। कभी-कभी लगता है कि कहीं वह वही तो नहीं है जो गोकुल की गलियों में खेला



था।

**चणक**—क्या बेटी कविता सुना रही है ?

**सुवासिनी**—नहीं, बाबा जी ! सत्य की प्रशंसा कर रही हूँ। उसे भेज देना बाबा जी ! कहना, 'सुवासिनी बहुत याद कर रही है।'

**चणक**—अच्छा, रानी बेटी ! मैं उसे भेज दूँगा और नहीं आयेगा तो जबरदस्ती भेजूँगा। अब अपने बूढ़े बाबा को जाने दे।

कहते हुए चणक और शकटार कक्ष से बाहर निकले। सुवासिनी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, शकटार से कुछ बातें करते हुए चणक महल से बाहर आये और फिर अद्भुत मुद्रा से देखते हुए उन्होंने कहा—अब मैं चला सखे ! कौटिल्य की ओर से मुझे हर समय चिन्ता बनी रहती है। वह महाक्रोधी और अत्यन्त स्वाभिमानी है। वह इतना उत्पाती है कि साँप को चुटकी से कुचल कर मार डालता है, बिच्छू को धागे में बाँध कर खेलता फिरता है।

**शकटार**—अभी बालक है, बड़ा होकर संभल जायेगा।

**चणक**—सोच रहा हूँ अगले वर्ष उसे शिक्षा के लिए तक्षशिला भेज दूँ। सम्भव है वहाँ वह कुछ उत्पात छोड़ दे और पढ़-लिख ले।

**शकटार**—यह तो आप निश्चित ही कर डालिये। कौटिल्य का तक्षशिला विश्वविद्यालय में प्रवेश करा दीजिये; नये वर्ष में यह शुभ कार्य कर ही डालिये। तब तक वह स्थानीय गुरुकुल में पढ़ ही रहा है।

**चणक**—कौटिल्य कुटिल है, किन्तु बड़ी-बड़ी पुस्तकें वह खेल ही खेल में खेल की तरह पढ़ भी डालता है।

**शकटार**—क्यों नहीं, आखिर तो आचार्य चणक का पुत्र है। पिता के गुण कुछ न कुछ तो पुत्र में होने ही चाहियें।

“किसी के गुण तभी सार्थक हैं जब देश के काम आयें। ईश्वर करे वह बड़ा होकर मेरी आकांक्षाओं को मूर्त रूप दे पाये।” कहकर चणक ने चलने का चरण उठाते हुए शकटार के कंठ में प्रेम से हाथ डाला और फिर यह कहते हुए चल दिये, “साँप मरे, न लाठी टूटे।”

“साँप मरे, न लाठी टूटे” सोचते हुए शकटार महल में वापिस आये। सोचते ही सोचते वह एक बड़े पलंग पर लेट गये। सुवासिनी उसी कक्ष में एक विश्रामासन पर लेटी-सी कुछ गुनगुना रही थी। शकटार ने मधुर किन्तु चिन्ता भरी वाणी में कहा—“सुवासिनी ! हम



कुछ सोच रहे हैं, तुम गुनगुनाना बन्द कर दो।”

सुवासिनी एकदम चुप हो गई, पर कुछ पलों बाद वह बोली—  
‘क्या सोच रहे हो पिता जी ! आप हर समय सोचते ही रहते हैं। अधिक सोचने से फिर आपके सिर में दर्द हो जायेगा। सोचना छोड़िये और सो जाइये।’

“मैं तो सो जाऊँगा, तू सो जा बेटी ! मेरी चिन्ता न कर। अमात्य की नींद तो राज्य की गुत्थियाँ सुलझाने में खोयी रहती है। पर तुझे इन बातों से क्या ! तू तो अभी बच्ची है। राजनीति की उलझनें भूख प्यास और नींद मिटा डालती हैं। कच्चे धागे में लटकती हुई राजनीति की तलवार पता नहीं कब किसकी गर्दन पर पड़े।”

“लेकिन जब तक आप चिन्ता में रहते हैं मुझे नींद नहीं आती, पिता जी ! लाइये, मैं आपका सिर दबा दूँ, आपको नींद आ जायेगी।” कहती हुई सुवासिनी उठी और पिता का सिर दबाने लगी। शकटार ने आशीर्वाद का हाथ सुवासिनी की पीठ पर रखा और विचारते हुए कहने लगे—‘जीवन और जगत् बड़ा ही अद्भुत होता है, सुवासिनी ! मनुष्य न जाने किस डोरे में बंधा हुआ नाचता है। आज जो राजा है वह कल भिखारी भी हो सकता है। आज जिसके पास सारे सुख हैं कल उसी के पास सारे दुःख भी हो सकते हैं, इसलिये यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि महलों का और मिट्टी का अस्तित्व एक है। मिट्टी एक दिन दुर्ग की शिखा पर गौरव से उन्नत होती है और एक दिन पैरों के नीचे रूँदती है। महल कभी आकाश से बातें करते हैं और कभी धूल से ढक जाते हैं।”

“यह दर्शन इस समय क्यों पढ़ने लगे पिताजी ! आखिर आप क्या कल्पनाएँ कर रहे हैं ? राजनीतिज्ञ को संन्यासियों की भाषा नहीं बोलनी चाहिये,” सुवासिनी ने गम्भीर होकर कहा।

“कुछ नहीं, बेटी ! ऐसे ही सोचने लगा। अच्छा, अब मैं सोता हूँ। जा, तू भी सो जा ! और देख, सवेरे तुझे पाँच बजे उठना है, क्योंकि तुझे मैं बेला के घर भेजूँगा; किसी गाड़ी में नहीं, पैदल ही। मैं बेला और उसकी पुत्री मुरा से सवेरे ही मिलना चाहता हूँ। पर किसी को यह मालूम न होने पाये कि बेला और मुरा से आज की तिथि में इस प्रकार महामात्य शकटार ने कुछ बातें की हैं।”

“यह तो साधारण-सी बात है। मैं प्रातः भ्रमण के समय उन्हें

अपने साथ लिवा लाऊंगी।" कहती हुई सुवासिनी पलंग पर आकर सो गई। थोड़ी ही देर में वह खरटे भरने लगी। पर शकटार की आँखों में अभी तक नींद नहीं थी। वे सोच रहे थे—भविष्य के प्रश्न। राजनीति के ताने-बाने उन्हें उलझाये हुए थे।

"मगध की भूमि खोखली हो चुकी है। महाराज नन्द विलासी हैं। तरह-तरह के धर्मों से भेदभाव के बवण्डर उठे हुए हैं। युद्ध में शत्रु की कमर लपेटने वाली भुजाएँ कामिनियों के आलिंगन में मूर्च्छित होती जा रही हैं; और उधर से छोटे-छोटे राज्यों की आँखें धीरे-धीरे बढ़ने वाले बादलों की तरह मगध राज्य की ओर बढ़ी आ रही हैं। पर शकटार की आँखें इन आक्रान्ताओं से असावधान नहीं हैं। शकटार सजग है। उसने नन्द राज्य की एक पीढ़ी ही नहीं, और भी पीढ़ियाँ देखी हैं। इस बार इस बीज को समूल नष्ट करना है।"

इसी उधेड़बुन में उलझे हुए महामात्य शकटार कुछ सो गये। उनकी आँख लगे अभी घण्टा भर भी नहीं हुआ था कि उनके कानों में गुप्त संकेत की घण्टी बजी। शकटार तुरन्त ही सावधान होकर उठ बैठे और संकेत-ध्वनि सुनने लगे। सांकेतिक भाषा पहचानते हुए महामात्य ने श्रवण-घण्टी द्वारा कहा—“कौन? अंगरक्षक अवन्त! क्या कहा, कल प्रातः आपको महाबलाधिकृत का पद संभालना है और मगध की ओर बढ़ने वाली राजपूताने की शक्तियों को कुचलना है।"

"हाँ, यह महाराज और अमात्य राक्षस ने गुप्त मन्त्रणालय में अभी परामर्श करके निर्णय किया है।"

"क्या उस समय और भी कोई वहाँ था?"

"नहीं, महाराज ने मुझे भी दूसरे कक्ष में रहने की आज्ञा दे दी थी, पर मैंने किसी तरह किवाड़ों से कान लगाकर बातें सुन लीं।"

"तो क्या आजकल महाराज का अमात्य राक्षस पर सबसे अधिक विश्वास होता जा रहा है?"

"मैं समझता हूँ कि महाराज का राक्षस के अतिरिक्त किसी पर भी विश्वास नहीं है। बहुत शीघ्र ही वह दिन आने वाला है जब आपको पदच्युत कर राक्षस महामात्य के आसन पर आसीन किये जायेंगे। यही नहीं, राक्षस तो आपके लिए इससे भी अधिक कोई अशुभ कामना करते हों तो असम्भव नहीं है।"

"अच्छा तो देखो, महाराज किसी भी प्रकार यह न समझने पायें



कि अंगरक्षक अवन्त शकटार का गुप्तचर है।’

‘विश्वास रखिये, महामात्य ! अवन्त आवश्यकता पड़ने पर आपके लिए प्राण तक दे देगा।’

‘मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है। और देखो, कोई विशेष रहस्य हो तो मुझ तक तुरन्त पहुँचाने में यत्नशील रहना ! राक्षस के इस घोर कुचक्र को कुचलने का बीड़ा तुम्हें ही उठाना है।’

कहते हुए महामात्य शकटार ने चिन्ता की लम्बी श्वास ली और सोच में डूबे हुए पलंग से उठ खड़े हुए। ‘राक्षस ! तुम महामात्य शकटार का नाश करना चाहते हो, किन्तु तुम्हारा यह स्वप्न कभी पूरा नहीं होगा। कैसी विडम्बना है ! राज्यलिप्सा मनुष्य को कितना कृतघ्न बना डालती है !’ सोचते-सोचते शकटार ने अपनी बेटी सुवासिनी को आवाज दी। सुवासिनी नींद से अचानक उठी और चौंककर बोली—  
‘क्या है, पिता जी !’

शकटार ने रुक-रुक कर धीरे से कहना शुरू किया—‘मेरा हृदय बैठा जा रहा है बेटी ! इसी समय सबको सूचित कर दो कि महामात्य शकटार अकस्मात् मरणासन्न हो गये। तुरन्त ही राजवैद्य को बुला भेजो और जितनी जल्दी हो सके सेवकों द्वारा रात ही रात में यह खबर तेजी से सब तक फैल जानी चाहिये कि शकटार बहुत बीमार हैं। महाराज नन्द से लेकर राजधानी का बच्चा-बच्चा यह जान जाये कि शकटार मृत्यु-शैय्या पर हैं। न जाने मेरा मन क्यों घबरा रहा है ! मुझे लग रहा है जैसे मैं बचूँगा नहीं।’

सुनते ही सुवासिनी चीख पड़ी, ‘माँ, बहिन, भैया, सेवको ! शीघ्र देखो तो पिता जी को क्या हो गया !’

कहती-कहती सुवासिनी रोती-पीटती इधर-उधर चीखने लगी और बात की बात में महामात्य शकटार का कक्ष उनके परिवार और राजसेवकों से भर गया।

श्वासों के इन्द्रजाल की विडम्बना को कौन समझ सकता है ! कोई किसी को जीने देना नहीं चाहता। जी वही सकता है जिसमें शक्ति है, जो रहस्यों के व्यूह में विजय के गीत गाता है। किसी को छलो मत, पर किसी से छले भी न जाओ।



रात कितनी सुहावनी और खतरनाक होती है। दीपक जलते हैं, पतंगे फुँकते हैं और प्यास क्रीड़ा करती है। तम से दीपक और दीपक से तम ज्योतिर्मय होता है, किन्तु यह भी एक अद्भुत रहस्य है कि एक-दूसरे का पूरक भी है और भक्षक भी। तृप्ति अतृप्ति की परिचारिका है। हवायें चलती हैं, दीपक टिमटिमाते हैं, तारे जागते हैं। न जाने नीरवता के कितने रहस्य प्रकट हैं और कितने प्रच्छन्न। रात्रि की गोपनीयता अत्यन्त गहरी होती है।

बात की बात में महामात्य शकटार की रुग्णता से झंकृत रात्रि की चहल-पहल करुणा और चिन्ता में बदल गई। दिशाओं का मौन मुखरित तुहिन में परिवर्तित होने लगा। सड़कों और गलियों में शोक की लहरें दौड़ गईं। प्रत्येक की वाणी पर महामात्य शकटार की चिन्ताजनक दशा बोल उठी।

“परमगुणी शाकटायन की दशा अकस्मात् चिन्ताजनक हो गई है। उनकी पुतलियाँ ऊपर चढ़ रही हैं, हृदय की गति धीमी होती जा रही है, तुतली सी भाषा में वे ‘महाराज, सुवासिनी, वैजयन्ती और राक्षस, राक्षस!’ रट रहे हैं।”

प्रातः चार बजे होंगे जब प्यास और तृप्ति में सोते हुए महाराज नन्द को माधवी ने झँझोड़ कर जगाते हुए कहा—‘कितनी ही देर से आवश्यक सूचना के संकेत आ रहे हैं। उठिए, देखिए तो क्या बात है।’

अँगड़ाई भरी बाँह माधवी के वक्ष पर डालते हुए अतृप्त महाराज मुहँ बनाते हुए उठे और शयन कक्ष के द्वार पर पहुँचे। द्वार पर अंगरक्षक अवन्त खड़े थे। उन्होंने व्यग्रता से महाराज नन्द को अभिवादन करते हुए कहा—अभी-अभी सूचना मिली है कि महामात्य शकटार अकस्मात् मरणासन्न हो गये हैं। राजवैद्य उपचार के लिए उनके निवास पर पहुँचने वाले हैं।’

आँखें मलते हुए महाराज बोले—‘तो इसके लिए इस समय हमें जगाने की क्या आवश्यकता थी! अमात्य राक्षस तक यह सन्देश पहुँचाना पर्याप्त था।’



‘यदि आज्ञा हो तो अमात्य राक्षस तक महामात्य शकटार की अकस्मात् बीमारी का सन्देश पहुँचवा दूँ?’ अङ्गरक्षक अवन्त ने हाथ जोड़ते हुए कहा—

‘हाँ, हम सवेरे महामात्य शकटार को देखने जायेंगे।’ कहते हुए नन्द पुनः उस पलंग पर आकर लेट गये जिस पर बिजली सी दमकती हुई माधवी यौवन की मदिरा से गुलाब सी महक रही थी। महाराज के नयन कुछ पलों तक तो महामात्य के रोग का काल्पनिक चित्र देखते रहे और फिर माधवी के मधु में खो गये।

उधर जैसे ही अङ्गरक्षक अवन्त ने अमात्य राक्षस को महामात्य की बीमारी का सन्देश देने के लिए राजसेवक से कहा वैसे ही देखा कि अमात्य राक्षस की गाड़ी राजभवन के द्वार पर आकर रुकी और अमात्य उसमें से उतर शीघ्रता से शयन कक्ष की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही दीवारें तक सैनिक अनुशासन सी स्तब्ध हो गईं। राजकीय अभिवादन कर प्रत्येक प्रहरी तन कर सीधा खड़ा हो गया। अङ्गरक्षक अवन्त ने सम्मान से सिर झुकाया और फिर नीचे ही नीचे गौर से अमात्य राक्षस को स्पन्दन सरल भाव से देखता रहा।

तीक्ष्ण दृष्टि से सब कुछ देखते हुए राक्षस महाराज नन्द के शयन कक्ष के निकट आये। आते ही उन्होंने सबल शब्दों में कहा—‘क्यों अवन्त! क्या महाराज अभी तक सो रहे हैं?’

‘हाँ, कृपालु! वे बहुत थक कर सोये हुए हैं। मुझे आज्ञा है कि कोई भी आये पर जगाना नहीं।’

‘और शायद तुमने उन्हें अभी तक जगाया भी नहीं होगा!’ राक्षस ने तेज आँखों से अङ्गरक्षक अवन्त को देखते हुए कहा।

‘नहीं, नीतिनिपुण! अभी-अभी महामात्य शकटार के सहसा भयंकर रोग से पीड़ित होने की सूचना मिली थी। मैंने वह सूचना देने के लिए महाराज को जगाया था। जागने पर वे क्रुद्ध हुए। उन्होंने कहा—‘अमात्य राक्षस को महामात्य के रोग की सूचना दे दो, अब हमें मत जगाना।’

‘महाराज को तुरन्त जगाओ!’ राक्षस ने उँगली से माथा ठोकते हुए कहा। ‘जैसी आज्ञा।’ कहते हुए अङ्गरक्षक अवन्त शयन कक्ष के द्वार पर पहुँच थप-थप करने लगा।

महानन्द झुँझलाते हुए जागे और द्वार पर आये। सामने राक्षस को देख उनकी सारी झुँझल घनसार हो गई। वे सस्नेह राक्षस की ओर

देखते हुए बोले—‘इतनी रात गये सहसा आगमन ! अवश्य कोई गहरी बात होगी ।’

‘हाँ, आपने सुना महामात्य शटकार अकस्मात् रोगी हो गये । शाम तक तो वे स्वस्थ थे ।’ राक्षस कुछ सोचते हुए कहने लगे ।

**महाराज**—‘हाँ, यह चिन्ता की बात अवश्य है ।’

**राक्षस**—‘चिन्ता की बात नहीं, भेद की बात जान पड़ती है महाराज ! चलो, महामात्य को देखने चलें ।’

‘चलो !’ कहते हुए महाराज अमात्य राक्षस के साथ महामात्य शकटार के निवास की ओर चल पड़े । शीघ्रता में महाराज राजसी गाड़ी में न जाकर राक्षस की गाड़ी में ही चल पड़े । इधर महाराज ने राक्षस के साथ प्रस्थान किया और उधर अवन्त द्वारा शकटार को सूचना मिली कि महाराज आ रहे हैं ।

महाराज और राक्षस गाड़ी में चलते हुए धीरे-धीरे बातें करने लगे । राक्षस ने दीर्घ श्वास खींचते हुए कहा—‘आप मानें या न मानें, निश्चित ही महल में कोई ऐसा व्यक्ति है जो हर बात की सूचना महामात्य को देता रहता है, और हो न हो यह भेदिया आपका अङ्गरक्षक अवन्त ही है । मुझे सन्देह है कि शकटार इतने भयंकर रोग से सहसा पीड़ित हो गये । अवश्य ही उन्हें यह सूचना मिल गई कि प्रातः उन्हें राजपूताने की विजय के लिए गमन करना है ।’

‘विश्वास नहीं होता, राक्षस ! अवन्त महल में हमारा सबसे अधिक हितैषी और विश्वासपात्र है ।’

‘परिणाम जब सामने आ जायेगा तो आपको विश्वास हो जायेगा महाराज !’ राक्षस ने विचित्र मुद्रा में कहा ।

**महाराज**—क्या क्रुद्ध हो गये राक्षस !

**राक्षस**—मैं अपने आराध्य अधिपति से न कभी नाराज होता हूँ और न कभी उनके अहित की कल्पना करता हूँ । साथ ही मुझे यह भी विश्वास है कि जब तक मेरी बुद्धि मेरे साथ है और मेरी भुजाओं में बल है तब तक महाराज पर आँच नहीं आ सकती ।

**महाराज**—मैं तो अधिनायक तुम्हारे दम से हूँ, सखे ! तुम जैसा सहायक जिस राज्य को मिल जाये उस पर क्या कभी संकट आ सकते हैं ।



बातों ही बातों में महामात्य शकटार का निवास आ गया। महाराज और राक्षस ने महामात्य के महल में शीघ्रता से प्रवेश किया। देखते ही देखते दोनों उस स्थान पर पहुँचे जहाँ महामात्य शकटार रुग्णावस्था में अर्धमूर्च्छित से पड़े थे। उनके सिरहाने बैठी वैजयन्ती गुलाब जल का भीगा हुआ वस्त्र पति के माथे पर रख रही थी। पैरों की ओर सुवासिनी एक आसन पर आसीन थी। उसके पास ही मुरा बैठी सन्तरे का रस निकाल रही थी।

आते ही राक्षस ने एक गहरी दृष्टि महामात्य शकटार के चेहरे पर डाली और फिर फेनोज्ज्वल गद्देदार शैया पर बैठ गये। महाराज पहले ही एक मणिमण्डित आसन पर विराज चुके थे। बैठते ही महाराज ने एक हल्की सी भावना से शकटार की ओर देखा और फिर सुवासिनी तथा मुरा की तरफ देखते ही रह गये।

राक्षस की आँखें भी सुवासिनी की ओर गईं। वे कुछ पल के लिए सुवासिनी के मुख से चिपक गईं। कठिनता से सावधान हो राक्षस सोचने लगा 'कितनी नवीनता है इसमें!' और फिर सचेत हो प्रश्न कर उठे—'कैसे एकदम महामात्य की ऐसी दशा हो गई? शाम तक तो ठीक थे!'

'सोचते-सोचते पिताजी अकस्मात् चक्कर खाकर गिर पड़े। तब से मौन हैं, अभी तक कुछ नहीं बोले।' सुवासिनी ने गर्दन झुकाये ही उत्तर दिया।

**राक्षस**—राजवैद्य आ चुके हैं क्या?

**सुवासिनी**—नहीं, आते ही होंगे। मैंने अभी थोड़ी ही देर पहले इन्हें अमृतरस दिया है, तब से तनिक पलकें खुली हैं।

**राक्षस**—तो शनैः शनैः महामात्य ठीक होते जा रहे हैं न?

इससे सुवासिनी कुछ चिढ़ गई। वह कुछ बुरा मानती हुई सी बोली—“ऐसा भयंकर रोग क्या पल दो पल में ही ठीक हो सकता है!”

उत्तर से राक्षस सहम गये और कुछ लड़खड़ाते हुए कहने लगे—  
“नहीं मैं शुभेच्छा से ऐसा कह रहा हूँ।”

**सुवासिनी**—“तो आपने यह कैसे समझ लिया कि मैं दुर्भावना से ऐसा समझ रही हूँ?”

महाराज नन्द इस वाद-विवाद से कुछ मुस्कराये और फिर सुवासिनी की प्रशंसा करते हुए बोले—बहुत चतुर जान पड़ती हो।

**सुवासिनी**—आपके आशीर्वाद से! कुछ अधिक बोलती हूँ।

“और यह कौन है?” महाराज ने मुरा की ओर संकेत करते हुए पूछा।

**सुवासिनी**—मेरी एक सहेली है।

**महाराज**—भली जान पड़ती है।

**सुवासिनी**—पहली नजर में सब भले ही प्रतीत होते हैं, लेकिन यह बड़ी टेढ़ी है महाराज! यह ऐसा खिलौना नहीं है जिससे बालक खेला करते हैं।

**महाराज**—खिलौने से तो सभी खेल लेते हैं, पर साँपिन से खेलना जरा टेढ़ी खीर है।

**सुवासिनी**—सपेरा यदि बनावटी नहीं है तो साँपिन कितनी भी जहरीली क्यों न हो, वह उससे खेल सकता है।

**राक्षस**—राजा के लिए राजनीति सबसे बड़ी साँपिन है। महाराज तो रोज ही राजनीति की विषैली साँपिनों से खेलते हैं।

**सुवासिनी**—किन्तु जो जिससे खेलता है वह किसी दिन उसी से डसा जाता है।

**राक्षस**—तुम्हें उत्तर देना खूब आता है, सुवासिनी! लेकिन यह समय वाद-विवाद के लिए नहीं। देखो तो महामात्य शकटार अब किस अवस्था में हैं?

**सुवासिनी**—मैं आपसे अधिक नहीं पहचान सकती।

**राक्षस**—राजवैद्य नहीं आये?

**सुवासिनी**—एक सौ दस वर्ष की अवस्था है उनकी और फिर हर समय की पुकार ने उन्हें और भी दुर्बल बना दिया है। आते ही होंगे।

**राक्षस**—जान पड़ता है तुम्हें महामात्य से अधिक राजवैद्य के स्वास्थ्य की चिन्ता है।

**सुवासिनी**—आपको भ्रम हुआ, मुझे हर उपयोगी जीवन के स्वास्थ्य की चिन्ता रहती है।

“राजवैद्य पधार रहे हैं।” एक सेवक ने कहा।



राजवैद्य के आते ही निस्तब्धता छा गई। साक्षात् धन्वन्तरि ने प्रथम तो गम्भीर दृष्टि से एक बार एड़ी से चोटी तक महामात्य को देखा और फिर हर आवश्यक अंग को अपनी उँगलियों से जाँचते हुए बोले—  
“चिन्ता की कोई बात नहीं। शरीर के किसी अंग में कोई विशेष विकार प्रतीत नहीं होता। जान पड़ता है किसी मानसिक प्रभाव से अकस्मात् ऐसा हो गया है। इन्हें पूर्ण विश्राम करना चाहिये। औषधि दिये देता हूँ, पर इनके लिए आवश्यक यह है कि किसी भी प्रकार की थकान इन्हें न हो।”

दवा देकर राजवैद्य चले गये। अमात्य राक्षस ने महाराज की ओर अत्यंत गम्भीर होकर देखा। गम्भीर मुद्रा में ही वे बोले—“एक ही वस्तु कभी-कभी भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई देने लगती है।”

महाराज के कुछ कहने से पूर्व ही सुवासिनी एकदम बोली—  
“भावना और भ्रम से दृष्टि भ्रम में पड़ जाती है।”

राक्षस—“मैं महाराज से कह रहा था।”

सुवासिनी—“मैं अभी अल्हड़ हूँ और अल्हड़ में संयम नहीं होता।”

महाराज नन्द ने हल्की सी मुस्कराहट के साथ कहा—“सूर्योदय होने वाला है अमात्य! राजपूताने की ओर सेना के प्रस्थान की व्यवस्था करनी है।”

राक्षस जैसे नहीं चाहते थे कि महाराज यह बात यहाँ कहें, अतः वे बात को महत्त्व न देते हुए बोले—“महाराज को न जाने कितनी व्यवस्थाएँ करनी होती हैं! चलिये, चलें!”

महाराज राक्षस के कहने से चलने को खड़े तो हो गये लेकिन उनका हृदय चलने को नहीं था। मुरा के अनुपम रूप ने उनके पैरों में शृङ्खलाएँ डाल दी थीं। रूप का बन्धन किसे नहीं बाँधता, राक्षस यह भली-भाँति जानते थे।

महाराज और अमात्य शकटार के निवास से निकल मुख्य द्वार पर आये। राक्षस पैनी दृष्टि से कण-कण और पल-पल को परख रहे थे। उनका हर कदम धरती को तोलता हुआ सा उठता था। हर व्यक्ति को वे ऐसे देखते जैसे उसका सारा अन्तर चित्र आँखों में खींच लेंगे। फाटक पर वे एकदम रुके, द्वारपाल की ओर क्रूर दृष्टि से देखा। अंगारे सी आँखे देखते ही द्वारपाल जीवित मृतक सा खड़ा रह गया। वह

श्वास भी ले इससे पूर्व राक्षस ने कड़क कर कहा—“क्या तुम उसका घर जानते हो जो महामात्य से मिलने आया था?”

काँपती हुई वाणी में द्वारपाल बोला—“मेरे सामने कोई नहीं आया महाराज! मैं तो अभी दो घण्टे से पहरे पर हूँ, मुझसे पहले द्वारपाल देवीदत्त था।”

**राक्षस**—कहाँ है देवीदत्त?

**द्वारपाल**—वह सामने से दक्षिण की ओर जो सेवक घर बने हुए हैं, उनमें चतुर्थाङ्क निवास में रहता है।

कुछ भी उत्तर दिये बिना ही राक्षस महाराज के साथ चतुर्थाङ्क सेवक के घर पर जा धमके। देवीदत्त द्वारपाल को अपने समक्ष उपस्थित करते हुए राक्षस ने कहा—‘द्वारपाल! क्या तुम उसका घर जानते हो जो महामात्य से मिलने आया था? उसकी इसी समय आवश्यकता है। महामात्य रोग से अचेतन हैं, वे बोल नहीं सकते।’

डरता हुआ द्वारपाल देवीदत्त बोला—मैं उसका घर तो नहीं जानता, वह इधर दक्षिण दिशा की ओर गया था।

**राक्षस**—भला क्या रूप था उसका?

**द्वारपाल**—लम्बा कद था, बहुत बूढ़ा था, एकदम सूखा सा था, वस्त्र बहुत कम पहने हुए था, केवल थोड़ा सा वस्त्र कटि पर लपेटे था।

**राक्षस**—उसके सभी बाल सफेद थे न?

**द्वारपाल**—हाँ, महाराज!

और कुछ कहे सुने बिना ही राक्षस तेजी से महाराज के साथ गाड़ी में सवार हो गये। गाड़ी चल पड़ी। राह में राक्षस ने कहा—‘महाराज! वह बूढ़ा ब्राह्मण चणक तुरन्त बन्दी बनाया जाना चाहिये। विष का बीज वही है। निश्चित ही चणक शकटार से मिलकर कोई गहरा कुचक्र रचने जा रहा है। इससे पहले कि भयंकर विस्फोट हो इन साँपों को कुचल डालने में ही हित है। विष फैलने से पहले इनके दाँत यदि नहीं तोड़े तो जहर फैलने के बाद कोई उपचार नहीं चलेगा।’

**महाराज**—मगर तुम उस सीधे ब्राह्मण चणक से इतने चिन्तित क्यों हो? वह फूस सा ब्राह्मण हमारा क्या कर सकता है!

**राक्षस**—वह सीधा दिखाई देता है और टेढ़ा है। वह फूस सा



आग लगते ही सुलग सकता है, इसीलिए बहुत ही खतरनाक है। जितनी शीघ्र हो सके उसका वध होना चाहिए।

**महाराज**—क्या ब्रह्म-हत्या करें ?

**राक्षस**—यदि उस ब्राह्मण की हत्या न हुई तो वह हमारी हत्या कर डालेगा। यह पाप नहीं, पुण्य है। राजनीति में धर्म की दीवार मृत्यु की दीवार होती है।

**महाराज**—किन्तु यह कैसे हो सकता है ?

**राक्षस**—यह किये बिना महाराज महापद्मनन्द का कल्याण नहीं हो सकता।

**महाराज**—ऐसा करने से प्रजा विद्रोह कर उठेगी।

**राक्षस**—दुर्बलता मनुष्य को हर समय डराती रहती है। महाराज अपनी आकांक्षाओं की दासता में अपनी शक्ति भी भूल बैठे हैं।

**महाराज**—क्या अमात्य राक्षस मुझसे नाराज हो रहे हैं ?

**राक्षस**—यह नाराजगी की नहीं, भक्ति की आवाज है महाबली !

**महाराज**—तो जैसी तुम्हारी इच्छा हो करो !

**राक्षस**—मैं अपनी इच्छा के लिए तो कुछ भी नहीं करता, महाराज की रक्षा के लिए ही सब कुछ करता हूँ।

सोचते-विचारते महाराज और राक्षस राजमहल में वापिस आ गये किन्तु राह की बातों की धुन में किसी ने यह ध्यान नहीं दिया कि गाड़ी के पीछे एक बालक चड़्ढी खाता चला आ रहा है। इधर राजाज्ञा निकली कि चणक को बन्दी बनाया जाये और उधर, राजाज्ञा घोषित होने से पहले ही उस बालक कौटिल्य ने अपने बूढ़े पिता (चणक) से राह में हुई महाराज और राक्षस की बातें बता दीं।



कौटिल्य से राह की बातें सुनते ही चणक चौकन्ने हो गये। उनकी आँखों के सामने राज्य की कठोर नीति नाचने लगी। उन्होंने सोचा, “राजद्रोह के अपराध में मैं बन्दी बनाया जाऊँगा। राक्षस के क्रूर हाथ मेरे रक्त से रँगें जायेंगे। राजमद मुझे शूली पर चढ़ा देगा। मुझे ही नहीं, मेरी आशा का एकमात्र प्रकाश कौटिल्य का भी वध करवाया जायेगा। समय से पहले ही भेद खुल जाने से क्रान्ति असफल हो गई। शकटार भी अवश्य ही आपत्ति में फँसेंगे। तब फिर क्या हो? मैं तो महामात्य से मिल भी नहीं सकता। कुछ क्षणों के बाद मुझे लोहे की दीवारों में बन्द होना पड़ेगा, लेकिन यह नहीं हो सकता। चणक किसी का दास कभी नहीं होगा। मेरी केवल एक ही इच्छा है, और वह यह कि देश भोगी राजा की जंजीरों से मुक्त हो जाये। राजतन्त्र की कठोर शक्ति के आगे निरीह क्यों झुके? मैं महानन्द की खूनी आँखों से दूर चला जाऊँगा। काठ में अग्नि की तरह प्रच्छन्न ब्रह्म को फिर कौन देख सकेगा।”

चणक ने एक बार अपनी झोंपड़ी को देखा और फिर कौटिल्य को देखते हुए बोले—हमारा यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं है। हमें शीघ्रातिशीघ्र ऐसे बीहड़ वन में पहुँच जाना चाहिए जहाँ महाराज नन्द की कोई भी गति न पहुँच पाये।

**कौटिल्य**—हम यहाँ सोचने में जितना समय लगा रहे हैं उतनी ही मृत्यु हमारे निकट आती जा रही है। तुरन्त यह झोंपड़ी छोड़ दो! चलो शीघ्र और कदम वहीं रोको जहाँ राज्य की दीवारें हमसे इतनी पीछे रह जायें कि परछाई की झलक भी न छू सके।

**चणक**—पर कैसे? राज्य की सीमा में पग-पग पर हथकड़ियाँ लिये राक्षस सिपाही खड़े होंगे।

**कौटिल्य**—आप तुरन्त अन्धे बन जाइये, लठिया का एक सिरा आप पकड़ लीजिये और दूसरा मैं पकड़ लेता हूँ। चलिये, अगला श्वास राह में लेंगे।

**चणक**—ठीक है, यही मार्ग उचित है।

पीछे-पीछे एक अन्धा बूढ़ा और आगे-आगे लठिया के सहारे



बूढ़े बाबा को ले जाता हुआ बालक सड़क पर दिखाई देने लगा। कितनी ही सड़कें इन यात्रियों ने पार की। बहुतों की आँखों से बचते हुए ये कई घण्टों की निरन्तर यात्रा के बाद राजधानी की सीमा से बाहर आ गये।

गाँव से गाँव, वन से वन अदलते-बदलते लगभग तीन मास में चणक और कौटिल्य ने एक गाँव के निकट गंगा तट पर धूनी रमाई।

नीचे धरती और ऊपर आकाश, जीवन रक्षा के लिए बहती हुई गंगा, भविष्य के लिए बालक कौटिल्य, ये ही अवलम्ब चणक के पास शेष थे। चणक हर समय उधेड़ बुन में लगे रहते थे। उन्हें हर समय चिन्ता रहती थी कि क्या होगा? अकेले तो शायद उन्हें इतनी चिन्ता न होती, पर कौटिल्य की ओर से वे हर समय चिन्तित रहते थे। अकेले को रोटी मिले या न मिले, वस्त्र हों या न हों, किन्तु किसी बच्चे की चिन्ता उस बाप को अधिक होती है जिस बालक के ऊपर बाप ही एकमात्र सहारा होता है।

चणक ने चिन्तातुर स्वर में कहा—बेटा कौटिल्य! जा, गाँव से थोड़ा आटा माँग ला और लौटते हुए लकड़ी चुगते चले आना। कल से तूने कुछ नहीं खाया, तेरे लिए रोटी बना दूँगा।

**कौटिल्य**—तो क्या हुआ, आपने भी तो कुछ नहीं खाया है। और भिक्षा माँगकर अन्न मैं नहीं लाऊँगा, पिताजी! माँगने के लिए मेरा हाथ न फैलेगा।

**चणक**—हम ब्राह्मण हैं और इस समय आपत्ति में हैं। जीवन रक्षा के लिए पेट भरना अनिवार्य है। मैं अकेला होता तो बिना खाये ही देह त्याग देता, पर तेरे जीवन की रक्षा मैं अपना माँस बेचकर भी करना चाहता हूँ।

**कौटिल्य**—धीरज और धर्म की परीक्षा आपत्ति में होती है। माँगना ब्राह्मण का धर्म नहीं; भिखारी कोई अपाहिज हो तो भी उचित है। जिसकी बुद्धि और हाथ-पैर सुरक्षित हैं, उसे माँगने की क्या आवश्यकता है!

**चणक**—पेट तो किसी न किसी तरह भरना ही है।

**कौटिल्य**—भिक्षा के अन्न से पेट भरना गौरवशाली व्यक्ति के लिए पाप है।

**चणक**—राज्य की आँखों से बचे रहकर और किस तरह पेट भर सकते हैं?

**कौटिल्य**—संसार में मूर्खों की कमी नहीं। बहुत से मूर्ख यहीं धूनी पर पूजने चले आयेंगे। जहाँ मूर्तियों पर लाखों मन मिष्टान्न भोग में चढ़ाया जाता हो वहाँ क्या जीते-जागते मनुष्य के लिए प्रसाद न आयेगा! आप यहाँ मौन व्रत धारण करके बैठ जाइये! मैं गाँव में किसी तरह यह बात फैलाये आता हूँ कि गंगा तट पर एक सिद्ध महात्मा आये हुए हैं। वे केवल एकादशी को बोलते हैं, प्रश्न पूछने की इच्छा से आये हुए मनुष्य का मुख देखकर ही पिछले जन्म, इस जन्म और अगले जन्म तक का सारा हाल बता देते हैं। सारे गाँव में एक न एक व्यक्ति तो ऐसा अवश्य ही मिल जायेगा जिसके जीवन का हाल-चाल मैं किसी न किसी तरह जान ही लूँगा, और यदि न भी जान सका तो एकादशी के तो अभी दस दिन बाकी हैं, तब तक अपने राम कहीं दूर जाकर कोई दूसरा रूप धारण कर लेंगे।

चणक कौटिल्य की अद्भुत बुद्धि की सूझ सुनकर मन ही मन मुस्कराये और फिर विचित्र मुद्रा में बोले—कहीं भंडा फूट गया और किसी को यह पता चल गया कि यह साधु वेष में बैठा हुआ विद्रोही ब्राह्मण चणक है तो परिणाम जानते हो?

**कौटिल्य**—परिणाम के भय से यत्न छोड़ बैठना वीर कर्म नहीं, आप ही ने तो मुझे अनेक बार यह शिक्षा दी है।

**चणक**—किन्तु यह मैंने सदा कहा है कि खतरा अपने शरीर से भी रहता है। इसलिये कोई भी कार्य करो पर सिद्धि के बाद तक उसकी ओर से असावधान न रहो।

**कौटिल्य**—आपके आशीर्वाद से आँच नहीं आयेगी।

**चणक**—तो अब हम स्नान ध्यान करते हैं, तब तक तुम गाँव में घूम आओ!

आकर्षक वेष बना कौटिल्य पास के गाँव में आ गया। गाँव में एक स्थान पर दस बारह बालक खेल रहे थे। कौटिल्य ने दूर से उन्हें देखा। उसने अपनी जेब टटोली, न जाने कब के कुछ पैसे उसकी जेब में पड़े थे। उसने पास ही कुछ दूर पर जाकर एक दुकान से उन पैसों के बताशे खरीद लिये। वह दौड़कर फिर गंगा किनारे धूनी पर गया। धूनी के बराबर के कोयले हटाकर धूनी की आग को बिल्कुल बुझा, एक तरफ जरा सी धुएँ की सी लकड़ी छोड़ बताशे हटा कोयलों के नीचे पत्ते में रख दिये।



बताशे कोयलों के नीचे रख कौटिल्य दौड़कर फिर उन बालकों में आया और बताशे चबाता हुआ बोला—‘ भगवान आये हैं, भगवान ! कोयलों की मिठाई बनाकर खिलाते हैं ।’

सुनते ही बालक उछल पड़े—चलो, हम भी देखेंगे ।

**कौटिल्य—चलो !**

दौड़ते हुए बालक कौटिल्य के साथ गंगा किनारे भगवान जी की धूनी पर आ गये । कौतूहल से बालकों की आँखें धूनी के पास विराजमान साधु को देखने लगीं । साधु महाराज आँखें बन्द किये मौन बैठे रहे । कौटिल्य कुछ देर तो आँखें बन्द कर हाथ जोड़े खड़ा रहा और फिर विचित्र घोष करता हुआ बोला—‘ भगवान् जी महाराज ! आँखें खोलिये गाँव से आये हुए बालक कितनी देर से खड़े स्तुति कर रहे हैं । शीघ्र ही हम सबको प्रसाद दीजिये ।’

मुस्कराते हुए साधु महाराज ने आँखें खोलीं । एक हाथ आशीर्वाद का उठाते हुए उन्होंने दूसरा हाथ धूनी में डाला, बताशे निकाल-निकाल कर बालकों को देने लगे । बालकों ने प्रसन्नता से बताशे खाये और फिर उछलते-कूदते हुए यह इच्छा लेकर वापिस गाँव की ओर चल दिये कि कितनी शीघ्रता से गाँव में पहुँचे और यह शुभ समाचार घर-घर में सुना दें ।

दूसरे दिन गाँव में हरेक की वाणी पर एक ही वाक्य था, ‘ भगवान जी आये हैं !’ एक स्त्री दूसरी स्त्री से यही कहती सुनाई देती थी । एक पुरुष दूसरे पुरुष से इसी की चर्चा करता दिखाई देता था । पर कुछ भी हो भगवान को कमी नहीं रही । दर्शनार्थियों की भीड़ लगने लगी । भोजन के लिए भोग पर भोग आने लगे ।

धीरे-धीरे भगवान जी के आगमन का समाचार गाँव से नगर में और एक नगर से दूसरे नगर में फैलने लगा । दूरी को भेदता हुआ यह समाचार एक दिन मगध राज्य के कानों तक भी पहुँचा ।

X

X

X

सन्ध्या समय लगभग सात बजे होंगे जब गुप्तचर विराध अमात्य राक्षस के निवास स्थान पर पहुँचा । राक्षस बगीचे में टहल रहे थे । विराध को देखते ही उन्होंने टहलना बन्द कर दिया, उसको साथ ले वे महल के एक गुप्त कक्ष में आ गये । रम्य आसन पर बैठने के बाद उत्सुकता से विराध ने कहा—‘ विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि चम्पा

के निकट गंगा तट पर कोई साधु जमा हुआ है। मेरा ख्याल है, हो न हो यह साधु-वेषधारी चणक ही है।'

**राक्षस**—यह तुमको कैसे विश्वास हुआ ?

**विराध**—रंग-ढंग और हुलिये से।

**राक्षस**—यदि यह सत्य है तो किसी भी प्रकार साधु बन्दी बनाया जाना चाहिये। लेकिन बन्दी बनाने से पहले यह निश्चय हो जाना चाहिये कि वह ब्राह्मण चणक ही है।

**विराध**—मैं आशा करता हूँ कि इस सप्ताह के अन्दर उस ब्राह्मण को बन्दी बनाकर आपकी सेवा में उपस्थित कर दूँगा।

**राक्षस**—लेकिन बड़ी सावधानी से, वह बूढ़ा ब्राह्मण बहुत चालाक है।

**विराध**—निश्चित ही वह ब्राह्मण बहुत धूर्त है। जहाँ उसने आसन जमाया हुआ है वहाँ के आस-पास के ग्रामों पर उसका जादू है। उसकी चुटकी को लोग कल्पवृक्ष समझते हैं। उसकी पूजा के लिए भीड़ लगी रहती है। गाँव वाले उसे भगवान मान बैठे हैं।

**राक्षस**—इसलिए उससे बहुत सतर्क रहना। कहीं देखते ही देखते वह आँखों में धूल न डाल दे।

'आँखों में यदि धूल पड़ गई तो फिर बात ही क्या रही! आप देखते रहिये, मैं उसे कैसा खेल खिलाता हूँ।' कहता हुआ विराध अमात्य की आज्ञा पाकर चणक को बन्दी बनाने के लिए चल दिया।

अमात्य से अलग हो विराध चणक के पड़ौसी दारुवर्मा के पास पहुँचा दारुवर्मा उस समय अपने चाचा से झगड़ा कर रहा था। जैसे ही विराध ने उसे नमस्कार किया, वह उठ खड़ा हुआ। विराध को देखते ही झगड़ा बन्द कर दारुवर्मा ने कहा—'कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। मेरे घर, और आप!'

**विराध**—एक बार रावण जैसे शक्तिशाली को भी मरीचि के द्वार पर जाना पड़ा था। आवश्यकता पड़ने पर गधे को भी बाप बनाना पड़ता है। लेकिन मेरा अर्थ यह नहीं कि तुम उसी कोटि के हो। तलवार पाषाण तक इसलिये आई है कि वह तेज हो जाये और कुचक्रियों को काट सके।

**दारुवर्मा**—तलवार तो तेज होगी ही लेकिन पत्थर घिस जायेगा।



**विराध**—भूल जाओ बीती बातों को, मैं तुम्हें बड़ा आदमी बनाने आया हूँ।

**दारुवर्मा**—बड़े छोटों को बिना मृतलब बड़ा नहीं बनाते। कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

**विराध**—चम्पा गाँव के निकट गंगा तट पर एक पहुँचा हुआ साधु धूनी रमाये हुए है। हमारा ख्याल है कि वह तुम्हारा पड़ौसी विद्रोही ब्राह्मण चणक है। हम इस सन्देह को विश्वास में बदलने के लिए तुम्हारी सहायता चाहते हैं। हम चाहते हैं कि तुम चणक को पकड़वाने में हमारी पूरी मदद करो। इसके पुरस्कार में तुम्हें पाँच सौ स्वर्ण मुद्राएँ मिलेंगी और सदैव के लिए राज्य के गुप्तचर विभाग में तुम्हें एक अच्छी पदवी दे दी जायेगी।

दारुवर्मा के मस्तिष्क में तूफान आ गया, हृदय उछलने लगा, पाँच सौ स्वर्ण मुद्राएँ उसकी आँखों के सामने नाचने लगीं। लालच कितना भयंकर होता है ! दारुवर्मा पहले ही चणक ब्राह्मण से किलसता था। उसके घर की दीवार से चणक की झोंपड़ी का एक रुख मिला हुआ था। दारुवर्मा की नीयत थी कि वह झोंपड़ी यदि उसे मिल जाये तो वह अपने मकान को नये सिरे से लम्बा चौड़ा बनवा ले। यही नहीं, चणक ब्राह्मण की बात सारा मौहल्ला मानता था। चणक की भलाई और सेवाओं के कारण सबकी दृष्टि में उसका सम्मान था। ब्राह्मण का यह सम्मान दारुवर्मा की आँखों में शूल की तरह चुभता था। वह अनेक बार बिना बात ही चणक से लड़ भी चुका था। वह उसके नाश की सदैव आकांक्षा रखता था। उसने इस आई हुई नियामत को भगवान की प्रसन्नता समझ मन ही मन में अपनी मूँछें पैनाई।

और फिर मुँह कुछ सीधा टेढ़ा सा कर कहने लगा—देखो विराध जी, पड़ौसी के साथ बुराई करना कठिन काम है, पर तुमसे भी हमारे पुराने सम्बन्ध है, इसलिये पड़ौसी की परवाह न करते हुए हम तुम्हारी मदद करेंगे। पर तुमको भी जो वचन हमें दे रहे हो, पूरे करने होंगे।

सुनते ही विराध ने सौ स्वर्ण मुद्राओं की एक थैली निकाली। थैली दारुवर्मा के पल्ले में फेंकता हुआ बोला—हमारी बात पत्थर की लकीर होती है। जो बात हमने कह दी है वह अटल है, सौ स्वर्ण मुद्राएँ तुम्हें अग्रिम दे रहे हैं।

दारुवर्मा ने थैली उठाई, उठकर खड़ा हुआ और फिर अभिमान

दिखाता हुआ बोला—‘विश्वास रखिये, मैं आपका पूरा मददगार रहूँगा।’

आवश्यक आदेश देकर विराध अपने कार्यालय की ओर चल दिया। दारुवर्मा ने चम्पा की राह पकड़ी। हृदय में पाप छिपाये वह दूसरे ही दिन गंगा तट पर साधु रूपधारी चणक की धूनी पर पहुँचा। धूनी पर उस समय भक्तों की भीड़ लगी हुई थी। बाबा जी आँखें मूँदे विराजमान थे। दारुवर्मा ने तीक्ष्ण दृष्टि से साधु को देखा।

और साथ ही भीड़ में एक ओर बालकों में बैठे कौटिल्य ने देखा तीक्ष्ण दृष्टि से प्रच्छन्न अपने पड़ौसी चाचा दारुवर्मा को। देखते ही कौटिल्य को जैसे बिच्छु ने काट लिया। किन्तु वह किञ्चित् भी कम्पित न हुआ, उसी प्रकार मौन बैठा रहा।

सन्ध्या होने लगी और धीरे-धीरे भक्त अपने घर जाने लगे। भक्तों के साथ ही दारुवर्मा भी उठकर चला गया। कौटिल्य भी दारुवर्मा की आँखों से बचकर भीड़ में खोता हुआ कहीं दूर निकल गया। काफी दूर जाकर वह एक टीले की आड़ में छिपकर बैठ गया। और इधर दारुवर्मा काफी देर तक गंगा किनारे भ्रमण करता हुआ चुपचाप न जाने कहाँ छिप गया।

टीले की आड़ में छिपा हुआ कौटिल्य सोचने लगा, “क्या करूँ? पिताजी तो आँखें बन्द किये बैठे रहे। उन्हें तो पता नहीं कि दुष्ट दारुवर्मा यहाँ भी आ पहुँचा है। और यदि मैं उन्हें यह खबर दूँगा तो हो सकता है वह दुष्ट यहीं आस-पास कहीं छिपा बैठा हो और मुझे पहचान ले। लेकिन कैसे न कैसे पिता जी को यह बात मालूम तो होनी ही चाहिये। चूक हो गई, नहीं तो इसी गाँव में बने अपने नये साथी जीवधर्म के द्वारा मैं पिता जी को सावधान करा सकता था। पर अब कैसे हो?”

कौटिल्य के मस्तिष्क में विचारों की उलझन घूमने लगी। वह सोचता-सोचता छिपता हुआ टीले की आड़ से निकला, छिपता और दौड़ता हुआ जीवधर्म के पास पहुँचा। समय झुटपुटे का हो गया था, जीवधर्म को साथ ले कौटिल्य गाँव से मिले हुए एक खेत में आया। जीवधर्म के कन्धे पर हाथ रख उसने कहा—“इस तूफानी संसार में तुम ही एकमात्र मेरे सखा हो। मुझे तुम पर उतना ही विश्वास है जितना स्वयं पर। क्या तुम मुझे विश्वास दिला सकते हो कि मेरे विश्वास पर कभी आँच नहीं आयेगी?”



**जीवधर्म**—तुम ये कैसी बातें कर रहे हो, कौटिल्य ! मैं तुम्हें सखा नहीं, अपना सरदार मानता हूँ। तुम्हारी आज्ञा पर मेरे ही हाथ से मेरा सिर कटकर तुम्हारे चरणों पर पड़ सकता है।

**कौटिल्य**—मुझे ऐसी ही आशा थी, तभी तो तुम्हारे पास चला आया। देखो, यह साधु जो गंगा तट पर धूनी रमाये है विशेष खतरे में है। एक भयंकर डाकू के सन्देह में राजपुलिस इस महात्मा को पकड़ना चाहती है। साधु इससे अनभिज्ञ है। तुम तुरन्त उन्हें सतर्क कर दो। हो सकता है सावधान करने के सन्देह में तुम्हें भी बन्दी बनना पड़े।

**जीवधर्म**—लेकिन तुमने ही उनसे क्यों नहीं कह दिया ?

**कौटिल्य**—साधु की सहायता से मुझे उनके प्रति श्रद्धा हो गई है, मैं उन्हें गुरुवत् मानने लगा हूँ। कहीं मैं भी साधु के साथ बन्दी न बन जाऊँ, इस भय से मैं नहीं जाता। क्योंकि मैं बन्दी बनना नहीं चाहता। साधु यदि पकड़े गए तो मैं छुड़ाने का यत्न कर सकता हूँ, लेकिन यदि मैं भी पकड़ा गया तो बेचारे साधु की सहायता करने वाला कोई नहीं रहेगा। तुम जानते नहीं, यह राज्य महानन्द का है, जो अपनी कुत्सित इच्छाओं के लिए राष्ट्र का रक्त चढ़ाने में लगा हुआ है। उसके प्रतिकूल उँगली तक हिलाने वाला शूली पर चढ़ा दिया जाता है। यह साधु भी कहीं उसके क्रोध की आहुति न बन जाये।

**जीवधर्म**—तो मैं तुरन्त जाता हूँ।

**कौटिल्य**—एक बात और कह देना कि कौटिल्य मुझे मिला था। उसने कहा है कि मैं आपके पास यह सूचना देने इसलिये नहीं आया कि मुझे आपकी हर इच्छा एक दिन सफल देखनी है। आपका कौटिल्य के प्रति अगाध आशीर्वाद बना रहे। यदि हत्यारा कठोर राज दण्ड आपके प्राण लेने पर उतारू हो जाये तो आप कौटिल्य की चिन्ता छोड़ सहर्ष यह नश्वर चोला छोड़ दें। आप समझ लें कि कौटिल्य मर गया और हरेक को कहें भी यही।

**जीवधर्म**—तुम्हारी इच्छानुसार ही यह सखा कार्य करेगा।

जीवधर्म चल पड़ा। कृष्ण पक्ष की अँधियारी के कारण वैसे ही हाथ को हाथ नहीं दिखाई देता था, इस पर बादलों ने और भी अँधेरा कर दिया। छिपता हुआ जीवधर्म साधु की धूनी तक पहुँच गया।

साधु से जीवधर्म ने कौटिल्य का सारा सन्देश कह दिया। सुनते

ही साधु चौकन्ना हो गया। उसने कहा—“कौटिल्य से कहना कि मैं किनारे ही किनारे उलटा जा रहा हूँ। इस राज्य की सीमा से बाहर किसी पर्वत पर डेरा डालूँगा। जीवधर्म, तुम भी तुरन्त ही यहाँ से चले जाओ!”

सुनते ही जीवधर्म वापिस हो गया। पर अभी कठिनता से सौ कदम बढ़ा होगा कि उसे जलती हुई मशालें दिखाई देने लगीं। वह तुरन्त पृथ्वी पर लेट गया। लेकिन लेटते ही उसने सोचा कि यदि लेटे हुए पकड़े गये तो सन्देह पक्का हो जायेगा, इसलिए उठकर फिर बेधड़क चलने लगा। उसने पीछे फिर कर भी नहीं देखा।

वह थोड़ी ही दूर और बढ़ा होगा कि राज पुलिस ने उधर साधु को और उधर जीवधर्म को पकड़ लिया। जैसे ही पुलिस ने जीवधर्म को पकड़ा वैसे ही वह जोर-जोर से रोने लगा।

पुलिस रोते हुए बालक को पकड़कर वहाँ ले आई जहाँ किनारे पर साधु को हथकड़ियाँ पहनाई जा रही थीं।

बालक को देख साधु ने कहा—“दारुवर्मा! तुम्हारी आँखें धोखा खा रही हैं। यह बालक वह नहीं है जो तुम्हारी आँखों में शूल की तरह चुभता था। वह तो आज छठा दिन है जब नहाता-नहाता गंगा में डूब गया। यह बालक तो गाँव के एक ब्राह्मण का है। मेरे लिए भोजन लेकर आया था। अच्छा हुआ तुमने मुझे पकड़ लिया। अब मुझे जीने की कोई इच्छा शेष नहीं रही। सोचता था जीवन तपस्या में बिता दूँ, लेकिन कौटिल्य के बिना वह भी अखरती थी। यह भी सोचता था कि गंगा में डूबकर प्राण दे दूँ, पर जीवन के मोह ने मुझे यह भी करने नहीं दिया। तुम्हारी शान्ति के लिए और महानन्द के दण्ड प्रहार के लिए मैं जीवित रह गया। तुम्हारा शत्रु मैं हूँ, यह बालक नहीं। इस बिचारे को मेरी आई में क्यों सताते हो?”

दारुवर्मा ने ध्यान से बालक को देखा और फिर क्रोध की आँखों से चणक को देखता हुआ पुलिस से बोला—“इस बालक को छोड़ दो!”

छूटकर बालक दौड़ता हुआ गाँव की ओर चल दिया। पुलिस चणक को हथकड़ियाँ पहना कठोर पहरे में मगध की ओर ले चली।

तलवारों की छाया में, मशालों की रोशनी में, हथकड़ियों और



बेड़ियों की झनझनाहट करता हुआ उज्ज्वल प्रभात के गीतों सा बन्दी चणक जा रहा था।

बेड़ियों ने बन्दी के पैर चूमे और कहा—“इस लोहे में स्वतन्त्रता का रहस्य छिपा है, आर्य पुरुष! अत्याचार सहते-सहते जब सहिष्णुता भी शोले उगलने लगती है तभी तो वह आग निकलती है, जिसे महाक्रांति कहते हैं। जल में आग लग चुकी है, दिशायें रक्त वर्ण होती जा रही हैं। क्या तुम्हारे तप से दिव्य ज्योति सम्भूत कोई शक्ति अवतीर्ण नहीं होगी?”

□□



बूढ़े ब्राह्मण चणक को कठोर पहरे में कैद कर दिया गया। उन्हें इस प्रकार सताया जाने लगा जिस प्रकार किसी को सूई चुभा-चुभा कर मारा जाता है। खाने के लिए बाजरे की तीन रोटियाँ और श्वास लेने की वातायन रहित तन्हाई। आह ! क्रान्ति के सूत्रकोण को कितनी यन्त्रणाएँ सहनी पड़ती हैं। एक दिन जब चणक को रोटी देकर द्वार बन्द किया जा रहा था तो जेलर तथा अन्य राजकर्मचारियों के साथ राक्षस वहाँ आये। उन्हें देखते ही लोहे का दरवाजा बन्द करने से रोक दिया गया। राक्षस ने सभी काराधिकारियों को बड़े फाटक के बाहर भेज दिया, दो-तीन प्रमुख राजकर्मचारियों के साथ उन्होंने गर्भगृह में प्रवेश किया।

गर्भगृह में पत्थर के एक ढूले पर चणक सिर नीचा किये कुछ सोच रहे थे। राक्षस के आने की आहट से उन्होंने एक बार मुँह ऊपर उठाया और फिर नीचा कर लिया।

पल भर मौन खड़े रहने के बाद अमात्य राक्षस ने कहा—‘क्यों चणक ! किस चिन्ता में सिर नीचा कर धरती को देख रहे हो ?’

**चणक**—देख रहा हूँ कि धरती पर कहीं न्याय की कोई किरण शेष है या नहीं। सोच रहा हूँ, पृथ्वी महानन्द के अत्याचारों से तंग आकर फटने में विलम्ब क्यों कर रही है ! विचार रहा हूँ, जनता के रक्त से और देवियों के यौवन से खेलने वाले महानन्द का सिर अभी तक क्यों नहीं काटा गया ! चिन्ता है कि राक्षस जैसा महाबली और बुद्धिमान् चाँदी के टुकड़ों के लालच में पड़ा हुआ राजा की आकांक्षाओं पर स्वयं को क्यों बलिदान कर रहा है !

**राक्षस**—इसलिए कि राजभक्ति के माथे पर कलंक की स्याही न लगने पाये।

**चणक**—इसलिए नहीं, बल्कि इसलिए कि उसकी इच्छा महामात्य के ऊँचे आसन पर विराजमान होने की है।

**राक्षस**—जिसमें गुण होते हैं, सिंहासन उसके चरण चूमने स्वयं चला आता है।



**चणक**—धूर्त कितना भी गुणी हो, वह सर्प के सदृश ही होता है। मणियों वाला साँप मणि के कारण विष उगलना नहीं छोड़ता।

**राक्षस**—रस्सी जल गई, लेकिन बल अभी तक नहीं गया।

**चणक**—जब किसी निर्दोष को जलाया जाता है तो जलते हुए निर्दोष की ज्वाला वन की आग बन जाती है। इसी का दूसरा नाम क्रान्ति है।

**राक्षस**—विद्रोही और निर्दोष !

**चणक**—आश्चर्य तो यह है कि जनता के विद्रोह ने अभी तक अन्यायी की बोटी-बोटी क्यों न चबा डाली !

**राक्षस**—लो, तुम्हारे मुँह से ही यह सिद्ध हो गया कि जनता में विद्रोह नहीं, विद्रोह केवल एक बूढ़े ब्राह्मण के विषैले षड्यन्त्र का है।

**चणक**—शक्ति और छल से जनता को अन्धा बनाये रखने में ही राजतन्त्र की जय है। लेकिन जब जन-जन जागकर लुटेरों की लूट पहचान लेगा तो वह लुटेरों को वही दण्ड देगा जो एक कातिल दस्यु को दिया जाता है।

**राक्षस**—राजद्रोह के डाकुओं को यह दण्ड शीघ्र ही मिलेगा। लेकिन यह हो सकता है कि यदि तुम अपने किये पर पश्चाताप करो और महाराज नन्द के सामने गिड़गिड़ाकर अपने अपराध की क्षमा माँगो, तो बूढ़ा ब्राह्मण समझकर तुम्हें प्राणों की भीख मिल जाये।

**चणक**—क्षमा माँगने के लिए यदि महानन्द सहस्र बार भी मेरे समक्ष आये तो मैं उसे एक बार भी क्षमा न करूँगा। ऐसे अन्धे और पापी से क्षमा माँगने का स्वप्न कोई बुद्धिमान् मन्त्री तो क्या मूर्ख हत्यारा भी नहीं देख सकता है।

**राक्षस**—क्षमा माँगने से तुम्हें राज दरबार में ऊँचा आसन भी प्राप्त हो सकता है।

**चणक**—ऐसे राज दरबार में ऊँचे आसन पर बैठने के लिए सड़क पर बहुत से कुत्ते डोलते हैं।

**राक्षस**—जान पड़ता है बुढ़ापे में ब्राह्मण की बुद्धि खो गई है।

**चणक**—बुद्धि ब्राह्मण चणक की नहीं, पद लोलुपता में अमात्य राक्षस की नष्ट हो गई है। कितना अच्छा होता यदि राक्षस देशभक्त महामात्य शकटार की इतनी ही भक्ति करता जितनी वह महानन्द की

करता है।

**राक्षस**—महामात्य शकटार की भक्ति ! एक राजद्रोह के अपराध में बन्दी की पूजा ! ब्राह्मण, शकटार को तो राजद्रोह के घोर अपराध में पहले ही आजन्म कारावास का दण्ड दिया जा चुका है। यही नहीं, उसकी सारी सम्पत्ति राज्य ने जब्त कर ली है। उसके पापों का फल वह अकेला ही नहीं भोग रहा, उसके साथ उसके बच्चे भी बन्दीगृह में तड़प रहे हैं।

**चणक**—क्या महामात्य शकटार को बन्दी बना लिया गया और जनता अभी तक शान्त है।

**राक्षस**—क्योंकि राक्षस की बुद्धि और भुजाओं का बल राज्य के साथ है।

**चणक**—यह तुमने अच्छा नहीं किया राक्षस ! शकटार जैसे शान्त और नीति निपुण महामात्य को पाकर यह राज्य सुरक्षित था। अब दबी हुई चिंगारी धधक उठेगी, विदेशी आक्रान्ताओं को अवसर मिलेगा।

**राक्षस**—चिंगारी को कुचल कर राख कर डालने के लिए ही यह किया गया है। आन्तरिक विद्रोह से विस्फोट की सम्भावना थी। अब देखता हूँ कौन सा कुचक्र महाराज महानन्द की ओर टेढ़ी दृष्टि करने का साहस करता है ! महानन्द की रक्षा के लिए यदि मुझे बूढ़े ब्राह्मण के रक्त से हाथ रँगने पड़े तो मैं यह करने में भी संकोच न करूँगा। आपको समझाने के सारे प्रयत्न विफल दीखते हैं। बन्दीगृह की रोटियाँ खाकर दो-चार दिन और श्वास ले लो, इस बीच में यदि बदल जाओ तो अच्छा है, नहीं तो महानन्द का क्रोध एक बूढ़े ब्राह्मण का रक्त पी जायेगा।

**चणक**—मृत्यु का भय उसे होता है जो इस नश्वर शरीर को कारा न समझता हो। चणक चेतन है, वह अपनी सारी वासनाओं को संयम से फूँक चुका है। उसे सूखी रोटियों में भी अमृत का स्वाद आता है, और यदि तुम उसको बाजरे की तीन रोटियाँ भी देना बन्द कर दो तो भी वह महानन्द के समक्ष न झुकेगा। यह बूढ़ा ब्राह्मण अब तक बाजरे की रोटियाँ खा-खाकर इसीलिए जीवित है कि वह महानन्द को सिंहासनच्युत देख सके।

**राक्षस**—तुम्हारे लिए जल्लाद के खड्ग के अतिरिक्त और कोई उपचार नहीं, तुम उसी की प्रतीक्षा में जीवित रहो। यदि हमारी दया से



दान में दी हुई जिन्दगी के क्षणों में तुम्हें क्षमा माँगने की बुद्धि आ जाये तो अन्त तक तुम्हें महाराज से क्षमा दिलाने का यत्न करूँगा।

**चणक**—मुझे जिन्दगी का दान नहीं चाहिये। यदि तू एक बूढ़े ब्राह्मण को दान ही देना चाहता है तो मुझे दान में जनता का राज्य दे दे, देश को जनता की इच्छा का राजा दे दे, महानन्द के आतंक से भारत भूमि को मुक्त कर दे!

**राक्षस**—राक्षस राजभक्त है, महानन्द के साथ वह मृत्यु पर्यन्त भी विद्रोह नहीं करेगा। अच्छा, अब हम जाते हैं। जाते-जाते तुम्हें यह हर्ष समाचार और सुना दें कि राजपूताने के राजाओं ने मगध राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली है।

राक्षस बन्दीगृह से बाहर आ गये। काराधिकारी से कुछ गुप्त बातें कर वे सीधे महाराज महानन्द के राजभवन की ओर चल दिये। राह में थोड़ी-थोड़ी दूर पर दक्ष सैनिकों का कठोर पहरा था। हर ओर के रास्ते रुके हुए थे। जब तक अमात्य राक्षस मार्ग से न गुजर जायें तब तक कोई भी उस पथ पर आ-जा नहीं सकता था। अमात्य की सुरक्षा का प्रबन्ध राज्य के चुने हुए सेनाधिकारियों पर छोड़ा हुआ था। क्या मजाल जो अमात्य राक्षस का बाल भी बाँका हो पाये।

राक्षस राजभवन में आ पहुँचे। उनके आने की सूचना सुनते ही महानन्द द्वार पर आ गये। जिस प्रकार कोई दुर्बल किसी बलवान सहारे को पाकर विचित्र सम्मान दिखाता है उसी प्रकार निकट आते हुए महानन्द राक्षस को एक विशाल कक्ष में ले आये। कामदार मखमली कालीनों पर महाराज और राक्षस एक साथ विराजे।

बैठते ही महानन्द ने कहा—‘तुम्हारी बुद्धि और भुजाओं के भरोसे हम सुख से सोते हैं।’

**राक्षस**—लेकिन दुःख है कि हमारे महाराज सुख की नींद में उसी प्रकार खो गये हैं जिस प्रकार कोई अकिंचन आशा से अधिक धन पाकर खो जाता है।

**नन्द**—जान पड़ता है बूढ़े ब्राह्मण की भेंट का कुछ प्रभाव तुम पर भी पड़ गया। तो क्या तुम भी हमें श्रद्धा से देखना पसन्द नहीं करोगे?

**राक्षस**—हम राजभक्त हैं महाराज! आपके लिए अपने रक्त की अन्तिम बूँद तक बहा देंगे।

**नन्द**—तभी तो हम निश्चिन्त हैं।

**राक्षस**—राक्षस के रहते आप पर आपत्ति तो कोई न आ सकेगी, लेकिन अन्तर से न जाने कौन पुकार-पुकार कर कहता है कि मदिरा, कंचन और कामिनी जब एक साथ मिल जाते हैं तो पतन के पैर रोके नहीं रुकते। राजा सबका रक्षक होता है, महाराज ! यदि वह वासनाओं की भूख में भक्षक बन जाये तो भूकम्प टूट पड़ता है, प्रलय हो जाती है। मेरे विचार से मुरा का राजमहल में लाना नागिन को अपने कण्ठ से लपेटना है। रूप की उस मणि में विष का फण दबा हुआ प्रतीत होता है।

**नन्द**—मुरा में तो अमृत है, अमात्य !

**राक्षस**—वह प्याला अमृत का है पर उसमें भरा हुआ विष है।

**नन्द**—यदि उस प्याले में विष है तो हमें शंकर की तरह गरल पान करना भी आता है।

**राक्षस**—शिव शक्ति-सम्पन्न थे, वे विष पान करके भी अमर हैं। पर साधारण मनुष्य विष पीकर मर जाता है। भावुकता में कवियों की भाषा और होती है तथा व्यवहार की भाषा अलग है। जिस प्रकार कामान्ध 'पांडु' ने ऋषि के शाप की चिन्ता न करते हुए 'माद्री' के कण्ठ में डाली हुई भुजाओं के साथ-साथ अपने प्राण दे दिये थे, उसी प्रकार मुरा भी कहीं किसी दिन अभिशाप की भयंकर चिंगारी के रूप में प्रकट न हो जाये।

**नन्द**—मुरा की कहानी मेरे लिए छोड़ दो, मैं उसे स्वयं सुलझा लूँगा। तुम इन बातों में डूबकर अपना समय नष्ट मत करो। हाँ तो शकटार को कारागृह में कठोर से कठोर दण्ड दिया जा रहा है न ?

**राक्षस**—आपकी आज्ञानुसार शकटार को काल कोठरी में डाला हुआ है। उसे खाने के लिए प्रतिदिन केवल ढाई पाव सूखा सत्तू दिया जाता है। किसी भी दशा में वहाँ परिन्दा भी पर नहीं मार सकता।

**नन्द**—देखो, कोई भी शकटार से मिलने न पाये।

**राक्षस**—महाराज की दृष्टि के संकेत मात्र से ही वायु की गति रुक जाती है। शकटार जिस काल कोठरी में बन्द है वहाँ तक न तो सूरज की धूप पहुँच सकती है, न चन्द्रमा की चाँदनी। वहाँ केवल अन्धकार ही शकटार की बात सुन सकता है।

**नन्द**—और सुवासिनी तथा शकटार के शेष परिवार की क्या



दशा है ?

**राक्षस**—वे भी राज्य के एक महल में बन्दी हैं, किन्तु उन्हें कोई कष्ट नहीं दिया जा रहा है। सुवासिनी को पढ़ने-लिखने की पूरी सुविधा दी जा रही है।

**नन्द**—विद्रोह तो अब शान्त है न ?

**राक्षस**—राजदण्ड के आतंक से सभी राजभक्त हो गये हैं। हर ओर से महाराज नन्द की जय ध्वनि सुनाई देती है।

**नन्द**—और वह बूढ़ा ब्राह्मण चणक ? उसके बल अभी जले या नहीं।

**राक्षस**—वह तो टस से मस नहीं होता। किसी भी लोभ और किसी भी डर से वह नतमस्तक होने को तैयार नहीं है।

**नन्द**—तो उसका मस्तक काट डालो ! उसका सिर काटकर चौराहे पर लटका दिया जाये जिससे कि भविष्य में कोई विद्रोह करने का साहस न करे।

**राक्षस**—क्या कोई और उपाय नहीं हो सकता महाराज !

**नन्द**—उपाय सोचने ही सोचने में जितना समय नष्ट किया गया वह सब हमारी इच्छा के प्रतिकूल हुआ है, अब हम कुछ और नहीं सुनना चाहते। चणक का सिर काटकर चौराहे पर टाँग दिया जाये, यह राजाज्ञा है।

**राक्षस**—आज्ञा का पालन होगा महाराज ! किन्तु जनता में राजाज्ञा की घोषणा सूली देने के केवल छः घण्टे पूर्व होनी चाहिये। उससे पहले किसी को कानोंकान यह खबर न लगे कि ब्राह्मण चणक का वध होगा। और महाराज यदि मेरी मानें तो मेरी इच्छा तो यह भी है कि चणक को बन्दीगृह में ही विष देकर मार डाला जाये तथा घोषित यह कर दिया जाये कि हृदय की गति रुकने से ब्राह्मण चणक की मृत्यु हो गई।

**नन्द**—लेकिन हमारी इच्छा है कि हम ब्राह्मण का सिर पैरों से कुचल कर चौराहे पर टँगा देखें।

**राक्षस**—राजनीति में अपनी इच्छा की बलि चढ़ानी पड़ती है महाराज ! चणक का वध, आपकी यह आकांक्षा पूरी हो ही जायेगी, बस !

**नन्द**—तो तुम व्यर्थ ही हमारे बल का ढिंढोरा पिटते हो! हम राजा व्यर्थ हैं जबकि हम एक विद्रोही ब्राह्मण को इच्छानुसार दण्ड भी नहीं दे सकते। हमारी आज्ञा है कि चणक का सिर काटकर आज से तीसरे दिन प्रातः हमारे समक्ष उपस्थित किया जाये।

राक्षस स्तब्ध रह गये। हवा के साथ-साथ राजाज्ञा की घोषणा चारों ओर फैल गई। राक्षस के यत्न करने पर भी यह बात छिपी न रह सकी। चिन्ता में डूबे हुए राक्षस अपने निवास पर आ गये। वे विचारों में गोते लगाते हुए लेट गये। उन्होंने सोना चाहा पर नींद न आई। किसी तरह राक्षस ने रात बिताई। सवेरे अभी वे बिस्तरे पर लेटे-लेटे सोच ही रहे थे कि एक सेवक ने अभिवादन करने के बाद कहा—  
'शकटार की पुत्री ने यह आवश्यक पत्रिका प्रेषित की है।'

पत्रिका लेकर अमात्य राक्षस ने पढ़नी शुरू की। उसमें लिखा था, 'सोने के सीखंचों में बन्दी मगध के भूतपूर्व महामात्य कटार की पुत्री आपसे भेंट करना चाहती है।'

पत्र पढ़ते ही राक्षस उठे और सीधे बन्दी कक्ष की ओर चल पड़े, जिसमें शकटार का परिवार बन्दी था। राक्षस से सुवासिनी की भेंट के लिए कक्ष के द्वार खोल दिये गये। शकटार सुता के सामने आते ही राक्षस बोले—'कहिये, हमें किसलिए याद किया?'

**सुवासिनी**—सुना है देवतास्वरूप बाबा चणक को कत्ल किया जायेगा!

**राक्षस**—हाँ, राजाज्ञा ही ऐसी है।

**सुवासिनी**—यह राजाज्ञा नहीं, हत्या है। जो राजा हत्यारा हो उसकी आज्ञा मानना अधर्म है।

**राक्षस**—राजाज्ञा उचित है या अनुचित, यह एक पृथक् बात है। लेकिन जो राजाज्ञा है उसका पालन करना हमारा धर्म है।

**सुवासिनी**—तो इसका अर्थ यह हुआ कि आपके परामर्श से ही यह हत्या हो रही है।

**राक्षस**—मेरा परामर्श क्या था, यह मन्त्रणालय की दीवारों में समाया हुआ है, उसकी ध्वनि ढिंढोरा बनने के लिए नहीं है। लेकिन जो राजाज्ञा है उसके विपरीत चलने वाला हमारी सम्मति में अपराधी है।



**सुवासिनी**—क्या किसी प्रकार बाबा चणक को इस अमानुषिक हत्या से बचाया नहीं जा सकता ?

**राक्षस**—यदि वे दाँत में तिनका दबाकर महाराज महानन्द से अपने अपराधों की क्षमा माँग लें तो सम्भव है महाराज उन्हें क्षमा कर दें।

**सुवासिनी**—और यदि जनता के कुछ प्रतिनिधि महाराज के पास यह प्रार्थना पत्र भेजें कि चणक निर्दोष हैं, इसलिए उन्हें बिना शर्त मुक्त कर दिया जाये तो ?

**राक्षस**—ऐसा प्रार्थनापत्र षड्यन्त्रकारियों का एक जाल भी हो सकता है।

**सुवासिनी**—तो आप भी समझ लें कि बाबा चणक प्राण दे देंगे पर क्षमा नहीं माँगेंगे। वे उस शीशे के बने हुए हैं, जो चूर-चूर हो सकता है पर टूट नहीं सकता। उनके रक्त से हाथ रँगकर आप अपने राजसिंहासन को आज तो सजा सकते हैं पर कल उनके रक्त के छींटों से धरती फट भी सकती है। बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाता, महामात्य !

कुछ उत्तर दिये बिना ही गर्दन झुकाये हुए राक्षस बन्दी कक्ष से चले गये।

X

X

X

एक चिंगारी सी सर्वत्र फैल गई। महानन्द के राज में ब्राह्मण की हत्या होगी ! उस आचार्य ब्राह्मण की जो धर्म, साहित्य और राजनीति का महान् पण्डित है ! किन्तु किसमें सामर्थ्य है जो महानन्द की इस कठोर आज्ञा के विरोध में मुँह खोल सके।

फाँसी की आज्ञा का पहला दिन बीत गया। दूसरे दिन प्रातः सीखंचों के वातायान से महात्मा चणक ने सूर्य की किरण के दर्शन किये। हाथ जोड़कर रश्मि के सहारे ही उन्होंने सूर्य नारायण को नमस्कार कर आँखों से अर्घ्य चढ़ाया।

और फिर निर्द्वन्द्व बूढ़े सिंह की तरह अपने ढूले पर आ विराजे। उन्हें बैठे अभी कुछ ही पल भी नहीं बीते थे कि कानों में एक प्रतिध्वनी सी आई, 'पिताजी !' चणक चौंक पड़े, वे उठकर अपने आसपास चारों ओर देखने लगे। उन्होंने देखा तो दृष्टि में कुछ भी नहीं पड़ा। कानों का भ्रम समझकर वे फिर उसी प्रकार बैठ गये जिस प्रकार हाथ की रोटी छिन जाने पर कोई कई दिन का भूखा बैठ जाता है।

चणक बैठ तो गये पर कौटिल्य की याद ने उन्हें रोम-रोम में बिजली दौड़ा दी। वे तड़प उठे, उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ा। जो ब्राह्मण जीवन में कभी नहीं रोया, वह आज अकेले में अपने आँसू न रोक सका।

“कौटिल्य कहाँ होगा, क्या खाता होगा? कहीं वह भी तो इन हत्यारों के हाथ में नहीं पड़ गया? कितना हतभागा है कौटिल्य! शैशव में उसे माँ की गोद नहीं मिली, बचपन में वह चार घंटे सुख से न सो सका और अब अनाथ की तरह न जाने कहाँ मारा-मारा फिरता होगा। सचमुच मैं बहुत कठोर हूँ। राष्ट्र के महान् स्वप्नों में मैं पुत्र के प्रति अपने धर्म को भूल बैठा। कौटिल्य के लिए मुझे अमात्य राक्षस की बात मान लेनी चाहिए थी।”

उनके हृदय में एक छोर से पुत्र मोह की यह भावना जाग उठी और दूसरे छोर से एक विचित्र अट्टहास उठ खड़ा हुआ। ‘कायर कहीं का, पुत्र मोह में अन्धा हुआ जा रहा है! मृत्यु के भय ने तुझे पुत्र मोह से आ घेरा! छोड़ दे इन हीन विचारों को! विजय के समय मनुष्य को इसी तरह के दुर्बल विचार घेर लेते हैं। संसार में कोई किसी का नहीं। अपनी शक्ति और कर्मों में ही मनुष्य का सुख निवास करता है। तुम त्यागी हो ब्राह्मण चणक! राजाओं के मुकुट के समक्ष भी तुम्हारा माथा नहीं झुका, फिर जीवन के अन्तिम क्षणों में पुत्र मोह के समक्ष अपना हृदय क्यों झुकाते हो।’

किन्तु न जाने चणक को क्या हो गया था! स्वयं ही बहुत समझाने से भी उनकी आँखों का पानी नहीं रुका। वे रोते ही रोते कहने लगे— ‘कारा की कठोर दीवारो! आज ही आज मैं तुम्हारा अतिथि हूँ, कल का सूर्य चणक नहीं देखेगा। जिस देश में गऊ और ब्राह्मण की रक्षा होती थी, कल उसमें आचार्य चणक का चौराहे पर वध किया जायेगा। यही नहीं, ब्राह्मण चणक का सिर महानन्द अपने पैरों से कुचलेगा।’

‘आह! महानन्द के आतंक से जनता मौन होकर मेले की तरह यह विभीषिका देखती रहेगी। मैं अपनी अधूरी अभिलाषा लिये इस संसार से विदा हो जाऊँगा।’

‘लेकिन मुझे इस चिन्ता में ही अपने कीमती क्षण नष्ट नहीं करने चाहियें। जीवन के इन अन्तिम क्षणों में महानन्द के नाश की नींव खोदने के लिए मेरा यत्न क्यों रुके!’



सोचते-सोचते चणक कुछ देर के लिए चुप हो गये और फिर चमक कर कदम उठे। वे द्वार तक आये ही थे कि द्वार खोलकर सशस्त्र सैनिकों के साथ अमात्य राक्षस ने बन्दीगृह में प्रवेश किया।

राक्षस को देखते ही चणक मुस्कराये। व्यंग्य की भाषा में कहा—  
'कहिये, आप और आपके महाराज महानन्द सकुशल तो हैं?'

राक्षस—और तो सब कुशल हैं, अकुशल है तो केवल यही कि आचार्य चणक उनकी बात नहीं मानते।

चणक—और कुछ घंटों की बात है, महाराज महानन्द की आँखों में चुभने वाला सबसे नुकीला काँटा मिट जायेगा। तब तो आपके आनन्द में कोई बाधा नहीं रहेगी।

राक्षस—आचार्य चणक की मृत्यु से मुझे सुख नहीं, दुःख होगा। ऐसे बुद्धिमान् की पूर्ति मगध में न जाने कितने समय बाद हो सकेगी।

चणक—आपकी भावना के लिए धन्यवाद! चिन्ता न करिये, चणक की राख से शीघ्र ही अनेक चणक पैदा हो जायेंगे।

राक्षस—अब भी मेरी बात मान लो ब्राह्मण! मैं नहीं चाहता कि मगध के मस्तक पर ब्राह्मण के वध का कलंक लगे।

चणक—और मैं नहीं चाहता कि महानन्द मगध का सम्राट रहे।

राक्षस—तब तो कल सवेरे आपको मृत्यु दण्ड भोगना ही पड़ेगा। उससे पहले यदि आपकी कोई इच्छा हो और हम उससे महाराज नन्द के राज्य की हानि नहीं देखते हों तो आकांक्षा पूरी हो सकती है।

चणक—जो इच्छा पूरी नहीं हो सकती वह प्रकट करने से क्या लाभ!

राक्षस—महाराज के राज्य नाश के अतिरिक्त हम आपकी हर इच्छा पूरी करने का वचन देते हैं।

चणक—शकटार से हमारी पुरानी मित्रता है, उनकी पुत्री सुवासिनी को हम अपनी पुत्री की तरह प्यार करते हैं। हमारी इच्छा है कि मृत्यु से पहले शकटार और सुवासिनी से हमारी भेंट हो जाये।

सुनकर सहसा तो राक्षस कुछ सोच में पड़ गये, किन्तु फिर बोले—'भेंट हो जायेगी, पर हमारे समक्ष।'

चणक—शायद तुम समझते हो कि इस बहाने मैं कोई षड्यन्त्र रचना चाहता हूँ, लेकिन यह तुम्हारा भ्रम है। मेरे हृदय में कोई दुर्भावना

नहीं है फिर भी यदि तुम चाहते हो कि भेंट तुम्हारे समक्ष ही हो तो मैं यह भी स्वीकार कर लूँगा।

**राक्षस**—तो फिर आज शाम को आपकी इच्छा पूरी हो जायेगी। बातचीत के बाद राक्षस चले गये और चणक फिर चिन्ता में डूब गये।

X

X

X

शाम को काल कोठरी के दरवाजे खुले। चणक ने देखा कि सशस्त्र सैनिकों के पहरे में बन्दी शकटार व सुवासिनी राक्षस के साथ उनके सामने खड़े हैं।

राक्षस ने गम्भीर मुद्रा से कहा—‘आचार्य चणक! आपकी इच्छानुसार शकटार और सुवासिनी यहाँ उपस्थित हैं। आप इनसे भेंट कर लीजिये।’

कुछ उत्तर दिये बिना ही चणक शकटार और सुवासिनी को निर्निमेष देखने लगे। शकटार और सुवासिनी भी आचार्य चणक को देखते रहे। कुछ पलों तक मूर्तिवत् इन बन्दियों ने एक-दूसरे को देखा और फिर शकटार तथा सुवासिनी की आँखों से अविरल आँसू बह चले।

‘बाबा!’ कहकर सुवासिनी दौड़ी और चणक के पैरों पर गिर पड़ी। उसने अपने आँसुओं के जल से बाबा के चरण भिगो दिये। सान्त्वना देकर चणक ने सुवासिनी को उठाया और छाती को पत्थर कर कहने लगे—‘दुनिया में अमर कोई नहीं है बेटी! सभी को एक दिन संसार से जाना है। और मैं तो बुढ़ापे के अन्तिम श्वास ले ही रहा था, मेरी मृत्यु का इतना दुःख न मानो। तुम यदि रोओगे तो मैं सुख से न मर सकूँगा। तुम्हें तो हर्ष होना चाहिये कि चणक ने अत्याचार के समक्ष झुकने की अपेक्षा मृत्यु स्वीकार की।’

**शकटार**—समझाना जितना सरल है, समझना उतना आसान नहीं। मनुष्य कितना भी कठोर क्यों न हो, निकटतम की विदाई उसे रुला ही देती है। निकटवर्ती की मृत्यु अपनी मृत्यु से कहीं अधिक दुखद होती है। जब तुम ही संसार से जा रहे हो तो फिर मैं भी इस दुनिया में रहकर क्या करूँगा!

**चणक**—तुम्हें बहुत कुछ करना है। यह बहुत बड़ा परिवार जिसे तुम्हारी आवश्यकता है, तुम्हारे बिना वीरान हो जायेगा। तुम्हारा



जीवन चाहे तिल-तिल कर जलता रहे पर आशा न छोड़ना !

अब तुम जा सकते हो। मुझे तुमसे और कुछ नहीं कहना है। अन्तिम बार तुम्हें देखने की कामना थी, राक्षस की कृपा से वह भी पूरी हो गई। और मेरा दुनिया में है ही कौन ! वन के फूल की तरह जीवन तूफान में अकेला भटकता है। कैसा कौतुक है संसार का !

**शकटार**—ऐसे समय में हर मनुष्य दार्शनिक हो ही जाता है।

**चणक**—दर्शन व्यर्थ नहीं, उससे जीवन का रहस्य सुलझता है सखे ! अच्छा अब विदा !

भेंट समाप्त हो गई। शकटार को बन्दीगृह में भेज दिया गया। सुवासिनी फिर सोने के पिंजरे में वापिस आ गई।

वह बाबा चणक से भेंट में हुई बातें भूली नहीं, वह रह-रह कर उनमें गोते लगाने लगी। “बाबा बहुत बड़े आचार्य हैं, उनकी हर बात में कोई न कोई अर्थ होता है। ‘वन के फूल की तरह जीवन तूफान में अकेला भटकता है।’ फूल से क्या मतलब है ? फूल कवियों का उपमान है, फूल से कवि कितनी ही उपमाएँ देते हैं। अवश्य ही इस वाक्य के द्वारा बाबा कुछ कहना चाहते हैं ? पर वे क्या कहना चाहते हैं ? शायद वैसे ही मुझे भ्रम हो गया हो ! बाबा ने भावुकता में यह सब कहा होगा। जान पड़ता है कौटिल्य की मृत्यु के बाद दुःख से अशान्त होकर वे ऐसी बातें कर रहे थे।”

सोचते ही सोचते सुवासिनी सो गई। रात भर वह भयंकर स्वप्न देखती रही। सवेरे इधर निकलते हुए लाल-लाल सूरज की किरणें सुवासिनी के मुख पर पड़ीं, उधर ब्राह्मण चणक की काल कोठरी के द्वार राजसैनिकों के कठोर पहरे में खुले।

चणक शान्त भाव से बन्दीगृह छोड़कर वध होने के लिए राजसैनिकों के साथ चल दिये। निकलते हुए सूर्य के प्रखर प्रकाश में वे ऐसे चल रहे थे जैसे कोई वीर युद्ध में विजयी होकर अपनी नई दुल्हन के पास जा रहा हो।

फाँसी घर ! कितना भयंकर है इसका उच्चारण भी !

चणक काल के इस विकराल जल्लादखाने में लाकर खड़े कर दिये गये। महानन्द अपने विकराल रूप में वहाँ पहले ही उपस्थित थे। महामात्य राक्षस तथा अन्य अमात्य और उच्च राज्याधिकारी महानन्द

के आसपास इस प्रकार खड़े थे जैसे मृत्यु के अनुशासन में चेतन जड़वत् हो जाते हैं।

चणक को देखते ही महानन्द ने क्रोध से अपने दाँत पीसे और फिर भीषण हँसी हँसता हुआ बोला—‘देखता है महानन्द के विरोध का परिणाम ! एक फूस सा ब्राह्मण महानन्द का साम्राज्य पलटने चला था !’

**चणक**—एक फूस सा ब्राह्मण तो राज्य पलटने ही चला था ! पर तू तो इस फूस में अपने ही हाथ से वह दियासलाई लगा रहा है जिससे तू फुँके बिना नहीं रह सकता।

**नन्द**—मृत्यु के सामने भी तेरा घमण्ड चूर नहीं हुआ ! तेरा घमण्ड चूर करने के लिए यदि आज तेरा बच्चा जीवित होता तो मैं पहले तेरी आँखों के सामने उसका सिर तड़पा-तड़पा कर काटता और फिर तेरे टुकड़े करके कुत्तों को खिलाता।

**चणक**—अच्छा होता, तब तो तेरे पापों का घड़ा और भी जल्दी भर जाता।

नन्द का आवेश ठिकाने न रहा, वह क्रोध में उबल उठा, उसकी आँखे लाल हो गईं। भभकता हुआ वह बोला—‘जल्लादो, देखते क्या हो ! काट डालो इस घमण्डी ब्राह्मण का सिर ! पर नहीं, तुम ठहरो ! कात्यायन, हम स्वयं इसका सिर काटेंगे। लाओ हमारा खड्ग !’

काँपते हुए कात्यायन ने कहा—‘महाराज ! आप अपने हाथ एक ब्राह्मण के रक्त से न रंगें। राजा को जल्लाद का काम नहीं करना चाहिये।’

**नन्द**—हमें उपदेश नहीं सुनना है। तुमने धृष्टता की है, इस अपराध में हम तुम्हें दण्ड देंगे।

कहकर महानन्द ने क्रोध से अपना भारी खड्ग उठाया। उस समय उसके विकराल रूप को देखकर पृथ्वी ‘त्राहि-त्राहि’ पुकार उठी। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो आकाश टूटना चाहता है।

क्रोध से हुँकार करता हुआ महानन्द पागल सा खड्ग लिये बूढ़े ब्राह्मण की तरफ झपटा। अट्टहास करते हुए नृशंस ने खड्ग का एक भरा हुआ हाथ बूढ़े ब्राह्मण की गर्दन पर मारा। मुस्कराता हुआ सिर धड़ से उछला और कात्यायन की गोद में जा गिरा।





चणक का कटा हुआ सिर राजधानी के एक प्रमुख चौराहे पर ऊँचे बाँस में टाँग दिया गया, और उस बाँस पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिख कर लगा दिया गया, “महाराज महानन्द से विद्रोह करने वाले को यही दण्ड भोगना पड़ता है।”

ब्राह्मण की हत्या और महानन्द के भय से मगध की भूमि काँप उठी, आकाश रक्तवर्ण दीखने लगा, शोक से मगध राज्य में मातम सा छा गया, जन-जन का हृदय घृणा और भय से स्तब्ध हो उठा।

X

X

X

भादों की इस अँधेरी रात्रि में जबकि चारों ओर सन्नाटा है, यह कौन बालक दुकान के एक तख्ते के नीचे छिपा पड़ा है! अँधेरी रात ही नहीं है, पानी बरस रहा है। बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की भयंकर कड़क से इसे बिल्कुल भी डर नहीं। शायद बेचारे का घर नहीं होगा, कोई अनाथ जान पड़ता है।

थोड़ी देर बाद वर्षा और जोर से होने लगी, मूसलाधार पानी से सड़कें भर गईं। चढ़ता-चढ़ता पानी दुकान के उस तख्ते तक भी आ गया। अब बालक चारों ओर देखता हुआ अपने दोनों हाथ भूमि पर रख, कुत्ते की तरह रेंगता बाहर निकला। वह निडर किन्तु सावधान शिकारी श्वान की तरह आगे बढ़ा। तेज चाल से चलता हुआ वह उस बाँस से आ सटा जिस पर आचार्य चणक का सिर टँगा हुआ था।

बालक ने चुपचाप अपने कपड़ों में से छिपी हुई आरी निकाली और बिना आवाज के धीरे-धीरे बाँस काटने लगा। जब बाँस बिल्कुल कटने पर आ गया तो उसने उसे धीरे-धीरे सहारा देकर भूमि पर लम्बा लिटा लिया तथा सिरे पर टँगा हुआ सिर उतार अपने हृदय से लगा उसी चाल से दूसरी दिशा को वापिस चला गया।

जब बालक भय के मार्ग से निकल गया तब वह सीधा खड़ा होकर तेजी से दौड़ा। वह चार-पाँच मील तक बराबर दौड़ता रहा और फिर तेजी से चलता हुआ वह वहाँ आ पहुँचा जहाँ बरसात की इस रात्रि में कल-कल करती गंगा वेग से बह रही थी।

यहाँ आकर बालक एक वृक्ष के तले खड़ा हो बिना आवाज किये फूट-फूट कर रोने लगा। सिर अपने माथे और हृदय से चिपटा-चिपटा कर वह कहने लगा—‘पिता! इस भयंकर संसार में आपको भी मुझे अकेला छोड़कर जाना पड़ा! तूफान में उड़ते हुए तिनके की तरह आज मैं निराश्रित हूँ। पता नहीं तूफान मुझे कहाँ पटके! मुझे आशीर्वाद दो कि मैं इसमें टूटकर अस्तित्वहीन न हो जाऊँ।’

‘आपके दाह के लिए मैं आपका सम्पूर्ण देह प्राप्त न कर सका, पर आपका सिर हत्यारों के हाथ से निकाल लाया हूँ। दाह-क्रिया के लिए आपका पुत्र इसी योग्य निकला। इस मस्तक को फूँकने के लिए चन्दन भी मैंने सारे दिन माँग कर काफी जमा कर लिया है।’

रोते हुए बालक कौटिल्य ने गंगा किनारे आड़ में एक चिता बनाई, उसमें अपने पिता चणक का सिर रखा और मन्त्रोच्चारण करते हुए अग्नि प्रज्वलित कर दी। भयानक रात के ढलते सन्नाटे में चिता धधक उठी। जब सिर जल गया तो कौटिल्य ने पिता का कपाल फोड़ने की क्रिया की। सिर जल कर राख की ढेरी हो गया। कौटिल्य ने गंगाजल से चिता ठण्डी की, पर उसने वह राख गंगा में बहाई नहीं।

राख इकट्ठी करके कौटिल्य ने एक हँडिया में भरी, मुँह बन्द करके हँडिया एक अँगोछे में बाँधी और फिर एक पेड़ के नीचे छोटा-सा गड्ढा खोद पिता के फूलों की वह हँडिया दबा दी।

राख की हँडिया दबाने के बाद कौटिल्य अपने आँसू पोंछता हुआ उठा। उसने एक बार आकाश की ओर देखा और फिर पृथ्वी की मिट्टी उठा आप ही आप हुँकारता हुआ कहने लगा—माता पृथ्वी! अब तुम ही मेरी माता हो। शक्ति केन्द्र आकाश! अब मेरे सिर पर तुम्हारा ही हाथ है। गतिशालिनी गंगा! मैं तुम्हारा जल छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक इस हत्यारे नन्द से अपने पिता के वध का प्रतिशोध न लूँगा तब तक अग्नि पर पकी हुई कोई वस्तु न खाऊँगा। जब तक महानन्द के शोणित से अपने बाल नहीं रंगूँगा तब तक चोटी खुली ही रहेगी। पिता का तर्पण तभी पूर्ण होगा जब हत्यारे नन्द का रक्त पिता की राख पर चढ़ जायेगा।’

‘जिस प्रकार आज मेरे एक हाथ में चिता की आग है और दूसरे हाथ में गंगा तथा आकाश का पवित्र पानी, इसी प्रकार मैं आग और पानी से भरा रहूँगा। मेरी आग तब तक न बुझेगी जब तक महानन्द को



मार पिता की आकांक्षाओं के अनुसार मगध में जनता की रुचि का राज्य स्थापित न होगा। आँखों का पानी तब तक न सूखेगा जब तक नन्द वंश का सर्वनाश न हो जायेगा।'

'प्रकृति की मौन शक्तियों! तुम मुझे बल देना, मेरी प्रतिज्ञा बालक के खेल की तरह खो न जाये, प्रतिशोध की आग ठंडी न होने पाये, आँखों का पानी सूखने न पाये।'

'यमराज! महानन्द का नाम तुम अपने लेखे से काट दो। उसकी मृत्यु का लेखा मैं अपनी बुद्धि में लिखे लेता हूँ। वह तुम्हारे मारने से नहीं, मेरे मारने से मरेगा। क्या कहा! यह साधारण-सा अनाथ महानन्द का नाश कर सकेगा? जैसे राम ने रावण को मारा था, कृष्ण ने महाशक्तिशाली कंस और कौरवों को नष्ट किया था। यह लगन लिये मैं जीवित रहूँगा। नन्द के नाश के लिए शिक्षा, शस्त्र, बल और अर्थ खोज-खोजकर प्राप्त करूँगा।'

प्रतिज्ञा के बाद प्रलाप करता हुआ कौटिल्य स्वयं से पूछने लगा—  
'समर्थ होने से पहले तू छिपकर रह सके, यह कैसे हो? यदि किसी को भी यह पता चल गया कि कौटिल्य जीवित है और वही अपने पिता का सिर चौराहे से उतार ले गया है तो यह अत्याचारी नीचे आग जलवाकर तुझे सूली पर जला देगा।'

'तो फिर?'

'तुझे अपने आपको बदल लेना चाहिये!'

'किस तरह?'

'प्रथम तो तू अपनी शक्ति बदल!'

'और फिर?'

'अपना नाम बदल!'

'उसके बाद?'

'राजनीति और युद्ध की शिक्षा ले! यदि कर सके तो विदेशी भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं तथा अन्य भाषाओं को भी पढ़! जितना पढ़ सके अधिक से अधिक पढ़ डाल! तदनन्तर तेरी प्रतिज्ञापूर्ति का मार्ग मिलता चला जायेगा। लेकिन राह के काँटों से हार न मान लेना। आग और पानी भी तुझे न रोक पायें।'

स्वयं से कहते-सुनते कौटिल्य ने जिस स्थान पर पिता के सिर

की चिता जलाई थी, उसी स्थान पर कुछ सरकण्डे इकट्ठे कर फिर अग्नि जलाई। जब अग्नि से लपटें उठने लगीं तो कौटिल्य ने पिता की दी हुई एक पुड़िया खोल अपने सारे बदन पर मल एक झटके के साथ अग्नि का आलिंगन किया।

अग्नि की लपटों और औषधि से कौटिल्य का देह झुलस गया। वह गोरा मृदुल मुख एकदम काला और विकराल दीखने लगा। यही नहीं उसकी प्रतिज्ञा ने उसे और भी आवेश दिलाया। पास ही पड़ा हुआ एक पत्थर उसने उठाया और उसे अपने आगे के दो दाँतों पर जोर से मार दाँत तोड़ डाले। आग से झुलसा हुआ काला रूप, टूटे हुए दाँतों से बहता हुआ लहू जो बह-बह कर ओठों और चिबुक तक आ गया था, देखने से प्रतीत होने लगा मानो कौटिल्य ने रुधिर पान किया है या इस भयानक काल-रात्रि में रक्त-पान कर चण्डी शून्य में शान्त होना चाहती है अथवा वह अब भी प्यासी है और सोच रही है कि कुछ भी अवशेष न होने पर किसका लहू पीऊँ!

इस क्रूर काण्ड के बाद कौटिल्य एक धीमी किन्तु भीषण हँसी हँसा। उसे हंसता हुआ देखकर रात की कालिमा काँप उठी, गंगा का पानी चुपचाप चलने लगा। कौटिल्य ने चारों दिशाओं की ओर घूमकर अँगड़ाई ली और फिर गर्व से आप ही आप कहने लगा—‘प्रकृति के अमर प्रहरियो! क्या तुम पहचान कर कह सकते हो कि यह चणक-पुत्र कौटिल्य है? नहीं, नहीं, नहीं कह सकते। अब तुम मुझसे डरते होगे! तुम मुझे इस समय क्रूर काल के रूप में देख रहे हो। कहो, तुम्हें मेरा वह मृदुल रूप अच्छा लगता था या यह भयंकर? प्रकृति ने आज काली चादर ओढ़ी है, इसीलिए मैंने भी अपनी गोरी खाल उतार काली खाल धारण कर ली।’

‘और देखो, खाल के साथ ही साथ मैंने अपना नाम भी बदल दिया है। अब मैं कौटिल्य नहीं हूँ, मेरा नाम विष्णुगुप्त है। अब तक मैं केवल ब्राह्मण था, लेकिन अब मैंने नाम के साथ-साथ क्षात्रधर्म की भी शपथ ले ली है। मेरे सामने मेरी प्रतिज्ञा है और मैं हूँ। कहो, तुम मेरा साथ दोगे न? प्रलय में जिस प्रकार तुम सर्वनाश करने को आग और पानी लेकर मचलते हो, उसी प्रकार नन्द के नाश के लिए तुम अब भी मचलोगे न? क्या कहा!’ एक बालक के पागलपन पर हमें तरस आता है।’ तो तुम भी राज्य की पाषाण मूर्तियों की तरह मौन पड़े रहो! मुझे



तुम्हारी आवश्यकता नहीं और यदि तुम्हें मेरे पागलपन पर क्रोध आता है तो तुम भी नन्द से जाकर मिल जाओ, आग और पानी बनकर मुझ पर टूट पड़ो! मैं अजेय हूँ, आग और पानी घूँट भर-भर कर पी जाऊँगा।'

प्रलाप करता हुआ विष्णुगुप्त उस भीषण रात्रि में ही चल पड़ा। रात समाप्त होने में अब केवल आध घंटा शेष था, पर भयानक वर्षा के कारण अंधकार ऐसे छाया हुआ था जैसे अभी बहुत रात बाकी है। अँधेरे ही अँधेरे में विष्णुगुप्त दस मील चलता रहा। जब दाँत टूटने और जलने की पीड़ा तथा थकान ने उसे इतना विवश कर दिया कि वह हार कर गिर पड़ा तो अब क्या हो सकता था!

विष्णुगुप्त एक पत्थर पर सिर रखकर पड़ गया। घावों की चसक से उसे नींद नहीं आती थी और थकान उसे सुलाना चाहती थी। थकान ने उसे थपकियाँ दीं, बालक सो गया।

बालक सोता रहा। वर्षा समाप्त हो गयी, सूर्य तम चीर कर निकल आये। उनका तमभरा तेज विष्णुगुप्त के ऊपर फैल गया, पर उसकी आँखें न खुलीं।

सूर्य के जगाने से भी जब विष्णुगुप्त की आँखें न खुलीं तो उन्हें प्रत्यक्ष रूप धारण कर पृथ्वी पर आना पड़ा। कोई सूर्योपासक गंगा-स्नान कर सूर्य को अर्घ्य चढ़ा कर घर लौट रहा था। वह भजन गुनगुनाता हुआ धुन में चला जा रहा था कि उसका पैर विष्णुगुप्त के बदन से टकराया।

भक्त रुका, इस विकृत दशा में सोये हुए बालक को देख उसके मुँह से निकला, 'नारायण-नारायण! यह कौन जला पड़ा है?'

बैठकर उसने बालक को चेतना में लाने का प्रयत्न किया। थोड़ी देर बाद भक्त का प्रयत्न सफल हो गया, विष्णुगुप्त की आँखें खुल गईं। उसने तड़प कर कहा, 'पानी!'

भक्त ने बालक को पानी पिलाया। पानी पीने से बालक में जब कुछ जीवन आया तो भक्त ने कहा—बालक! कौन हो तुम? यहाँ इस दशा में कैसे पड़े हो?

**बालक**—मेरा नाम विष्णुगुप्त है। मेरे माता-पिता कोई नहीं हैं, न कहीं घर है, न कोई अपना। लकड़ी बीन कर पेट भर लेता था और कहीं पड़ जाता था, पर परमात्मा से यह भी सहन न हुआ। आज जब वन से लकड़ी बीन कर रोटी बनाने के लिए आग जला रहा था तो मेरे

कपड़ों में आग लग गई। मैं उस समय गंगा के किनारे था। आग लगते ही गंगा में कूद पड़ा। जीवित तो बच गया पर मरने से बदतर हो गया। यह सोचकर घायल अवस्था में ही चल पड़ा कि कहीं गाँव में किसी के यहाँ शरण मिल जायेगी, लेकिन जब नहीं चला गया तो गिर पड़ा। चक्कर खाकर गिरने से आगे के दाँत भी टूट गये। दयालु भगवान् ने आपको मुझ तक पहुँचा दिया।

**भक्त**—तुम्हारा कोई नहीं है ?

**विष्णुगुप्त**—कोई नहीं होता तो आप कहाँ से आते ! ईश्वर अभी मेरा अवश्य है। उसी की कृपा से आपको मुझ पर दया आई है।

**भक्त**—तो तुम मेरे साथ गाँव चलो ! मैं गाँव की एक पाठशाला में अध्यापक हूँ। भगवान की कृपा से मैं अकेला हूँ, पढ़ाता हूँ और आनन्द से भगवान का भजन करता हूँ। जब तुम अच्छे हो जाओ तो जहाँ तुम्हारी इच्छा हो चले जाना।

विष्णुगुप्त को साथ ले भक्त पंडित मोहनस्वामी गाँव में आ गये। वहाँ उन्होंने पाठशाला के अपने ही कक्ष में विष्णुगुप्त को विश्राम कराया। गाँव के एक वैद्य को बुलाकर बालक की चिकित्सा भी कराई। मोहनस्वामी की देख-रेख और चिकित्सा से विष्णुगुप्त पाँच-सात दिन में ही बिल्कुल स्वस्थ हो गया।

एक दिन सवेरे जब मोहनस्वामी विष्णुगुप्त के लिए दूध लेकर आये तो विष्णुगुप्त के आँसू निकल पड़े। उसने फूटते हुए कहा—‘आप ही की तरह मुझे मेरे पिता अपार स्नेह से पालते थे। आपको पाकर मैं अपने पिता को पा गया। मैं आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकता। आपने मुझे नया जीवन दिया है।’

**मोहनस्वामी**—जीवन कोई किसी को नहीं देता, ईश्वर की इच्छा जिसे जीवन देने की होती है उसे जीवन मिल जाता है, साधन वह चाहे जिसे भी बना दे।

**विष्णुगुप्त**—मेरी इच्छा पढ़ने की है, आप मुझे शिक्षा देने की कृपा करेंगे ?

**मोहनस्वामी**—पढ़ाना तो हमारा धर्म है, विष्णुगुप्त ! संसार में इससे बड़ा पुण्य कर्म और कोई नहीं। मैं जिस योग्य हूँ तुम्हें अवश्य पढ़ाऊँगा। विष्णुगुप्त मोहनस्वामी की पाठशाला में पढ़ने लगा। उसने अपनी



सेवाओं और प्रेम से पंडित मोहनस्वामी तथा सहपाठियों को मोह लिया। प्रत्येक की वाणी से विष्णुगुप्त की प्रशंसा सुनाई देने लगी। जिस किसी विद्यार्थी को जहाँ कहीं याद नहीं होता था वहाँ वह मौखिक बोल पड़ता था। प्रत्येक विद्यार्थी जहाँ कहीं भूलता था विष्णुगुप्त से पूछता था। पंडित मोहनस्वामी पढ़ाते-पढ़ाते विद्यार्थियों के समक्ष विष्णुगुप्त का उदाहरण उपस्थित करते थे।

अल्प समय में ही जिज्ञासु विष्णुगुप्त ने गुरु से आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर ली। एक दिन रात्रि को जब विष्णुगुप्त अपने गुरु के चरण दबा रहा था तो उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—‘विष्णुगुप्त! सचमुच हमें तुम से पुत्रवत् स्नेह हो गया है। तुमने अपनी सेवाओं और योग्यता से हमें जीत लिया। हमारी पाठशाला का कोई ऐसा विद्यार्थी नहीं जो तुम्हें अपने बड़े भाई की तरह पूज्य न मानता हो। तुम्हें पढ़ाकर हमारा पढ़ाना सफल हो गया।’

**विष्णुगुप्त**—और आपसे पढ़कर मेरा जीवन सफल हो गया, गुरुदेव!

**मोहनस्वामी**—ईश्वर तुम्हारी हर इच्छा पूरी करे!

**विष्णुगुप्त**—गुरु की शक्ति ईश्वर से भी बड़ी है। मुझे यदि यह वरदान मिल जाये कि गुरु तुम्हारी हर इच्छा पूरी करेंगे तो मुझे हर्ष होगा।

**मोहनस्वामी**—गुरु में हर इच्छा पूरी करने की शक्ति कहाँ है, विष्णुगुप्त!

**विष्णुगुप्त**—यदि कोई अन्य इस प्रकार मेरे गुरु का अपमान करता तो धरा डोल जाती। गुरु में शिष्य के लिए हर शक्ति विद्यमान है।

**मोहनस्वामी**—तुम्हारी भक्ति अडिग है। बताओ, तुम क्या चाहते हो?

**विष्णुगुप्त**—मैं चाहता हूँ कि इस बुढ़ापे में अब आपको श्रम न करना पड़े। पाठशाला में पढ़ने आने वाले विद्यार्थियों को अब मैं पढ़ाता रहूँगा और आप आराम करें। आपकी सेवा के लिए यह सेवक हर समय सजग रहेगा।

**मोहनस्वामी**—जब से तुम पाठशाला में आये हो तब से मैं आराम ही तो कर रहा हूँ। मुझे करना ही क्या पड़ता है! मेरे स्थान पर पढ़ाने का

कार्य तक तो तुमने किया। व्याकरण, गणित, इतिहास तुमने बात की बात में पढ़े। तुम पूर्व जन्म के कोई बड़े गुणी मालूम होते हो। उस दिन उस श्लोक का अर्थ जब हम से नहीं लग रहा था तो तुमने हमारा सिर दबाते-दबाते अर्थ भी कर डाला। हम तुम्हारी इस प्रखर बुद्धि से बड़े प्रसन्न हैं। लेकिन हमें एक दुःख है जो काँटे की तरह हमारे हृदय में हर समय चुभता है। एक बार जिस विद्यालय में हम पढ़ते थे, उसमें एक बड़ा ही घमण्डी अध्यापक आचार्य परमानन्द था। वह बहुधा बुद्धिमान् विद्यार्थियों से चिढ़ा करता था। मुझसे जब एक विद्यार्थी ने पूछा कि इस कविता का अर्थ क्या है तो मैंने शुद्ध अर्थ बता दिया। मैं वह कविता अपनी माता से प्रायः सुना करता था। उस विद्यार्थी ने परमानन्द से उस कविता का कोई दूसरा अर्थ पढ़ा हुआ था। विद्यार्थी ने आचार्य परमानन्द से कह दिया कि इस कविता का आप तो यह अर्थ बताते थे पर मोहनस्वामी ने यह अर्थ बताया। बस फिर क्या था, वह मेरा शत्रु हो गया। उसने मेरी छात्रवृत्ति बन्द करा दी। मैं सदैव प्रथम उत्तीर्ण होता रहा, लेकिन उसने तिकड़मों से मेरे अंक कटवाये।

बात यहीं पर नहीं बीती। जब उस विद्यालय की शिक्षा समाप्त कर मैंने विद्यालय में पढ़ाना चाहा तो उसने मुझे चरित्रहीन प्रसिद्ध कर वहाँ न पढ़ाने दिया। हार कर मैं यहाँ इस गाँव की छोटी-सी पाठशाला में बुढ़ापे के अन्तिम दिन बिता रहा हूँ और वह अपनी धूर्तता से बढ़ता-बढ़ता तक्षशिला विश्वविद्यालय में राजनीति के प्रथम खण्ड का आचार्य है।

उसी विद्यालय में हमारे एक पुराने मित्र पुण्डरीकाक्ष दर्शन विभाग के अध्यक्ष हैं। उन्होंने अभी तीन वर्ष पूर्व हमें लिखा था कि यदि आप दर्शन लेकर आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर लें तो आपको तक्षशिला विश्वविद्यालय में अध्यापक का स्थान मिल जायेगा।

पर अब तो बुढ़ापे ने मेरी हिम्मत तोड़ दी है। मैंने सोचा जीवन के शेष दिन गाँव की इस छोटी-सी पाठशाला में ही बिता दूँ, संघर्ष और सिरदर्द मोल लेकर क्या करूँगा! पर हृदय की आग अभी तक शान्त नहीं हुई, आँखों का पानी अभी तक नहीं सूखा।

**विष्णुगुप्त**—हर मनुष्य आग और पानी में ही पलता है। कोई अपनी आग और अपने पानी में स्वयम् ही जलता-ढलता रहता है तथा कोई अपनी आग और पानी से अन्यायी का नाश कर डालता है।



अत्याचार करना पाप है, लेकिन अत्याचार सहना उससे भी बड़ा पाप है। यदि आपको उससे प्रतिशोध लेने का अवसर जीवन के अन्तिम श्वास में भी मिले तो भी अवश्य लेना चाहिये। आप जलते रहे और अपनी आग से शत्रु को नहीं जलाया! खैर, जो समय चला गया, चला गया। अब यह बताइये कि आपका शिष्य किस प्रकार आपके शत्रु से आपके अपमान का प्रतिकार चुकाये।

**मोहनस्वामी**—जिस प्रकार नेवला साँप को मारता है, उसी प्रकार तुम अपनी अद्भुत बुद्धि और महान् शिक्षा से धूर्ताचार्य को परास्त करो! जिस दिन तुम उस घमण्डी को परास्त कर दोगे उसी दिन हमारी गुरु-दक्षिणा हमें प्राप्त हो जायेगी।

**विष्णुगुप्त**—आप जो चाहते हैं वह गुरु-दक्षिणा आपको अवश्य दूँगा।

**मोहनस्वामी**—तो तुम तक्षशिला विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लो! अथक अध्ययन से हर विषय के आचार्य हो जाओ और फिर आगे जो कुछ करना हो स्वयं करो!

**विष्णुगुप्त**—तो मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आज ही तक्षशिला की ओर प्रस्थान करता हूँ।

**मोहनस्वामी**—आज नहीं, कल शुभ दिन है। प्रातः छः बजे शुभ मुहूर्त है। मैंने थोड़ी-सी ज्योतिष भी पढ़ी है। आज शिक्षा का वह अध्याय तुम्हें पढ़ा दूँगा। लाओ, तुम्हारा हाथ तो देखूँ।

विष्णुगुप्त ने गुरुदेव के आगे अपना हाथ फैला दिया। हाथ की रेखा देखते हुए मोहनस्वामी उछलते हुए बोले—‘अरे वाह! तुम्हारे हाथ में तो दिग्विजय की रेखायें हैं। कोई भी शत्रु तुम पर विजयी नहीं हो सकता। हाथ की रेखायें बताती हैं कि एक दिन ऐसा होगा जब संसार तुम्हारे संकेत पर चलेगा, जन-जन में तुम्हारी पूजा होगी। पर एक दुःख भी है……’

विष्णुगुप्त बात काटता हुआ बोला—‘दुःख एक नहीं, सहस्र हों, मुझे चिन्ता नहीं और न मैं यह जानना चाहता हूँ कि वह दुःख क्या है। मैं अपने कानों को जीत सुनाने का अभ्यासी बना रहा हूँ, पराजय का एक अक्षर भी उन तक नहीं पहुँचने देना चाहता। मुझे ज्योतिष जानने की आवश्यकता नहीं गुरुदेव! मैं वह ज्ञान चाहता हूँ जिससे हाथ की रेखायें बदली जा सकें, जिससे दुर्भाग्य के पन्ने फाड़कर सौभाग्य के नये

पृष्ठ लिखे जा सकें।'

**मोहनस्वामी**—हमारा ज्योतिष में विश्वास है, फिर भी हम तुम्हारे इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए। कल प्रातः तुम उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए प्रस्थान करोगे। पाठशाला के सभी विद्यार्थियों को तुम से बहुत प्रेम है। देवदत्त को बुलाओ!

आज्ञा सुनते ही विष्णुगुप्त ने देवदत्त विद्यार्थी को आवाज दी। गुरुदेव के सामने देवदत्त प्रणाम कर खड़ा हो गया।

उत्तर में आशीर्वाद दे गुरुदेव ने कहा—कल प्रातः विष्णुगुप्त उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय में प्रवेशार्थ प्रस्थान करेंगे। सब सहपाठियों को यह हर्ष समाचार सुना दो।

बात की बात में विष्णुगुप्त के तक्षशिला जाने का समाचार प्रत्येक विद्यार्थी तक पहुँच गया। सुनते ही सब विद्यार्थी एक स्थान पर एकत्रित हो गये और आपस में परामर्श करते हुए बोले—'हमारी पाठशाला का सबसे योग्य विद्यार्थी उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए प्रस्थान कर रहा है। सम्मान में एक सुन्दर जलपान गोष्ठी का आयोजन हो।'।

सब विद्यार्थी एक ही साथ बोले—अवश्य! जलपान गोष्ठी आज शाम को छः बजे और विदाई समारोह सवेरे ठाठ से हो।

**देवदत्त**—तो चलो, तुरन्त गुरुजी से आज्ञा ले लें।

उछलते-कूदते विद्यार्थी गुरुदेव के पास पहुँचे। विद्यार्थियों की इच्छा सुनते ही गुरुदेव ने हर्ष सहित स्वीकृति दे दी। गुरुदेव की स्वीकृति क्या मिली छात्रों को सिद्धि मिल गई। तुरन्त ही सब तैयारी में जुट गये। सबने मिल-जुल कर वे सब वस्तुएँ इकट्ठी कर लीं जो गाँव में किसी बड़े से बड़े विवाह की दावत में हो सकती थीं।

ठीक छः बजे गाँव के सभी प्रतिष्ठित महानुभावों की उपस्थिति में स्वागत समारोह आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम गुरुदेव मोहनस्वामी ने अपनी वक्तृता शुरू की। उन्होंने कहा—“उपस्थित सज्जनवृन्द एवं प्यारे छात्रो! इस पाठशाला के इतिहास में यह दिन सबसे अधिक गौरवपूर्ण है। हमें हर्ष है कि आज हमारे यहाँ एक होनहार छात्र विश्व के महान् विद्यालय में उच्च शिक्षा के लिए प्रस्थान कर रहा है। ईश्वर के आशीर्वाद और भारती की अराधना से हम चाहते हैं कि ऐसे दिवस इस पाठशाला में जल्दी-जल्दी आते रहें और एक दिन वह हो जब यह छोटी-सी पाठशाला हमारे होनहार विद्यार्थियों के योग से महाविद्यालय का स्थान ले ले।”



“मुझे विश्वास है कि विष्णुगुप्त हमारी आशा की ज्योति जगमगायेगा। आप सभी की शुभकामनायें और स्नेह से वह एक महान् व्यक्ति बनेगा।”

करतल ध्वनि के बीच गुरुदेव आशीर्वाद का वक्तव्य समाप्त कर बैठ गये तथा देवदत्त ने उठ कर उत्साह से विष्णुगुप्त को फूल-माला पहना मानपत्र समर्पित किया। तदनन्तर हर्ष एवं प्रेम के मनोरम वातावरण में सबने जलपान किया। जलपान के समय सभी की वाणी पर विष्णुगुप्त की प्रशंसा थी। हरेक यह चाहता था कि विष्णुगुप्त हमारे साथ बैठे और विष्णुगुप्त भी यही चाहता था कि वह हरेक के पास बैठे। दोनों ओर की यह कामना भी विष्णुगुप्त के चातुर्य से सफल हुई। वह यद्यपि गुरुजनों के समक्ष सदैव गम्भीर रहता था, पर आज उत्साह और प्रेम में वह फैल गया। उसने किसी भी एक स्थान पर सभ्यता की कृत्रिम शृंखलाओं में बँधकर जलपान न किया। वह उठा, अभी देवदत्त के समीप कुछ पलों के लिए रुककर मुँह मीठा किया, तो अभी भागदत्त के समीप पहुँच नमकीन मुँह कर लिया।

इस प्रकार बड़े आनन्द से गोष्ठी सम्पन्न हुई। गोष्ठी के बाद भी विद्यार्थियों ने विष्णुगुप्त को घेरे रखा। कहीं बहुत रात बीतने पर सब सो पाये और फिर प्रातः ही उठ बैठे।

सूर्य अभी जागने के लिए आँखें मल ही रहे थे कि विष्णुगुप्त ने प्रस्थान के लिए गुरुदेव के चरण छुए एवं पद-रज चन्दन की तरह अपने माथे पर मली। गुरुदेव ने अपने अपार आशीर्वाद का वरद हस्त विष्णुगुप्त के सिर पर रखा और फिर एक पत्र विष्णुगुप्त को देते हुए बोले—‘यह पत्र मैंने अपने सखा पुण्डरीकाक्ष के नाम लिख दिया है। तुम तक्षशिला पहुँच उनके स्थान पर उनसे भेंट करना। वे देवता स्वरूप हैं, तुम्हारी सहायता उसी प्रकार करेंगे जिस प्रकार पिता अपने पुत्र का भला चाहता है।’

**विष्णुगुप्त**—गुरुदेव की आज्ञानुसार मैं सर्वप्रथम आचार्य पुण्डरीकाक्ष के ही दर्शन करूँगा।

कह कर विष्णुगुप्त ने अपने पथ की ओर पग बढ़ाया। भरी आँखों से सभी कुछ दूर तक उसके साथ चले। इसके बाद रुक कर विष्णुगुप्त ने हाथ जोड़े तथा सब गाँव की तरफ चले और विष्णुगुप्त तक्षशिला की राह पर चल पड़ा।

X

X

X

विष्णुगुप्त ने पग बढ़ाया। उसके पैरों में गति थी, आशा उसे आगे बढ़ा रही थी। सामने राह नहीं, लक्ष्य था। वह बराबर चलता रहा। उसके दोनों ओर पेड़ों की पंक्तियाँ आगे बढ़ रही थीं। ऊपर आकाश उसके साथ था, नीचे धरती उसका साथ निभा रही थी।

‘कितना विश्वास होता है आशा में!’ विष्णुगुप्त ने सन्तोष की श्वास लेते हुए स्वयं से कहा और फिर आकाश की ओर देखता हुआ सोचने लगा—‘क्या सूर्य देव की मंजिल समाप्त हो गई? दिन भर चलते-चलते थक कर विश्रामगृह में आ पहुँचे! बस यहीं तक है तुम्हारी राह! जैसे किसी एक सूत्र में बँधे हुए दिन भर परिक्रमा करते हो! या तुम्हारी इच्छा है कि मनुष्य मुझ से आगे न बढ़ पाये, इसलिए रात की काली चादर तान देते हो! नहीं-नहीं, बात कुछ और ही है। पथिक को अविराम चलते देख तुम उसे आराम देना चाहते हो। आपकी इस अनुकम्पा के लिए धन्यवाद! पर मैं विश्राम नहीं करूँगा भगवान् भास्कर! यदि लक्ष्य से पूर्व मेरे पैरों को रुकने का अभ्यास हो गया तो धरा और स्वर्ग के बीच भटकती हुई मेरे पिता की आत्मा मुझे धिक्कारेगी। प्रतिशोध! नहीं-नहीं, अत्याचार का विनाश, इसलिए मैं चलता ही रहूँगा। यह अन्धकार उगलती हुई रात, यह झाड़-झंखाड़ों से भरा हुआ कंटकित मार्ग, भयंकरता मुझे भगाना चाहती है!’

‘ओह!’ चौंक कर विष्णुगुप्त पीछे हटा। उसने देखा कि एक फुँकारता हुआ काला साँप उसके सामने आ रहा है। विष्णुगुप्त ने भूखे नेवले की तरह पीछे हटकर सर्प के पिछले भाग की ओर उछला और बिजली की तरह चमक उसने उस लम्बे भारी सर्प को पलक मारते ही पूँछ पकड़ कर उठाया एवं पास ही पड़ी शिला पर दे पटका। दूसरे ही क्षण उसने अपना खड़ाऊँ वाला पैर सर्प के मुँह पर रखकर उसे कुचल डाला। उसके बाद उसने एक भारी पत्थर मार-मार कर साँप के तीन टुकड़े कर डाले।

साक्षात् काल से साँप को मारकर विष्णुगुप्त ने अपने माथे का पसीना पोंछा। कुछ देर उसका सिर चक्कर खाता रहा। लम्बे-लम्बे साँस लेता हुआ वह बैठ गया। सुस्ताने के बाद वह यह कहता हुआ उठा कि यह भी मेरे अध्ययन का एक पाठ है। शत्रु चाहे काल का रूप धारण कर आ जाये, किन्तु मैं उसे कुचल कर ही श्वास लूँगा।



मृतक साँप को उठाकर विष्णुगुप्त ने एक किनारे पर फेंक दिया। जैसे ही विष्णुगुप्त का हाथ सर्प से खाली हुआ तो उसे अपने हाथों में झलझलाहट महसूस होने लगी, पर चिरमिराहट सहन करता हुआ वह आगे ही चल पड़ा। जब वह कुछ दूर चल चन्द्रमा से बिखरती हुई अमृत भरी चाँदनी में आया तो उसने देखा कि सर्प के संग्राम करने से उसके दोनों हाथ और भी स्याह हो गये हैं।

विष्णुगुप्त चलते ही चलते सोचने लगा, “बड़ा विषैला सर्प था! बिना काटे ही इतना अधिक विष! किन्तु मृत्युञ्जय तो किसी गरल से भी नहीं मरता। कृष्ण क्या कालदेव के विष से मिटे थे, काले चाहे हो गये हों! शिव ने भी तो विषपान किया था। पर यह सोचने से ही तो सिद्धि नहीं मिलेगी। गारुड़ी बूटी इस समय कहाँ मिलेगी! कोसों दूर तक मनुष्य की शक्ति नहीं दिखाई देती। तो फिर चलूँ उस ओर बहती हुई अमृतमयी माँ गंगा की शरण में। कुछ देर मैं ही गरुड़ मन्त्र का उच्चारण करूँगा, विष को गंगाजल से शान्त कर दूँगा।”

विष्णुगुप्त ने गंगाजल में जल-क्रीड़ा से सर्प-विष उतारा। जब देह की ज्वाला शान्त हुई तो विष्णुगुप्त आगे बढ़ा।

राह में अनेक चित्र रचता हुआ, भविष्य को दृढ़ देखता हुआ यह पथिक अँधेरे में, पत्थरों में, धूप में बराबर चलता रहा। काँटों ने उसका मार्ग रोकना चाहा, पर वह न रुका। थकान ने उससे कहा कि विश्राम कर ले, पर वह न बैठा। नींद ने उसे दबाना चाहा, पर वह न सोया। बहते हुए पानी की तरह वह चलता ही रहा।

मंजिल तय करते हुए एक दिन सवेरे विष्णुगुप्त तक्षशिला आ पहुँचे। तक्षशिला अरुणोदय के प्रकाश में इस प्रकार दमक रही थी जैसे किसी कलाकार ने इस नगरी में अभी-अभी ताजे रंग भरे हों। शान्त वातावरण में भ्रमण करते हुए नागरिक एवं विद्यार्थी वृन्द साक्षात् सत्य-से प्रतीत हो रहे थे। विद्यालयों एवं विश्वविद्यालय के उन्नत शिखर पर इस प्रकार गर्वोन्नत थे, मानो कोई सर्वगुणसम्पन्न आचार्य संसार को शिक्षा दे रहे हों।

ज्योति-शिखा के दर्शन करते ही विष्णुगुप्त ने श्रद्धा से प्रणाम किया। प्रसन्नता से उन्होंने मन ही मन में कहा, “यही वह विद्यालय है जहाँ देश-देशांतरों के विद्वान् भी शिक्षा पाने आते हैं, जहाँ हर राजा का मस्तक झुक जाता है। संसार के अमूल्य रत्न इसी विद्यालय में भरे पड़े

हैं। राजनीति, अर्थ, दर्शन, इतिहास, ज्ञान, विज्ञान सभी इस विद्यालय के आचार्यों की वाणी पर विराजमान हैं। धन्य यह है नगर! अनेक राजप्रासाद इस शिक्षा-केन्द्र पर न्यौछावर किये जा सकते हैं।”

दर्शन से सुख पाते हुए विष्णुगुप्त विश्वविद्यालय के द्वार तक आ पहुँचे। प्रवेश करने से पूर्व वे रुके, सोचने लगे, “श्रीगणेश शिवं होना चाहिये। आदि ही यदि शुभ न हुआ तो अन्त अधूरा रह जायेगा।”

‘जय वाणी!’ कहकर विष्णुगुप्त ने नयन-कमल द्वार पर चढ़ाये और फिर विश्वविद्यालय में आचार्यों के निवास की ओर चल पड़े। जैसे ही वे कुछ आगे बढ़े उन्होंने देखा कि वृद्धाचार्य लोटे में दूध लिए हुए सामने से आ रहे हैं। उन्हें देखते ही विष्णुगुप्त ने साष्टांग प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुए आचार्य रुक गये। विष्णुगुप्त ने विनम्रता से निवेदन किया—“मैं दर्शनाचार्य परम विद्वान् पुण्डरीकाक्ष के दर्शन करना चाहता हूँ। मुझे उनका निवास बताने की कृपा कीजिये!”

मुस्कराते हुए आचार्य ने कहा—“चलिये, मैं आपको वहाँ ले चलूँ।”

विष्णुगुप्त ने उत्तर में तुरन्त ही चरण-धूलि मस्तक पर लगाते हुए कहा—“लाइये, यह दूध का लोटा मैं लिये चलता हूँ।”

**आचार्य**—शरीर को जब श्रम का अभ्यास नहीं रहता तो मनुष्य जीवित ही मृतक है।

**विष्णुगुप्त**—इस गुरु-मन्त्र को अपने प्राणों की तरह मोह से सुरक्षित रखूँगा।

वार्तालाप करते हुए विष्णुगुप्त आर्ष आचार्य के साथ उनके निवास पर आ गये। रम्य पर्णकुटी में प्रवेश करते हुए आचार्य ने कहा—“यही पुण्डरीकाक्ष का निवास है और मैं ही आचार्य पुण्डरीकाक्ष के नाम से पुकारा जाता हूँ। कहिये, अतिथि क्या इच्छा लेकर आये हैं?”

**विष्णुगुप्त**—यह अनाथ आपके चरणों की शरण लेने आया है। मेरी इच्छा है कि मुझे तक्षशिला विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्रदान की जाए। मैं आपकी शरण और तक्षशिला विश्वविद्यालय में प्रवेश की कामना से आया हूँ। यह एक पत्र आपके नाम श्रद्धेय गुरुदेव मोहनस्वामी ने दिया है।

पत्र पुण्डरीकाक्ष ने पढ़ा और गम्भीर होकर बोले—ईश्वर करे



तुम्हारा आगमन शुभ हो ! विश्वविद्यालय में तुम्हारे प्रवेश के लिए मैं पूरा प्रयत्न करूँगा, पर परिणाम क्या होगा यह मैं नहीं जानता। क्योंकि देश-विदेश से प्रवेश के लिए कितने ही राजकुमारों के आवेदन-पत्र आये हुए हैं। राजकुमारों से यदि स्थान शेष रहते हैं तो और विद्यार्थी भर्ती कर लिये जाते हैं। किन्तु कठिनता तो यह है कि कितने ही राजकुमार भी प्रवेश पाने से रह जाते हैं।

**विष्णुगुप्त**—लेकिन मेरे पास राजकुमार न होने के अतिरिक्त वे और सब योग्यताएँ हैं जो तक्षशिला विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए अनिवार्य हैं।

**पुण्डरीकाक्ष**—पर प्रबन्ध समिति का आदेश है कि राजकुमारों को प्राथमिकता दी जाये।

**विष्णुगुप्त**—तो क्या गुणों को आदर्श विद्यालय में भी ठुकराया जायेगा ?

**पुण्डरीकाक्ष**—गुणों का आदर करते हैं। चाहते तो वे यह भी हैं कि सुयोग्य को प्रथम स्थान दिया जाये, पर वे राजनियमों से बन्धित हैं। यह विद्यालय राज्य की बड़ी-बड़ी सहायताओं से चलता है, इसलिए उनके सामने कठिनाई रहती है। फिर भी मैं पूरा प्रयत्न करूँगा। मोहनस्वामी के शब्द मेरे लिए आदेश हैं। मैं आज किसी समय विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य शान्तानन्द से तुम्हारी भेंट करा दूँगा। यदि वे प्रभावित हुए तो प्रवेश पाने की आशा हो सकती है।

**विष्णुगुप्त**—कृपया मुझे बताइये कि कुलपति की रुचि किस ओर अधिक है।

**पुण्डरीकाक्ष**—वे बहुत शान्त हैं और बहुत गहरे भी। उनके सम्पर्क में इतने दिन रहने के बाद भी मैं यह निर्णय नहीं कर पाया कि वे किस रुचि के हैं। लेकिन गुणी का वे आदर करते हैं।

**विष्णुगुप्त**—यत्न करना मनुष्य का धर्म है और मेरा विश्वास है कि यत्न असफल नहीं होता।

**पुण्डरीकाक्ष**—यत्न तो करेंगे ही। अच्छा, तब तुम कुछ विश्राम कर लो, लम्बी यात्रा से थक गये होगे।

कह कर पुण्डरीकाक्ष आतिथ्य में लग गये। अधिक शिष्टाचार से संकुचित विष्णुगुप्त ने आचार्य पुण्डरीकाक्ष से कहा—“मेरे लिए आप

अधिक चिन्ता न कीजिये। मैंने विद्यार्थी जीवन में बिल्कुल साधारण जीवन निर्वाह का व्रत लिया हुआ है। केवल एक गिलास कच्चा और फीका दूध पीकर मैं पृथ्वी पर सोना चाहता हूँ, खाट पर विश्राम करने का मुझे अभ्यास नहीं है।”

विष्णुगुप्त की इच्छानुसार पुण्डरीकाक्ष ने सब व्यवस्था कर दी। थकान के कारण विष्णुगुप्त लेट तो गये पर उनकी आँखों में निद्रा न थी। कभी कुछ सो जाते और कभी आँखें खोलकर कुछ सोचने लगते थे। यह क्रम चल ही रहा था कि लगभग तीन बजे आचार्य पुण्डरीकाक्ष ने प्रवेश करते हुए कहा—“शयन कर लिया विष्णुगुप्त! कुलपति भी सो उठे होंगे। चलो, इस समय तुम्हें उनके दर्शन करा दें।”

आचार्य पुण्डरीकाक्ष को देखते ही विष्णुगुप्त खड़े हो गये। पुण्डरीकाक्ष उन्हें साथ ले कुलपति-निवास की ओर चल पड़े। बात की बात में दोनों कुलपति-भवन में आ पहुँचे। कुलपति आचार्य शान्तानन्द अभी शयन करके उठे ही थे। वे अभी शैया पर निद्रा के बाद प्राप्त होने वाली शान्ति का स्वाद ही चख रहे थे कि पुण्डरीकाक्ष ने सादर अभिवादन किया और तुरन्त ही किया विष्णुगुप्त ने साष्टांग प्रणाम।

आचार्य पुण्डरीकाक्ष तथा नवागन्तुक अतिथि को प्रेम से आसन देते हुए कुलपति ने कहा—कहो पुण्डरीकाक्ष! सानन्द हो?

**पुण्डरीकाक्ष**—आपके आशीर्वाद से कौन सानन्द नहीं होता!

**कुलपति**—यह कौन है?

इससे पहले कि पुण्डरीकाक्ष कुछ उत्तर दें आगन्तुक विष्णुगुप्त बोल उठा—मैं कौन हूँ, इसी जिज्ञासा से तो आचार्य पुण्डरीकाक्ष की कृपा से कुलपति की शरण में आया हूँ।

**कुलपति**—युवक बुद्धिमान् जान पड़ता है।

**पुण्डरीकाक्ष**—इस कुशाग्र की प्रशंसा मेरे एक सहपाठी ने भी मुझे एक पत्र लिखते हुए की है। उन्होंने लिखा है कि “विष्णुगुप्त ने अल्प समय में ही व्याकरण और गणित में पाण्डित्य प्राप्त कर लिया है। अब वह उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय में अध्ययन करना चाहता है। आप उसे प्रवेश दिलाने की कृपा करें।”

और फिर अत्यन्त मृदुल होकर पुण्डरीकाक्ष ने कहा, “यदि कुलपति की कृपा हो जायेगी तो मेरा विश्वास है कि हमारे विद्यालय में यह



अद्भुत प्रतिभाशाली विद्यार्थी शिक्षा पा सकेगा।”

**कुलपति**—तुम्हारी अभिमति तथा बुद्धिमान् जिज्ञासु, भला फिर मैं कैसे न चाहूँगा कि विष्णुगुप्त को विश्वविद्यालय में प्रवेश न मिल जाये। किन्तु भारतवर्ष ही नहीं, समुद्र पार तक के शिक्षाभिलाषी राजपुत्रों के प्रवेश के लिए प्रार्थना-पत्र आये हुए हैं। तुम ही बताओ मैं क्या करूँ?

पुण्डरीकाक्ष के उत्तर देने से पहले ही विष्णुगुप्त फिर बोल उठा—  
‘वही जो सत्य का भक्त एक निर्धन पिता अपने पुत्र के लिए करता है। मेरा संसार में कोई नहीं है। मैं आप ही को माँ और आप ही को पिता मानकर आपकी शरण में आया हूँ। मुझे चाहे राजपुत्रों के बराबर में बैठकर पढ़ने की स्वीकृति आप न दीजिये, चाहे मुझे उस स्थान पर बैठा दीजिये जहाँ पढ़ने के कक्ष के बाहर द्वारपाल बैठा रहता है, पर मुझे अध्ययन की स्वीकृति अवश्य प्रदान कर दीजिये। केवल इतना कर दीजिये कि मेरे कान गुरुजनों की वाणी से निकलने वाले शब्द श्रवण कर सकें।’

**कुलपति**—तुम्हारे रुद्ध कण्ठ से तो मेरा हृदय भर आया। कथन में वेदना बोलती है। अच्छा तो तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी। हम तुमको अपना पुत्र मानकर इस विश्वविद्यालय में पढ़ने की स्वीकृति देते हैं तथा आज्ञा दिला देंगे।

प्रसन्नता से विष्णुगुप्त ने कहा—‘पिता तुल्य पूज्य कुलपति आचार्य शान्तानन्द की जय हो! मेरे जीवन का हर श्वास आपकी पूजा करता रहेगा।’

**कुलपति**—अरे नहीं, यह तो हम आचार्यों का धर्म है।

कुलपति की स्वीकृति पा अभिवादन कर विष्णुगुप्त आचार्य पुण्डरीकाक्ष के साथ उनके निवास पर वापिस आ गये। चौकी पर बैठते हुए पुण्डरीकाक्ष ने प्रसन्नता से कहा—तुम्हारा प्रवेश निश्चित हो जायेगा। कुलपति जिसको वचन देते हैं उसे कभी निराश नहीं करते। तुम इतने यहाँ आराम से रहो। समय बिताने के लिए विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में चले जाया करो।

**विष्णुगुप्त**—आपकी अनुकम्पा से एक अकिंचन को कुबेर का कोष मिल गया।

**पुण्डरीकाक्ष**—अच्छा, अब तुम विश्राम करो या कहीं भ्रमण कर आओ। मुझे विशेषज्ञों की एक बैठक में सम्मिलित होना है।

**विष्णुगुप्त**—आप मेरी चिन्ता तनिक न कीजिये। आज का सारा दिन आपका मेरी ही चिन्ता में बीत गया। आप जहाँ जाना चाहें जायें। मैं आपके निवास पर एक सेवक के रूप में सतर्क रहूँगा।

**पुण्डरीकाक्ष**—नहीं-नहीं, यह सब नहीं होगा। हम अपनी सेवा आप कर लेते हैं। तुम तो हमारे अतिथि हो। अतिथि की सेवा की जाती है, उससे ली नहीं जाती।

**विष्णुगुप्त**—अब मैं अतिथि कहाँ रह गया हूँ! अब तो मैं आपके कुटुम्ब का एक पात्र हूँ और आपकी छत्रछाया में रहकर आपको कष्ट देना चाहता हूँ।

**पुण्डरीकाक्ष**—कष्ट क्या, अपने बालक से क्या किसी को कष्ट होता है! मोहनस्वामी ने पत्र में लिखा है कि विष्णुगुप्त को मैं पुत्रवत् प्रेम करता हूँ।

**विष्णुगुप्त**—सचमुच गुरुदेव मोहनस्वामी और आप मनुष्य के रूप में देवता हैं।

**पुण्डरीकाक्ष**—अच्छा, अब हम जाते हैं।

आचार्य पुण्डरीकाक्ष चले गये और विष्णुगुप्त विश्वविद्यालय में भ्रमण करने लगे। प्रथम भ्रमण में ही विष्णुगुप्त विश्वविद्यालय भवन से परिचित हो गये। भ्रमण के बाद विष्णुगुप्त पुस्तकालय में आ बैठे और पुस्तकालयाध्यक्ष से 'विदुर नीति' माँग कर पढ़ने लगे।

पढ़ते-पढ़ते जब विष्णुगुप्त को रात्रि के दस बज गये तो वे पुस्तक के पृष्ठ से अपनी दृष्टि हटा पुस्तकालयाध्यक्ष की ओर देखते हुए बोले—पुस्तकालय बन्द होने का क्या समय है?

**पुस्तकालयाध्यक्ष**—यह पुस्तकालय दिन-रात खुला रहता है।

सुनकर विष्णुगुप्त फिर पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते जब घनी रात साँय-साँय करने लगी तो विष्णुगुप्त ने सोचा, 'अब चलना चाहिये, नहीं तो आचार्य पुण्डरीकाक्ष को चिन्ता बड़ेगी।'।

पुस्तकालय से उठकर विष्णुगुप्त चल पड़े। जब वे द्वार पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि पुण्डरीकाक्ष दरवाजे की ओर आँखें लगाये बैठे हैं। विष्णुगुप्त को देखते ही उन्होंने कहा—“इतनी देर तक कहाँ चले गये



थे ?”

**विष्णुगुप्त**—तनिक पुस्तकालय में चला गया था आचार्य ! ‘विदुर नीति’ पढ़ने लगा । पढ़ने में कुछ ऐसा स्वाद आया कि आने का कुछ ध्यान ही नहीं रहा । क्षमा कर दीजिये !

**पुण्डरीकाक्ष**—तुमने कुछ पाप तो नहीं किया है जो क्षमा माँग रहे हो । पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ रहे थे, इसमें क्षमा की क्या बात है ! पर एक बात अवश्य है, पढ़ने की लगन में स्वास्थ्य का ध्यान भी अनिवार्य है । अब सो जाओ !

विष्णुगुप्त लेट गये । पर उनकी आँखों में नींद न थी । आँखें उन्होंने अवश्य बन्द कर लीं, पर बन्द आँखों में ही जैसे वे चित्र देख रहे हों । ‘विदुर नीति’ के पढ़े हुए पृष्ठ उनके सामने चित्र बनकर नाचने लगे । छायाचित्रों की तरह उन्होंने चित्र देखे—“राजा और शत्रु, सेना-व्यूह तथा उसे तोड़ता हुआ अजेय वीर, कुचक्रों में फँसा हुआ सम्राट् और मन्त्रियों के जाल ।”

भविष्य के स्वप्न विष्णुगुप्त को जगा रहे थे और वे जागते हुए सो रहे थे । यह सोने का बहाना था या निद्रा से युद्ध अथवा लक्ष्य की ओर बढ़ता हुआ चरण !

□□

इधर विष्णुगुप्त पुस्तकों के पृष्ठ पलट रहे थे और उधर मगधाधिपति महाराज महानन्द राजमद में अट्टहास कर रहे थे। इधर विष्णुगुप्त धरती के अक्षर पढ़ रहे थे और उधर बहकते हुए अधर जीवन के स्वादों में झूम रहे थे। इधर आँखों में जागरण था और उधर नयनों में मदालस था।

राजमहल के रस-प्लावित बगीचे में मुरा ने एक मस्ती भरी अँगड़ाई ली और महानन्द उस अँगड़ाई का रस शराब के प्याले की तरह पी गये। गुलाब से भी अधिक कँटीली और सुन्दर सुकुमारी मुरा की मस्ती नियन्त्रणहीन थी। उसने अपनी आँखें महानन्द की आँखों में डाल दीं। रोमांच पराग की तरह प्रस्फुटित हो उठा, गुलाबी गालों से मकरन्द झरने लगा, स्पन्दित वक्ष के समक्ष फूलों की निगाहें झुक गईं।

अपनी नागिन-सी कलाई महानन्द के कण्ठ में डाल मुरा उपवन की एक विश्राम शिला पर मदिरा की झूमती हुई लहर-सी बल खाने लगी। दमकती हुई मुस्कान और मृदु कम्पनों ने महानन्द को अपने में डुबा लिया। मुरा ने रूप की मदिरा पिलाते हुए कहा—“महाराज हमें कितना प्यार करते हैं?”

**महानन्द**—जितना वे अपने प्राणों को भी नहीं करते।

**मुरा**—न जाने हर नई नारी से प्रणय के समय प्रत्येक पुरुष यही क्यों कहता है! क्या जिस तरह भौरा रसवन्त फूल का रस चूस दूसरे फूल पर जा बैठता है, उसी प्रकार प्रत्येक पुरुष की प्यास नहीं होती!

**महानन्द**—कैसी बावली बातें करती हो मुरा! मेरे लिए तुम हो, केवल तुम, मुझे और किसी की चाह नहीं।

**मुरा**—क्या सुनन्दा और माधवी को इतनी जल्दी भूल गये महाराज! मैंने तो सुना है कि कोई कश्मीरी कुमारी इस महल में नई दुल्हन आने वाली है।

**महानन्द**—इससे क्या होता है! ये सब तो तुम्हारी दासी बनने के लिए आ रही हैं। महानन्द के महल में तुम महारानी बनकर रहोगी और सब दासी बनकर तुम्हारी सेवा करेंगी।



**मुरा**—और यदि किसी समय महाराज ने मुझे ठुकरा दिया तो ?

**महानन्द**—यह कभी नहीं हो सकता । मैं तुम्हारे इज्जत पर सारा मगध राज्य न्यौछावर कर सकता हूँ ।

**मुरा**—क्या सचमुच महाराज मुझे इतना चाहते हैं ?

**महानन्द**—हम तुम्हें कैसे विश्वास दिलायें, हर क्षण तुम्हारा रूप हमारे सामने नृत्य करता रहता है ।

आवेग के तन्तु खिंच गये, प्रणय की मुखरता मौन मधुरता में खो गई । झुरमुट की आड़ में छिपी हुई माधवी ने झुलसती हुई आँखों से सरस दृश्य देखा और प्यार की गूँज सुनने वाले कानों से विष-वाक्य सुने । वह धीरे-धीरे उपवन से निकल महल के गर्भ भाग में आ गई । यहाँ एक बड़े दर्पण के सामने बैठी हुई सुनन्दा अपने रूप से जीवन के प्रश्न पूछ रही थी । 'कितनी सुन्दर हो तुम ! महाराज तुम पर तन-मन न्यौछावर करते हैं न ! पगली कहीं की, इस ठगने वाले रूप पर विश्वास कर बैठी ! कल तक तेरा रूप और शृङ्गार महाराज के अंकपाश में बाँध लेता था, आज यह तुझे ही धिक्कार रहा है । पुरुष ! तू नारी को एक खिलौना मात्र ही तो समझता है !'

माधवी ने सुनन्दा का यह करुण चित्र देखा, किन्तु अधिक देर वह अपने पैर पृथ्वी पर न जमा सकी । वह तूफान के एक झोंके की तरह दौड़कर सुनन्दा से चिपट गई । उसने रोते हुए कहा—बहिन ! चाँदनी अंधेरी में बदल गई ! अब जी कर क्या करेंगे ?

**सुनन्दा**—क्या बात है माधवी ! तू इतनी उद्विग्न क्यों हो रही है ? यह क्या ? तेरी आँखों से आँसू निकल रहे हैं ! यह तुझे क्या हो गया ? जिन आँखों से मुस्कान के मोती झरते थे, उन आँखों से आँसू !

**माधवी**—मुस्कान उस मुरा नागिन ने डस ली बहिन ! अब तक कानों को विश्वास नहीं होता था, अब आँखों से सब कुछ देख लिया ।

**सुनन्दा**—तूने कुछ नहीं देखा है । मैंने तो जिस दिन से इस महल की भूमि पर पैर रखा है उसी दिन से यह खेल देख रही हूँ ।

**माधवी**—पर मुझसे यह सहन नहीं होता । मेरे क्रोध की अग्नि धधक-धधक कर कह रही है कि इस डायन का गला घोट दूँ ।

**सुनन्दा**—क्या मैंने उस दिन तेरा गला घोटा था जिस दिन महाराज मुझे छोड़कर तुझे चाहने लगे थे ?

**माधवी**—तुम देवी हो, बहिन !

**सुनन्दा**—देवी नहीं हूँ, दुःख को शरबत की घूँट समझकर पी जाती हूँ। रोना मुझे भी आता है, पर हँसने का अभ्यास कर लिया है। इस देश की नारी तिल-तिल कर गल सकती है, पर अपने पति के प्रति श्रद्धा नहीं छोड़ सकती।

**माधवी**—क्षमा कर दो बहिन ! मैं नारी-हृदय की पीड़ा को न पहचान सकी। जब अपने ऊपर बीतती है तो तभी दूसरे की तकलीफ महसूस होती है। लेकिन अब क्या करूँ ? मैं स्वयं पर नियन्त्रण नहीं रख सकती। प्रतिशोध की ज्वाला धधकती जा रही है। मैं अपनी आँखों के सामने मुरा को इस महल में नहीं देख सकती।

**सुनन्दा**—संसार में सब कुछ देखना पड़ता है। अभी तूने देखा ही क्या है !

**माधवी**—अभी मैंने देखा ही क्या है ! पर मैं दिखा दूँगी कि प्रणय लुट जाने पर नारी क्या कर डालती है।

अट्टहास करते हुए सुनन्दा ने कहा—तू रोने-पीटने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकेगी।

**माधवी**—मैं चिंगारी बनकर इस हरे-भरे बाग में आग लगा डालूँगी।

यह सम्वाद चल रहा रहा था कि प्रतिहारी ने आकर कहा—महारानी की जय हो ! सेनापति मौर्य महाराज महानन्द से भेंट करने आये हैं।

**माधवी**—उन्हें आदर सहित लिवा लाओ।

प्रतिहारी ससम्मान सेनापति मौर्य को साथ ले आई। हृष्ट-पुष्ट सजीले नौजवान सेनापति मौर्य को देखते ही माधवी मुस्कराई। संकेत से उसने प्रतिहारी को भेज दिया और फिर सेनापति की ओर देखती हुई बोली—“महाराज से भेंट करने आये हैं ? वे बगीचे में भ्रमण कर रहे हैं। आप इस कक्ष में बैठिये, मैं सूचना भिजवाये देती हूँ।”

सेनापति माधवी के कक्ष में बैठ गये। कुछ क्षण बाहर ठहरने के बाद माधवी सेनापति के पास आई और बोली—“मैं समझती हूँ आप ही बगीचे में चले जायें, वहीं महाराज से बातें कर लें।”

“अच्छा ! कहते हुए सेनापति उठे और बगीचे की तरफ चल



पड़े। बहुत दूर पीछे मुस्कराती हुई माधवी भी छिपती हुई साथ हो ली।

अपने अहम् में झूमते हुए सेनापति सहसा उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ प्रणय-रास में महाराज और मुरा खोये हुए थे।

एकदम एक साथ ही महाराज और मुरा ने सेनापति को और सेनापति ने महाराज को देखा। आँखे झुकाकर सेनापति खड़े हो गये और लाल-लाल हो गई महाराज की आँखें, किन्तु सटपटा गई लज्जा से मुरा।

मुरा ने अपनी अस्त-व्यस्तता को सँभाला और महाराज बिखरे हुए से ही बोले—यहाँ क्यों आये? तुम्हें किसने बताया कि महाराज यहाँ हैं?

**सेनापति**—क्षमा कीजिये, महाराज! आवश्यक कार्य से मैं आपसे मिलने आया हूँ। महल में आपको न पाकर सोचा बगीचे में ढूँढ़ लूँ।

**महानन्द**—किन्तु बिना हमारी आज्ञा लिये सीधे इस प्रकार चले आना शिष्टाचार के विरुद्ध है।

**मौर्य**—क्या मगध के सेनापति के लिए भी यह बन्धन हो गया है महाराज!

**महानन्द**—सेनापति हो, चाहे पुत्र, हम नहीं चाहते कि हमारे आनन्द के समय कोई भी आकर विघ्न डाले।

**मौर्य**—यदि दरवाजे पर आग लगी हुई हो तो?

**महानन्द**—योग्य सेनापति को आग लगने ही नहीं देनी चाहिये।

**मौर्य**—आग जब लगती है तो उसे बुझाने का प्रयत्न किया जा सकता है, लेकिन लगने से रोकना तो पानी के भी बस का नहीं। आग, पानी और हवा पर मनुष्य का शासन नहीं चलता, महाराज!

**महानन्द**—पहेलियाँ छोड़ो और सीधे-सीधे बताओ हमें इस समय क्यों कष्ट दिया?

**मौर्य**—देश में विरोध शक्तियाँ सिर उठाती जा रही हैं। छोटे-छोटे राज्य अपनी स्वतन्त्र सत्ता फिर से स्थापित करने लगे हैं। पंचनन्द और मालव अपनी शक्ति बढ़ाते जा रहे हैं। राजपूताने की ओर विजय के लिए गई हमारी सेना युद्ध में खप गई।

**महानन्द**—और तुम पराजय का झण्डा फहराते हुए मेरे सामने अपकीर्ति गा रहे हो!

**मौर्य**—नहीं, महाराज ! राजपूताने की ओर स्वयं प्रयाण करने की आज्ञा लेने आया हूँ।

**महानन्द**—इसमें आज्ञा की क्या आवश्यकता थी ! महामात्य राक्षस जो चाहें कर सकते हैं। यदि उनकी आज्ञा हो तो जाओ और राजपूताने की ईंट से ईंट भिड़ा दो !

**मौर्य**—महामात्य की आज्ञा से ही मैं यहाँ आया हूँ। उन्होंने ही तो मुझे राजपूताने की ओर जाने की आज्ञा दी है। पर वे स्वयं सब कुछ होते हुए भी महाराज की आज्ञा अनिवार्य समझते हैं, इसीलिए मैं उपस्थित हुआ हूँ।

**महानन्द**—महामात्य राक्षस, तुम कितने राजभक्त हो ! सेनापति मौर्य, जाओ और विजय का झण्डा फहराते हुए वापिस आओ !

अभिवादन कर झूमते हुए वनराज की तरह सेनापति मौर्य चल पड़े। चलते हुए सेनापति को मुरा ने एक आकर्षण दृष्टि से देखा। सेनापति लम्बे-लम्बे पग धरते हुए बाहर जाने के लिए जब राजमहल से निकल रहे थे तो राह में माधवी ने व्यंग्य कसते हुए कहा—कहिये, महाराज महानन्द से भेंट हुई ?

सेनापति ने व्यंग्य का उत्तर देते हुए कहा—कामिनियों के इन्द्रजाल में बन्दी से भेंट की स्वीकृति क्या सरल थी ! यह तो आपकी कृपा हो गई जो महाराज के दर्शन हो गये।

**माधवी**—कृपा नहीं, मैं मगध के सेनापति की आँखें खोलना चाहती थी। दावानल की तरह धधकती हुई आग घर में घुसी आ रही है और महाराज रंगरलियाँ मना रहे हैं। फिर भी आपकी आँखें क्यों नहीं खुलतीं ? मुरा ने महाराज को पागल बना दिया है।

**मौर्य**—महाराज तो पहले ही जादू के निशाने बने हुए थे। मुरा का ही इसमें क्या दोष है ! आपने आज अपनी आँखें खोली हैं, सम्भवतः कल महाराज की आँखें भी खुलें। अच्छा, हम जाते हैं।

**माधवी**—अवकाश के समय फिर कभी आने की कृपा कीजिये, तब मैं बताऊँगी कि राजमहल में मगध-विनाश की कैसी बारूद बिछ रही है।

**मौर्य**—अवसर मिला और आवश्यकता हुई तो अवश्य आऊँगा। सेनापति चले गये और माधवी विचित्र दशा में इधर-उधर घूमने



लगी। कभी वह सुनन्दा के पास जा खड़ी होती और कभी आकर लेट जाती। लेटे-लेटे पल भर में ही उसके मस्तिष्क में एक तूफान उठता और वह उठकर वातायन से बगीचे की ओर देखने लगती। उसने देखा कि महाराज मुरा के कण्ठ में हाथ डाले महल की ओर चले आ रहे हैं।

महाराज महल में आ गये और महारानी मुरा के कक्ष में जाने लगे तो माधवी ने आवाज देते हुए कहा—‘सुनन्दा बहिन की तबियत बहुत खराब है इधर आइये महाराज!’

मुस्कराती हुई मुरा अपने निवास में चली गई और आँखें बदलते हुए महाराज माधवी की तरफ आये। चिढ़े-से महाराज और ईर्ष्या भरी ज्वाला-सी माधवी ने उस कक्ष में प्रवेश किया जिसमें बैठी हुई सुनन्दा गीता के पृष्ठ पलट रही थी।

महाराज को देखते ही सुनन्दा ने उठकर अभिवादन किया और माधवी भृकुटी टेढ़ी करती हुई बोली—‘लो बहिन! महाराज आ गये, पर ये स्वयं नहीं आये, मैं इन्हें जबरदस्ती बुला लाई हूँ।’

**सुनन्दा**—किसी को जबरदस्ती बुलाना अन्याय है माधवी! क्या किसी को जबरदस्ती अपना बनाया जा सकता है?

**माधवी**—मैंने महाराज को जबरदस्ती अपना बनाने के लिए नहीं बुलाया, मुझे महाराज से पूछना है कि क्यों उन्होंने हमारा हृदय ऐसे तोड़ा जैसे मिट्टी के खिलौने को तोड़ डालता है।

**महानन्द**—हम अपनी इच्छा के राजा हैं, जो चाहें कर सकते हैं। इस धरती पर किसकी ताकत है जो महानन्द की आज्ञा न माने!

**माधवी**—बस महाराज! इतनी ही दूर तक थी आपके प्रेम की मंजिल, कहाँ है वे वाक्य जो माधवी को मधु की महारानी कहकर पुकारते थे? आपके मुँह से प्रेम का शब्द पाप बनकर निकलता है। विलासिता ने आपकी आँखें बन्द कर दी हैं। आज मैं सोचती हूँ कि कितना अच्छा होता यदि मैं मगधाधिपति की महारानी न बनकर एक श्रमिक की पत्नी हुई होती। आज लगता है कि राजरानी का जीवन श्रमिक के पैरों की धूलि से भी तुच्छ है।

**महानन्द**—एक साधारण नारी हमें उपदेश दे रही है! जी चाहता है कि कैंची की तरह चलने वाली तेरी यह जिह्वा काट लूँ।

**माधवी**—जिह्वा क्या, गला ही क्यों नहीं काट डालते?

माधवी के तीखे उत्तरों से महानन्द का क्रोध भड़क उठा। उसने आग बबूला हो माधवी का गला दबाते हुए कहा—तो ले, तेरा गला ही घोटता हूँ।

सुनन्दा जो अब तक मौन खड़ी थी, अब उससे न रहा गया। उसने माधवी को छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए कहा—‘महाराज! क्रोध को ऐसी आग मत बनाओ जिससे स्वयं ही जलकर राख हो जाने की सम्भावना हो। हम परित्यक्ता की तरह जीवन व्यतीत कर रही हैं, इतने पर भी आपको सन्तोष नहीं होता! माधवी अभी खिले हुए फूलों की डाली की तरह कोमल है। वह अपने प्राणों से आपकी पूजा करती है। उससे वह सब न देखा गया जो मैं देखकर मौन रह जाती हूँ। कोमल रूप कृपाण की धार के लिए नहीं होता, वह तो वीणा है जो प्यार की मधुर उँगलियों का स्पर्श पाते ही झंकृत हो उठती है।

सुनन्दा के बोलने से महाराज ने माधवी को छोड़ दिया। वे कुछ देर अपराधी की तरह चुप खड़े रहे और फिर पास ही पड़े हुए पलंग पर पड़ गये।

महाराज को पलंग पर उदास देख सुनन्दा ने उनके पास बैठ प्रेम-प्रदर्शन करते हुए कहा—चिन्तित क्यों हो गये महाराज?

**महानन्द**—कभी-कभी कठोर से कठोर को भी दुःख होता है सुनन्दा! चोट पर चोट खाने से पत्थर भी फट जाता है।

**सुनन्दा**—तभी तो धरती पर गंगा दिखाई दी महाराज! दुःख तो जीवन का सबसे बड़ा रस है। जिसे जीवन में दुःख नहीं मिला, उसे सुख की अनुभूति ही क्या होगी! जो स्वयं दुःख का अनुभव करता है, वही दूसरे के दुःख को पहचान पाता है। पर छोड़िये इन बातों को, ईश्वर ने यह विषय कवियों के लिये रचा है।

**महानन्द**—ऐसा लग रहा है जैसे हर व्यक्ति का हृदय कवि होता है। क्रूर से क्रूर के पास कहीं न कहीं आँसू के लिए स्थान होता है।

**सुनन्दा**—आँसू तो संसार का सबसे मूल्यवान मोती है। जिसके पास उसे सुरखित रखने के लिए स्थान नहीं, वह धनवान नहीं हो सकता। अच्छा छोड़ो यह चर्चा, अब तो महाराज को एक बहुत बड़ा हर्ष होने वाला है।

**महानन्द**—वह क्या सुनन्दा!



**सुनन्दा**—आपकी नई रानी माता और आप पिता बनने वाले हैं।

**महानन्द**—यह हर्ष उसी दिन हर्ष हो सकता है जिस दिन कोई सुपुत्र अपने बूढ़े पिता की बुढ़ापे में लाठी हो। तुम देख नहीं रही हो, राजकुमार केतुनन्द ही हमें क्या धन्य कर रहा है! अभी वह बालक है, पर चाहता है कि बाप मर जाये तो मैं राजा बन जाऊँ। इससे तो हमें हमारी पुत्री कल्याणी से ही अधिक सन्तोष मिलता है। उसके पिता कहने में जितनी श्रद्धा है, केतु के 'महाराज' कहने में उतना ही रूखापन।

**सुनन्दा**—कल्याणी आपकी विवाहित पत्नी है, महाराज! और केतु तो आपको भेंट में मिली हुई कोह की गणिका की कोख से प्राप्त हुआ है। संसार में ऐसे भी फूल होते हैं जिनमें सुगन्ध नहीं होती। कोह की सुन्दरी भी ऐसे ही एक फूलों की डाली थी। पर महाराज! यह आप क्या करते हैं? इन सुकुमारियों के जीवन से खेलना क्या आपके गौरव के अनुकूल है? सुन्दर से सुन्दर अप्सरा भी चार दिन बाद आपके लिए सुन्दर नहीं रहती और फिर वह तड़प-तड़प कर जीवन व्यतीत करती है। कितनी ही कलियाँ आपने मसल-मसल कर फेंक दीं, किन्तु ही फूलों का रस चूस-चूस कर आप चल दिये! क्या कभी आपने सोचा कि कली और फूल का हृदय भी तड़पता है?

**महानन्द**—सोचता तो हूँ सुनन्दा! लेकिन केवल उस समय जिस समय विलासिता का पशु तुम्हारी वाणी से पंगु होकर मुझे धिक्कारता है।

**सुनन्दा**—जो डालियाँ उजड़ चुकीं उन पर बहार लाने की चिन्ता चाहे छोड़ दो महाराज! लेकिन माधवी का मन अभी शिशु-सा है, मुरा अभी जवानी में पैर रख रही है। इन दोनों के प्यार का गला अभी मत घोटो। सम्भवतः यह आपको पता नहीं कि नारी जब प्यार का अमृत नहीं पाती तो झुलस कर ज्वाला बन जाती है और उसमें जल जाता है कोमल भावनाओं को जलाने वाला अंगारा भी।

**महानन्द**—कुछ पलों के लिए सब कुछ सोचता हूँ। जिस प्रकार तृप्ति के अन्त में, चिता के समीप और वैराग्य की दशा में मनुष्य के अन्तर का सत्य बोलता है, उसी प्रकार कभी न कभी मेरे हृदय का मनुष्य भी जाग जाता है।

**सुनन्दा**—जागे हुए मनुष्य को फिर पशु की पुकार से सुला क्यों देते हो? एक बार सत्य को दृढ़ता से पकड़ लेने पर असत्य उसे डिगा नहीं सकता।

**महानन्द**—काम, क्रोध और मद पर मेरा नियन्त्रण नहीं रहता सुनन्दा ! मोह यदि मुझे है तो केवल अपनी इच्छाओं से । हम उपदेश सुनते-सुनते थकने लगे हैं । हमारे सोने का समय हो गया ।

माधवी की ओर देखकर—सुरा और सुराही उठा लाओ मधु की रानी ! हमारे निकट आओ, अपने फूल-से हाथों से अमृत हमारे अधरों से लगा दो और फिर पिलाती जाओ अपने रूप की मदिरा !

**सुनन्दा**—क्या बातें करते-करते ही कपूर की तरह महाराज के ऊपर से सत्य उड़ गया ?

**महानन्द**—तु पागल है सुनन्दा ! तेरे उपदेश कभी-कभी मेरा मस्तिष्क फेर देते हैं । जब तू अपने श्लोक बोलती है तो मैं उनमें फँस जाता हूँ । नहीं-नहीं तू जो कहती है, वह सब पाप है, जीवन को मारने वाला स्वप्निल विष है । अमृत तो संसार के प्रत्यक्ष रूपों में है । यह रमणीयता, यह मधु, यह मद, यह शक्ति, यही तो सब कुछ है । भोगते रहो और जो उसके विरुद्ध वाणी खोले उसका मुँह सी दो । तू इसे अपराध कहती है ! जानती है अपराध क्या है ? अपराध करना अपराध नहीं, अपराध वह है कि जिसे कोई कहे कि यह अपराध है । शक्ति और षड्यन्त्रों के आवरण में भोगा हुआ आनन्द क्या पाप होता है !

**सुनन्दा**—रावण भी मन्दोदरी के सामने अन्त तक यही कहता रहा ।

**महानन्द**—अधिक मत बोलो सुनन्दा ! नहीं तो हमें क्रोध आ जायेगा । हमारे क्रोध का परिणाम भयंकर होता है ।

**सुनन्दा**—भयंकर तो हो ही रहा है महाराज ! खैर, आप नाराज होते हैं तो मैं नहीं बोलती ।

माधवी ने सुराही से चषक में मदिरा उड़ेली और महाराज के अधरों से लगा दी ।

महाराज ने अभी दो-तीन घूँट ही भरी होगी कि शोर मचा—दौड़ो पकड़ो ! रानी मुरा के महल में कोई चोर आ गया !

सब मुरा के महल की ओर चल पड़े । महाराज भी झूमते-झूमते वहाँ पहुँचे । मुरा के माथे पर पसीना था, वह हाँफ रही थी । महाराज उसके पास बैठ गये । महल के रक्षकों की ओर देखकर बोले—‘पकड़ा उसे ?’



**रक्षक**—नहीं महाराज ! वह तलवार चलाता हुआ भाग गया। हमारे कुछ सैनिक घायल भी हुए।

**महानन्द**—महानन्द के महल में कोई इस प्रकार घुस आये और सकुशल निकल जाये ! इसके बदले में उचित तो यह है कि तुम्हें इसी समय कत्ल कर दिया जाये। पर महामात्य राक्षस ने हमें कहीं-कहीं बाँध भी रखा है। तुम्हें तुम्हारे अपराधों का दण्ड महामात्य राक्षस के समक्ष ही दिया जायेगा। भागते हुए का रूप तुमने देखा, कुछ पहचान पाये ?

**रक्षक**—नहीं महाराज ! उसका मुँह मुखावरण से ढका हुआ था, वेष भी कुछ बदला हुआ जान पड़ता था, क्योंकि विचित्र वेष-भूषा थी, जो आज तक पाटलिपुत्र में किसी की नहीं देखी।

**महानन्द**—जाओ, हमारी आँखों के सामने से दूर हट जाओ !

मुरा के महल से सब चले गये, केवल महाराज वहाँ रह गये। उन्होंने मुरा की ओर झूमती हुई आँखों से देखते हुए कहा—क्या हुआ, महारानी !

**मुरा**—कुछ नहीं, महाराज ! मैं सो रही थी, सहसा मेरे कक्ष के द्वार खुले। मैंने समझा महाराज होंगे, मैं आँखे मीचे पड़ी रही। लेकिन जब उसने जोर से मेरा गला दबाते हुए कहा, 'बता महाराज कहाँ हैं ?' तो मैं चौंक पड़ी और जोर से चीख मारी। मेरी चीख सुनकर प्रहरी आदि सब आ गये।

**महानन्द**—तुम उसे कुछ पहचान सकीं ?

**मुरा**—नहीं, महाराज ! केवल इतना ही जान सकी कि उसकी आयु पन्द्रह वर्ष से अधिक सम्भवतः न हो। उसके हाथ में एक तेज चमचमाती कटार थी, जिसका वार वह मुझ पर करना चाहता था। पर क्योंकि मेरे पिता ने बचपन में शस्त्र-शिक्षा दी थी, इसलिये अपने पंजे से उसकी मुट्ठी दबा वार खाली कर दिया। मेरी तलवार मुझसे बहुत दूर थी, मैं उसे उठा न सकी, नहीं तो मैं उसके यहीं टुकड़े कर डालती। वह अवसर पाकर भाग निकला और रात के अँधेरे में न जाने तेजी से किधर चला गया।

**महानन्द**—तो क्या वह तुम्हारे प्राण लेने आया था ?

**मुरा**—नहीं महाराज ! ऐसा तो अपनी रक्षा के लिए करना चाहता

था। मेरा ख्याल है वह आपके प्राण लेने आया था। उसने सोचा होगा महाराज मुरा के महल में सो रहे होंगे।

**महानन्द**—कौन है ऐसा शत्रु जो प्रहरियों की आँखों में धूल डाल महल के इस कक्ष तक आ पहुँचा ?

इस आकस्मिक घटना से महाराज भँवर की गहराइयों में गोते लगाने लगे ! मदिरा की घूंटों का मद तो पहले से ही छाया हुआ था। नेत्र और अधर भय एवं क्रोध से भीषण हो उठे। लड़खड़ाती हुई भाषा में उन्होंने कहा—‘महामात्य राक्षस को सचेत करो कि महाराज भेंट करना चाहते हैं। राजमहल में कोई चिंगारी चमक उठी है।’

कंचन और कामिनी की क्रीड़ा भी कितनी कोमल एवं कठोर होती है ! कहना कठिन है कि यह दुर्बलता है या विवशता, किन्तु यह सत्य है कि नारी फणि भी है और मणि भी। रूप में सुगन्ध भी है और बुद्धि पर प्रहार करने वाली काट भी। न जाने कितनी संयमी और कुशाग्र रूप के जालों में उलझ-उलझ कर मिट गये। कोई बिरला ही होता है जो रूप की तलवारों से बचता हुआ देश और जाति की रक्षा करता है। कूटनीतिज्ञ वही है जो नारी की कूटनीतियों से सुरक्षित है। राजपुरुष का जीवन भी कितने खतरों से भरा रहता है। विश्वास करना कितना भयानक है और विश्वास न करना कितना दुरूह है। अधिकार की आकांक्षा व्यक्तिगत जीवन की आहुतियाँ देती हुई आग के शोलों में खेलती है।

□□



अधिकार का अहम् विरोध और समर्थन की वीचियों से खेलता है। सन्तरण कभी प्रवाह के साथ तैरता और कभी लहरों के विपरीत बल लगाकर बढ़ता है। किनारे पर लगे वृक्ष को देख वह सोचता है, यह क्षण में डूब भी सकता है और यदि नदी दूर हट जाये तो जय-ध्वज की तरह फहरता भी रह सकता है। राजनीतिज्ञ की सफलता इसी में है कि वह खतरे की बाढ़ों को अपने से कोसों दूर हटाये रखे। जो राजपुरुष पानी को भी अग्नि समझ कर स्पर्श करता है वही अधिकार सुख भोगता है। असावधानी एवं अदूरदर्शिता से पुण्य भी पाप बन जाता है। राजा को राज्य की रक्षा के लिए खुली आँखों से सोना पड़ता है एवं मुँदी आँखों से जागना पड़ता है।

मगध की राजधानी पाटलिपुत्र के सुदृढ़ दुर्ग में महानन्द और राक्षस ने साथ ही साथ प्रवेश किया। महाराज और महामात्य के प्रवेश करते ही प्रहरियों ने राजकीय सम्मान से अभिवादन किया। कठोर अनुशासन से निस्तब्धता छा गई। ध्वनि यदि सुनाई देती थी तो केवल महाराज और महामात्य के पैरों मात्र की। उनके चलने से ऐसी आवाज होती थी कि पत्ते तक का हिलना शान्त था।

तलवारों की छाया में दोनों ने दुर्ग के गर्भ भाग में प्रवेश किया। यहाँ एक अदृष्ट कक्ष में पृथ्वी पर बिछे मखमली आसनों पर बैठते हुए महामात्य ने अंगरक्षकों की ओर सांकेतिक दृष्टि से देखा।

इंगित पाते ही अंगरक्षक हट गये। अंगरक्षकों के चले जाने पर महामात्य कुछ देर तो चुप बैठे रहे और फिर द्वार तक देखने आये कि कोई है तो नहीं।

विश्वास को दृढ़ करने के बाद महाराज से सटकर बैठते हुए महामात्य ने कहा—‘मगधाधिपति महाराज महानन्द की जय के लिए ही राक्षस जीवित है। मगध राज्य की सुरक्षा के लिए ही हमारे वक्ष तलवारों के सामने तने रहते हैं। इस राज्य की एक चुटकी धूलि भी यदि घटती है तो हमारी जिन्दगी के श्वास घटते हैं। हमारे लहू की अन्तिम बूँद भी यदि महाराज के काम आये तो हम स्वर्ग-सुख की

प्राप्ति मानेंगे। स्वामी और इस राज्य की रक्षा के लिए ही राक्षस की रगों में रक्त बहता है।’

‘आप देखते हैं न महाराज ! कितने कठोर काल में हम चल रहे हैं। राजपूताने में युद्ध ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। हमें वहाँ महाबलाधिकृत मौर्य को भेजना पड़ा। देश में छोटे-छोटे राजा बढ़ते जा रहे हैं। अयोध्या अपना अलग अस्तित्व बनाये हुए है। अवन्ती में अलग बाँसुरी बज रही है। स्वर्णगिरी, तोषली और तक्षशिला आये दिन छोटे-छोटे युद्धों में उलझे रहते हैं। लगता है तक्षशिलाधीश की आकांक्षा है कि मगध को अपने तीरों का लक्ष्य बनाये।’

‘यही नहीं, मालवा, पारस, सिन्धु तट दिन-प्रतिदिन अपनी शक्ति बढ़ाते जा रहे हैं। पर्वतीय प्रदेश भी मगध की छाती पर टूटने के लिए गिद्ध-दृष्टि से अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। चारों ओर से चिंगारियाँ छूटना चाहती हैं। पता नहीं कब मगध की छाती पर ज्वालामुखी फूट पड़े।’

‘और उधर विदेशी आक्रान्ता भी भारत की ओर बढ़ने को आकुल हैं। ऐसे भीषण काल में घर में शान्ति रहना अत्यन्त अनिवार्य है, महाराज ! घर के जब शत्रु हो जाते हैं तो रावण जैसे महाबली को भी पराजय और मृत्यु का ग्रास होना पड़ता है।’

‘यदि घर में शान्ति न रही तो ये दुर्ग की दीवारें हमारी रक्षा न कर सकेंगी। गंगा और शोण की गतिमान जल भी उस आग को न बुझा सकेगा जो गृह-कलह से धधक जायेगी।’

**महानन्द**—तो क्या मगध के महामात्य को अपनी बुद्धि और भुजाओं पर विश्वास नहीं रहा या कायरता के कारण साहस टूटता जा रहा है ?

**राक्षस**—न तो राक्षस का साहस टूटा है और न उसकी बुद्धि ने हार मानी है। पर उसे आस्तीन के साँप से डर है। दुर्ग की दीवारों के अन्दर ही यदि कोई चिंगारी चेत उठी तो सातों समुद्रों का जल भी उसे बुझाने में अपर्याप्त हो जायेगा। महाराज के राजमहल में इस प्रकार किसी दस्यु का घुस आना और सुरक्षित निकल जाना यह बताता है कि दुर्ग का कोई ऐसा द्वार भी है जहाँ मगधाधिपति की नहीं अपितु किसी शत्रु की आज्ञा चलती है।

**महानन्द**—इस आकस्मिक दुर्घटना से तो मुझे डर भी हुआ।



**राक्षस**—जान पड़ता है हमारी आँखों के सामने ही हमारा कोई शत्रु है और हम उसे अपना मित्र समझते हैं। ऐसे समय नारी का संग विष का काम करता है। आपकी प्रतिपल उठने वाली लालसाएँ लपटों का काम कर रही हैं, विलासिता की विभीषिका से वह धुआँ उठ रहा है जिसके पीछे भयंकर आग फैलती चली आ रही है। इधर आप स्वयं को भूले हुए हैं और उधर जनता आपको भूलती जा रही है। ऐसे ही अवसरों का दूसरे राज्य लाभ उठाते हैं।

चारों ओर तूफान—सा उठ रहा है, महाराज! छोटी-छोटी जातियाँ जागती जा रही हैं। हर व्यक्ति नया पंथ बनाने में लगा हुआ है। जितनी जातियाँ हैं उतने ही धर्म और उतने ही राज्य खड़े हो रहे हैं। वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, कम्बोज, मल्ल, वज्जि, काशी कहाँ तक कहूँ महाराज! कितने ही झण्डे उठ खड़े हुए हैं।

**महानन्द**—तो फिर क्या होगा? क्या करना चाहिए?

**राक्षस**—होगा तो वही जो हम करेंगे और करना वह चाहिए जिससे यह देश सुरक्षित रहे। पर देश की रक्षा के लिए राजा पर प्रजा का विश्वास बना रहना आवश्यक है। इसके लिए आप मेरा कहना मानिये, महाराज!

**महानन्द**—हम महामात्य राक्षस के अतिरिक्त और किसी की बात नहीं सुनते। कहो, तुम महानन्द से क्या चाहते हो?

**राक्षस**—क्रूरता त्याग दीजिए! कंचन, कामिनी और मदिरा की दासता से मुँह मोड़ लीजिए।

**महानन्द**—तुम जानते हो राक्षस! हमने कितनी बार तुम्हारे कहे बिना ही यह सोचा, पर वह सब उसी प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार किसी शव के साथ जाने वाले का वैराग्य घर लौटने पर समाप्त हो जाता है। एक बात और राक्षस! हमें क्रोध आ जाता है। हम राजा हैं, अहम् हमें सगे से सगे पर भी शासन की प्रेरणा देता है। यदि किसी समय अहंकार, क्रोध और विलासिता के मदालस में हम तुम पर नाराज हो जायें तो तुम हमसे नाराज न हो जाना।

कहते-कहते महानन्द का कण्ठ कुछ भर आया। कभी-कभी मनुष्य कितना दुर्बल हो जाता है! महानन्द के छलछलाते हुए नेत्र देख राक्षस ने कहा—कैसी बातें कर रहे हैं, वरेन्द्र! राक्षस सच्चा स्वामिभक्त है। उसके लिए राजभक्ति से भी बड़ी नन्द-भक्ति है।

**महानन्द**—तुम स्वयं को ही महानन्द समझो, मैं तुम्हारे शासन में सुख से सोता हूँ।

**राक्षस**—एक तुच्छ सेवक को इतना आदर न दीजिए, मगधाधिपति ! आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेंगे ?

**महानन्द**—यत्न अवश्य करूँगा।

**राक्षस**—संसार में अपराध पाप नहीं हैं, अपराध का प्रकट होना पाप है। बुराई उतनी बुरी नहीं जितनी यह बात बुरी है कि बुरे का पता चल जाये। कठोर से कठोर पाप भी यदि छिपाया जा सके तो मनुष्यों की पूजा हो सकती है।

**महानन्द**—तो फिर !

**राक्षस**—महाराज यह घोषित कर दें कि उन्होंने विलासिता छोड़ दी और वे एक साधु का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

**महानन्द**—लेकिन यह कैसे हो सकेगा ?

**राक्षस**—बुद्धि से सब कुछ हो सकता है। कल ही से गंगा-तट के निकट एक विशाल पूजा-प्रासाद का निर्माण शुरू करा दिया जाये। राज्य की ओर से घोषणा हो जाये कि महाराज पूजा-पाठ के लिए इस प्रासाद में रहेंगे। दुर्ग के गर्भ भाग से उस प्रासाद तक आने-जाने की राह हो। इस प्रासाद में कोई भी आपसे भेंट करने न जा सके। चारों ओर विश्वस्त किन्तु परिस्थिति से अपरिचित सैनिकों का पहरा रहे ! बस, आप प्रेम से पूजा करते रहें, राज्य की देखभाल मैं कर लूँगा। आवश्यकता पड़ने पर एक गुप्त संकेत द्वारा आप मुझसे और मैं आपसे मिल सकेंगे।

**महानन्द**—हम यह घोषणा कर देंगे, पर रानियों से यह भेद छिपा न रह सकेगा।

**राक्षस**—बुद्धि से सब कुछ छिपाया जा सकता है, महाराज ! शास्त्रकारों का मत है कि स्त्री से धूर्तता का व्यवहार करना चाहिए। परिस्थिति ऐसी पैदा कर दो कि एक रानी दूसरी रानी से घृणा करने लगे। न तो माधवी मुरा को देख सके और बातचीत कर सके तथा न मुरा माधवी को देखना चाहे, और प्रत्येक रानी यह समझती रहे कि महाराज का पूरा प्रेम मुझ पर न्यौछावर है। यह रहस्य रानियों पर भी न प्रकट होने पाये कि महाराज की यह पूजा कृत्रिम है। पूजा में क्रमानुसार रानियों का शामिल होना भी आवश्यक है। पूजा के आवरण में आप



अपनी वासना छिपा लेंगे और इधर मैं इस देश को सुरक्षित तथा राज्य को दृढ़ कर लूँगा, इतना दृढ़ कि न तो इस राज्य में किसी की आँख में आँसू दिखाई देगा और न इसका कोई शत्रु जीवित रहेगा। युगों के लिए सुरक्षा का एक दृढ़ प्राचीर बन जायेगा।

**महानन्द**—तुम कितने चतुर हो, राक्षस! तुम्हारी शक्ति के भरोसे ही तो हम निश्चिन्त रहते हैं। तुम्हारी इच्छानुसार हम कल से साधु-जीवन की घोषणा कर देंगे और यत्न भी करेंगे कि भौंरे से हंस बन जायें।

**राक्षस**—अच्छा, तो अब आप विश्राम करें। मुझे दूसरे कक्ष में अमात्य कात्यायन से कुछ बातें करनी हैं।

**महानन्द**—कात्यायन को तो हमने पदच्युत कर दिया था। वह शकटार का सखा था न! उसने हमारे विरुद्ध प्रच्छन्न रूप से आग भड़काने की कौशिश की थी। हमने अपने कानों से सुना था, वह हमारी बड़ी रानी से कह रहा था 'महाराज आये दिन कंचन, कामिनी और मदिरा में राजकोष लुटाते रहते हैं। दुर्ग के अन्दर यह चर्चा फैलती जा रही है कि शीघ्र ही महाराज कश्मीर की एक सुन्दरी से और विवाह करने वाले हैं।'

**राक्षस**—यह विरोध तो नहीं था महाराज! यह तो हित था। कभी-कभी मनुष्य व्यर्थ ही अपने क्रोध से अपने सगे को शत्रु बना डालता है। ऐसे आपत्तिकाल में कात्यायन जैसे समझदार अमात्य को पदच्युत करना आस्तीन का साँप पालना होगा, इसीलिए तो आपका वह आज्ञा-पत्र मैंने कात्यायन को नहीं दिया। कात्यायन को अपना बनाये रखने में ही कल्याण है।

**महानन्द**—कात्यायन से कल्याण की आशा मुझे नहीं, वह स्वार्थी और धूर्त ऊपर से मीठा बना रहता है पर अन्दर से बड़ा काला है। उस लालची को हमारी सम्मति में कठोर दण्ड देना चाहिए।

**राक्षस**—जब दण्ड की आवश्यकता होगी तब दण्ड देंगे, अभी उससे प्रेम करने की आवश्यकता है। आज तो नन्द राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक यह है कि किसी शत्रु को भी यह पता न चले कि तेरे लिए महानन्द के हृदय में शत्रुता है।

**महानन्द**—यदि तुम ऐसा समझते हो तो मुझे यह भी स्वीकार है। जब तुम मेरे लिए धधकती हुई ज्वाला में हाथ डाल सकते हो तो मैं वह

आज्ञा-पत्र फाड़ने में संकोच कैसे कर सकता हूँ !

**राक्षस**—सामूहिक हित के लिए व्यक्तिगत शत्रुता भूलनी पड़ती है। हो सकता है कि कात्यायन आपकी इच्छा के विरुद्ध चलता हो, पर अभी तक वह आपके राज्य के विरुद्ध नहीं और आपके राज्य के विरोध में न होना आपके हित में होना है।

**महानन्द**—हमारा सच्चा हितैषी संसार में यदि कोई है तो वह है महामात्य राक्षस, जिसकी रक्षा में मगधाधिपति सुख से सोता है।

**राक्षस**—तो आप जाइये और सुख से विश्राम कीजिये !

महाराज विश्राम के लिए चले गये, राक्षस अपने कार्यालय में आ गये। कार्यालय में महामात्य ने कुछ आवश्यक कागजों पर हस्ताक्षर किये, विशेष अधिकारियों को आदेश लिखवाये और फिर द्वारपाल को बुलाकर कहा—‘जाओ, अमात्य कात्यायन से कहो कि महामात्य ने आपको स्मरण किया है।’

आज्ञा पाकर द्वारपाल चला गया और राक्षस मगध राज्य का चित्र देखने लगे। चित्र देखते-देखते वे आप ही आप बोले—‘राक्षस के होते हुए किसकी शक्ति है कि जो मगध राज्य की एक पैर भूमि भी ले सके !’

महामात्य यह सोच ही रह थे कि अभिवादन करते हुए कात्यायन पधारे। उन्हें देखते ही महामात्य आदर से उठे और प्रेम से आसन दिया। जब दोनों बैठ गये तो राक्षस ने कहा—कात्यायन ! हमने तुम्हें इस समय एक विशेष हर्ष का समाचार सुनाने के लिए बुलाया है।

**कात्यायन**—शीघ्र सुनाइये, महामात्य !

**राक्षस**—महाराज ने विलासिता छोड़ साधु-जीवन व्यतीत करने की घोषणा की है। उनके लिए गङ्गा-तट के सामने एक पूजा-प्रासाद का निर्माण कराया जायेगा, जहाँ महाराज ईश्वरोपासना किया करेंगे। उन्होंने सारे व्यसन छोड़ दिये हैं।

**कात्यायन**—यह तो बड़े हर्ष का समाचार है महामात्य ! इस सूचना से तो पतझड़ में वसन्त आ गया है, वरेण्य !

**राक्षस**—रात के बाद दिन भी निकलता ही है। पतझड़ के बाद वसन्त भी आता है। इसी प्रकार हमारे महाराज भी बदल रहे हैं।

**कात्यायन**—बदल जायें तो इस अँधेरे राज्य में उजाला हो जाये।



महाराज बदल जायेंगे तो भारतवर्ष के दिन बदल जायेंगे।

**राक्षस**—तुम्हारे जैसे सुयोग्य अमात्य के होते हुए भारतवर्ष के दिन क्यों नहीं बदलेंगे! मगध के सूर्य का प्रकाश किससे रुक सकता है! कात्यायन, तुम हमारे दाहिने हाथ हो।

**कात्यायन**—यह तो महामात्य की कृपा है।

**राक्षस**—कृपा महामात्य की नहीं, तुम्हारे बहुमूल्य गुणों की है। तुम जैसा गुणी हमारा गर्व है! अच्छा कात्यायन! अब वह बताओ कि मगध राज्य शत्रुओं से किस प्रकार सुरक्षित किया जाए, कैसे शान्ति स्थापित हो और कैसे राज्य का विस्तार किया जाये?

**कात्यायन**—बाहर के शत्रुओं से पहले घर की आग बुझानी आवश्यक है महामात्य! हमारे घर में हमारे शत्रु बहुत पैदा हो गये हैं।

**राक्षस**—कारण?

**कात्यायन**—महाराज की क्रूरता और उनकी मदान्धता के कारण राजकर्मचारी रुष्ट रहते हैं। बिना सोचे-समझे ही महाराज जिसको चाहे जो दण्ड दे डालते हैं।

**राक्षस**—पर उनका मन बहुत कोमल है। मैंने उनकी आँखों में दुखी के लिए आँसू देखे हैं। किसी को कष्ट देकर वे पश्चात्ताप करते हैं। आशा की जाती है कि भविष्य में वे भूल से भी रुष्ट नहीं होंगे। देखो समादृत! महाराज को पश्चात्ताप हुआ है, तभी तो वे साधु-जीवन व्यतीत करने को उद्यत हुए। बड़े भावुक भी हैं मगधाधिपति! उनमें समुद्र का ज्वार है तो उसकी मर्यादा भी है।

**कात्यायन**—अब देखिये न, ब्राह्मण चणक का वध करके उन्होंने कितनों को विरुद्ध कर लिया! अंगरक्षक अवन्त को बिना किसी बात ही आजन्म कारावास का दण्ड दे दिया और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली।

**राक्षस**—सचमुच महाराज क्रोध में आगा-पीछा कुछ नहीं सोचते। अवन्त जैसे हितैषी अंगरक्षक को उन्होंने दण्ड देकर उचित नहीं किया। मैंने भी महाराज से अवन्त को क्षमा करने की प्रार्थना की, पर वे कहने लगे कि जो व्यक्ति हमारी रानी माधवी पर बुरी दृष्टि डाले और उसे फुसलाकर अपनी रानी बनाना चाहे उसे हम क्षमा नहीं कर सकते। वे तो मृत्यु-दण्ड देना चाहते थे, पर मेरी बड़ी प्रार्थनाओं पर उन्होंने दण्ड

केवल कारावास तक ही सीमित रखा।

**कात्यायन**—क्या यह सच है महामात्य ! अवन्त तो बड़ा चरित्रवान् सेवक था।

**राक्षस**—तुम तो जानते हो कात्यायन ! सुन्दर नारी को देखकर विश्वामित्र तक की नीयत बिगड़ गई थी। स्त्री मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है। हो सकता है किसी समय अवन्त के मन में कोई बात आई हो और होनी ने यह कठोर प्रहार कर डाला हो ! महानन्द क्रोधी और सन्देहात्मक प्रवृत्ति के तो हैं ही, उन्हें क्रोध आ गया और अवन्त को दण्ड दे डाला। खैर, अवसर पाकर यत्न करेंगे कि महाराज अवन्त को मुक्त कर दें।

**कात्यायन**—किन्तु शकटार जैसे देशभक्त को कारावास का कठोर दण्ड देकर क्या महाराज ने मगध राज्य की जनता का हृदय नहीं कुचला ? शकटार के कुशल नेतृत्व में हम सब सुरक्षित थे। बड़े-बड़े राजा कल तक जिसके पैरों की धूलि मस्तक से लगाते थे, आज वह अपनों ही के हाथों कारागृह में सड़ाया जा रहा है।

**राक्षस**—महामात्य शकटार के बन्दी होने का मुझे भी दुःख है, पर किया क्या जाये ! महाराज अपनी हठ के पक्के हैं। उनकी कठोर करतूतों के कारण ही मगध राज्य की जड़ें हिल गईं। जो कुछ हो चुका उसे सम्भालने की कोशिश करो ! विनाश की दुर्द्धर ज्वाला से इस राज्य की रक्षा अब तुम्हारे हाथ है।

**कात्यायन**—आप इतनी चिन्ता न करें। किसका बल है कि जो मगध राज्य का बाल भी बाँका कर सके। एक मेरी प्रार्थना है महामात्य ! किसी प्रकार शकटार को मुक्त करके उन्हें फिर से राज-दरबार में आसन देने की कृपा की जाये तो हमारे हाथ और भी मजबूत हो जायें। निस्सन्देह परमगुणी शकटार का प्रभाव सारे राज्य में है।

**राक्षस**—अवसर आने दो, यह भी करूँगा। वैसे बन्दीगृह में शकटार को हर प्रकार की सुविधा है। उनके परिवार को अब भी वे सुख प्राप्त हैं जो शकटार के महामन्त्री होते हुए थे।

**कात्यायन**—यह कैसे हो सकते हैं महामात्य ! सोने का पिंजरा भी पिंजरा ही होता है।

**राक्षस**—सूर्य और चन्द्रमा पर भी कभी ग्रहण आता है। वह दिन धन्य होगा जिस दिन शकटार महानन्द के कठोर कारावास से मुक्त



होंगे।

**कात्यायन**—आपकी आकांक्षा है तो अवश्य शीघ्र ही शकटार पुनः मन्त्रिमंडल में होंगे।

**राक्षस**—कात्यायन! महाराज के महल में सुरक्षा की बहुत अधिक आवश्यकता हो गई है। आश्चर्य है कि पहरेदारों के होते हुए भी कौन महल में घुस कर गायब हो गया।

**कात्यायन**—यह शत्रु कोई निकट का ही जान पड़ता है। मेरा विचार है कि महाराज के अन्य नन्द भाइयों ने कोई गुप्त षड्यन्त्र रच महाराज को कत्ल कर राज्य के उत्तराधिकारी बनने की भावना से किसी हत्यारे को भेजा था।

**राक्षस**—बात तो मेरे मस्तिष्क में भी बार-बार यह टकराती है। करना क्या चाहिये ?

**कात्यायन**—महल में कठोर से कठोर पहरा लगा दिया जाये और उन पहरेदारों में ही गुप्तचर छोड़ जायें।

**राक्षस**—अच्छा, महल की सुरक्षा का भार भी तुम्हारे ऊपर छोड़ते हैं।

**कात्यायन**—मुझे आपत्ति तो नहीं, पर यदि कोई दुर्घटना हो गई तो निर्दोष होता हुआ भी दोषी ठहरा कर कहीं कठोर राज-दण्ड का भागी न ठहराया जाऊँ!

**राक्षस**—तुम्हें महानन्द पर नहीं तो क्या राक्षस पर भी विश्वास नहीं है ?

**कात्यायन**—आपके प्रेम ने ही तो विद्रोह के तूफान को बाँध रखा है महामात्य ! मुझे अपने पर अविश्वास हो सकता है, पर मगध के अद्भुत महामात्य पर नहीं।

**राक्षस**—तो फिर अपने आपको मगध राज्य से पराया न समझकर ही उठते हुए तूफान का मुँह उधर मोड़ दो जिधर से वह उठता आ रहा है।

**कात्यायन**—आपकी कृपा से हर आततायी मगध के नाम से थर्राता है।

**राक्षस**—बाहर के शत्रु से रक्षा करने के लिए घर की दीवारों का मजबूत होना आवश्यक है। बिखरे हुए राज्य एक झण्डे के नीचे आने

चाहियें। सिंधुपति ने हमारे पत्र का उत्तर दिया ?

**कात्यायन**—वे हमारे साथ वैदेशिक मामलों में संधि करने को तैयार हैं। उन्होंने उत्तर में लिखा है कि इस देश पर यदि कोई विदेशी आक्रमण करेगा, अगर सुख और शान्ति से बैठे हुए राष्ट्र पर कोई नृशंस अपनी राज्य लिप्सा के कारण कदम बढ़ायेगा तो हमारी शक्ति मगध के झण्डे के साथ रहकर ही धरती की रक्षा करेगी।

**राक्षस**—और कुलूताधिपति का क्या उत्तर है ?

**कात्यायन**—उनका उत्तर है कि 'यदि बातचीत होने के बाद हमारी और आपकी शर्तें तय हो गईं तो हम आपका साथ देंगे। इसके लिए महामात्य राक्षस हमें भेंट करने पधार सकते हैं।'।

**राक्षस**—इसका अर्थ यह है कि उसे अपने बल का बड़ा भारी घमण्ड है। कात्यायन ! तुम तुरन्त एक पत्र कुलूताधिपति को लिखो। पत्र की भाषा अत्यन्त विनीत हो। उसमें विनय करो कि महामात्य राक्षस बीमार होने के कारण आपके वैभवशाली राज्य में आ सकने में समर्थ नहीं। अतः आप कृपा करके पधारें ! हमें आपका भारी भरोसा है और हम आपकी हर बात मानने की इच्छा रखते हैं।

**कात्यायन**—और पंचनद प्रदेश का राजा भी हम में मिलना नहीं चाहता, अपनी शक्ति का प्रभाव समस्त देश पर डालना चाहता है। वह मालव और तक्षशिला से मिलकर पूर्व की ओर बढ़ने को उत्सुक है। उसे अपनी वीरता और बल का बड़ा घमण्ड है।

**राक्षस**—यह एक विषैला काँटा है। इसे निकालने के लिए शस्त्र या छल-चिकित्सा की आवश्यकता होगी।

**कात्यायन**—वह बुद्धिमान् भी है और वीर भी, उसे जीतना सरल नहीं।

**राक्षस**—हम लोहे के चने चबाने के अभ्यासी हैं चतुर ! हमारे पास भस्म करने के लिए आग भी है और आग बुझाने के लिए जल भी। अच्छा, हम इस सम्बन्ध में विचार करेंगे। अब तुम जाओ और जैसे भी हो मगध की महानता अक्षुण्ण करने में लगे रहो।

**कात्यायन**—उठते हुए तूफान में जिस तरह कितने ही तिनके उड़कर नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार मगध की महाशक्ति के सामने किसकी ताकत है जो सिर उठा सकेगा ! हमारी सेना अजेय है, हमारा



संगठन अपराजित है, हमारी नीति विश्व के विकास की नीति है।

**राक्षस**—यदि यह दृढ़ विश्वास है तो हमारी जय भी अक्षय है।

बातचीत के ताने-बाने फैलते रहे। कात्यायन अपने कक्ष में और महामात्य अपने महल में चले गये। राक्षस रात-दिन, सोते-उठते, खाते-पीते हर समय महानन्द की चिन्ता एवं मगध की भलाई में व्यस्त रहने लगे।

मनुष्य सामूहिक कार्यों में चाहे कितना भी व्यस्त क्यों न हो, पर उसकी व्यक्तिगत भावनाएँ भी समय-समय पर जाग उठती हैं। टहलते-टहलते राक्षस का हृदय आशा से भर उठा और वे चल पड़े। शरद्-पूर्णिमा की यामिनी में जब चाँद-चाँदी लुटा रहा था तो राक्षस उस महल में पहुँचे जिसमें बन्दी शकटार का परिवार निवास कर रहा था। दूर से ही सुवासिनी ने आते हुए राक्षस को देखा और मुँह फेर कर बैठ गई।

प्रणय की प्यास में मनुष्य मान-अपमान को भूल जाता है। भावुकता में नत राक्षस सुवासिनी के निकट आकर खड़े हो गये। उन्होंने पल भर प्रतीक्षा के बाद पूछा—तुम्हारी माता कहाँ हैं, सुवासिनी!

**सुवासिनी**—दो दिन से बीमार हैं।

**राक्षस**—तुमने तुरन्त हमें सूचना क्यों नहीं दी?

**सुवासिनी**—उन्हें आपकी सूरत से घृणा है।

**राक्षस**—क्या तुम भी मुझसे घृणा करती हो?

**सुवासिनी**—ब्राह्मण की हत्या करने वाले से कौन घृणा नहीं करेगा! आपने मगध के महामात्य-पद के लिए इस देश के प्राण हमारे देवता स्वरूप पूज्य पिता को कारावास में डाल रखा है और फिर भी मुझसे पूछ रहे हो कि क्या तुम मुझसे घृणा करती हो!

**राक्षस**—अनजाने में अयोध्या की जनता एक बार सीता से भी घृणा कर बैठी थी। मैंने मगध राज्य की सुरक्षा के अतिरिक्त और कोई अपराध नहीं किया। शकटार मेरे पूज्य हैं, समय आने पर तुम भी यह समझने लगोगी।

**सुवासिनी**—आपकी बातों में जितना मिठास होता है, हृदय में उतना ही विष है।

**राक्षस**—यदि मेरे हृदय में गरल है तो यह वही गरल है जो

देवताओं की रक्षा के लिए शिव के कण्ठ में समाया हुआ है।

**सुवासिनी**—मगध के महामात्य की भाषा कुछ और भाव कुछ न हों तो उनका स्थान संन्यासियों में हो सकता है।

**राक्षस**—मुझे संन्यासी बनने की चाह नहीं, मैं मनुष्य हूँ और मनुष्य ही रहना चाहता हूँ। मुझे देवलोक में जाने की कामना नहीं है, कामना है तो यह कि धरती पर वे सब सुख हों जिनको देखकर देवता भी ललचाने लगें।

राक्षस के मुँह से अन्तिम वाक्य निकला ही था कि महानन्द के महल में चारों ओर से थालियाँ बजने की आवाज आई और क्षण भर में ही महामात्य के कानों में यह शुभ सन्देश आ पहुँचा कि महाराज की छोटी रानी मुरा ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया है।

पूर्णिमा की खिली हुई चाँदनी में यह समाचार सुनकर पीड़ा की साक्षात् प्रतिमा सुवासिनी भी खिल उठी। वह प्रसन्नता से उछलती हुई वहाँ आई जहाँ रुग्ण-शैया पर माँ पड़ी कराह रही थी। सुवासिनी ने भावावेश में यह सूचना माँ को सुनाई। सुनकर माँ ने तुतलाती हुई सी वाणी में कहा—“अच्छा हुआ।”

माँ की वाणी में कम्पन और मुख पर एकदम पीलापन देख सुवासिनी घबरा उठी। उसने चीख कर पुकारा, ‘महामात्य!’

चीख सुनकर महामात्य वहाँ आये। उन्होंने पल भर ही पहले सुवासिनी की माँ और सुवासिनी को देखा। राक्षस के देखने में निराशा थी।

सुवासिनी एकदम घबरा उठी। वह ‘माँ!’ कहती हुई माँ की खाट के पास बैठ गई और खोयी हुई सी बोली—महामात्य! यह माँ को क्या हो रहा है?

राक्षस ने उँगली से अपनी आँखों के अन्दर का पानी सुखाते हुए कहा—‘वही जो एक दिन संसार में सबको होता है।’

सुवासिनी रो पड़ी। करवट पर श्वासें लेती हुई माँ ने अपनी फटी हुई आँखों से उसकी ओर देखा। उसने काँपते हुए हाथ ऊपर उठा बेटी को छाती से लगाना चाहा, पर हाथ कुछ ही ऊपर उठकर नीचे गिर पड़े। उनके मुँह की दशा पल-पल बिगड़ने लगी। ताप की तीव्रता में वे बड़बड़ाती हुई न जाने क्या-क्या कहने लगी—‘तुम कहाँ हो? मैं



कहाँ हूँ ? ठहरो, मैं तुम्हारे पास आती हूँ। मेरे स्वामी ! मेरे बच्चो ! इस राज्य ने तुम्हें खा लिया। यह राज्य नहीं, पिशाचों का खेड़ा है। स्वामी ! तुम कारा में हो और मैं अब वहाँ जा रही हूँ जहाँ से लौटकर कोई नहीं आता। तो मेरी सुवासिनी का क्या होगा ? वही जो हर अनाथ बच्चे का होता है। वह बहुत पढ़ना चाहती है। उसकी इच्छा उच्च शिक्षा प्राप्त करने की है। उसे कौन पढ़ायेगा ? जिसके सिर से माता-पिता की छाया उठ जाती है, उसे दूसरा कौन छाया देता है !'

माँ इसी प्रकार बड़बड़ा रही थी कि तड़पती हुई सुवासिनी ने अपना हाथ माँ के मुँह पर रख दिया।

मृत्यु का समय भी कितना करुण होता है ! पत्थर से पत्थर भी फूट पड़ता है। राक्षस की आँखों से आँसू बह निकले।

पर आँसुओं से क्या मृत्यु मानती है ! एक भूचाल-जैसा झटका लगा और दीपिका बुझ गई। चाँदनी रात में मृत्यु के शोक ने अँधेरी तान दी।

सुवासिनी ने शोक और घृणा से राक्षस की ओर देखा। वह कुछ कहना चाहती थी, पर उनका आँसुओं से भीगा मुँह देखकर उसके मुँह से शब्द न निकले।

खेल खत्म हो गया। बन्दीगृह में आकाश से टूटते हुए तारे को देखते हुए शकटार के कानों ने भी यह हृदय-विदारक समाचार सुना। वे पत्थर को भी फोड़ देने वाली एक दारुण आह भर कर बैठ गये। कुछ पलों के लिए वे जड़वत् हो गये। किन्तु फिर एकदम उठकर खड़े हुए और आप ही आप कहने लगे—'आँसुओं को पत्थर पर तोड़कर नष्ट करना व्यर्थ है। मैं इन आँसुओं के सिन्धु में उस अत्याचारी राजा को डुबाने के लिए जीवित रहूँगा जिसने परम प्रतापी ब्राह्मण चणक का ब्रह्मत्व छीन उसे वध किया है, जिसने मेरे बच्चों को डस लिया, जिसने वैजयन्ती की हत्या की है।'

'ब्राह्मण और स्त्री के हत्यारे ! चाँद और सूरज की दमकती-ढलती दुनिया में एक दिन वह भी आयेगा ही जब तुझे अपने पापों का फल भोगना पड़ेगा।'

'चाहे सब मर जायें, लेकिन मैं जीवित रहूँगा। नन्द का नाश किये बिना मैं नहीं मरूँगा। जब तक नन्द का नाश नहीं होगा तब तक मैं

केवल सत्तू खाकर जीवित रहूँगा।'

शकटार जीवन और मरण का चित्र देख ही रहे थे कि बन्दीगृह के दरवाजे खुले। बन्दी ने देखा कि आँखें झुकाये राक्षस उनके सामने खड़ा है। उन्होंने यह भी देखा कि उनके आँसू निकल कर पृथ्वी पर गिर रहे हैं, उनके रोने में हृदय का सत्य है, उनकी वेदना में प्रदर्शन नहीं आत्मीयता है।

राक्षस को रोते देख शोकाकुल शकटार ने कहा—यह क्या राक्षस! तुम्हारी आँखों में आँसू! ज्वालामुखी से जल निकल रहा है! रोओ मत राक्षस! हमारे लिए थोड़ा विष और ले आओ!

**राक्षस**—लज्जित न करो! विश्वास तो नहीं दिला सकता, लेकिन सूरज पर जब बादल आ जाते हैं तो अँधेरा प्रतीत होने लगता है। खैर, यह समय इन बातों का नहीं। आपकी पत्नी के दाह-संस्कार के लिए मैं आपको लेने आया हूँ।

पहले तो शकटार मौन हो गये पर फिर तुरन्त बोले—'जीवित को तो तुमने अलग कर दिया, मृतक से मिलाने आये हो! चलो, चलते हैं।'

शकटार राक्षस के साथ चल दिये। प्रातः जब सूर्य सृष्टि के तन से शयन की चादर उतार रहे थे तभी शकटार ने शोण-तट पर चिता के समीप पत्नी का शव रखा और मुँह से कफन हटाकर जिन्दगी की एक कहानी को देखा। 'आज अन्तिम दर्शन है, अब कभी तुम्हारे दर्शन नहीं होंगे। अच्छा हुआ देवि! महाराज महानन्द के वैभव-सुख से तो मृत्यु अच्छी है। पता नहीं हमें कब तक सर्प के मुँह में जीना पड़ेगा।'

जन्म, जीवन, मृत्यु, दुःख-सुख की एक अद्भुत कहानी! कितना विरोध कितनी करुणा है श्वासों में! सबका अस्तित्व अंगारों पर दमकता है। न जाने कब से मृत्यु और जीवन का संघर्ष चला आ रहा है। कौन है वह जिसका अहम् चिता पर भस्म नहीं हुआ। कौन है वह जिसे यह संसार भूल नहीं जाता! शायद स्वप्न और प्रत्यक्ष में कोई अन्तर नहीं है।

आँखों में आँसू, मुट्ठी में राख और बुद्धि में दर्शन दोहराते हुए शकटार फिर बन्दीगृह में आ गये।

□□



अधिकारी को विश्राम के क्षणों में भी व्यस्तता घेरे रहती है। नियामक को नींद में भी विचार जगाते रहते हैं। व्यस्तता की अस्तव्यस्तता को वही जानता है जो व्यवस्था बनाये रखता है। जीवन जितना अधिकारपूर्ण होता है व्यक्ति उतना ही अधिक भारवाहक होता है।

दिन भर के राज-कार्य से थककर महामात्य राक्षस अभी पलंग पर लेटे ही थे कि द्वारपाल ने आकर कहा—अमात्य कात्यायन पधार रहे हैं।

राक्षस पलंग से उठे और द्वार की ओर कात्यायन को लेने चल पड़े। दो-चार कदम ही चले होंगे कि कात्यायन सामने से आ गये। उनके मुख से प्रसन्नता की फुहारें उड़ रही थीं।

राक्षस प्रेम से कात्यायन को अतिथि-कक्ष में ले आये। बैठने से पूर्व ही महामात्य ने कहा—जान पड़ता है कोई बड़ा हर्ष है।

बैठते हुए कात्यायन ने कहा—हाँ महामात्य! राजपूताने में हमारी विजय हुई। मौर्य सेनापति के पराक्रम के समक्ष उन गर्वीलों की पराजय हुई।

**राक्षस**—इस हर्ष में एक महान् राजकीय उत्सव हो और सेनापति मौर्य को 'सुभट शिरोमणि' के गौरव से सम्मानित किया जाये।

**कात्यायन**—एक शुभ सूचना और महामात्य! कुलूताधिपति आपसे भेंट करने पधार रहे हैं।

**राक्षस**—यह दूसरी जीत है कात्यायन! कुलूताधिपति के पधारने पर मगध में उनका भव्य स्वागत हो।

**कात्यायन**—मौर्य सेनापति का अभिनन्दन एवं कुलूताधिपति का स्वागत एक ही साथ हो तो कैसा रहे?

**राक्षस**—मैं भी तुमसे यही कहने वाला था। और देखो, बातें जो कुलूताधिपति से होंगी, वे स्वागत-समारोह के बाद गुप्त मन्त्रणालय में होंगी, बहुत सतर्कता से।

**कात्यायन**—मैं इस ओर से सावधान हूँ, महामात्य!

**राक्षस**—विश्वास होता जा रहा है कि शीघ्र ही मगध के झण्डे

के नीचे भारतवर्ष के सारे राज्य आ जायेंगे।

**कात्यायन**—लेकिन घर की आग भयंकर है महामात्य ! महाराज के चचेरे भाई सर्वार्थसिद्धि की भावनाएँ अच्छी नहीं हैं। उनके आठों पुत्र बड़े ही क्रूर, कपटी और विलासी हैं। यह दृढ़ राज्य घर की आग से खतरे में है।

**राक्षस**—सर्वार्थसिद्धि स्वयम् तो इतना भयानक नहीं जितने कि उसके पुत्र। फिर भी उसे अपना बनाये रखने के लिए ही हमने उसे जीते हुए उत्तरीय प्रदेशों का प्रतिनिधि राजा बना रखा है।

**कात्यायन**—उस ओर से आँखें बन्द नहीं रहनी चाहियें। हो सकता है अवसर पाकर सगे शत्रु बन जायें।

**राक्षस**—तुम्हारे लोहे के सामने किसका साहस है कि जो आँख उठा सके ! कुलूतापधिपति किस दिन पधार रहे हैं ?

**कात्यायन**—कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को।

**राक्षस**—बहुत शुभ ! ज्योत्स्ना की चाँदी लुटाती हुई उस रात और उत्सव के जलते हुए दीपकों से अवश्य ही इस घर का अँधेरा दूर होगा।

**कात्यायन**—अच्छा, मैं चलता हूँ महामात्य ! मौर्य सेनापति के दाहिने वक्ष के निचले भाग में लड़ते-लड़ते घाव हो गया है, उन्हें देखता हुआ जाऊँगा।

**राक्षस**—मन नहीं चाहता कि तुम किसी भी समय मुझसे दूर रहो, पर तुम्हारी व्यस्तता मुझे विवश करती है। जाओ !

कात्यायन चले गये और राक्षस फिर पलंग पर लेट गये। पड़े ही पड़े वे सोचने लगे—‘राजनीति में मनुष्य सो जाता है, पर उसका मस्तिष्क नहीं सोता। कितने दिन बीत गये, कितनी रातें बीतीं, पर क्या विश्राम कर सका ! वैभव से भरे इस विशाल राज्य का मैं महामात्य हूँ, किन्तु कितनी करुण है यह महानता ! विधुर की वेदना से भी कहीं अधिक। आह ! जिसके इंगित पर मगध राज्य का पत्ता हिलता है, सुवासिनी उससे घृणा करती है। हृदय कहता है कि तेरी यह हार हर जीत से बड़ी है। सुवासिनी हमें हत्यारा समझती है ! संसार में कभी-कभी निर्दोष भी दोषी समझा जाता है। न जाने क्यों मैं सुवासिनी की ओर खिंचा जा रहा हूँ ! मैं जितना ही उसकी ओर बढ़ता हूँ उतना ही वह मुझसे दूर हटती है।’



सोचते-सोचते राक्षस सो गये। नींद के वेग में वे सोते तो रहे पर भोर से पूर्व ही उनकी नींद ऐसे टूट गई जैसे किसी डरावने स्वप्न के झटके से मनुष्य चौंक उठता है।

राक्षस स्वयं को झँझोड़ते हुए उठ खड़े हुए। उनसे न रहा गया। वे सुवासिनी के कक्ष में पहुँचे। उन्होंने देखा कि सुवासिनी रो रही है। राक्षस ने सहानुभूति भरे शब्दों में कहा—रो क्यों रही हो सुवासिनी।

**सुवासिनी**—जिसके भाई मर चुके हों, माँ ने पति के होते हुए तड़प-तड़प कर प्राण त्यागे हों और जिसका पिता, वह पिता जो मगध का महामात्य था, बन्दीगृह में बुढ़ापे के श्वास ले रहा हो, उसके लिए रोना नहीं तो और क्या शेष है!

**राक्षस**—संसार में रोता हर मनुष्य है, पर कोई ऊपर की आँखों से रोता है और कोई अन्तर की आँखों में आँसू रोके रहता है। भूल जाओ सुवासिनी! बीती बातों को भूल जाओ।

**सुवासिनी**—कहना जितना सरल है, क्या भूलना भी उतना सरल होता है? तुम्हारी बातों में मरहम! नहीं-नहीं, तुम्हारे मरहम में से मुझे विष की गन्ध आ रही है। दूर हट जाओ तुम मेरी आँखों से, नहीं तो मैं दीवारों में अपना सिर फोड़-फोड़ कर मर जाऊँगी।

सुवासिनी ने जो कुछ कहा उसे पीते हुए उमड़ते हृदय से राक्षस बोले—क्या तुम्हें किसी भी तरह मुझ पर विश्वास नहीं हो सकता?

**सुवासिनी**—मैं कह चुकी हूँ, मुझे तुमसे घृणा है।

**राक्षस**—लेकिन मैं तो तुमसे प्रेम करता हूँ।

**सुवासिनी**—पापी कहीं के! क्या तूने मुझे इसीलिए इस दशा में डाला है कि तेरे हृदय का पाप अपनी मनमानी करे?

**राक्षस**—प्रेम को पाप मत कहो, सुवासिनी!

**सुवासिनी**—मैंने जो कुछ कहा है वह बहुत कम है। यदि मेरे हाथ में तलवार होती तो शकटार की पवित्र पुत्री तेरे जैसे पापी का सिर काट डालती।

‘तुम्हारे पास यदि तलवार नहीं है तो मेरे पास कटार है। लो यह कटार और काट डालो उस पापी का सिर जिसे कत्ल करने के लिए तुम्हारे हाथ मचल रहे हैं।’ राक्षस ने कटि से कटार निकाल कर सुवासिनी की ओर फेंकते हुए कहा।

सुवासिनी ने भभकते हुए हृदय से और मचलते हुए हाथों से कटार उठा ली और गर्जती हुई बोली—चला जा यहाँ से, नहीं तो प्राण ले लूँगी।

**राक्षस**—प्राण ले लो, पर प्रणय-दान दे दो! मैं तुमसे परिणय की आकांक्षा रखता हूँ।

सुवासिनी का क्रोध और भी उबल उठा। वह सिंहनी-सी हुँकार उठी। उसने म्यान से कटार खींच ली और झपट कर कटार वाला हाथ वक्ष की ओर बढ़ा दिया।

कटार वाला हाथ जितनी तेजी से उठा था आगे बढ़ते ही उसकी गति उतनी ही धीमी हो गई। कटार की नोक राक्षस के वक्ष पर आकर इस तरह रुक गई जिस तरह आँधी से टूटा हुआ फूल पृथ्वी पर रुक जाता है।

कटार छोड़कर हाथ पीछे हट गया। कटार सीने से राक्षस के पंजे पर गिरी और पैर में हल्का-सा घाव हो गया।

पंजे में साधारण-सी गड़ी हुई कटार राक्षस ने खींची और उसे आत्महत्या के लिए तानते हुए बोला—‘ईश्वर नहीं चाहता कि कामिनी के मृदुल हाथ हत्यारे हों और तुम यह भी नहीं चाहती कि जो तुम्हें प्राणों से भी अधिक चाहता है उस राक्षस की जीवन-संगिनी बन जाऊँ। तो फिर अब हम जी कर क्या करेंगे! हमारी संसार में दो ही इच्छाएँ थीं, राजभक्ति और सुवासिनी से विवाह। किन्तु सुवासिनी के न मिलने से हम राजभक्ति भी नहीं कर सकते, इसलिए जीना व्यर्थ है!

राक्षस के कटार वाले हाथ में आवेश आया। वह वक्ष में घुसने के लिए ऊपर उठा पर सुवासिनी की चीख ने हाथ रोक दिया।

घृणा और दया के संगम में भटकती हुई सुवासिनी ने रोते हुए कहा—संसार क्या कहेगा राक्षस! कि एक ऐसी कलंकिनी भी थी जिसने उससे विवाह कर लिया जो उसकी माँ और भाइयों का हत्यारा था, जिसने उसके पिता को बन्दी बना रखा था। तुम मेरे जीवन से यह कठोर खेल न खेलो!’

**राक्षस**—ये खेल नहीं है सुवासिनी! जीवन का सत्य है।

**सुवासिनी**—किसी की इच्छा के विरुद्ध भी क्या किसी से प्रेम किया जा सकता है?



राक्षस—तुम न करो, लेकिन मैं अन्तिम श्वास तक चाहता रहूँगा।

सुवासिनी—तो क्या मैं यह समझूँ कि मगध के महामात्य एक निरीह को अधिकार से सताना चाहते हैं।

राक्षस—इस समय हम मगध के महामात्य नहीं, रूप और गुणों की देवी के समक्ष भावुक प्रत्याशी हैं।

सुवासिनी—तो क्या प्रत्याशी सुवासिनी की प्राप्ति के लिए तप कर सकेगा ?

राक्षस—हाँ।

सुवासिनी—तो फिर तप का अभी प्रथम चरण है।

राक्षस—पार्वती से भी अधिक तपस्या करने का धुन है।

सुवासिनी—तो जिस दिन मेरी आत्मा में यह विश्वास हो जायेगा कि राक्षस निष्पाप है उस दिन मेरे हृदय में भावना जाग सकती है। एक बात और, प्रेम में पागल होने वाले प्रेम का मूल्य गिरा देते हैं। कहीं मगध राज्य की शक्ति प्रेम में खो न जाये। यदि बन सकते हो तो इस सुरम्य देश के ऐसे माली बनो कि कण-कण में फूल खिल उठें।

राक्षस—हम बहुत सहन कर चुके हैं सुवासिनी ! अब हम प्रतिज्ञा करते हैं कि विवाह करेंगे तो सुवासिनी से अन्यथा जीवन भर अविवाहित रहेंगे।

सुवासिनी—जो जल-जल कर राख हो चुकी हो उससे ज्योति की आशा व्यर्थ है। सुवासिनी बुझी हुई राख है, उसमें दबी हुई चिंगारी हो सकती है, सुनहरी किरण नहीं।

राक्षस—कुछ भी हो, हमारी प्रतिज्ञा अटल है।

सुवासिनी—तो क्या अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए आप मुझे एक वन्दिनी की भाँति रखेंगे ?

राक्षस—नहीं, अब तुम स्वतन्त्र हो सुवासिनी !

सुवासिनी—और मेरे पिता ?

राक्षस—वे राजदण्ड भोग रहे हैं। उन्हें मुक्त करने का अधिकार महाराज को है।

सुवासिनी—क्या आप महाराज से उन्हें मुक्त करने के लिए कहेंगे ?

राक्षस—तुमसे मुझे स्नेह है, लेकिन अपने देश से उससे भी

अधिक प्रेम है। तुम्हारे मोह के कारण मैं उनकी मुक्ति का प्रस्ताव नहीं रख सकता। यदि देश के लिए आवश्यकता पड़ी तो मैं महाराज से प्रार्थना करूँगा।

**सुवासिनी**— मैं अकेली हूँ, कहाँ रहूँगी ?

**राक्षस**— जहाँ इच्छा हो। जो व्यवस्था चाहो तुम्हारे लिए हो सकती है।

**सुवासिनी**— मैं अध्ययन करना चाहती हूँ।

**राक्षस**— उसके लिए तुम्हें किन आवश्यकताओं की पूर्ति चाहिये ?

**सुवासिनी**— एक निजी विशाल पुस्तकालय की।

**राक्षस**— मेरा निजी पुस्तकालय राजधानी में सबसे बड़ा है। यदि तुम चाहो तो उसका उपयोग कर सकती हो।

**सुवासिनी**— लेकिन मैं आपके महल में और आपके निकट नहीं रहना चाहती।

**राक्षस**— मैं उस महल में चला जाऊँगा जिसमें बन्दी होने से पूर्व शकटार निवास करते थे। तुम स्वतन्त्रता से और हर सुविधा के साथ मेरे निवास में रह सकती हो।

**सुवासिनी**— मुझे आप पर विश्वास नहीं होता।

**राक्षस**— क्या तुम नहीं जानती कि राक्षस रावण ने भी हरी हुई सीता को अवधि बाँधकर पवित्रता से रखा था ! राक्षस चरित्रहीन नहीं है, वह एक कन्या के साथ विश्वासघात नहीं करेगा। और तुम्हारे विश्वास के लिए हम यह वचन देते हैं कि जब तुम नहीं चाहोगी हम तुम्हारे सामने नहीं आयेंगे।

**सुवासिनी**— किसी अकेली युवती से बातें करना पाप नहीं, पिता भी अपनी जवान पुत्री से बातें करता है। राजमन्त्री भी जनता के लिए पिता ही है। जब तक मेरे पिता मेरे पास न आयें तब तक आप मेरी रक्षा भीष्म पितामह की तरह करते रहें।

**राक्षस**— राजनीति में यदि हम कृष्ण के अनुयायी हैं तो धर्म के पालन में हम पूज्य पितामह का ही अनुसरण करते हैं। हमारे वचन बच्चों के खिलौने नहीं।

सुवासिनी ने राक्षस के संरक्षण में रहना स्वीकार कर लिया और राक्षस गम्भीर मुद्रा में चले गये। राक्षस के चले जाने के बाद सुवासिनी



तरह-तरह के विचारों में डूब गई। अतीत की कितनी ही स्मृतियाँ जाग-जाग कर उन्हें झँझोड़ने लगीं—“जीवन कितना स्वप्नवत् है! कल जैसे था ही नहीं और आज भी जैसे कल नहीं रहेगा। मिट्टी मनुष्य की अन्तिम अवस्था है। कभी-कभी जीवन से कितनी निराशा होती है। आँधियाँ पौधे को फूल लगाने से पहले उखाड़ फेंकती हैं। मुझे कभी किसी से स्नेह नहीं हुआ। राक्षस हथेली पर सरसों उगाना चाहता है। इतना गर्व न कर सुवासिनी! तू भी किसी के लिए बहुत बेचैन रही। क्या बचपन में तेरी भावनाएँ कौटिल्य से विवाह करने की नहीं थीं? चाहे वह गुड्डा-गुड़ियों के खेल जैसी चाह ही थी। पर कितनी प्रबल थी वह चाह! कितने सुनहरे भविष्य उस स्वप्न में बस जाते थे! बचपन की वह आशा राख होकर रह गई। फिर भी न जाने क्यों कौटिल्य मुझे याद आता रहता है! वह गोरा-गोरा मृदुल मुख, वह विलक्षण प्रतिभा, वह नटखट स्वभाव, वह आत्माभिमान की हिमालय जैसी दृढ़ता एवं आग जैसा क्रोध, किन्तु नीर जैसी दया और सत्य जैसी शुद्धता न जाने चित से क्यों नहीं उतरती! मुझे उतनी शान्ति कहीं नहीं मिली जितनी कौटिल्य के साथ मिलती थी।

“कितने बड़े-बड़े पुल बाँधता था वह! मुझे उस छोटे से मुँह से बड़ी-बड़ी बातें सुनकर हँसी आती थी तो वह बिगड़कर कह देता था ‘बँदरिया को अदरक दो तो वह थू-थू करके उगल देती है।’ तेरी बुद्धि में ये बातें नहीं आ सकतीं जो मैं तुझसे कहता हूँ।”

“और उसके चिढ़ने पर जब मैं और चिढ़ाती तो वह रूठकर जाने लगता था। कितनी कठिनता से मनाना पड़ता था तब उसे! बस-बस, और अधिक मत सोच सुवासिनी! आँसू रोकने से न रुकेंगे और यदि आँसू बाहर निकल आये तो मोतियों का मूल्य गिर जायेगा। प्यार के आँसुओं का स्थान पलकों की ओट में है।”

सोचती-सोचती उँगली में आँसू पोंछे सुवासिनी सो गई। नींद के प्रत्यावर्तनों में दुःख-सुख के स्वप्न जागते-सोते न जाने कितने गीत गाते रहते हैं।

X

X

X

एक दिन सुवासिनी ने देखा कि राजधानी सजाई जा रही है। सड़कों पर बड़े-बड़े द्वार बन रहे हैं। राजमार्ग में सलमे-सितारों के कढ़े हुए वितान तने हुए हैं।

सुवासिनी सज्जा देख ही रही थी कि ढिंढोरा सुनाई दिया—  
 “आपको यह विदित ही है कि राजधानी में कुलूत के परम प्रतापी  
 राजा चित्रवर्मा पधार रहे हैं और साथ ही राजपूताने को जय करके  
 वीरबाँकुरे सेनापति मौर्य लौटे हैं। इस हर्षोपलक्ष में आज भव्य उत्सव  
 मनाया जा रहा है। प्रजा पाटलिपुत्र को फूलों से ऐसा सजाये कि यह  
 नगर कुसुमपुर कहलाने लगे, कुलूताधिपति अपने राज्य में जाकर आपके  
 स्वागत की भूरि-भूरि प्रशंसा करें। अतिथि के अभिनन्दन में रात्रि को  
 दीपमालिका की तरह जगमगा दो!”

ढोल के साथ घोषणा होती जाती थी और राजधानी में उमंगों की  
 लहर-सी आ रही थी। चारों ओर चहल-पहल से एक अद्भुत हर्षोत्पादक  
 स्वर कानों में सुनाई देता था।

दिन यूँ ही चला गया। प्रतीक्षा के पल यद्यपि कठिनता से कटते  
 हैं पर नगर सजाने में और नगर की सज्जा देखने में समय को जाते देर  
 न लगी।

सहसा उत्साह का एक आवेग आया, भीड़ बढ़ने लगी और आवाजें  
 गूँजी, “वह आई सवारी, कुसुमद्वार से पदार्पण हो चुका है।”

राजधानी गुंजित हो उठी। दुर्ग के सामने के मार्ग पर भीड़ का  
 ठिकाना न रहा। पेड़ों पर, खिड़कियों में, छतों और छज्जों पर नर-  
 नारियों की बाढ़-सी आई हुई थी। किसी के हाथ में पुष्प थे, तो किसी  
 के हाथ में फूल-माला।

जय के स्वर और बुलन्द हुए, सवारी निकट आ गई। नागरिक  
 उँगली उठा-उठा कर कहने लगे, ‘ये महामात्य हैं, ये अमात्य कात्यायन  
 और वे हैं दोनों के बीच में बैठे कुलूत नरेश! और दूसरी गाड़ी में अन्य  
 रजवाड़ों के प्रतिनिधि विराजमान हैं। अरे वह देखो, वे महाराज के भाई  
 सवार्थसिद्धि प्रतिनिधि और उनके साथ अष्टनन्द विराजमान हैं। वाह  
 वाह, खूब स्वागत!’

अश्वारोही, रथी, गजसेना, रणतरी के सतर्क जवान, पैदल तरह-  
 तरह की सेना से सवारी की शोभा अवर्णनीय थी। रणबाँकुरे जवानों पर  
 नागरिक श्रद्धा फूल चढ़ा रहे थे और गर्व से कह रहे थे, ‘ऐसी विजयी  
 सेना के होते हुए हमारा राज्य अजेय है।’

गगनभेदी जयघोष के साथ सवारी राजदरबार में पहुँची। अधिकारी  
 एवं राजा अपने-अपने सिंहासनों पर विराजमान हो गये। बैठने के



तुरन्द बाद ही दुर्ग के पिछले द्वार से जयघोष हुआ—‘सावधान ! परम पुण्यवान, दयावान, कान्तिमान, महाबली, मगधाधिपति, महाराज महानन्द पधार रहे हैं।’

जैसे सहसा किसी शेर के आने से आतंक छा जाता है ऐसे ही महाराजा महानन्द के आगमन के साथ ही साथ हर्ष का स्थान अनुशासन ने ले लिया। अभिवादन में एकदम सब के मस्तक झुक गये और नन्द महानन्द पद के जगमगाते हुए ऊँचे सिंहासन पर सज गये।

सुख आँखें, ऐंठता हुआ मुख, चौड़ी छाती, तमतमाती भाव भंगिमा, राजकीय वेषभूषा—राजदरबार में जैसे इन्द्र विराजमान हों !

अभिनन्दनोत्सव आरम्भ हुआ। गम्भीरता से महामात्य राक्षस अपने ऊँचे आसन से उठे और बोले—‘परम पुण्यवान मगधाधिपति महाराज नन्द की,

सब तुमुल स्वर से—‘जय!’

—‘देश पर बलि चढ़ने वाले वीरों की.....’

—‘जय!’

—‘हमारे अतिथि राजा की.....’

—‘जय’!

—‘सेनापति मौर्य.....’

—‘अमर हों!’

“परम पूज्य मगधाधीश ! अमात्य गण ! अतिथि वृन्द ! देवियो और देवताओ ! आज हमारे लिए हर्ष का दिन है। आज की प्रसन्नता के कितने ही शुभ कारण हैं। हमारे सेनापति मौर्य ने राजपूताने को जय करके मगध राज्य में मिलाया है। हमारे निमन्त्रण पर कुलूताधिपति चित्रवर्मा पधारे हैं और आज ही महाराज की छोटी रानी से उत्पन्न पुत्र का नामकरण संस्कार है।

“आप यह जानते ही हैं कि हमारे परम प्रतापी महाराज महानन्द आजकल पूजा के अतिरिक्त किसी उत्सव में आने-जाने की रुचि नहीं रखते। हमारे विशेष आग्रह से और आपके प्रेम से उन्होंने इस समारोह में पधारने की कृपा की है।”

“अब सर्वप्रथम कर्नाटक की नर्तकी का नृत्य होगा। आप इनके भाव-नृत्य को देखकर मुग्ध हो जायेंगे। आप देखेंगे कि ये बताशों पर

नृत्य करेंगी और एक भी बताशा इनसे नहीं फूटेगा।”

नृत्य आरम्भ हुआ, दर्शक वृन्द झूम उठे, जैसे सभी को नर्तकी ने मदिरा पिला दी हो।

कुलूताधिपति के स्वागत में नृत्य और संगीत का वह प्रदर्शन हुआ कि कुलूताधिपति मस्त हो गये। राग-रागनियों के वे अलाप हुए कि प्रकृति भी झंकृत हो उठी।

तदनन्तर पाटलिपुत्र के चित्रकार चतुर्भुज ने एक चित्र कुलूताधिपति का और एक दिव्य चित्र सेनापति मौर्य का प्रदर्शित किया। चित्र देखकर सब चित्रखिंचत से रह गये। असल और नकल को पहचानना कठिन था।

चित्रकार ने श्रद्धा से कुलूताधिपति और सेनापति मौर्य के चित्र भेंट किये।

और भी अनेक अमूल्य रत्न समारोह में भेंट हुए। भेंट-कार्य सम्पन्न होने पर महामात्य सिंहासन से उठे और शान से बोले— “मुझे यह घोषित करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि पण्डितों और ज्योतिषियों के विचार कर बताने के अनुसार नये राजकुमार का नाम ‘चन्द्र’ रखा गया है।”

‘राजकुमार चन्द्र की जय!’ का तुमुल घोष हुआ और फिर महामात्य ने कहना शुरू किया— ‘इस अपार हर्षोपलक्ष में हमारे अमात्य कात्यायन आपके सामने कुछ रसवर्षा करेंगे।’

कात्यायन उठे और मुस्कराते हुए मृदुल वाणी में बोले— “इस हर्ष में मैं भी मन्दोन्मत हो गया और रात को पड़े-पड़े मुझे सरस्वती की प्रेरणा हुई कि शृंगार रस का कोई फूल खिलाऊँ। बस मैंने स्वप्न रचा।”

“कल्पना यूँ ही फूट पड़ी—चन्द्रमा से चाँदनी उत्पन्न होती है, पर सौंदर्य की देवी मुरा-ज्योत्स्ना से चन्द्र पैदा हुए। आँखों में अमृत, अधरों पर उषा, वक्ष पर रवि शशि और कौंधता हुआ काला तिल, जान पड़ता है रूप में महाराज की पुतलियाँ बस गई हैं। इस आनन्द में मैं एक सरस कविता लिख लाया हूँ। सुनिये, गद्गद हो जायेंगे।”

कात्यायन चरण उच्चारण करें कि बीच में ही महाराज नन्द क्रोधित होकर सिंहासन से उठे और कात्यायन को रोकते हुए बोले— “काला तिल! तुम्हें कैसे मालूम?”



कात्यायन ने झूमते हुए कहा—‘मैं जब पीकर गुनगुनाने लगता हूँ तो सत्य सामने आ जाता है।’

उत्तर में महाराज कुछ कहें कि बुद्धिमान राक्षस ने महाराज के मुँह पर अपना हाथ रख दिया और घबराते हुए बोले—‘अकस्मात् महाराज का हृदय घबरा-सा उठा है, इसलिए समारोह समाप्त किया जाता है।’

विचित्र वातावरण में समारोह समाप्त हुआ और सब यथास्थान चले गये। महाराज को साथ ले महामात्य राक्षस उनके महल में आये। महाराज का तापमान अभी तक चढ़ा हुआ था। राक्षस के कुछ कहने से पूर्व ही वे बोले—‘कात्यायन को हम अपने दरबार में नहीं रखना चाहते। राजमहल में उसका आना-जाना तो दूर मैं कात्यायन का मुँह भी नहीं देखना चाहता। उसे बन्दीगृह में डाल दिया जाये, वह अपराधी है। निश्चित ही उस दिन मुरा के महल में यही आया होगा। इसकी इच्छा मगध का महाराज बनने की है। और भी एक दो-बार मैं इसे देखभाल के बहाने मुरा के महल में देख चुका हूँ।’

**राक्षस**—एक हाथ से ताली नहीं बजती महाराज! प्रथम तो कात्यायन दोषी नहीं हो सकता और यदि आपकी दृष्टि में उसका दोष है तो मुरा कात्यायन से अधिक दोषी है।

**महानन्द**—हाँ, हम मुरा को भी अपराधी मानते हैं और आज्ञा देते हैं कि उसे हमारे यहाँ से निकाल दिया जाये। हम उसे अपने पास नहीं रखेंगे। काला तिल! अवश्य ही मुरा और कात्यायन का अनुचित सम्बन्ध रहा होगा।

**राक्षस**—कात्यायन जैसे समझदार अमात्य से बिगाड़ना अभिशाप हो सकता है, महाराज!

**महानन्द**—हम उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सुनना चाहते। राजाज्ञा है कि उसे बन्दी बना लिया जाये और मुरा को निकाल दिया जाये।

**राक्षस**—दबे हुए अंगार फिर दहक उठेंगे महाराज! कलाकार अनुभूत और कल्पना से जो कुछ चित्रित करता है वह सब देखा हुआ ही नहीं होता, सत्य हो जाता है।

**महानन्द**—कात्यायन हमारी दृष्टि में हमारा शत्रु है। हम उस विलासी और मद्यप को अब क्षमा नहीं करेंगे।

मौन राक्षस ने मन ही मन में सोचा, 'दोष वस्तुतः दोष है, पर कितनी विचित्र लीला है मनुष्य की ! वह अपने को निर्दोष और दूसरे को दोषी समझता है। मदिरा और कामिनी महाराज की जिन्दगी है, किन्तु दूसरे की जिन्दगी में वे इन वस्तुओं को नहीं देख सकते। संसार का यह कितना प्रत्यक्ष पाप है।'

'अच्छा महाराज ! आप जो आज्ञा देंगे उसका निर्वाह करने की कौशिश करूँगा। पर भय है कि कहीं राख ढके अंगार फिर से न धधक उठें। एक विनय है कि जब तक कुलूताधिपति यहाँ हैं तब तक राजाज्ञा का पालन नहीं होगा।'

**महानन्द**—नहीं होगा, इसलिए कि मैंने तुम्हारे हाथों में अपनी शक्ति सौंप दी है।

**राक्षस**—इसलिए नहीं, बल्कि इसलिए कि नन्द राज्य सुरक्षित रहे और उसकी शक्ति बढ़े।

**महानन्द**—शक्ति बढ़े ! नहीं, तुम कात्यायन से डरते हो। जब तक इस साँप की गर्दन नहीं मरोड़ोगे तब तक यह फुंकारना बन्द न करेगा।

महाराज उलझनें काट डालना चाहते थे और राक्षस सुलझाना। इसी तर्क-वितर्क में नींद भी खो गई।

X

X

X

दूसरे दिन राक्षस कात्यायन के साथ उस गुप्त मन्त्रणालय में आये जहाँ कुलूताधिपति से बात होनी थी और आपस में कुछ बातें करने के बाद कात्यायन से राक्षस ने कहा—तुम भी चले जाओ और कुलूताधिपति को आदर के साथ लिवा लाओ तथा मौर्य सेनापति से कह देना कि सैनिक सतर्क रहें। राह में सेनापति मौर्य अपने बल का प्रभाव भी कुलूताधिपति पर डालते रहें।

**कात्यायन**—यह सब व्यवस्था हो चुकी है महामात्य ! मैं कुलूताधिपति को लेने जाता हूँ।

कात्यायन चले गये और राक्षस सोचते रहे। धूप लगभग एक हाथ पीछे हटी होगी कि कात्यायन के साथ कुलूताधिपति आ पधारे। बड़े प्रेम से राक्षस उनसे गले मिले और फिर उस बन्द कक्ष में बैठ गये जो दो राज्यों की बातचीत के लिए विशेष रूप से निर्मित किया गया



था।

कुछ देर राजनीति पर बातचीत करने के अनन्तर राक्षस ने एक सन्धि-पत्र जेब से निकाला और कहा—‘आप इसे देखकर स्वीकार करने की कृपा करें जिससे कि हमारी और आपकी शक्ति एक हो जाये और फिर किसी का साहस न हो कि वह हमारी ओर दृष्टि उठाये।’

कुलूताधिपति ने सन्धि-पत्र बड़े ध्यान से पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते ही उनके माथे पर बल आ गये थे। पढ़ने के बाद वे बोले—इससे तो ऐसी ध्वनि निकलती है कि जैसे कि हम आपके अधीन-से हैं और आपकी शक्ति के बल से ही हम सुरक्षित हैं।

**राक्षस**—यह आपका भ्रम है, इसका भाव यह है कि आप स्वतन्त्र राजा हैं और आपके साथ मगध राज्य की महान शक्ति है।

कुलूताधिपति चिन्ता में पड़ गये। उन्होंने विचारते हुए कहा—अच्छा तो इस पत्र की प्रतिलिपि मैं साथ लेता जाऊँगा और अपने सभासदों से परामर्श कर लूँगा। आशा है सभी इसे स्वीकार कर लेंगे।

**राक्षस**—परामर्श की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती, राजा अपनी इच्छा का मालिक है।

**कुलूताधिपति**—राजा यदि प्रजा की चिन्ता छोड़ दे तो प्रजा उससे राजमुकुट छीन लेती है।

**राक्षस**—आपकी अद्भुत शक्ति से तो कितने ही बलशाली राजाओं के छक्के छूट जाते हैं। किसका साहस हो सकता है कि जो आपकी बात न माने! फिर भी यदि किसी विशेष अमात्य या अन्य से परामर्श करना है तो उसे आप बुला लीजिए।

**कुलूताधिपति**—नहीं, मैं स्वयं जाऊँगा।

**राक्षस**—सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करके जाइये जिससे कि अपने देश में सन्धि का शुभ समाचार भी ले जा सकें।

कुलूताधिपति का माथा ठनक गया। उसने सोचा—‘बिना सन्धि किये यहाँ से जाना सम्भव नहीं दीखता। राजनीति में कभी भी किसी दूसरे के घर जाकर अपने आपको खतरे में डालना है। मैंने भारी भूल की जो इनके घर चला आया। सन्धि-वार्ता किसी तटस्थ एवं अहंमुक्त स्थान पर होनी चाहिये थी। पर अब पछताने से क्या होता है! चिड़िया जाल में फँसी हुई है।’

सोचते-सोचते उन्होंने कहा—तो क्या मगधाधिपति हम से बलात् सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कराना चाहते हैं ?

राक्षस—यदि किसी के हित के लिए बलात् भी कोई कार्य किया जाये या कराया जाये तो उपकार ही होता है ।

कुलूताधिपति—आप अपने घर बुलाकर अतिथि को लूटना चाहते हैं ।

राक्षस—लूटना नहीं चाहते, लुटेरों से बचाना चाहते हैं । अब अधिक सोच-विचार न कीजिए कुलूताधिपति ! लो, करो सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर ।

कुलूताधिपति—विश्वासघात तो नहीं होगा ?

राक्षस—विश्वास रखो, हम तुम्हारे लिए रक्त की अन्तिम बूँद भी दे देंगे । तुम्हारी आपत्ति हमारी आपत्ति होगी । हम जिसे मित्र बना लेते हैं उसके साथ निर्वाह करते हैं ।

कुलूताधिपति के मस्तिष्क में तूफान आ गया, परिस्थितियों ने उनका हृदय कँपा डाला । काँपते हुए हाथ से उन्होंने लेखनी उठाई और सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये ।

□□



महल की छत पर खड़े हुए कात्यायन ने दुर्ग पर फहराता हुआ ध्वज देखा और प्रसन्नता से आप ही आप कहने लगे—“अब किसकी शक्ति है जो इस पताका की ओर आँख उठाकर देख सके! धन्य है महामात्य राक्षस की बुद्धि जिसके समक्ष बड़ों-बड़ों को मुँह की खानी पड़ी। इन्द्रप्रस्थ के कुरूपति कौरव्य का दबकर सन्धि करनी पड़ी। कुलूताधिपति उनकी मुट्ठी में हैं। राजपूताने ने उनकी शक्ति के सामने हार मान ही ली, और भी कितने ही घमण्डी राजा अधीन हो गये हैं। लेकिन यह सब होते हुए भी अभी सीमाएँ सुरक्षित नहीं हैं। समस्त आर्यावर्त एक झण्डे के नीचे आज भी नहीं। विदेशियों के आक्रमण का यद्यपि भय नहीं, पर इस देश की बिखरी हुई शक्ति के कारण चिन्ता है। कुछ राज्य अब भी स्वयं को बड़ा मानते हैं। मालवा, पञ्चनद और कौशाम्बी की आवाज आज भी अलग है। ये राज्य साहसी हैं, इनकी प्रजा इनके साथ है।

“कितना अच्छा हो यदि सारे देश में एक केन्द्रीय सत्ता स्थापित हो जाये। पर हो कैसे? हमारे महाराज से तो अपने भी नाराज रहते हैं। वे केवल अपनी इच्छा का राज्य चाहते हैं। जो उनके जी में आता है, कर डालते हैं। उचित-अनुचित का तो उन्हें ज्ञान ही नहीं रहता। जिसे चाहते हैं, प्राण-दण्ड दे देते हैं। पता नहीं अमात्य राक्षस की उनके प्रति इतनी भक्ति क्यों है! मैं जब उनसे प्रश्न करता हूँ तो कह देते हैं हमने महानन्द की भक्ति की शपथ ली हुई है।”

“जब हम कहते हैं कि राजतन्त्र हटाकर जनतन्त्र स्थापित कर दो तो वे कह देते हैं, ‘राजतन्त्र हो या जनतन्त्र, राज्य की सुरक्षा और जनता को सुख मिलना चाहिये। जनतन्त्र में क्या शोषण नहीं होता! प्रजातन्त्र भी तो समर्थ कूटनीतिज्ञों के जालों का शिकार रहता है। जनता नाचती है और नीतिज्ञ नचाते हैं।”

न जाने और भी कात्यायन क्या-क्या सोचते कि सहसा सैनिकों सहित सेनापति मौर्य ने आकर उन्हें चौंका दिया।

कात्यायन के सामने आकर सेनापति सिर झुकाकर खड़े हो गये।

सेनापति को सिर झुकाये उदास खड़े देख कात्यायन ने कहा—‘क्या बात है सेनापति ! इस तरह उदास क्यों खड़े हो ? कहो क्या बात है ?’

मौर्य के मुँह से कोई शब्द न निकला । उनकी आँखों से दो आँसू अमात्य कात्यायन के पैरों पर गिर पड़े ।

कात्यायन ने विस्मय से फिर कहा—कहो मौर्य ! क्या तुम्हारे साथ कोई अन्याय हुआ है ?

**मौर्य**—नहीं अमात्य !

**कात्यायन**—तो फिर क्या बात है ?

मौर्य सेनापति ने कुछ उत्तर न दिया और चुपचाप अपना हाथ कात्यायन की ओर बढ़ाते हुए कहा—यह राजाज्ञा है, अमात्य !

कात्यायन ने पत्र मौर्य के हाथ से लेकर पढ़ा और फिर अट्टहास करते हुए बोले—‘साँप विष उगलने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता है ! महाराज महानन्द से सेवाओं के बदले यही तो पुरस्कार मिलना चाहिये था । तो तुम सोच क्या रहे हो, बना लो मुझे बन्दी !’

हाथ बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—लो, डाल दो इनमें हथकड़ियाँ !

**मौर्य**—यह मुझसे नहीं होगा अमात्य ! जिन हाथों ने मुझे सेनापति का नियुक्ति-पत्र दिया उन हाथों में हथकड़ियाँ कैसे डालूँ ! जिन हाथों ने मेरी विजय पर मुग्ध होकर मुझे फूलों के हार पहनाये उन हाथों को बाँध कैसे दूँ ! नहीं-नहीं, मुझसे यह पाप नहीं होगा । भले ही महानन्द मुझे सूली पर चढ़ा दें ।

कात्यायन कुछ पलों के लिए मौन हो गये और फिर विचारते हुए बोले ‘तनिक एकान्त में कुछ बातें कर सकते हो ?’

‘आप मुझे आज्ञा दे सकते हैं,’ कहते हुए मौर्य कात्यायन के साथ एक कक्ष में चले आये ।

एकान्त में कात्यायन ने विचित्र दृष्टि से मौर्य को देखा और उनके कन्धे पर हाथ रखकर कहने लगे—मौर्य ! तुम चाहो तो इस देश का भाग्य बदल सकते है । मगध की सारी शक्ति तुम्हारे हाथ में है ।

**मौर्य**—पर मैं वह नहीं चाह सकता जो महामात्य राक्षस नहीं चाहते । वे स्वयं इस राजाज्ञा से बहुत पीड़ित हैं ।

कात्यायन ने बातें करते-करते एकदम घबराकर कहा—हाँ मौर्य ! यह तो बताओ छोटी रानी मुरा का क्या हाल है ?



**मौर्य**—कुछ न पूछिये अमात्य ! महाराज ने उन्हें केवल एक सादी धोती पहनाकर बालक चन्द्र के साथ राजमहल से निकाल दिया है।

सुनते ही कात्यायन को रोष आ गया, बोले—एक नारी की ऐसी दुर्दशा देखकर भी तुम्हारी भुजाएँ नहीं फड़कीं ? तुमने उसी समय नन्द का सिर क्यों नहीं काट डाला ? जान पड़ता है कि अधिकार के लोभ ने तुम्हें कायर बना दिया है।

**मौर्य**—कायर नहीं, राजाज्ञा का पालन करना हमारा धर्म है।

**कात्यायन**—और एक अबला को दुर्दशा से बचाना क्या धर्म नहीं है ?

**मौर्य**—कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे दोनों धर्मों का पालन हो सके।

**कात्यायन**—एक म्यान में दो तलवारें नहीं समातीं। धर्म और अधर्म का मेल नहीं हो सकता। राजनीति हृदय की वस्तु नहीं, बुद्धि की चेतना है। आदर्श और यथार्थ में अन्तर होता है। सत्य की रक्षा के लिए कभी-कभी विष की आवश्यकता होती है।

**मौर्य**—पहेली सुलझाने का अभ्यास एक विद्वान् को हो सकता है। जिसका हाथ सदा ही तलवार की मूठ पर रहा हो, जिसकी चुटकी ने सदा ही प्रत्यञ्चा खींची हो, उसे राजनीति की उलझनें सुलझाने का अभ्यास नहीं होता। स्पष्ट कहिये, मुझे क्या करना चाहिये।

**कात्यायन**—अपने बल को दुर्बलों की भलाई में लगा दो ! धरती को अत्याचार से मुक्त कर दो ! आँसुओं की आवाज सुनो ! जैसे भी हो मुरा और चन्द्र को किसी सुरक्षित स्थान पर अपनी देखभाल में रखो ! वीर हो तो चन्द्र को वही जीवन दो जो एक राजकुमार को मिलना चाहिये।

**मौर्य**—लेकिन राज्य से निकाले हुए को सेनापति शरण कैसे दे सकता है ? महाराज और महामात्य यह कैसे सहन कर सकेंगे ? क्या इस अपराध के बदले सेनापति मौर्य के साथ महानन्द वही व्यवहार नहीं करेंगे जो ब्राह्मण चणक के साथ किया था ?

**कात्यायन**—अधिकार के पशु ने परम वीर सेनापति मौर्य को कायर बना दिया है। यदि वह अधिकार छिन जाने से डरता है तो फिर

व्यर्थ ही आँसू बहाने का बहाना करता है।

देर मत करो और तुरन्त कात्यायन को बन्दी बना लो ! राजाज्ञा पालन करना सेनापति का धर्म है।

**मौर्य**—कोई कितना भी सच्चा हो, पर परिस्थितियाँ उस पर भी अविश्वास करा देती हैं।

**कात्यायन**—यदि तुम्हारे हृदय में वस्तुतः सत्य का दीपक जलता है तो त्याग करो !

**मौर्य**—अभी नहीं, समय आयेगा कात्यायन मौर्य को पहचानेंगे।

**कात्यायन**—तो इस समय और प्रतीक्षा मत करो, बना लो मुझे बन्दी !

मौर्य ने कात्यायन को बन्दी बना लिया। सेनापति ने उन्हें एक काल-कक्ष में कैद कर दिया। गुप्त कारागार में कात्यायन कभी आकाश को और कभी धरती को देखते रहे तथा मौर्य सोचते हुए चले गये।

X

X

X

जीवन में श्रम करते-करते व्यक्ति थक भी जाता है। युद्ध के मैदानों की खाक छानते-छानते एक दिन सेनापति मौर्य ने भी थकान मानी। तिरहुत की विजय के बाद उसने महाराज से अवकाश की प्रार्थना की। प्रसन्न होकर महाराज ने प्रार्थना स्वीकार कर ली, पर महामात्य राक्षस ने कहा—आवश्यकता पड़ने पर हम तुम्हें किसी भी समय बुला सकते हैं।

**मौर्य**—महामात्य के स्मरण पर मौर्य पिप्पलीकानन के बच्चे-बच्चे के साथ जीवन के अन्तिम श्वास तक भी आने को तैयार रहेगा।

**राक्षस**—तुम्हारी सेवाओं से हम धन्य हैं। जाओ, आनन्द से अपनी जन्म भूमि में फलो फूलो ! वीरपुङ्गव मौर्य ! हम तुम्हें अवकाश तो नहीं देते, क्योंकि तुम जैसे रत्न से रिक्त होकर मगध राज्य एक प्रकाशमान अजेय सेनानी से रिक्त हो जायेगा। पर क्या करें, विवश हैं। बार-बार के युद्धों ने तुम्हारे रोम-रोम को क्षत-विक्षत कर डाला। तुम्हारा बायाँ हाथ युद्ध में जाता रहा, पैर के घाव को वर्षों हो गये पर सूखा नहीं, फिर भी तुमने सेना का नेतृत्व न छोड़ा। पर अब तो रक्त की गति इतनी धीमी हो गई है कि तुम्हारे लिए मस्तिष्क से सोचना मृत्यु को निमन्त्रण देना है।



**मौर्य**—एक दुःख जीवन भर रहेगा कि मेरे रक्त की अन्तिम बूँद मगध राज्य के लिए न बह सकी। अच्छा होता यदि मेरे प्राण मगध की ध्वजा के लिए धूल-धूसरित हो जाते।

सेनापति मौर्य ने अभिवादन किया, उत्तर में महाराज और महामात्य ने आभार प्रकट करते हुए हृदय-स्तवन भेंट किये।

बड़े स्वागत एवं जयकारों के बीच मगध की सेना से सेनापति मौर्य को विदा किया। सब देखते रहे और मौर्य का रथ आँखों से ओझल हो गया।

X

X

X

मंजिलें तय करता हुआ महारथी का रथ अमराइयों के बीच फूल-पत्तियों से घिरे एक सुरम्य उपवन के सामने आकर रुका। यहाँ एक बाल लोहे की जंजीर दो पेड़ों से बाँध तलवार से जंजीर को काटने का अभ्यास कर रहा था।

रथ निकट पहुँच गया। मौर्य बालक का यह खेल देखते रहे। पर बालक ने उन्हें न देखा। वह लोहे की जंजीर पर वार पर वार कर रहा था, पसीना उसके माथे से एड़ी तक चू रहा था, किन्तु उसे जंजीर काटने की धुन थी। आखिर उसने पूरी शक्ति से तलवार हवा में सूत कर भरा हुआ हाथ जंजीर पर मारा और जंजीर झनझनाकर कट गई।

मौर्य के मुँह से निकला—वर्द्धयस्व, वर्द्धयस्व! साधु, साधु!

साधुवाद सुनते ही बालक ने मुँह घुमाकर देखा और दौड़कर मौर्य के सामने आ बोला—आप कौन हैं और यहाँ किसलिए आये हैं?

**मौर्य**—यह हमारी जन्म-भूमि है, हम सेवा की अवधि समाप्त कर अब विश्राम के लिए अपने घर आये हैं।

**बालक**—वेश भूषा से तो तुम कोई राजा और वीर मालूम पड़ते हैं।

**मौर्य**—तुम्हारे प्रश्न एक होनहार के प्रश्न हैं बालक! हम बहुत प्रसन्न हुए। हमें वीरता से अधिक किसी वस्तु से प्यार नहीं। हमने कितने ही भीषण युद्ध किये हैं और लड़ते-लड़ते ही हमारा बायाँ हाथ कट गया है।

**बालक**—तब तो मैं आपको प्रणाम करता हूँ और आपसे प्रार्थना करता हूँ कि हम दलित असहायों को शस्त्र-शिक्षा दीजिये, जिससे कि

हम स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकें।

**मौर्य**—ईश्वर तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करेगा। तुम्हारे माता-पिता कहाँ हैं ?

**बालक**—पिता का नाम मेरे सामने न लीजिए, उसने मेरी माँ को निकाल दिया। मेरी माँ पिप्पलीकानन की एक झोंपड़ी में रहती है और वन से खजूर तथा ताड़ की पत्तियाँ तोड़-तोड़ कर पंखे बनाती है, जिससे अपना और मेरा पेट पालती है।

**मौर्य**—बालक, तुम हमारे साथ रथ में बैठ जाओ और हमें अपनी माँ के पास ले चलो ! हम तुम्हारी माता के कष्ट दूर कर देंगे।

बालक रथ में बैठ गया और मौर्य को अपनी कुटी पर ले आया। कुटी के सामने आते ही मौर्य ने जो पंखे बनाती हुई नारी की ओर देखा तो चित्र-खिंचित-सा रह गया, जैसे उसे साँप सूँघ गया हो।

मौर्य को देखते ही वह भी पंखा बनाना छोड़कर खड़ी हो गई और चोट खाई साँपिन की तरह बोली—क्या मुझे बन्दी बनाने आये हो ?

**मौर्य**—नहीं देवि ! ईश्वर की लीला देखने आया हूँ। जिसके इंगित पर मगध राज्य का पत्ता-पत्ता नाचता था, आज वह पत्तियों से पंखी बनाकर जीवन चला रही है। जिस मुरा के संकेत पर मगध राज्य के महाराज नाचते रहते थे, आज धूलि उस रूप का उपहास कर रही है।

**मुरा**—जीवन की गति बड़ी विचित्र होती है। सीता को भी वनवास भोगना पड़ा था।

**मौर्य**—लव-कुश की तरह यह बालक भी होनहार है देवि !

**मुरा**—न जाने कितने बहुमूल्य मोती धूल में मिलकर समाप्त हो जाते हैं। इसी तरह साधनों के बिना मेरा चन्द्र भी मिट्टी में मिल जायेगा।

**मौर्य**—तुम्हारे चन्द्र के लिए साधन हम जुटायेंगे।

**मुरा**—मुझे पुरुषों का विश्वास नहीं।

**मौर्य**—पाँचों उँगलियाँ एक-सी नहीं होतीं। इस धरती पर राम भी हुए हैं और रावण भी। विश्वास रखो, हम वचन से कभी नहीं बदलते।

**मुरा**—न जाने क्यों एक दिन और मुझे आप पर विश्वास हो उठा



था। आज फिर विश्वास हो रहा है। मैं आपका संरक्षण स्वीकार कर सकती हूँ पर एक प्रतिज्ञा करनी होगी कि जब तक मैं न चाहूँ कोई यह न समझ पाये कि मुरा और चन्द्र महानन्द की पत्नी एवं पुत्र हैं।

**मौर्य**—हम वचन देते हैं कि चन्द्र और तुम उन क्रूर आँखों से सदैव छिपे रहोगे।

**मुरा**—यह बालक अब आपका बालक है।

**मौर्य**—मैं चन्द्र को धर्म-पुत्र के रूप में स्वीकार करता हूँ।

मौर्य के संरक्षण में मुरा और चन्द्र आँसू पोंछने लगे। थोड़े ही समय में चन्द्र पिप्पली के बालकों में प्रसिद्ध हो गया। सभी उससे प्रेम करते और उसके साथ खेलने में आनन्द मानते। चन्द्र भी बालकों के साथ तरह-तरह के नये-नये खेल रचकर खेलता और खिलाता।

X

X

X

इसी तरह दिन पर दिन बीतते चले गये। एक दिन मौर्य ने मुरा से कहा—‘कल दीपोत्सव है, हम पाटलिपुत्र जा रहे हैं। बड़े समारोह से यह उत्सव मनाया जा रहा है। सभी आस-पास के राजा उसमें पधारेँगे। मेरी इच्छा है कि चन्द्र को भी इस उत्सव में ले जाऊँ।’

**मुरा**—नहीं, नन्द बड़ा क्रूर राजा है और चन्द्र बड़ा नटखट है। कहीं कोई भयंकर कांड हो गया तो क्या होगा! और यदि नन्द ने चन्द्र को पहचान लिया तो तुम भी आपत्ति में पड़ जाओगे।

**मौर्य**—डरो मत मुरा! मेरे होते चन्द्र पर कोई आपत्ति नहीं आ सकती।

**मुरा**—आप पर मेरा पूरा विश्वास है। मेरा और चन्द्र का रोम-रोम आपका ऋणी है। आपकी इच्छा है तो चन्द्र को लेते जाइये।

दूसरे दिन चन्द्र को लेकर मौर्य राजधानी पहुँचे। सज्जा से सारी राजधानी जगमगा रही थी। आज रात्रि को दुर्ग में दीपोत्सव होगा।

रात्रि हो गई। समारोह के राजसी बाजे बज उठे। चारों ओर रंग-बिरंगी ज्योति के बीच राजदरबार लगा। बड़ी सज-धज से राज्य के रत्न अपने-अपने स्थान पर पधारे।

दूसरी ओर गली में, सड़क पर नागरिकों की भीड़ लग गई। राज्य की ओर से आज प्रसाद बाँटेगा। बड़े-छोटे सभी प्रसाद की प्रतीक्षा में हर्ष से उछल-कूद रहे थे।

जयघोष गूँज उठा। आनन्द के तारों से सारी प्रकृति झंकृत हो उठी। नृत्य, संगीत आदि कलात्मक दृश्यों से देवी-देवता तक मुग्ध हो गये।

कला-प्रदर्शन के पश्चात् महानन्द उठे और पिंजरे में बन्द एक शेर की ओर संकेत करते हुए बोले—‘मगध के चतुर वीरो! यह जो पिंजरा आप देख रहे हैं, यह आपकी परीक्षा के लिए है। इस पिंजरे में राजा कौरव्य ने आपके लिए किसी धातु का एक शेर भेजा है। इसमें जो शेर आप देख रहे हैं उसे बिना पिंजरा तोड़े और खोले बाहर निकालना है। यह सिंह जो निकालेगा उस पर हमें गर्व होगा।’

एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा पिंजरे के पास जा जाकर वापिस अपने स्थान पर आ बैठा, पर शेर किसी से न निकला।

अन्ततोगत्वा महाराज महानन्द क्रोध से उठे और धिक्कारते हुए बोले—‘जान पड़ता है यह भूमि वीरों और बुद्धिमानों से शून्य हो गई है।’

धिक्कार से तड़प मौर्य के पास बैठा चन्द्र आवेश से उठा और हुँकारता हुआ बोला—‘पृथ्वी कभी वीरों से शून्य नहीं होती। इस शेर को मैं निकाल सकता हूँ।’

बालक की गर्जना ने सबका ध्यान खींच लिया। महानन्द गर्व से अट्टहास कर उठे और लाल-लाल आँखे निकालते हुए बोले—तुझे सिंह निकालने की स्वीकृति है। पर यदि तुझसे यह शेर न निकला तो तुझे भी इस शेर के साथ इसी पिंजरे में बन्द कर दिया जायेगा।

**बालक**—मैं भी स्वीकृति देता हूँ और शेर को निकाल दिया तो क्या महाराज प्रसन्न होकर सारा मगध राज्य मुझे दे देंगे।

बालक की गर्वोक्ति पर सारी राजसभा हर्ष से पुलकित हो उठी।

बालक मृगछौने की तरह उछलता हुआ पिंजरे के पास पहुँचा। उसने सीखंचों में से बड़े ध्यान से पिंजरे में बन्द शेर को देखा। थोड़ी देर तक देखते रहने के बाद बालक ने लोहे का एक गज और आग की एक अँगीठी माँगी।

बालक को गज और अँगीठी मँगा दी गई। बालक ने गज उठाया और अँगीठी पर गर्म किया तथा पिंजरे के सीखंचों में घुसेड़ शेर को पिघला-पिघला कर बाहर निकालने लगा। थोड़ी ही देर के प्रयत्न के



बाद शेर गल कर बाहर निकल गया और पिंजरा खाली हो गया।

सब हर्ष से बालक की प्रशंसा करने लगे और बालक गर्व से उन्नत विजय से नत कहने लगा—‘मोम का शेर निकालना क्या बड़ी बात थी! यदि कोई वन का राजा सामने होता और उससे दो-दो हाथ होते तो मुझे और भी प्रसन्नता होती।’

बच्चे की निर्भीकता और साहस से राजसभा चकित हो उठी। नन्द ने प्रसन्नता से कहा—‘बालक! तुम धन्य हो। परम वीर मौर्य! बालक की जो इच्छा हो हमसे माँग ले।’

मौर्य कुछ कहें इससे पूर्व ही बालक ने कहा—‘याचना भिखारी करते हैं, वीर की जो इच्छा होती है प्राप्त कर लेता है।’

**नन्द**—हम तुमसे और भी प्रसन्न हुए। परम वीर मौर्य! बालक के लिए तुम बताओ हम क्या पुरस्कार दें?

इससे पहले कि मौर्य कुछ उत्तर दें फिर चन्द्र ने कहा—मगध के महाराज यदि एक बालक पर प्रसन्न हैं तो उसकी इच्छा है कि शिक्षा-प्राप्ति का अवसर सबको समान हो। हम अकिंचनों को उच्च-शिक्षा-प्राप्ति के साधन नहीं हैं। मेरी इच्छा है कि मुझे उच्च-शिक्षा के साधन दिये जायें और मेरी ही तरह प्रत्येक को यह सुविधा मिल सके।

**नन्द**—तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। हम तुम्हें अध्ययन के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय भिजवा देंगे। होनहार बालक! तुम्हारे माता-पिता कौन हैं?

**बालक**—मैं अपनी माँ को जानता हूँ। मेरे पिता मेरी माँ को भूल कर न जाने कहाँ चले गये।

**नन्द**—बड़ा क्रूर था तुम्हारा पिता! ऐसे पिता को तो कठोर से कठोर दण्ड देना चाहिए। मौर्य! तुमने उस क्रूर का पता लगाया?

**मौर्य**—कुछ पता नहीं चला महाराज!

**नन्द**—और खोजते, ढूँढ़ने से क्या नहीं मिल सकता!

**मौर्य**—हाँ, महाराज! मिल सकता है। पर कभी-कभी चोर आँखों के सामने होता है और हम उसे देख नहीं पाते। ‘दीपक तले अँधेरा’ की उक्ति प्रसिद्ध है न।

**नन्द**—संसार में सब कुछ सम्भव है। अब देखो न उस दिन महल में आये चोर का अब तक पता नहीं चला। अच्छा देखो, इस

बालक के जीवन-निर्माण में वह सब करो जो एक राजा प्रिय पुत्र के लिए कर सकता है।

पुरस्कार बाँटे जा रहे थे, नृत्य और संगीत पर दर्शक एवं श्रोता भौरों की तरह झूम रहे थे। हृदयों में उत्साह था, आँखों में मदालस। सबके रोम-रोम में थिरकन-सी थी और आस-पास दीपों पर शलभ मँडरा रहे थे। दीपोत्सव का यह उल्लास भरा उत्सव हो ही रहा था कि सीमा-रक्षक द्वारा घोषित पत्र प्रतिहारी ने महामात्य को दिया।

महामात्य ने पत्र पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते उनके मुख का रंग बदलने लगा। मुँह पर चिन्ता की रेखाएँ देख महानन्द गर्जते हुए बोले—क्या बात है महामात्य! माथे पर चिन्ता की रेखाएँ छा गईं? किसका पत्र है? दीपोत्सव के त्यौहार पर अकस्मात् क्या समाचार मिला है?

**महामात्य**—समाचार मिला है कि ग्रीकों ने हिन्दुकुश पर्वत की घाटी से इस देश की सीमा में प्रवेश कर लिया है। यूनान के बादशाह सिकन्दर ने विश्वविजय की कामना से आक्रमण किया है।

**महानन्द**—बहुत अच्छा हुआ! जब हमने कहा था कि सारे राजा एक हो जाओ तो किसी ने नहीं सुनी। अब देखेंगे कैसे वे अपने राज्य सुरक्षित रख सकेंगे। ग्रीकों की भयंकर सेना के सामने मगध के वीर सैनिकों के अतिरिक्त और कौन ठहर सकता है! महामात्य! सीमा तक्षशिला और पंचनद के राजा आदि सहायता चाहें तो अब एक सैनिक भी सहायता के लिए न भेजा जाये। अपनी सेना मगध की सीमाओं पर लगा दो और अन्तर्गत जितने भी राजा हैं उन पर कोई आँच न आने पाये। सिकन्दर यदि मगध की ओर आँख उठाये तो उसकी आँखें निकाल ली जायें। उसे पता लग जाये कि गीदड़ों और शेरों से युद्ध करने में क्या अन्तर होता है।

**राक्षस**—आक्रमण यदि भारत के किसी भाग पर हुआ तो वह अपने पर ही समझना चाहिये महाराज! किसी भी विदेशी के सामने हमें घर के झगड़े नहीं कुरेदने चाहियें। चाहे कोई कितना भी बलवान हो, लेकिन घर के अन्दर का दुर्बल से दुर्बल शत्रु भी उसे पछाड़ सकता है। यदि हम घर में ही एक आवाज न बना सके तो हो सकता है मगध की सारी बलवान सेना भी बर्बाद हो जाये।

**नन्द**—आग अभी दूर है, पानी अभी बरसना शुरू भी नहीं हुआ और तुम काँप उठे!



**राक्षस**—अग्नि और जल को बढ़ते देर नहीं लगती। सम्राट् राक्षस काँपा नहीं है, विचार कर रहा है।

दीपोत्सव समाप्ति का शंख बज गया। बातें करते हुए नागरिक अपने-अपने घर चले गये। मौर्य भी चन्द्र को ले चलने के लिए उठे, पर महामात्य ने उन्हें रोकते हुए कहा—अब युद्ध करने की सामर्थ्य तो आप में नहीं रही, लेकिन आपके अनुभवों से हमें अब भी आशाएँ हैं। क्या आप मन्त्रणा के लिए राजधानी में रहने की कृपा करेंगे?

**मौर्य**—मुझे तीर और तलवार चलाने का अभ्यास है, पर अंग-भंग होने के कारण अब इस कौशल से भी बेकार हूँ। मन्त्रणा मेरी क्या यदि आप मन्त्रणा ही चाहते हैं तो शकटार और कात्यायन जैसे चतुर नीतिज्ञों से लीजिये। मैं तो अब व्यर्थ हो चुका हूँ, असमर्थ हूँ आपकी सेवा करने में।

**राक्षस**—आपको कष्ट देना मैं भी कब चाहता हूँ! किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी आ पड़ी हैं कि अकेले सुलझाये सुलझती नहीं दीखतीं। निस्सन्देह इस कठिन समय में शकटार और कात्यायन की अत्यन्त अनिवार्यता है। यदि महाराज मान गये तो।

**मौर्य**—तो मुझे प्रस्थान की आज्ञा है न!

**राक्षस**—हृदय तो नहीं चाहता, पर आपकी अवस्था देखकर कहना पड़ता है, जैसी आपकी इच्छा!

चन्द्र को साथ ले मौर्य पिप्पलीकानन चले गये और राक्षस सोचते रह गये। राक्षस से कुछ और बातें करने के बाद महानन्द भी चले गये पर राक्षस हथेली पर चिबुक रख बैठे ही बैठे विचार करने लगे। विचारते ही विचारते उन्होंने एक दासी को बुलाया और कहा कि बड़ी रानी सुनन्दा के पास जाओ और कहो कि महामात्य अभी आपके दर्शन की अभिलाषा रखते हैं।

दासी गई और बड़ी रानी से स्वीकृति ले लौट आई। उत्तर आते ही राक्षस उठे और सुनन्दा के कक्ष में पहुँचे। बैठने के बाद उन्होंने विनम्रता निवेदन किया—राजरानी! देश पर संकट आ पड़ा है, यह सेवक आपसे सहायता और परामर्श के लिए आया है।

**सुनन्दा**—बहुत चिन्तित जान पड़ते हो, महामात्य! कहो, मैं क्या सहायता कर सकती हूँ?

**राक्षस**—मुझे कात्यायन और शकटार की मुक्ति दे दो ! मेरे लाख कहने पर भी महाराज उन्हें मुक्त करना नहीं चाहते । देश को उनकी बड़ी आवश्यकता है नहीं तो राज्य विदेशियों के पैरों से कुचल जायेगा, मगध के पुत्रों की छाती पर विदेशी हैवान दौड़ते दिखाई देंगे ।

**सुनन्दा**—आप जानते हैं महामात्य ! महाराज पर किसी के कहने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । मैं यदि उनसे कहूँ भी तो वे उसे मानेंगे नहीं । हठी से कहना रेत में तेल डालना है । हाँ, मुझे एक उपाय सूझता है ।

**राक्षस**—शीघ्र कहो, महारानी !

**सुनन्दा**—जो बात नहीं कहना चाहती थी वह भी कहनी पड़ रही है । इसलिए कह रही हूँ कि तुम विष पी सकते हो, विश्वास की हत्या नहीं कर सकते । मुझे कष्ट सहते हुए भी इस घर की लाज प्राणों से भी अधिक प्यारी है । पर कभी-कभी बुरी बात में से भी कोई लाभ निकल आता है ।

कहते-कहते सुनन्दा ने अपने स्वर को और धीमा करते हुए कहा—महामात्य ! सम्भवतः तुम्हे यह पता हो कि महाराज आजकल दासी विचक्षणा के अधीन हैं । मुरा के बाद वह उनकी मुँह-लगी प्रिया है । आज यदि महाराज पर कोई राज करती है तो वह । विचक्षणा बड़ी ही चतुर दासी है । नहीं-नहीं, मैं भूली, दासी नहीं, अब तो रानी है । वह यदि चाहे तो महाराज मान सकते हैं ।

**राक्षस**—विचक्षणा का तुम पर विश्वास है ?

**सुनन्दा**—विश्वास और स्नेह दोनों हैं, क्योंकि मैंने नागिन को भी गोद में खिलाने का अभ्यास किया है ।

**राक्षस**—तो तुम विचक्षणा को अभी बुलाकर बातें करो । मैं इतने दूसरे कक्ष में बैठता हूँ । उसे यह न मालूम हो कि महामात्य का कोई जाल फैलाया जा रहा है ।

**सुनन्दा**—चिन्ता न करो महामात्य ! सुनन्दा मूर्ख नहीं है ।

सुनन्दा ने विचक्षणा को बुलवाया । विचक्षणा सुनन्दा का सन्देश सुनते ही चली आई, श्रद्धा से सुनन्दा के निकट बैठती हुई बोली—इस समय कैसे याद किया महारानी !

**सुनन्दा**—मैंने नहीं, इस समय आर्यावर्त ने तुम्हें पुकारा है ।



**विचक्षणा**—कैसी बात कर रही हो ! क्या कभी तिनके को भी कोई याद करता है ।

**सुनन्दा**—डूबते के लिए तिनके का सहारा बहुत होता है । डूबता हुआ मगध राज्य आज तुम्हारे ही सहारे से बच सकता है ।

**विचक्षणा**—यदि मगध राज्य के लिए मेरे प्राणों की भी आवश्यकता है तो मैं सहर्ष दे सकती हूँ महारानी ! कहो, धूलि पहाड़ की क्या सेवा कर सकती है ?

**सुनन्दा**—महाराज का आजकल तुम पर सर्वाधिक प्रेम है । किसी तरह शकटार और कात्यायन को बन्दीगृह से छुड़वा दो !

**विचक्षणा**—विश्वास रखो महारानी ! पूरा प्रयत्न करूँगी, चाहे इसके लिए मुझे अपने प्राण ही क्यों न देने पड़ें । व्यक्ति को समाज के लिए जो भी करना पड़े वह थोड़ा है ।

**सुनन्दा**—पर यह कार्य अत्यन्त शीघ्र होना है ।

**विचक्षणा**—मेरा हर श्वास इसी यत्न में लगा रहेगा ।

कहकर विचक्षणा वहाँ आ गई जहाँ महाराज महानन्द सो रहे थे । वह उनके निकट धीरे-धीरे गाने लगी । स्वर-लहरी से महाराज की आँखें खुल गई । पास ही विचक्षणा को देख उन्होंने उसके कण्ठ में हाथ डालते हुए कहा—“क्या कभी स्वप्न भी सत्य हो जाता है ? अभी-अभी स्वप्न में कुछ देख रहा था, वह प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ।”

**विचक्षणा**—न जाने आपने कैसे इन्द्रजाल में फँसा लिया है ! न दिन में आपको भूल पाती हूँ और न रात आपके बिना अपनी गोद में सुलाती है । आपने दिन की दुनिया छीन ली और रात की नींद ।

**नन्द**—और क्या तुमने हमें नहीं छीन लिया ?

**विचक्षणा**—स्त्री पुरुष को कब छीन सकती है ! पुरुष के लिए स्त्री एक फूल की तरह होती है । सूँघा, मसला और फेंक दिया ।

**नन्द**—विचक्षणा ! तुम हमारे श्वास-श्वास में समायी हुई हो ।

**विचक्षणा**—हर पुरुष कामिनी को फुसलाते समय ऐसी ही बातें करता है ।

**नन्द**—और हर स्त्री पुरुष के प्यार को केवल उन्माद समझ कर भारी भूल करती है । पुरुष की दृढ़ता यदि गिरती है तो नारी के तिरस्कार की तलवार से कटकर ही गिरती है ।

**विचक्षणा**—आपकी इन बातों ने तो मुझे खो दिया है। सच बताओ महाराज ! आप कभी मुझे अपने हृदय से निकाल तो नहीं देंगे।

**नन्द**—कोई किसी को तब तक हृदय से नहीं निकालता जब तक दूसरा उसे हृदय से न निकाल दे। सब समझते हैं और तुम भी मानती होगी कि नन्द नारी से खिलौने की तरह खेलकर उसे तोड़ डालता है। इसमें सत्य भी हो सकता है, पर असत्य अधिक नहीं। मैं कातर हूँ, अतृप्त हूँ, पर प्यास बुझाने के लिए अंगारे भी मैंने चुगे हैं।

**विचक्षणा**—पता नहीं आप मुझे इतने अच्छे क्यों लगते हैं ! क्या सच आप मुझे सबसे अधिक चाहते हैं ?

**नन्द**—चाहता तो हूँ, पर कब तक चाहता रहूँगा यह मैं नहीं जानता।

**विचक्षणा**—यदि मैं आपसे कुछ चाहूँ तो ?

**नन्द**—इस सुनहरी रात में जो चाहो माँग सकती हो।

**विचक्षणा**—वचन से फिर तो न जायेंगे महाराज !

**नन्द**—धननन्द इसीलिए तो धन्य है कि वह अपने वचन से नहीं फिरता, वह हठ का हिमालय है। हमने तुम्हें वचन दिया, जो चाहे माँग लो !

**विचक्षणा**—सोच लीजिये महाराज ! दासी मगध राज्य भी माँग सकती है।

**नन्द**—प्राण से अधिक तो कुछ नहीं माँग सकती।

**विचक्षणा**—ऐसा न कहिये महाराज ! आपके प्राण तो मेरे प्राण हैं।

**नन्द**—संकोच न करो विचक्षणे ! माँगो, तुम्हें क्या दूँ ?

**विचक्षणा**—तो मैं शकटार की मुक्ति और उनको फिर मन्त्री-पद पर आसीन करने की माँग करती हूँ।

**नन्द**—तुमने वह माँगा जो हमारी हार से भी बड़ी वस्तु है। क्या तुम नहीं जानतीं विचक्षणे ! कि दबे साँप को छोड़ने का परिणाम क्या होता है ?

**विचक्षणा**—वह सर्प नहीं है, महाराज ! मृतक के लिए जीवन है। आपको यह पता नहीं कि जिस दिन आप कुल्ला करते-करते हँस पड़े थे और आपकी हँसी पर मैं भी हँस पड़ी थी, आपने समझा था कि



मैं आपको मूर्ख समझ कर हँसी हूँ। आप चिढ़ गये थे और मेरे यह कहने पर 'मैं इसीलिए हँसी जिसलिए आप हँसे थे,' आपने कहा था—बता, मैं क्यों हँसा था ?' मैंने अवकाश लेकर आपके हँसने का कारण पटबीजनों की स्मृति बताई थी। वह कारण बताने में बुद्धि मेरी नहीं थी, शकटार की थी। शकटार ने मेरे प्राण बचाये हैं महाराज ! मैं उनके सुखी जीवन और मुक्ति की भीख माँगती हूँ।

**नन्द**—हमने वरदान दिया है, तुम भीख माँगने की बात कहकर हमें लज्जित न करो। वचन जो दे दिये सो दे दिये। शकटार प्रातः मुक्त कर दिये जायेंगे और पुनः मन्त्री-पद पर आसीन दिखाई देंगे।

उत्तर में विचक्षणा ने महाराज के पैरों में सिर रख दिया। महाराज ने अपनी अञ्जलि से विचक्षणा का सिर उठाया, ठीक उसी समय अम्बर से चाँद कक्ष में झाँका। महाराज ने उठकर द्वार पर बँधे रेशमी पर्दे की डोरी खींची, सौंदर्य की दृष्टि लगाने वाला चाँद पर्दे की आड़ में छिप गया।

एक ने दूसरे की आँखों में आँखें डाल दीं। शिव के लिए सौंदर्य से अमृत के झरने फूटे। यथार्थ आलिंगन में अवगाहन करने लगा। आदर्शों ने सत्य को क्रूर दृष्टि से देखा, किन्तु प्रकृति के आँगन में भ्रमर फूल-फूल पर गुनगुनाता ही रहा। रूप के फूल भी कितने समर्थ होते हैं ! देवता तक द्रवित हो जाते हैं।

□□

आकर्षण सौंदर्य में नहीं, नवीनता में होता है। प्यासा भ्रमर नई कली के लिए अतृप्त भटकता है। तृष्णा की विभीषिका एक जीवन को उजाड़ती है और दूसरा जीवन उजाड़ने का प्रयत्न करती है। प्यार की मर्यादा और प्यास की स्थिरता नवीनता की चंचल लहरों में डूब जाती है। जिन्दगी एक तड़प के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

राजमहल में नई-नई रंगीनियाँ थीं और उधर पर्णकुटी में मुरा सूने जीवन की श्वासें ले रही थी। वह सोच रही थी, 'कितना सत्य है इस संसार में और कितना स्वप्न! व्यर्थ ही विजय पर मनुष्य मुस्कराता है! तूफान का एक झोंका जय को पराजय में बदल देता है। हारी हुई मुरा! तेरी आशा कितनी निर्मम है! तू फिर जीत के स्वप्न देख रही है! जानती नहीं जिन्दगी धूलि का आकार मात्र है। सूखी हुई लकड़ी में जिस तरह आग भरी रहती है उसी प्रकार जीवन में चिन्ता की चिंगारियाँ सुलगती रहती हैं। तू अभी आशा से जी रही है, तेरा चन्द्र तुझे शान्ति देगा। स्वप्न कितना सुन्दर होता है!'

मुरा यह सोच ही रही थी कि त्रिपुण्डधारी एक अपरिचित के साथ चन्द्र ने कुटी में प्रवेश किया। आगन्तुक को देखते ही मुरा उठकर खड़ी हो गई। माँ कुछ प्रश्न करे इससे पहले ही चन्द्र ने कहा—“ये एक अतिथि हैं। मैं साथियों के साथ जहाँ खेल रहा था वहाँ ये पास ही एक पेड़ के नीचे बैठे थे और पेड़ के कच्चे आम जो आँधी से टूट कर नीचे गिर पड़े थे, उठा-उठाकर खा रहे थे। मैंने इनसे जाकर कहा, 'आप कच्चे आम खाये चले जा रहे हैं, इस बुरी तरह से कच्चे आम खाकर आप बीमार पड़ जायेंगे'।”

इस पर ये बोले—‘भूख में मनुष्य को जो भी मिलता है वह पशु की तरह खाने लगता है। मुझे दूर जाना है, चलता-चलता थक गया, सामान रास्ते में डाकुओं ने छीन लिया। इसलिए सोचा कि थोड़ी देर यहाँ विश्राम कर लूँ, फिर चलूँगा।’

“माँ! भला यह कैसे हो सकता है कि जहाँ हम रहते हों वहाँ कोई भूखा रहे और पेड़ के नीचे विश्राम करे। ला माँ! इनके लिए



भोजन ला, इनको भोजन आदि से निवृत्त कर दूँ। फिर देखता हूँ किन डाकुओं ने इनके कपड़े छीने हैं। साथियों के साथ जाकर मैं उनका नाम मिटा दूँगा।”

बालक की बात सुन मुरा हल्की-सी मुस्कराई और फिर अतिथि की ओर निहारती हुई बोली—‘आप विश्राम कीजिये, मैं अभी भोजन तैयार करती हूँ।’

विराजते हुए आगन्तुक ने कहा—‘देवि! तुम्हारा पुत्र बहुत ही होनहार है। इसे खेलता देख मैं कौतुकवश रुक गया। यह राजा बना हुआ था और धर्मपूर्वक राजाज्ञाएँ दे रहा था। मैंने कौतूहलवश परीक्षा की भावना से जो कुछ इसने कहा वह किया है। वस्तुतः मैं तक्षशिला विश्वविद्यालय का एक आचार्य हूँ। कुलपति की आज्ञा से विद्यार्थियों के साथ देशाटन के लिए निकला हूँ। यहाँ से पाँच-छह कोस की दूरी पर हमारा शिविर पड़ा है। कल हम दार्जिलिङ्ग की ओर कूच करेंगे और आगामी ज्येष्ठ मास के अन्त तक विश्वविद्यालय वापस चले जायेंगे। मेरी इच्छा है, तुम इस बालक को तक्षशिला विश्वविद्यालय में भेज दो।’

**मुरा**—विश्वविद्यालय भेजने का निश्चय तो पूर्व ही हो चुका है। अवकाश समाप्त होते ही चन्द्र वहाँ अध्ययन करने लगेगा। क्या आप अपना शुभ नाम बताने की कृपा करेंगे?

‘मेरा नाम आचार्य विष्णुगुप्त है। विश्वविद्यालय में मैं इस बालक को सर्वयोग्य बनाने में पूरा प्रयत्न करूँगा। अच्छा, अब मैं चलूँगा। देवि! वटुकवृन्द प्रतीक्षा कर रहे होंगे।’ विष्णुगुप्त ने चलने का प्रयत्न करते हुए कहा।

**मुरा**—आपके आशीर्वाद के शब्द मेरे लिए वरदान हैं। मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूँगी जिस दिन चन्द्र मेरी आशा के अनुसार इस देश का प्रकाशमान पुरुष होगा।

‘ऐसा ही होगा।’ कहकर विष्णुगुप्त चल दिये और चन्द्र उन्हें छोड़ने बहुत दूर तक साथ आया। बालक तो और दूर तक साथ चलता रहता, पर विष्णुगुप्त ने उसे विदा कर दिया।

चन्द्र वापस अपनी कुटी की ओर तथा विष्णुगुप्त बालक के बारे में सोचते हुए शिविर की ओर बढ़ चले।

बात की बात में लम्बे-लम्बे डग भरते हुए आचार्य विद्यार्थियों के बीच में आ गये। आचार्य को देखते ही विद्यार्थी प्रसन्नता से उछल पड़े। स्नेह और श्रद्धा से आनन्दित होते हुए उन्होंने कहा—‘आज भ्रमण में इतनी देर कहाँ लगा दी आचार्य! भागुरायण आदि आपको देखने गये हुए हैं। हमें चिन्ता हो गई थी। यहाँ आसपास का स्थान भयंकर है। मनुष्यभक्षी जंगली जानवर इधर बहुत हैं।’

**विष्णुगुप्त**—मनुष्य से बड़ा भक्षक संसार में कोई नहीं है। मुझे जानवर से इतना भय नहीं जितना मनुष्य से है। शार्ङ्गरव! भागुरायण यह समझ कर कि आचार्य उपासना के लिए मन्दिर में चले गये होंगे, उधर ही गया होगा। वह हमें वहाँ न पाकर कहीं और ढूँढ़ने न निकल जाये, अतः तुम उसे बुला लाओ।

**शार्ङ्गरव**—अभी बुलाकर लाता हूँ गुरुदेव! निपुणक ने भोजन तैयार कर लिया है, आप इतने आहार कर लीजिये।

**विष्णुगुप्त**—तुम फिर भूल गये शार्ङ्गरव! हम अग्नि पर तैयार किया हुआ भोजन नहीं करते। श्रद्धा के वशीभूत होकर जान पड़ता है तुम जानकर भूल जाते हो। लेकिन यह मत भूलो तुम्हारा आचार्य अपने सिद्धान्तों को कभी नहीं भूलता। हमारे लिए कोई शिष्य फल तोड़कर लाया है ?

एक साथ कई छात्रों के मुँह से निकला—फल आ गये आचार्य!

**विष्णुगुप्त**—तो शार्ङ्गरव भागुरायण को बुला लाये, फिर हम सब साथ ही भोजन करेंगे। शार्ङ्गरव! जाओ, शीघ्र भागुरायण को ले आओ!

शार्ङ्गरव चलने लगा, पर सेवक भासुरक ने जरा मुँह बनाते हुए कहा—‘बहुत जल्दी आना शार्ङ्गरव! भूख के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। दोपहर को केवल सोलह रोटियाँ खाई थीं, तब से अब तक रोटियों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज तो फिर खीर, बाटियाँ और चूरमें के लड्डू बने हैं। भगवान की शपथ, कितनी ही बार मुँह में पानी आ चुका है। इन गुरुदेव की तो बात ही क्या है, स्वयं भूखे रहते हैं और सब को भूखा मारते हैं। आचार्य जी! आपकी सब बातें अच्छी लगती हैं पर मुझ पर दया करके खाने-पीने की बात में आप अपनी क्रूरता त्याग दें तो इस ब्राह्मणों के ब्राह्मण का भला हो जाये।

शार्ङ्गरव यह कहता हुआ चला गया—‘आचार्य! जब तक हम वापस न आयें, तब तक इसे अपने पास ही बैठाये रखना, नहीं तो यह



पेटु हम सब के भाग्य की एक कण भी नहीं छोड़ेगा। इस पेटु से परमात्मा बचाये! पता नहीं भागुरायण इस मृत्यु के कुएँ को कहाँ से पकड़ लाया है।'

शार्ङ्गरव चला गया और आचार्य भासुरक की ओर हँसते हुए बोले—'क्या रे, तुझे भसकने के अतिरिक्त और कुछ भी आता है?'

**भासुरक**—'परम गुरु जी! मुझे आता तो बहुत कुछ है, पर आया कुछ भी नहीं और इसका कारण यह है कि जब मेरी माँ ने मेरे पिता जी का श्राद्ध किया और उसमें जो न्यौता खाने वाले ब्राह्मण आये तो मैंने देखा कि वे कटोरे पर कटोरे खीर के चढ़ाये जा रहे हैं तथा मेरी माँ भी उनके आगे हाथ जोड़ प्रसन्नता से उन देवताओं को खीर खिलाये ही जा रही है। गुरु जी! मुझे बड़ा क्रोध आया। मैंने सोचा कि श्राद्ध तो मेरे पिता का है, तो क्या मेरे पिता की सारी सम्पत्ति इन देवताओं के पेटों में उतर जायेगी! मैंने सोचा यह बात कुछ भी नहीं, सम्पत्ति इनके पेट में उतर जाये तो भले ही उतर जाये, पर इन भले ब्राह्मणों को यह तो सोचना चाहिये कि भासुरक ने अभी तक भोजन नहीं किया है। मुझे भय होने लगा कि मेरे भाग की सारी खीर ये ही साफ कर जायेंगे और हुआ भी यही। मेरे लिए खीर नहीं बची। मुझे माँ पर बड़ा क्रोध आया, बस मैं माँ से लड़ पड़ा और घर से निकल गया। थोड़ी देर बाद जब भूख लग गई तो चट से चुटकी बजाई और माथे पर चन्दन लगाया एवं निश्चय किया कि बस न्यौते खाना सीखो। श्राद्धों के दिनों में यह व्यापार बहुत तेजी से चलता है। मैं भी दस-दस जगह जीमता था और हर जगह प्रकट करता था कि बड़ा पवित्र ब्राह्मण हूँ। लेकिन गुरुदेव! श्राद्धों के बाद न्यौते मिलने बन्द हो गये। हारकर सेवावृत्ति अपनाई, पर पेट नहीं भरा। आपसे एक प्रार्थना है, आप भोजन करते नहीं, अपने भाग का मुझे दे दिया करो। आपका यही तो नियम है कि आप भोजन नहीं करेंगे। यह तो बड़ी अच्छी बात है, और भी दो-चार शिष्य अपने साथ ऐसे बना लीजिए। किन्तु तभी जब मुझे जिमाकर पुण्य प्राप्त करने की इच्छा हो।'

भासुरक का भाषण सुन आचार्य के पेट में बल पड़ने लगे। उन्होंने हँसते-हँसते कहा—बस भासुरक! बस, कहीं तुम्हारे भूख के भाषण से हमारे पेट में भूख न जाग उठे।

**भासुरक**—बहुत अच्छा होगा गुरु जी! वैद्य लोग कहते हैं कि

जिसकी भूख मर जाती है उसकी जल्दी ही राम-राम सत्य हो जाती है।

आते हुए भागुरायण और शार्ङ्गरव ने भासुरक की बात सुन ली और उसकी खोपड़ी पर एक चपत जमाते हुए बोले—मूर्ख! खोपड़ी ठिकाने है या खराब हो गई?

खोपड़ी पर हाथ फेरता हुआ भासुरक बोला—खराब होने ही वाली थी कि चपत लगने से ठीक हो गई।

उत्तर सुनते ही भागुरायण और शार्ङ्गरव भी हँस पड़े, फिर भोजन के लिए विराजमान हो गये। भासुरक भी हाथ धोकर भोजन-भक्षण करने लगे।

भासुरक को जल्दी-जल्दी खाते देख भागुरायण ने कहा—तनिक शान्ति से खाओ भासुरक! भोजन कहीं भाग नहीं रहा है।

**भासुरक**—भोजन तो नहीं भाग रहा है, पर आप सब लोग तो भोजन करके शीघ्रातिशीघ्र भागने वाले हैं। आपके साथ इस तेजी से खाने पर भी मेरे उदर का अष्टम भाग भी नहीं भरेगा।

**शार्ङ्गरव**—चिन्ता न करो भासुरक! भोजन बहुत है, आज के संसार में अन्न का अकाल नहीं है, चाहे तुम खाली घी पियो।

**भासुरक**—जय हो, जय हो, जय हो! बस घी में थोड़ी बूरा और मिला दो।

हास्य के वातावरण में सभी पर्यटन में आये हुए छात्रों ने स्वाद से भोजन किया। यद्यपि भासुरक सबसे अधिक खाता था पर आज और भी भासुरक से पीछे न रहे। भोजनोपरान्त विष्णुगुप्त ने कहा—“भ्रमण केवल आनन्द के लिए नहीं होता, घूम फिर कर दुनिया देखी जाती है और दुनिया में रहना सीखा और सिखाया जाता है। कहो भागुरायण! भ्रमण में क्या देखा?”

**भागुरायण**—प्रथम तो देखा यह हरा-भरा देश, और फिर देखी इस देश की बिखरी हुई दशा, भिन्न-भिन्न धर्म, भिन्न-भिन्न जातियाँ, भिन्न-भिन्न राज्य! यह घातक व्यवस्था और यह सुन्दर देश! उत्थान और पतन का यह संगम नहीं भाया गुरु जी!

**विष्णुगुप्त**—तुम्हारे उत्तर से हम बहुत प्रसन्न हुए भागुरायण! तुम्हें ईश्वर ने प्रखर बुद्धि और गिद्ध-दृष्टि दी है। अच्छा देखा, हमें इस



मास के अन्त तक तक्षशिला अवश्य पहुँच जाना है। अतः प्रस्थान शीघ्र ही करना है। अश्व पर्याप्त विश्राम कर चुके हैं।

**भागुरायण**—प्रातः हम यह पड़ाव छोड़ देंगे और सुविधापूर्वक भ्रमण करते हुए मासान्त तक अवश्यमेव तक्षशिला पहुँच जायेंगे।

**विष्णुगुप्त**—मुझे अपने शिष्यों पर बड़ा अभिमान है।

शार्ङ्गरव आदि सभी शिष्यों ने एक ही स्वर में कहा—हम जो कुछ हैं आपके चरणों की धूल से हैं पूजनीय! आप में पितृतुल्य और मातृतुल्य प्रेम का संगम है गुरुदेव! आपसे यदि हमें शिक्षा न मिलती तो हम मनुष्य होकर भी राक्षस ही रहते।

**विष्णुगुप्त**—मुझे तुम सब में अमृत दिखाई देता है।

**शार्ङ्गरव**—क्योंकि हम सबका विष आपने पी लिया है आचार्य! कहीं आचार्य परमानन्द हमें निरन्तर पढ़ाते रहते तो निश्चित ही हम विष के पात्र बन जाते।

**विष्णुगुप्त**—दुष्ट चाहे कितना भी गुणी हो पर वह त्याज्य ही है। परमानन्द गुणी अवश्य था पर धूर्त उससे भी अधिक, तभी तो उसने अपने कर्मों का फल भोगा। आज वह सबकी दृष्टि में घृणा का पात्र बना हुआ है। कैसा विचित्र संसार है यह! समुद्र में जिस प्रकार अमृत और विष दोनों हैं, उसी प्रकार हमें अमृत के रूप में आचार्य पुण्डरीकाक्ष और विष के रूप में परमानन्द मिले।

**भागुरायण**—शिव के लिए विष और अमृत समान हैं आचार्य! आप तो शिव की तरह साँपों में रहते हैं, पर सर्प आपके आगे विष नहीं उगल पाते।

**विष्णुगुप्त**—संसार में साँपों से खेलना पड़ता है। जीवित वे ही रह पाते हैं जो उनके फणों से सावधान रहते हैं। साँपों से खेलो और उनके प्रभाव से बचे रहो।

कुछ देर और आचार्य से बातें करने के बाद कुछ सो गये और कुछ जागते रहे। प्रातः निवृत्त सब अपने-अपने अश्वों पर सवार हो गये। हवा से बातें करते हुए घोड़े दौड़ाते अभी यहाँ तो अभी वहाँ दिखाई देने लगे। भ्रमण का आनन्द भोगते हुए पर्यटक उचित समय पर तक्षशिला आ पहुँचे।

विश्वविद्यालय में पहुँचकर शिष्य अपने-अपने निवास में चले

गये और विष्णुगुप्त पुण्डरीकाक्ष की कुटिया पर आये। विष्णुगुप्त को देखते ही वयोवृद्ध आचार्य पुण्डरीकाक्ष अपने आसन से खड़े हो गये। विष्णुगुप्त ने उनके चरणों का चन्दन अपने माथे से लगा श्रद्धा से कहा—  
मैं तो आपका अत्यन्त तुच्छ शिष्य हूँ, आचार्य!

**पुण्डरीकाक्ष**—यही तो तुम्हारी महानता है, जिसकी विश्वविद्यालय का प्रत्येक छोटा-बड़ा प्रशंसा करता है। तुम आयु में हमसे छोटे हो, पर शिक्षा हमसे अधिक प्राप्त कर चुके हो। गुरु तो गुड़ ही रहे और चले शक्कर हो गये। तुम फूलो-फलो, इसमें हमारा गौरव है। तुम्हें यदि हम ही आदर और प्रोत्साहन नहीं देंगे तो फिर पराये तुम्हारा सम्मान क्यों करेंगे!

**विष्णुगुप्त**—मेरा रोम-रोम आपका ऋणी है, आचार्य! यदि आपका वरद हस्त मेरे शीश पर न होता तो विष्णुगुप्त आज आचार्य विष्णुगुप्त न होता।

**पुण्डरीकाक्ष**—प्रतिभाशाली शिष्य को पाकर गुरु भी धन्य हो जाता है। ईश्वर तुम्हारी कीर्ति अक्षय रखे! अब हमारा तो विश्राम-काल है, तुम्हारी विद्या से प्राणीमात्र का कल्याण हो! और हाँ, विष्णुगुप्त! मुझे हृदय-विदारक दुःख के साथ यह सुनना पड़ रहा है कि तुम्हारे पर्यटन-काल में तुम्हारे पिता सदृश गुरु मोहनस्वामी का स्वर्गवास हो गया। संसार से हमारा सर्वाधिक प्रिय सखा और तुम्हारा पितातुल्य गुरु विदा हो गया। जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु निश्चित है। लेकिन मनुष्य तो मनुष्य ही है, उसे मृत्यु का दुःख छाती पर पत्थर रखकर सहना पड़ता है।

पुण्डरीकाक्ष एक श्वास में ही यह सब कहते चले गये और विष्णुगुप्त मोहनस्वामी की मृत्यु का समाचार सुनते ही पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े रह गये, जैसे उन्हें काठ मार गया हो। थोड़ी देर बाद उनके कंठ से निकला—‘मृत्यु कितनी कठोर होती है! देवता भी इसकी भूख से नहीं बचते। कितने महान् थे गुरुदेव!’

कहते-कहते विष्णुगुप्त ने अपनी उँगलियों से अपने आँसू पोछे और फिर संसार के कठोर नियमों में लग गये। महीनों तक उनकी आँखों के आँसू न सूखे। किसी को कितना भी बड़ा दुःख हो, पर समय और संसार भुला देता है।

X

X

X



विष्णुगुप्त अध्ययन और अध्यापन में उलझ गये। विश्वविद्यालय के हर विद्यार्थी और हर विद्वान् की वाणी से विष्णुगुप्त की प्रशंसा सुनाई देने लगी। दूर-दूर से आये हुए राजकुमार उनकी चरण-रज मस्तक पर लगा अपना माथा ऊँचा मानते थे। उनके रचे 'अर्थशास्त्र' के सूत्र आचार्यों की वाणी से सुनाई देते थे। कुलपति ने उन्हें 'राजनीति विशारद' की उपाधि से सम्मानित किया। होनहार विद्यार्थी आचार्य विष्णुगुप्त के बड़े भक्त हो गये। हवा की तरह दिन बीते। राजकुमार शिक्षा प्राप्त कर योग्य हुए। तक्षशिला कुमार आम्भी, मालव कुमार सिंहाक्ष तथा चन्द्रगुप्त जैसे होनहार विद्यार्थी विश्वविद्यालय की ज्योति की तरह जगमगा उठे।

एक दिन जब आचार्य इन तीनों राजकुमारों का शस्त्र-कौशल देख रहे थे तो आम्भी अपनी हार से चिढ़ गया। वह तलवार खींच प्रत्यक्ष युद्ध के लिए उद्यत हो गया। वह चन्द्रगुप्त पर वार करना चाहता था कि सिंहाक्ष ने अपनी तलवार पर उसकी तलवार रोक ली।

विष्णुगुप्त ने मुस्कराते हुए कहा—वीर यदि मूर्ख हो तो वह अपना ही सिर काट लेता है। आम्भी! तुम रणकुशल तो हो पर वार करते हुए यह भूल जाते हो कि तलवार की धार किसकी गर्दन पर गिर रही है।

**आम्भी—**क्षमा कीजिए, गुरुदेव!

**विष्णुगुप्त—**तुम जितने कठोर हो उतने ही मृदुल भी। तुम तीनों रणकुशल हो और राष्ट्र को आज इसकी आवश्यकता भी है। पता नहीं किस समय विदेशियों की तलवारें इस देश की सीमा पर चमक उठें।

'चमक उठें नहीं, चमक उठीं हैं आचार्य!' सहसा घबराये हुए भागुरायण ने प्रवेश करते हुए कहा—'यूनानी आक्रान्ता सिकन्दर मारकाट करता आगे बढ़ा चला आ रहा है। उसने सिन्धु नदी पार कर ली, गाँव-गाँव उसके आतंक से काँप उठा है, नागरिक घर छोड़-छोड़ कर भाग रहे हैं। अब क्या होगा?'

विष्णुगुप्त ने माथे पर हाथ रखकर एक पल कुछ सोचा और फिर कहने लगे—'अभी भारत की भुजाओं में बल है। पर बुद्धि उससे भटक गई है। जो होने वाला है उसे रोकने का प्रयत्न करेंगे और जो हो जायेगा उसे बदल कर रहेंगे।'

आचार्य यह कह ही रहे थे कि शार्ङ्गरव ने जलप्लावन की तरह

आते हुए कहा—“विनाश हो गया आचार्य! सिकन्दर भूखे भेड़िये की तरह बढ़ा चला आ रहा है। तक्षशिला के आस-पास उसने अधिकार कर लिया। कुछ देर जा रही है कि तक्षशिला की ईंट से ईंट बज जायेगी और यह विश्वविद्यालय के शिखर पर लहराता हुआ ध्वज धूलि में पैरों से कुचलता हुआ दिखाई देगा। आचार्यावर्त की संस्कृति पर तूफान आ रहे हैं!”

सिंहाक्ष और आम्भी ने अपनी-अपनी तलवारें खींची और आँखें लाल करते हुए बोले—‘आज्ञा हो गुरुदेव! हम सिकन्दर को बता दें कि भारत का लोहा ठंडा नहीं हो गया है।’

**विष्णुगुप्त**—इस समय यह करना मृत्यु के मुँह में जाना है। तुरन्त ही तुम वेश बदलकर सिकन्दर के डेरों के आस-पास लगे रहो और उसकी सेना की गतिविधि का पता लगाओ! सेना के आँकड़े लो और सुरक्षित रहो! शत्रु पराजित करने के लिए शत्रु की सैनिक शिक्षा भी समझो! समय से पहले जो क्रान्ति होती है उससे अपना ही नाश होता है। जाओ और शीघ्र अपना-अपना काम करो तुम स्वयं पटु हो, मैं क्या कहूँ! जीवन के इस पार या उस पार जाना ही जीवन का प्रमाण है।

‘वह देखो, सिकन्दर के घोड़ों की टापें सुनाई दे रही हैं। हट जाओ और जैसे भी बच सको बचो!’

आचार्य की शिक्षा पाते ही शिष्य नौ दो ग्याराह हो गये और आ पहुँची सिकन्दर की सेना विश्वविद्यालय के द्वार पर। आगे-आगे सिकन्दर और पीछे-पीछे उसकी रणबाँकुरी सेना! गर्जते हुए सिकन्दर ने कहा—‘यह कोई विशाल केन्द्र जान पड़ता है, अधिकार कर लो इस पर!’

लेकिन द्वार पर खड़े ब्राह्मण ने उसका रास्ता रोकते हुए कहा—जान पड़ता है यूनानाधिपति संसार के सौन्दर्य को नष्ट करने आया है। हमने सुना है सिकन्दर विजेता है, पर हम देख रहे हैं कि वह हत्यारा भी है।

सिकन्दर ने तीक्ष्ण आँखों से ब्राह्मण को देखा और कहा—तुम कोई वीर जान पड़ते हो, पर तुम्हारे पास पहचानने वाली आँखें नहीं हैं।

**ब्राह्मण**—कानों सुनी बात में भ्रम हो सकता है, पर आँखों देखी बात गलत नहीं हो सकती। सिकन्दर विश्व का सबसे महान् शिक्षा-



केन्द्र नष्ट करना चाहता है। तुम्हें क्या पता कि तुम्हारे भय से काँपते हुए कितने शिशु और स्त्रियाँ इस विद्यालय में शरण पा रहे हैं। यदि तुम्हारे पास हृदय है तो उन पर दया करो और अपने घोड़ों का मुँह राजदुर्गों की ओर मोड़ो! कला-केन्द्रों को नष्ट न करो! ये आज नष्ट हो सकते हैं, लेकिन इनका निर्माण सहस्रों वर्षों में भी नहीं होगा।

सिकन्दर ने आँखें झुकाकर अपनी सेना का मुँह फेर दिया और ब्राह्मण विष्णुगुप्त अपनी कुटी में आ गये। विश्वविद्यालय में न कोई शिशु था, न नारी; किन्तु कितना सत्य था इस असत्य में।

सिकन्दर बड़ा जा रहा था और विष्णुगुप्त सोच रहे थे।

□□

आग धधक उठी। आँधियों से लपटों का वेग बढ़ने लगा, किन्तु आँखों के पानी ने कहा—‘अब आँसुओं ने रूप बदल लिया है। पीड़ा के झरने शोणित के बादल बनकर बरसेंगे।’

झेलम तट पर सिकन्दर की सेना पड़ी थी और उससे दूर पेड़ों की आड़ में छिपा हुआ एक युवक ताड़पत्र पर कुछ लिख रहा था। उसकी आँखें सिकन्दर के शिविर की ओर थीं और लेखनी ताड़पत्र पर चल रही थी। उसने लिखा—‘सात वाहिनी, जिसमें रथ और हाथी नहीं, पाँच प्रत्ना, चार चमूक, दो अनीकिनी। इस प्रकार लगभग एक अक्षौहिणी सेना सिकन्दर के साथ है। सेना में अधिकांश सैनिक बल्लमधारी हैं। प्रधान सेनापति सेल्यूकस तथा शेष अन्य सेनापति बड़े बलवान और सतर्क हैं। सिकन्दर के साथ गुप्तचर विभाग भी है। सभी सैनिक सिर हथेली पर रखकर आये हैं। आग, पानी, तूफान किसी से भी उनको भय नहीं है। तूफानी वर्षा में वे डेरों के खूँटे स्वयम् पकड़-पकड़ बैठ जाते हैं और डेरा गिरने नहीं देते।’

लिखते-लिखते युवक ने देखा कि किसी एक विशेष ध्वनि के होते ही सिकन्दर की सेना ने बात की बात में डेरे उखाड़ लिये और कुछ ही देर बाद आगे-आगे सिकन्दर और पीछे-पीछे उसकी सेना नदी पार करती दिखाई देने लगी। यह क्या? अँधेरी रात और वेग से बहती हुई इस तूफानी नदी को सिकन्दर पार कर रहा है, उस नदी को जिसे बड़े-बड़े सन्तरण दिन में भी पार करते हुए काँप उठते हैं।

युवक यह सोच ही रहा था कि पीछे से एक नौजवान ने ललकारते हुए कहा—‘कौन है तू?’

युवक ने सहसा सावधान होकर तलवार की मूठ पर अपना हाथ रखा और सामने होकर आवेश में उत्तर दिया—‘क्यों पूछना चाहता है तू?’

**नौजवान**—यह भी तुझे अभी पता हो जायेगा। चुपचाप मेरे साथ चलो चल।

**युवक**—कहाँ?



**नौजवान**—बन्दी बनकर सिकन्दर के सामने ।

**युवक**—तो तुम सिकन्दर के सिपाही जान पड़ते हो ।

**नौजवान**—सिकन्दर की सेना के आस-पास दस-दस मील तक परिन्दा भी पर नहीं मार सके, इसलिए सावधान रहते हैं ।

युवक ने मन ही मन सोचा, 'बड़ा मूर्ख है यह सिपाही ! हमें बिना बताये ही यह पता चल गया कि सिकन्दर इतना सतर्क रहता है ।' और फिर हुँकारता हुआ बोला—सम्भवतः तुम्हें यह पता न हो कि झेलम के पार पंचनद के राजा पुरु सिकन्दर से भी अधिक सतर्क हैं । उनके गुप्तचर दूर-दूर तक फैले रहते हैं । अभी मेरे पास एक दूसरा कोई आया था जो अपने आपको पुरु का भेदिया बता रहा था । जब उसे यह विश्वास हो गया कि मैं सिकन्दर का सहायक नहीं हूँ तो वह दूसरी ओर चला गया । उसे गये अधिक देर नहीं हुई है ।

**नौजवान**—बातें न बना, चुपचाप बन्दी बनकर चला चल, नहीं तो खोपड़ी भूमि पर लुढ़कती नजर आयेगी ।

युवक को आवेश आ गया, पर उसने अपना संतुलन रखते हुए कहा—क्या सिकन्दर की सेना में ऐसे वीर हैं जो इस खोपड़ी को छू सकें ? तलवार हमारे पास भी है नौजवान !

आगे कुछ कहने से पूर्व ही युवक ने म्यान से तलवार खींच सावधान होते हुए कहा—अपनी तलवार की परीक्षा कर ले !

नौजवान अंगारे की तरह लाल हो गया । उसने तलवार का एक भरा हुआ वार युवक पर किया । युवक पहले ही सावधान था । वह तलवार के वार के विपरीत हवा की तरह उछल कर दूसरी ओर आ गया और तलवार पेड़ से टकराकर टूट गई ।

तलवार के टूटते ही नौजवान भाग और चन्द्रगुप्त ने उसका पीछा किया । कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद उसने देखा कि सिकन्दर के सिपाही बहुत दूर-दूर नहीं हैं, अतः वह पीछे लौटा और पेड़ से बँधा अपना घोड़ा खोल सवार हो गया । हवा से बातें करता हुआ युवक चन्द्रगुप्त आचार्य विष्णुगुप्त की कुटी के पास आकर रुका ।

विष्णुगुप्त उस समय भारतवर्ष का चित्र देख रहे थे । चन्द्रगुप्त को देख वे चित्र देखते हुए ही गम्भीरता से बोले—आओ चन्द्र ! कहो क्या समाचार है ?

आचार्य के चरण छू चन्द्र ने कहा—समाचार अच्छे नहीं हैं, गुरुदेव ! तक्षशिलाधीश ने सिकन्दर के सामने आत्मसमर्पण कर दिया । सिकन्दर ने उसे बहुत से लालच देकर अपना सहायक बना लिया है । तक्षशिलाधीश की सहायता से सिकन्दर ने झेलम नदी पार कर ली है । सिकन्दर लोहे का अद्भुत मनुष्य मालूम होता है । वह रात्रि में ही नदी पार करने के लिए जल में कूद पड़ा । सिकन्दर के पास बहुत-सी सेना है तथा और यहाँ के और भी राजाओं से उसे सहायता मिल गई है । सिकन्दर के साथ जितनी सेना है उससे अधिक बौद्धिक बल है । उसके साथ एक सतर्क गुप्तचर विभाग भी है ।

**विष्णुगुप्त**—क्या तुम्हारा अध्ययन है कि तक्षशिलाधीश ने सिकन्दर से डरकर आत्मसमर्पण किया है ? विश्वास नहीं होता कि तक्षशिलाधीश जैसा विजयी वीर भय से पराजय स्वीकार कर ले ।

**चन्द्र**—इसमें रहस्य कुछ और भी प्रतीत होता है गुरुदेव ! जान पड़ता है कि तक्षशिलाधीश जान-बूझकर सिकन्दर से मिला है । महाराज पुरु से वैमनस्य की आग बुझाने का उसके लिए यह एक सरल उपाय हो सकता है ।

**विष्णुगुप्त**—हो सकता है नहीं है, इस देश को बाहर की आँधी से इतना भय नहीं, जितना कि घर की आग से डर है । और आम्भी कहाँ है ?

**चन्द्र**—बहुत समझाने पर भी जब तक्षशिलाधीश सिकन्दर से युद्ध के लिए तैयार न हुआ हो तो आम्भी क्रुद्ध होकर आपके आदेशानुसार यत्नशील है ।

**विष्णुगुप्त**—तुम्हें शीघ्रातिशीघ्र पंचनद जाना है । तक्षशिलाधीश चाहे विदेशियों का सहायक बन गया हो, पर महाराज पुरु कभी विदेशी के सामने नत-मस्तक न होगा । लेकिन बिचारा इतनी बड़ी सेना से युद्ध भी कहाँ तक करेगा ! हाँ तो चन्द्र ! तुम्हें सिकन्दर की सेना और नीति का इतना अध्ययन करना है जितना कि स्वयं सिकन्दर को भी न हो । हो सके तो सिकन्दर की दृष्टि में उसके विश्वासपात्र बन जाना, पर सावधानी से ।

**चन्द्र**—पर मुझे तो सिकन्दर के एक सैनिक ने पहचान लिया है गुरुदेव ! मेरे उसके दो-दो हाथ भी हो चुके हैं ।

**विष्णुगुप्त**—यह तुमने भूल की चन्द्र ! पर फिर भी तुम्हें सिकन्दर



की चाल-ढाल पर कड़ी दृष्टि रखनी पड़ेगी। तुम वहाँ जाओ और यह ध्यान रखना कि तुम्हें बड़ी शान्ति से कार्य करना है। तलवार खींचने की परिस्थिति न आये। जहाँ तक हो उस सैनिक की आँखों से सतर्क रहना। सम्भव है मुझे भी तक्षशिला छोड़कर जाना पड़े। अतः समय से पूर्व ही भेद प्रकट न होने पाये।

आचार्य का आदेश गाँठ में बाँध किसी तरह चन्द्र ने रात काटी और अरुणोदय से पूर्व वेग से बहती हुई झेलम नदी के किनारे पहुँच गया।

सरिता के वेग को ललकारता हुआ चन्द्र उसके वक्ष पर कूद गया और तैरता हुआ दूसरे तट पर आ गया।

सिकन्दर की तूफानी सेना सीमा पर डेरा डाले पड़ी थी। यूनान का श्वेत ध्वज हवा में फहरा रहा था और दूसरी ओर ललकारता हुआ लहरा रहा था पुरु के दुर्ग पर केसरी ध्वज।

चन्द्रगुप्त ने कुशलता से अपने पग बढ़ा किनारे पर एक झोंपड़ी में अपना स्थान बनाया। वह झोंपड़ी चन्दन लगाने वाली किसी वृद्धा ब्राह्मणी की थी। चन्द्रगुप्त वहाँ रहा और सिकन्दर तथा पुरु के भीषण युद्ध-दृश्य देखने लगा।

पुरु की विजय पर वह प्रसन्न होता और सिकन्दर की विजय पर आँसू बहाता। एक दिन झोंपड़ी में उसने बुढ़िया ब्राह्मणी से कहा—माँ! इस युद्ध में किसकी विजय होगी?

**बुढ़िया**—महाराज पुरु की जय होगी। वीर और परोपकारी की क्या कभी पराजय होती है! वीर हारकर भी जीतता है।

**चन्द्र**—कहीं सिकन्दर के आतंक से पुरु हथियार तो नहीं डाल देगा?

**बुढ़िया**—कैसी बातें करता है बेटा! वीर क्या कभी दान में लिए हुए जीवन से जीते हैं, महाराज पुरु प्राण दे देंगे, पर कायरों की भाँति कभी जीना स्वीकार न करेंगे।

और ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन सिकन्दर की अजेय सेना के समक्ष पुरु का शंखनाद सुनाई देने लगा। दोनों ओर के अस्त्र-शस्त्रधारी योद्धा युद्ध-क्षेत्र में मार-काट करने लगे। भीषण युद्ध हुआ। पुरु की सेना ने सिकन्दर के छक्के छुड़ा दिये। सिकन्दर की बड़ी सेना इस युद्ध में हत हुई। पुरु के तीर से उसका प्रसिद्ध घोड़ा बुकेफेलिस युद्ध-स्थल में मर

गया।

कई दिन तक पुरु और सिकन्दर का घोर संग्राम होता रहा, किन्तु अपनों ही के असहयोग तथा विश्वासघात और सिकन्दर की अपार सेना से पुरु लड़ते-लड़ते बन्दी हो गये। पंचनद पर सिकन्दर का अधिकार हो गया। बन्दी पुरु सिकन्दर के शिविर में उपस्थित किये गये। अभिमान से पुरु की ओर देखते हुए सिकन्दर ने कहा—क्यों महाराज पुरु! क्या हाल है ?

**पुरु**—सिकन्दर की हार पर प्रसन्न हो रहा हूँ।

**सिकन्दर**—तो तुम्हारा घमण्ड अभी तक चूर नहीं हुआ।

**पुरु**—यह घमण्ड नहीं, आत्माभिमान है। तुम जिसे जय समझते हो वह तुम्हारी सबसे बड़ी पराजय है। जानते हो तुम किसलिए विजयी हुए ? इतनी बड़ी सेना होते हुए भी तुमने छल और कपट को अपना हथियार बनाया और हम वचनबद्ध थे, इसलिए तुम्हारे प्राण नहीं लिये अन्यथा जब तुम घोड़े से गिरे थे तो क्या हम तुम्हें नहीं मार सकते थे ! और फिर हमारे ही देश के हमारे न हुए, वे स्वार्थ के दास हो गये।

**सिकन्दर**—हम तुम्हारी वीरता के प्रशंसक हैं। बोलो, तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाये ?

**पुरु**—जैसा राजा राजाओं से करते हैं।

सिकन्दर ने मुस्कराकर अपने सेनापति सेल्यूकस की ओर देखा एवं हर्ष से कह उठा—‘संसार में अभी ऐसे वीर हैं जो मैदान हारते हैं पर साहस नहीं हारते। महाराज पुरु ! हम तुम्हारे साहस से खुश हुए। हम तुम्हें अपना दोस्त बनाते हैं। तुम्हारा जीता हुआ राज्य तुम्हें वापिस दिया जाता है। अब हम आगे बढ़ेंगे। बोलो, तुम अपने दोस्त की सहायता करोगे न ?’

पुरु ने मन ही मन में सोचा। पाप की संगत से उसके हृदय में भी पाप आ गया। उसे सुनहरे स्वप्न दिखाई देने लगे—‘मगध के सिंहासन पर बैठा हुआ महानन्द, इन्द्रप्रस्थ की गद्दी पर विराजमान कौरव्य जब मेरे राज्य पर आक्रमण हुआ तो घी के दीप जलाते रहे। फिर क्यों न सिकन्दर के साथ इन जलते हुए दीपकों को बुझाकर अपनी आग ठण्डी करूँ !’

सोचते ही सोचते उसने कहा—‘हम अपने मित्र की जो सहायता बन पड़ेगी करेंगे, पर प्रत्यक्ष नहीं और देश के अहित में भी नहीं।’



उत्तर सुनकर सिकन्दर हर्ष से उछल पड़ा। महाराज पुरु को मुक्त कर वह सेल्यूकस के साथ कुछ परामर्श करता हुआ झेलम के किनारे तक चला गया। सामने से एक ऋषि नदी में स्नान करके चले आ रहे थे। ऋषि को देखकर सिकन्दर ने सेल्यूकस से कहा—‘इन साधु के भी दर्शन करें!’

कहते हुए सिकन्दर और सेल्यूकस ऋषि के सामने आ खड़े हुए। सेल्यूकस ने राजमद में हुँकारते हुए कहा—‘साधु! ये विजयी सिकन्दर हैं, जिसकी रोशनी आज चारों ओर छायी हुई है, जिनके डर से बड़े-बड़े राजा हथियार डाल देते हैं।’

ऋषि ने उनकी ओर से आँखों पर हाथ रखते हुए कहा—‘सामने से हट जाओ, सूर्य का प्रकाश आने दो!’

ऋषि की वाणी में कुछ ऐसा था कि सुनते ही सिकन्दर और सेल्यूकस हट गये ऋषि कुछ कहे बिना ही आगे बढ़ गये। सिकन्दर सेल्यूकस को और सेल्यूकस सिकन्दर को देखते रह गये। तभी चन्दन लगाये एक युवक सामने से आता दिखाई दिया।

सिकन्दर ने उसको देखते ही पूछा—जानते हो ये कौन हैं ?

**युवक**—इनको जो नहीं जानता वह कुछ भी नहीं जानता। ये महर्षि दाण्ड्यायन हैं, इनके तप से सूर्य पृथ्वी को प्रकाश देता है।

कहकर युवक झोंपड़ी की ओर चला गया और सिकन्दर दाँतों तले उँगली दबाता हुआ अपने शिविर में आ गया।

झोंपड़ी में थोड़ी देर पूजा-पाठ कर युवक बाहर निकला और सिकन्दर की सेना के डेरों के समीप छिपकर बैठ गया। वह न जाने छिपा ही छिपा क्या लिख रहा था कि अकस्मात् एक सैनिक ने उसके सीने पर तलवार की नोक रखते हुए कहा—‘उठने का साहस मत कर, नहीं तो तलवार सीने के पार हो जायेगी।’

युवक चन्द्र चौंककर जहाँ का तहाँ ठहर गया। पर दूसरे ही पल वह बोला—मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं, दोस्त हूँ।

**नौजवान**—दोस्त और दुश्मन का भी पता चल जायेगा। इस समय तुम बन्दी हो, हम तुम्हें ग्रीक विजेता सिकन्दर के समक्ष ले चलेंगे।

चन्द्रगुप्त को बन्दी बनाकर नौजवान सिकन्दर के सामने ले आया।

देखते ही सिकन्दर ने कहा—‘यह कौन है गोनस !’

नौजवान गोनस ने गर्व और अधीनता से कहा—‘यह कोई भेदिया जान पड़ता है। हमारी सेना के समीप घने वृक्षों की आड़ में छिपा हुआ हमारे शिविर की ओर बड़े ध्यान से देख रहा था और अपनी भाषा में न जाने क्या-क्या लिख भी रहा था।’

सिकन्दर ने गौर से युवक की ओर देखते हुए कहा—कौन हो तुम ? क्या लिख रहे थे नौजवान !

**चन्द्रगुप्त**—देख रहा था कि सिकन्दर में कौन-सी खूबियाँ हैं जो जय करता बढ़ा चला जा रहा है। खींच रहा था ग्रीक सम्राट् की सेना का चित्र। जानना चाहता हूँ कि क्या बात है जो सिकन्दर की शिकस्त नहीं होती। मैं आप की रण-नीति का अध्ययन कर रहा था।

**सिकन्दर**—किसलिए ?

**चन्द्र**—एक बड़े जनराज्य की स्थापना के लिए, अपने देश से अनाचार उठाने के लिए, एक बड़े सम्राट् से अपनी माता के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए।

**सिकन्दर**—हम तुम्हारी वीरता से खुश हुए। तुम्हारी भावनाओं का हम पर प्रभाव है। बोलो युवक ! कौन है तुम्हारा शत्रु ?

**चन्द्र**—मगधाधिपति महाराज नन्द।

सुनते ही सिकन्दर के मुख पर मुस्कान की किरणें दौड़ गईं। उसने हर्ष से गद्गद होते हुए कहा—चिन्ता न करो युवक ! तुम्हारे शत्रु को जय करने के लिए यह समस्त ग्रीक सेना तूफान की तरह तैयार है।

**चन्द्र**—क्षमा कीजिये विजेता ! मैं किसी विदेशी की सहायता से अपने शत्रु को हानि पहुँचाना नहीं चाहता।

**सिकन्दर**—हम तुम्हें अपनी सेना के एक भाग का सेनानायक बना देंगे और विजय होने पर मगध में तुम्हें अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर देंगे।

**चन्द्र**—मुझे सोचने का अवसर दीजिये !

**सिकन्दर**—तुम मुक्त किये जाते हो और यह समझो कि सिकन्दर तुम्हारा सबसे बड़ा सहायक है। हम तुम्हारी वीरता से बहुत प्रसन्न हैं। हमारा दरबार तुम्हारे लिए हर समय खुला है।

चन्द्रगुप्त मुक्त होकर चले गये और सिकन्दर अपने दरबारियों की



ओर देखते हुए बोले—जिस देश के वीर ऐसे बाँके हों उस देश को सिकन्दर की अजेय सेना ही जय कर सकती है और वह भी इसलिए कि इस देश में फूट घर-घर में फैली हुई है।

**सेल्यूकस**—इस युवक को मुक्त करके शायद हमने भूल की है।

**सिकन्दर**—यह भूल नहीं, उस पर अपना विश्वास जमाना है। वह हमारा मुरीद हो जायेगा और मगध-विजय में हमारी मदद करेगा।

**सेल्यूकस**—मालिक ऐसा ही करे! पर हमारी सेना तो आगे बढ़ने से इन्कार कर रही है।

सिकन्दर ने क्रोध से कहा—यह हम क्या सुन रहे हैं सेल्यूकस! हमारे कान इन्कार सुनने के अभ्यासी नहीं हैं। सिकन्दर की सेना आगे बढ़ने से इन्कार करे, यह तुम क्या कह रहे हो?

**सेल्यूकस**—हाँ मालिक! महाराज पुरु से युद्ध करते-करते हमारी सेना हार चुकी है। सुना है उस ओर महाराज नन्द के महामन्त्री राक्षस ने युद्ध की भीषण तैयारियाँ कर रखी हैं। उसने कितने ही राज्यों का एक संगठन भी बना लिया है। हमारे सिपाहियों का ख्याल है कि पहले आक्रमण में ही हमारी कब्रें बन जायेंगी।

**सिकन्दर**—आश्चर्य है! जबकि महाराज पुरु की शक्ति हमारे साथ है, गान्धार-नरेश हमसे मिल गया और इस चन्द्र जैसे कितने ही हमारे साथ अपनों का गला काटने को तैयार हैं तो फिर भय की क्या बात है?

**सेल्यूकस**—न जाने क्यों मगध के नाम से हमारी सेना काँप उठती है! वह तूफानी सेना जो आग और पानी की परवाह न करते हुए पहाड़ों को फोड़ती चली आई, आज आगे बढ़ने से इन्कार कर रही है।

**सिकन्दर**—सेल्यूकस! हम मृत्यु या जय दो शब्द सुनना चाहते हैं और कुछ नहीं। आगे बढ़ो, जय मिले चाहे मृत्यु!

**सेल्यूकस**—युद्ध पर युद्ध करते हुए हम तुरन्त ही इतनी तैयारी में नहीं हैं कि आगे बढ़ जायें, कुछ समय की आवश्यकता है।

**सिकन्दर**—समय इतना अधिक न हो जाये कि शत्रु हम पर स्वयम् आक्रमण कर दे। सदा आक्रान्ता का पलड़ा भारी होता है।

**सेल्यूकस**—आपके इशारे से तूफान अपनी दिशा बदल देता है। वह दिन दूर नहीं जब आपकी जय का झण्डा सारे आर्यावर्त पर

लहरायेगा।

**सिकन्दर**—हम तुम्हारी हिम्मत की दाद देते हैं। तुम्हारे लोहे की ताकत पर हमारा सिर ऊँचा है सेल्यूकस!

कहते हुए सिकन्दर ने सेल्यूकस के कन्धे पर हाथ रखा और उसे अपने डेरे के भीतर ले आया। खेमे में अपने शाही पलंग पर बैठते हुए सिकन्दर ने कहा—‘तकदीर तदबीर की दासी है। जिसके पैर आगे नहीं बढ़ सकते हम उसे मुर्दा समझते हैं। बढ़ने वाले के साथ हवा भी उसी तरफ बढ़ चलती है। आज हवा हमारे साथ है। भारत वाले हमारा स्वागत करने के लिये हाथ बाँधे खड़े हैं। इस सम्पन्न देश पर यूनान का राज्य होते ही सिकन्दर को सारा संसार जीतने में देर नहीं लगेगी। इस देश में क्या नहीं है। इसकी जमीन से जाफरान की खुशबू निकलती है। ज्ञान, विज्ञान, सोना सभी कुछ तो इस देश में है। सिर्फ इस देश के पास एकता नहीं है, नहीं तो आज यह देश विश्वविजयी होता, सिकन्दर का स्वप्न स्वप्नमात्र ही रह जाता।

‘और हमें इस देश में फूट का विष फैलाए रखना है। गान्धार नरेश हाथ से निकलने न पाये, पुरू के विचारों में परिवर्तन न हो और इन्द्रप्रस्थ के राजा महानन्द से मिलने न पायें।

**सेल्यूकस**—हम सावधान हैं।

**सिकन्दर**—अब तुम विश्राम कर सकते हो।

**सेल्यूकस**—युद्ध के मैदान में और राह में जो सोता है वह अपने हाथों से अपना गला घोट डालता है। विश्राम कैसा हमारे बादशाह! अभी थोड़ी देर के बाद मुझे सेनानायकों से बातें करनी हैं। समय हुआ ही चाहता है।

**सिकन्दर**—तो तुम जाओ।

सिकन्दर भारतवर्ष का चित्र देखने लगे और सेल्यूकस सेनानायकों के शिविर में आ गये।

प्रधान सेनापति ने सबकी ओर देखते हुए कहा—आप सबकी बहादुरी से हमारी कदम-कदम पर जीत हुई है, लेकिन हमें जिस मोर्चे को फतह करना है वह अत्यन्त कठिन है। हमारा अगला मोर्चा गंगा और यमुना तट के उन राजाओं से है जिनके सीनों पर भाले टूट जाते हैं।

सेनानायक फिलिप ने हुंकारा भरते हुए कहा—हम मौत से भी



लड़ सकते हैं सिपहसालार !

**सेल्यूकस**—मुझे तुमसे यही उम्मीद है। मगर हम गुप्त सलाह इसलिए कर रहे हैं कि गैर चाहे कितना ही अपना बन जाये पर वह गैर ही रहता है। अपनी सेना का कोई भी भेद प्रकट न होने पाये और महाराज पुरु या गान्धार नरेश यह समझ भी न सकें कि बादशाह सिकन्दर हमसे कुछ छिपा रहे हैं।

**फिलिप**—यकीन रखिये, ऐसा ही होगा।

**सेल्यूकस**—और देखो, धीरे-धीरे महाराज पुरु तथा अन्य सहयोगी राजाओं को इतना अधीन कर लो कि ये नाममात्र के राजा रह जायें। इनके वस्त्र पर अपना अधिकार न रहे, ये खायें तो हमारा दिया हुआ खायें, ये जिये तो हमारी दया पर जीवित रहें। इनके उठने-बैठने, चलने-फिरने, रहने आदि पर हमारा अधिकार हो।

सभी सेनानायकों के मुँह से एक साथ निकला—मालिक की मेहरबानी से ऐसा ही होगा।

**सेल्यूकस**—आने वाले जुमे को हमने महाराज पुरु की दोस्ती के उपलक्ष में अपने अन्य सहयोगियों को दावत दी है। इस शानदार दावत में कोई कमी न रहने पाये। मेहमानों का ऐसा स्वागत हो कि उनकी आँखें हमारे स्वागत के बोझ से सदा झुकी रहें। अब हम जाते हैं।

सेल्यूकस बाहर आ गये। वे थोड़ी दूर आगे बढ़ेंगे कि उन्होंने देखा एक नौजवान साधु तेजी से उनसे काफी आगे चला जा रहा है। सेल्यूकस ने एक सैनिक को इशारा करते हुए कहा—इस साधु को रोको।

बात की बात में साधु रोक लिया गया और पेश किया गया। सेल्यूकस ने साधु की ओर गौर से देखा। साधु डर कर ऐसा हो गया जैसा उसे साँप सूँघ गया हो।

सेल्यूकस ने कड़क कर कहा—कौन है तू और यहाँ क्यों घूम रहा है?

**साधु**—साधु हूँ बाबा ! मेरी बड़ी सुन्दर पत्नी थी। वह मर गई है। उसके वियोग में मैं साधु हो गया हूँ।

**सेल्यूकस**—यहाँ जिधर देखो उधर साधु ही दिखाई देता है। क्या इस मुल्क में फकीर बहुत हैं ?

**साधु**—यह धर्मप्रधान देश है। इस देश के निवासी आध्यात्मिक होते हैं। हमारे देश में दया धर्म का मूल है, हम प्राणीमात्र को समान मानते हैं। जय हो बाबा! अब हमें जाने दे, गंगास्नान करेंगे। भजन पूजा का समय हो रहा है।

**सेल्यूकस**—चलते हाथ-पैरों फकीर बनना अपराध है, साधु!

**साधु**—हम शास्त्रार्थ नहीं करते बाबा! हमें जाने दे।

सेल्यूकस ने कुछ सोचते हुए कहा—जाओ, पर फिर कभी इस रास्ते से न आना, नहीं तो कत्ल कर दिये जाओगे।

सुनते ही साधु 'बाबा की जय' बोलता हुआ चला गया। बहुत दूर जाने के बाद साधु ने एक स्थान पर बैठकर थोड़ा जल पिया और फिर चल दिया। जब वह लगभग चार कोस पहुँच लिया तो उसे दाढ़ी वाला एक बूढ़ा साधु धूनी रमाये दिखाई दिया। किसी तरह यह युवक साधु उस तक पहुँचा और हाथ की मृगछाला दाढ़ी वाले साधु के ऊपर फेंकता हुआ बोला—'बस, अब मेरे बस की यह नौकरी नहीं है। मैं दिन में चार वक्त खाने वाला दो दिन से भूखा मर रहा हूँ। भाड़ में जाये ऐसी सेवा। यह तो ईश्वर की दया हो गई, नहीं तो यूनानी इस कोमल पेट को भाले की नोक पर टाँग देते। भासुरक अब उधर कभी नहीं जायेगा।'

दाढ़ी वाले बाबा जी ने अपनी झोली से चार बड़े-बड़े लड्डू निकाल भासुरक को देते हुए कहा—दो दिन से भूखा रहना पड़ा तो क्या, अब चार दिन आठ समय प्रतिदिन खा लिया करना। क्रम पूरा हो जायेगा।

**भासुरक**—क्या लड्डू! जय हो स्वामी भागुरायण की! मैं नौकरी नहीं छोड़ूँगा, लड्डू खाते ही तो मुझमें नया जीवन आ जाता है।

**भागुरायण**—तो अब तो बताओ, दो दिन में क्या पत्थर फोड़े?

**भासुरक**—कुछ न पूछिये, दुश्मन की जड़ों तक का भेद निकाल लाया हूँ। लेकिन आग बड़ी भयंकर धधकने वाली है। शीघ्र ही भीषण विस्फोट होगा।

**भागुरायण**—रुको मत, कहते चले जाओ!

**भासुरक**—सारे भारतवर्ष में बारूद बिछाने की तैयारियाँ हैं। एक भयंकर तूफान उठने वाला है। कितने ही देश-द्रोही विदेशी लुटेरों



से मिल गये हैं। गान्धार नरेश, पंचनदाधिपति सिकन्दर के दो बड़े सहायक हो गये हैं। सिकन्दर शीघ्र ही पहला आक्रमण इन्द्रप्रस्थ पर और दूसरा मगध पर करेगा।

**भागुरायण**—तो देर मत करो भासुरक! शीघ्रातिशीघ्र गुरुदेव तक यह सूचना पहुँचनी चाहिए।

**भासुरक**—पर अब तो रात काफी हो गई, पश्चिम का आकाश धुँधला हो रहा है, आँधी आना चाहती है।

**भागुरायण**—आँधी, पानी और तूफान से जो रुकते हैं उन्हें जीने का अधिकार नहीं। सिकन्दर के साहस को देखो! तूफान में भी उसकी सेना आगे बढ़ी चली जाती है। वर्षा से उसके सिपाही रुकते नहीं। और इधर तू है जो तूफान आने से पहले ही काँप रहा है। गुरुदेव को देख, जो सूर्य की तरह तपते हैं।

**भासुरक**—क्षमा करो स्वामी! मैं तैयार हूँ।

सामने से तूफान आया और इधर से भासुरक तथा भागुरायण चल पड़े। अन्धकार इतना अधिक हो गया कि हाथ का हाथ नहीं दिखाई देता था। पर एक-दूसरे का हाथ पकड़े दोनों बढ़ते चले गये। सतलुज नदी के तट पर आकर भागुरायण ने कहा—‘सिर पर तूफान है और पगों में तूफान—सी बहती हुई नदी। साहस मत छोड़ना भासुरक! हमें तूफान बनकर तूफान को पार करना है। देखते क्या हो, कूद पड़ो नदी में और पार जाओ!’

भागुरायण ने कहा और भासुरक फण फैलाती नदी में कूद पड़े तथा दूसरे ही क्षण भागुरायण नदी में कूदे।

तूफान अपनी तेजी से बढ़ रहा था, बहाव अपनी जवानी पर था, अन्धकार ने दिशाओं को बन्दी कर रखा था, पर दो सन्तरण तैरते चले जा रहे थे।

□□

शतद्रु के निर्जन तट पर एक ब्राह्मण सतर्कता से टहल रहा था। उसकी आँखें दूर-दूर तक न जाने क्या देख रही थी! वह इतना सावधान था कि दूसरा कोई उसे देख नहीं सकता था। जब किसी अपरिचित को वह देखता तो तुरन्त आड़ में हो जाता।

किनारे का यह वन दूर-दूर तक फैला हुआ था। देखने वाले को या तो जलराशि दिखाई देती थी अथवा घने वृक्ष। ब्राह्मण की आँखों से प्रतीक्षा झाँक-झाँक कर बार-बार कभी इधर देखती कभी उधर।

देखते-देखते ब्राह्मण ने देखा कि दो साधु दूर से चले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही ब्राह्मण छिप गया और साधु निकट आ गये। इधर-उधर देखने के बाद उनमें से एक साधु ने कहा—पता तो इसी वन का है, पर यहाँ तो दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं देता। कहाँ जायें?

दूसरे साधु ने एक ठण्डी साँस भरते हुए कहा—नदी में डूब मरो और कहाँ जाओगे! ऐसे गुरुदेव यदि देश में दस-बीस पैदा हो जायें तो बैलों के स्थान पर मनुष्य जुतने लगें। बस भागुरायण जी! अपने बस का तो और चलना नहीं।

**भागुरायण**—घबरा मत भासुरक! आज तुझे पेट भर लड्डू खाने को मिलेंगे।

**भासुरक**—लड्डू! सचमुच यह मरते को प्राणदान दे देता है। भगवान जाने मैं अभी मरने वाला था पर तुम्हारे मुँह से लड्डू शब्द निकलते ही मैं मरता-मरता बच गया। अब और दस-बीस कदम चल सकता हूँ।

भासुरक यह कह ही रहा था कि सहसा कड़कड़ाती हुई आवाज आई, 'सीधे लेट जाओ, नहीं तो खा जाऊँगा। बहुत लड्डू खाये हैं तुने।'

सुनते ही भासुरक चारों खाने चित लेट गया और हाँफता हुआ बोला—भागुरायण जी! बचाओ, जान पड़ता है कोई भूत आ गया। वह मुझे खा जायेगा तो फिर लड्डू कौन खायेगा।

**भागुरायण**—भूत है तो क्या बात हुई! तुम इतने लड्डू खाते हो,



एक भूत को नहीं खा सकते ! उठ, खड़ा हो !

और फिर सावधानी से चारों ओर देखते हुए कहा—‘कौन है ? सामने क्यों नहीं आता ?’ कहते-कहते ही भागुरायण ने वस्त्रों के अन्दर से एक चमचमाती हुई कटार निकाल ली ।

भागुरायण को डटा देख भासुरक भी सीना तान कर खड़ा हो गया और बोला—‘इधर आ रे, कौन है !’

‘मैं हूँ ।’ कहता हुआ छिपा हुआ ब्राह्मण बाहर निकल सामने आ गया और भागुरायण ने छुरा अपने कपड़ों में रखते हुए कहा—खोदा पहाड़, निकला चूहा । कहो शार्ङ्गरव ! कहाँ हैं गुरुदेव ?

**शार्ङ्गरव**—यहाँ से दस-बारह कोस पर एक गुप्त स्थान बनाया हुआ है ।

**भासुरक**—गुरुदेव को यहीं बुला लाओ, हमारे बस का वहाँ चलना नहीं है । भागुरायण जी ! यहीं बैठ जाओ ।

**शार्ङ्गरव**—घबराओ मत भासुरक ! गुरुदेव ने तुम्हारे लिए मोतीचूर के लड्डू बना रखे हैं ।

**भासुरक**—यह बात है तो चलो !

शार्ङ्गरव के साथ चक्कर काटते हुए भासुरक और भागुरायण बात की बात में गुरुदेव की कुटी पर आ पहुँचे ।

कुटी कुछ इस ढंग की थी कि जो बाहर से छोटी-सी दिखाई देती थी पर अन्दर प्रवेश करने पर उसके पीछे दूर तक बड़ा मैदान था ।

कुटिया में प्रवेश कर तीनों उस स्थान पर आये जहाँ आचार्य विष्णुगुप्त विराजमान थे । तीनों ने गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम किया । आशीर्वाद का वरद हस्त उठाते हुए गुरुदेव ने कहा—‘कुशल तो है ?’

भागुरायण कुछ उत्तर दें उससे पहले ही भासुरक ने कहा—‘कुशल कहाँ है गुरुदेव ! भूख के मारे पेट कमर में लग गया ।’

गुरुदेव मुस्करा दिये और भागुरायण ने कहा—कुशल कहाँ है गुरुदेव ! पंचनद तक यूनानियों का अधिकार हो गया । सिकन्दर जीत के बाजे बजा रहा है, अब वह सारे भारतवर्ष पर विजय-पताका फहराने के स्वप्न देख रहा है ।

सुनते ही विष्णुगुप्त के माथे में बल पड़ गये । उन्होंने ललाट की रेखाओं को तानते हुए कहा—‘उसका यह स्वप्न पूरा नहीं होगा । पंचनद

तक घूसे हुए यूनानियों को निकालना ही पड़ेगा। शत्रु भयंकर है, लेकिन हाथी के लिए चींटी बहुत होती है। बुद्धि की तलवार से बड़े-बड़े युद्ध जीते जा सकते हैं। चन्द्रगुप्त और सिंहाक्ष भी यहीं हैं भागुरायण! लो आ रहे हैं वे दोनों भी।'

चन्द्रगुप्त और सिंहाक्ष निकट आ गये। गुरुदेव को अभिवादन कर वे विराजे। आचार्य विष्णुगुप्त ने आशीर्वाद देते हुए कहा—'वह दिन आयेगा जब तुम भारत-सम्राट् बनोगे।'

**भासुरक**—तब तो राज्याभिषेक के दिन लड्डू अवश्य बटेंगे, परमगुरु जी महाराज!

**चन्द्र**—पता नहीं पेटू कहाँ से पाल लिया भागुरायण! इसे तो ईश्वर को हलवाई की दुकान का चूहा बनाना चाहिये था।

**विष्णुगुप्त**—“यह समय व्यर्थ नष्ट करने का नहीं है। एक-एक पल मूल्यवान है। चन्द्र तथा अन्य प्रिय शिष्यों! बन्धनमुक्त होने के लिए तन, मन, धन का बलिदान चाहिये। घोर षड्यन्त्र के बिना जाल से नहीं छूट सकते। चन्द्र! सिंहाक्ष! तुम पंचनद में ही रहो, ग्रीकों पर अपना विश्वास जमा कर उनमें भर्ती हो जाओ। यूनानियों के हर पग पर कड़ी दृष्टि रखो और अवसर मिले तो उनके पैर काट डालो। किसी भी तरह यदि यूनानियों में आपस में फूट का बीज फैल जाये तो सफलता और निकट आ जायेगी। महाराज पुरु और गान्धार नरेश के घर में ऐसे घुस जाओ जिस तरह सर्प भूमि में घुस जाता है और दिखाई नहीं देता। शत्रु को मित्र बनाकर सरलता से प्रतिशोध लिया जा सकता है।”

और हम मगध जायेंगे, पूर्वी राजाओं को संगठित करेंगे, वहाँ की जनता में वह आग धधकायेंगे कि जन-जन हुँकार उठेगा, 'विदेशियो, भारत छोड़ो!'

पर यह तभी होगा जब भारत से छोटे-छोटे राज्य मिट जायेंगे और समस्त भारत एक संघ में परिणत हो जायेगा। हम छोटे-छोटे राज्य मिटा कर रहेंगे। मैं मगध जा रहा हूँ और तुम शत्रुओं के घर में रहो।

“भागुरायण, भासुरक और शार्ङ्गरव हमारे साथ चलेंगे। हमें तुम्हारी और तुम्हें हमारी सूचना मिलती रहनी चाहिए। यदि अवसर अनुकूल न देखो तो पंचनद छोड़ तुम भी पाटलिपुत्र आ जाना चन्द्र! उधर से पहाड़ी जातियों का संगठन कर विद्रोह का झंडा उठायेंगे।”



“दुःख है कि भारत इस तरह फूटा पड़ा है कि जोड़ना दुरुह है, किन्तु चाहे हिमालय को भी फोड़ना पड़े, मैं गंगा निकाल कर ही रहूँगा। हिमालय की दृढ़ता टूट सकती है, पर आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन का निश्चय नहीं टूट सकता। एक बात और, तुम राजनीति का खेल खेलने जा रहे हो, इससे विश्वस्त से विश्वस्त पर भी विश्वास मत करना! प्रत्येक को सन्देह की दृष्टि से देखना। हो सकता है कोई आस्तीन का साँप घुसा हो। दूसरी बात यह ध्यान रखना कि हाथ में आये हुए साँप का फण काटे बिना न छोड़ना, नहीं तो अवसर पाकर डंक मार देगा।”

“तुम अपने मोर्चों पर जाओ और हम अपनी राह पर जाते हैं।”

नयी हवा की तरह प्रचण्ड तेजधारी आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन मगध के मार्ग पर दिखाई देने लगे। उनके पैरों में गति थी और हृदय में किसी पुराने प्रतिशोध की ज्वाला।

चलते-चलते विष्णुगुप्त बोले—भागुरायण! राजनीति से खेलना साँपिन से खेलना होता है। इसे पालने वाला तनिक-सी चूक होने पर स्वयं ही डस लिया जाता है।

**भागुरायण**—चतुर मदारी ही यह खेल खेल सकता है, गुरुदेव!

**विष्णुगुप्त**—निकटता और दूरी दोनों को देखकर चलने वाला ही चतुर नीतिज्ञ है। राजनीति में हर कदम संभालकर रखना पड़ता है। पैर तनिक ओछा पड़ते ही दलदल में फँसना पड़ता है। संधि, विग्रह, यान, संशय, द्वैधीभाव आदि एवं साम, दाम, दण्ड, भेद जितनी भी राजनीति की कलाएँ हैं, कोई समय ऐसा आता है जब इन सभी कलाओं का पासा फेंकना पड़ता है; और इस पासे को काटा भी इसी कला से जाता है। जिसकी भी तिल-सी भूल होती है वही जाल में उलझ मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

**शार्ङ्गरव**—सत्य है गुरुदेव!

**विष्णुगुप्त**—राजनीति में सत्य को असत्य करना पड़ता है और असत्य को सत्य, लेकिन उद्देश्य में सत्य ही होना चाहिये।

**शार्ङ्गरव**—आप राजनीति के मूर्त रूप और आदर्शों के भगवान हैं। आपके शब्दों में किना गूढ़ार्थ होता है गुरुदेव!

**विष्णुगुप्त**—बात जितनी गूढ़ होती है उतना ही उसको छिपा कर रखना भी आवश्यक है। राजनीति में विश्वस्त से विश्वस्त का भी

विश्वास नहीं होना चाहिये।

**भागुरायण**—पर विश्वास के बिना तो संसार का कोई भी कार्य नहीं चल सकता गुरुदेव ! विश्वास पर ही तो सृष्टि टिकी हुई है।

**विष्णुगुप्त**—धन, स्त्री, अश्व और राजनीति दूसरे के विश्वास की वस्तु नहीं हैं। जो दूसरे पर विश्वास करके ये वस्तुएँ अपनी समझने की चेष्टा करता है वह भूल ही नहीं करता, अपने गले पर आप छुरी रखता है।

**भागुरायण**—तो आप तो हम पर अपने से भी अधिक विश्वास करते हैं गुरुदेव !

**विष्णुगुप्त**—क्योंकि वात्स्यायन और उसके शिष्य अभिन्न हैं। आत्मैक्य में सत्य संचित रहता है। हम एकात्मा हैं और जहाँ सत्य होता है वहाँ विश्वास। लेकिन हम अपने देश में विदेशियों को निकालने के लिए पंचनद तक घुसे हुए यूनानी साम्राज्यवाद के स्वप्नद्रष्टा सिकन्दर को परास्त करना है और सारे भारत में एक संघीय राज्य की स्थापना करनी है। यह करने के लिए हमारे पास सबसे बड़ा बल अपनी आत्मा का है। मनुष्य की आत्मा और बुद्धि यदि उसके साथ हैं तो वह अजेय है।

**भागुरायण**—आपके शिष्यों में इतनी शक्ति है कि वे काल तक को जय कर सकते हैं।

**विष्णुगुप्त**—शक्ति पर मुझे विश्वास है, तभी तो चल रहा हूँ।

**भागुरायण**—विजय के लिए उठा हुआ आपका चरण तो लक्ष्य की पताका के समान है।

बातें करते तथा मंजिल पर मंजिल तय करते यात्री मगध की सीमा के आस-पास आ गये। मगध से लगभग बीस कोस होगा कि राह में नागफनों की काँटेदार बेल दूर तक फैली दिखाई दी। काँटों की यह झाड़ी इतनी लम्बी थी कि कोई भी पथिक सरलता से तो क्या, कठिनता से भी पार कर मगध तक नहीं जा सकता था।

कँटीली झाड़ी को देखकर भागुरायण और शार्ङ्गरव ने रुकते हुए कहा—आगे कैसे चलें गुरुदेव ! इन काँटों को पार करना तो सम्भव नहीं दीखता।

**विष्णुगुप्त**—‘असम्भव’ शब्द कायरों का है, पथिक तो वही है



जो मार्ग न होने पर भी मार्ग निकाल ले। देखते क्या हो, उखाड़ना शुरू करो इन नागफनों को और बना लो बटिया! पैरों में चुभने के लिए तृण भी शेष न रहे। साथ ही इनकी जड़ों में तक्र डालते चलो जिससे राह रोकने के लिए नागफन फिर न उगने पायें।

गुरुदेव की आज्ञा हुई कि शिष्यों ने नागफन उखाड़ने शुरू कर दिये। विष्णुगुप्त वात्स्यायन भी बटिया बनाने में जुट गये। राह बनाते-बनाते एक तीक्ष्ण काँटा उनके पैर में चुभ गया।

पैर में काँटा चुभते ही विष्णुगुप्त वात्स्यायन को क्रोध आ गया। वे गुस्से में लाल हो गये। उन्होंने चुटकी से काँटा खींचा और गरजते हुए कहा—‘फूँक दो इस काँटों की झाड़ी को, ऐसा विष डाल दो इस भूमि पर कि फिर कभी भी कोई भी बीज न पनपने पाये। बंजर बना दो इस जमीन को!’

कहते-कहते विष्णुगुप्त भूमि को ऊसर बनाने में जुट गये। वे काँटे उखाड़ते जाते थे और जड़ों में मट्ठा डालते जाते थे।

काँटे उखाड़ते-उखाड़ते वे पसीने में लथपथ हो गये। पर वे धुन में अथक परिश्रम करते ही रहे। उनके हाथ तेज फावड़े की तरह घास जड़ से उखाड़ने में व्यस्त थे। वात्स्यायन के इस प्रचण्ड श्रम के सामने उनके तीनों शिष्य बहुत पीछे रह गये, इतने पीछे कि आँखें वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ हो गई।

वात्स्यायन यह कठोर श्रम कर ही रहे थे कि दूर से एक अत्यन्त वृद्ध उन्हें देखकर कौतूहलवश वहाँ चले आये। पर अपनी धुन में नागफन उखाड़ते वात्स्यायन ने उन्हें नहीं देखा। आखिर कुछ पल सोचने के बाद वृद्ध ने कहा—कि यह किसलिए कर रहे हो?

वात्स्यायन ने मुँह ऊपर उठाया और धुन में कहा—मार्ग रोकने वाले काँटों का नाश कर रहा हूँ।

वृद्ध—इतना श्रम इनके उखाड़ने में कर रहे हो, इससे तो दूसरे रास्ते से चले जाते।

वात्स्यायन—दूसरा रास्ता दूर का है। और फिर दूसरों के बनाये हुए रास्ते पर तो सभी चलते हैं, सफल तो वह है जो नये मार्ग का निर्माण करे और उखाड़ फेंके राह के शूलों को।

उत्तर सुनकर वृद्ध विचारों में डूब गये। सोचते-सोचते उन्होंने कहा—तुम कौन हो?

**वात्स्यायन**—तुम क्यों जानना चाहते हो ?

**वृद्ध**—किसी महत्त्वाकांक्षी का परिचय पाना दोष तो नहीं है ।

**वात्स्यायन**—पहले आप बताइये कि आप कौन हैं ?

**वृद्ध**—हम तुम्हारी बुद्धि से चमत्कृत हो उठे । हमारा परिचय जानना हो तो सुनो ! हम मगध के अमात्य शकटार हैं ।

सुनते ही विष्णुगुप्त श्रद्धा से सतर्क हो गये । कुछ कहे बिना ही वे उनके पैरों में गिर पड़े और भिगो दिये आँसुओं से उनके चरण ।

शकटार अचम्भे में आ गये । उन्होंने वात्स्यायन को उठाते हुए कहा—परिचय सुनकर इतने अधीर क्यों हो गये ? और पता नहीं मेरा भी हृदय क्यों उमड़ा आ रहा है !

**वात्स्यायन**—हृदय का उद्वेग रहस्य गोप्य रखने में असमर्थ है, मैं आपका कौटिल्य हूँ ।

**वृद्ध**—कौन, कौटिल्य ! आज यह विश्वास जाता रहा कि मनुष्य मरता भी है । मुझे तुम्हें पाकर ऐसा लग रहा है कि जैसे मेरे आठों पुत्र जीवित हो गये, जैसे मेरा सखा चणक मुझे मिल गया । तुम इतने दिन कहाँ रहे कौटिल्य ! तुमने यह रहस्य मुझसे भी क्यों छिपाये रखा ?

**वात्स्यायन**—बस, अधर सी लो चाचा जी ! कौटिल्य जीवित है, यह यदि आपने ओठों से बाहर निकाल दिया तो कौटिल्य मर जायेगा । आपके केश महानन्द को देखते-देखते सफेद हो गये हैं । आप तो स्वयं उसके बन्दी थे । उसकी क्रूर दृष्टि से बचने का केवल एक ही उपाय था, मृत्यु का बहाना ।

**शकटार**—सचमुच नन्द कितना क्रूर है ! राजमद में वह अन्धा हो गया है । दूसरे के जीवन को वह खेल समझकर मिटा डालता है । पर उसका कोई बिगाड़ भी क्या सकता है ! उसके पास शक्ति है ।

**वात्स्यायन**—समय आयेगा और नन्द को पानी देने वाला भी कोई शेष न रहेगा । नन्द का नाश करने की इच्छा लेकर पिता इस संसार से चले गये, किन्तु वात्स्यायन उनकी इच्छापूर्ति के लिए अभी जीवित है ।

**शकटार**—जब तक महामात्य राक्षस और उनके साथी अमात्य नन्द की सुरक्षा के लिए हैं तब तक यह स्वप्न पूरा होना सम्भव नहीं दीखता ।



**वात्स्यायन**—स्वप्न पूरा होगा और अवश्य होगा, पर आपको अपना टूटा हुआ साहस फिर से संभालना पड़ेगा। तभी रात बीतेगी और सबेरा होगा।

**शकटार**—यदि मेरी जान जाकर भी नन्द का नाश हो सकता हो तो मैं उसके लिए तैयार हूँ। यदि तुम यह कर सके तो मैं सुख से मर सकूँगा और मुझे जीवन भर दुःख उठाने का पुण्य प्राप्त हो जायेगा।

**वात्स्यायन**—मेरा मगध आने का उद्देश्य नन्द का नाश और सारे भारत में एक संघीय राज्य की स्थापना है। छोटे-छोटे राज्य मिटाये बिना इस देश का कल्याण नहीं। कितना स्वार्थ है इस देश में कि पड़ौसी राज्य पर विदेशी चढ़े आ रहे हैं और वह आँख बन्द किये सो रहा है! कल ही जब उस पर आक्रमण होगा तो यदि उसने आँखें खोलीं तो भी वे फोड़ डाली जायेंगी।

**शकटार**—राक्षस की बुद्धि से मगध की इतनी प्रबल शक्ति है कि संसार में कोई ऐसी ताकत नहीं जो उसकी ओर आँख उठा सके।

**वात्स्यायन**—जो शक्ति आतंक तथा छल से इकट्ठी की जाती है वह चेतना के एक झोंके के आते ही बिखर कर नष्ट हो जाती है। यह जो फूस का महल खड़ा दिखाई देता है, इसके नीचे धूलि से ढके अंगारे भी सोये हुए हैं।

**शकटार**—हमारे तो थके पैर हैं। तुम नन्द से प्रतिशोध लो और भारत में एक संघीय राज्य स्थापित करो, इससे बड़ा हर्ष मेरे लिए क्या हो सकता है! अब तुम मेरे साथ चलो!

**वात्स्यायन**—कहाँ?

**शकटार**—मेरे निवास पर।

**वात्स्यायन**—मुझे अपने घर ले जाने का अर्थ है—आग को घर में घुसाना। कहीं आप पर आपत्ति आ गई तो?

**शकटार**—आपत्तियाँ जो आ चुकी हैं उनसे अधिक क्या आयेंगी!

**वात्स्यायन**—मैं तो यह चाहता हूँ कि आपसे सहायता लूँ। मैं आपकी छाया पाकर लक्ष्य तक सरलता से पहुँच सकूँगा।

**शकटार**—तुम्हारे चलने से मेरे अँधेरे घर में उजाला हो जायेगा।

**वात्स्यायन**—मैं चलता तो हूँ, पर मेरे साथ मेरे तीन विश्वस्त साथी और भी हैं। उन्हें किसी ऐसे गोप्य स्थान पर रखना चाहता हूँ

जहाँ पर आपत्ति आने पर भी वे सुरक्षित रह सकें।

**शकटार**—उन्हें पास ही थोड़ी दूर पर पहाड़ियों के गाँव में भेज देंगे। वहाँ हमारा एक मन्दिर टूटा-फूटा पड़ा है। वे वहाँ मन्दिर में ही रहें। इस प्रकार मन्दिर का उद्धार होगा और वे सुरक्षित रहेंगे।

**वात्स्यायन**—लो, वे आ गये।

आते ही भागुरायण ने कहा—बटिया तैयार है गुरुदेव! थोड़े दक्षिण की ओर बढ़कर जैसे ही हम नागफन उखाड़ते जा रहे थे कि हमने देखा आगे बटिया बनी हुई है। जान पड़ता है यह सुरक्षा के लिए मगध राज्य ने कोई गुप्त मार्ग बनाया हुआ है।

**वात्स्यायन**—यह हर्ष की बात है कि मगध के रक्षकों की आँखें बन्द नहीं हैं, वे विदेशियों के आक्रमण से सावधान हैं। इस काँटों की झाड़ी की सहायता से थोड़े से सैनिक उस ओर से आती हुई बड़ी सेना को तीरों से नष्ट कर सकते हैं।

**शकटार**—इधर अधिक ठहरना उचित नहीं। महामात्य ने मगध के कण-कण में गुप्तचर छोड़े हुए हैं। मैं इधर इसी भावना से भ्रमण करने आया था कि भ्रमण का भ्रमण हो जायेगा और देख लूँगा कि सिकन्दर यदि मगध की ओर बढ़ा तो कौन-सी मंजिल उसके लिए मौत होगी।

**वात्स्यायन**—सिकन्दर के आगे बढ़ने की इतनी चिन्ता नहीं जितनी इस बात की है कि वह जहाँ तक बढ़ चुका है वहाँ से निकाला किस प्रकार जाये। लेकिन यह स्थान अधिक विचार करने का नहीं है, चलना चाहिये।

शकटार के साथ वात्स्यायन उनके निवास पर आ गये। घर आते ही सुवासिनी ने नवागन्तुक को ध्यान से देखा और देखती ही रह गई। उसे एकटक देखते हुए शकटार ने कहा—बेटा सुवास!

शकटार आगे कुछ कहें इससे पहले ही वात्स्यायन ने अपने ओठों पर उँगली रखकर उन्हें चुप होने का संकेत कर दिया। पर पिता के मौन होने के साथ ही सुवासिनी ने कहा—‘अब सन्देह नहीं रहा, चाहे आयु कितनी भी हो जाये पर बचपन की आदत नहीं जाती। मुझे चुप कराने के लिए तुम्हारा वह संकेत जैसा का तैसा है। अब मेरी आँखें धोखा नहीं खा रहीं। बताओ कौटिल्य! तुम इतने दिन तक कहाँ थे और यह तुम्हारा मुँह श्वेत से एकदम श्याम कैसे हो गया?’



कहते-कहते सुवासिनी की आँखें छलछला आईं। कौटिल्य की आँख से भी आँसू निकल पड़ा। उन्होंने पोंछते हुए कहा—मैं मर गया था सुवास! फिर जीवित होकर आया हूँ।

**सुवासिनी**—अब तो नहीं जाओगे?

**कौटिल्य**—इन पैरों को विश्राम कहाँ है सुवास!

**सुवासिनी**—फूल के सहारे काँटा भी स्थिर हो जाता है। माँ के अंक में क्रूर से क्रूर पुत्र को भी विश्राम मिल जाता है। क्या स्नेह भरा अंक भी तुम्हें शयन नहीं दे सकता?

**कौटिल्य**—लेकिन जब तक प्रतिशोध की आग इस हृदय में धधक रही है, जब तक यह देश लोकतन्त्रीय राज्य में परिवर्तित नहीं हो जाता, जब तक विदेशी इस देश से नहीं निकल जाते, तब तक के लिए कौटिल्य के सामने केवल एक ही लक्ष्य है—संघर्ष। जब दावानल धधकता है तो भस्मसात् करके ही शान्त होता है।

**सुवासिनी**—तुम्हारे लक्ष्य तक मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। थक गये होगे, विश्राम कर लो!

**शकटार**—हाँ बेटी! वर्षों के बाद हमारी आँखों की ज्योति लौट कर आई है। कौटिल्य बहुत ही थका हुआ है, इसे खिला पिलाकर सुला दे। और देख बेटी! कौटिल्य की सुरक्षा अब तेरे ऊपर है। यह रहस्य फूटने न पाये कि हमारे यहाँ चणक-पुत्र कौटिल्य रहता है। और तुझे पता है कि अब इसका नाम कौटिल्य नहीं है। यह बहुत बड़ा विद्वान हो गया है। अब यह है—आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन! वात्स्यायन तक्षशिला विश्वविद्यालय में पढ़कर और पढ़ाकर चले आ रहे हैं। अब तू जान, जैसे भी हो वात्स्यायन के जीवन पर आँच न आने पाये। यदि नन्द के कानों तक इस बात की प्रतिध्वनि भी पहुँच गई तो हम तीनों की भी वही दशा होगी जो सखा चणक की हो चुकी है।

**वात्स्यायन**—मेरे यहाँ रहने से आप घोर संकट में पड़ सकते हैं चाचा जी! किसी राजद्रोही को घर में घुसाना वन की आग को घर में घुसाना है।

शकटार कुछ उत्तर दें इससे पहले ही सुवासिनी माथे में बल डालती हुई बोली—रस्सी जल गई पर बल अभी तक बाकी है। आत्माभिमान की गन्ध अभी तक वही है, छींकते ही नाक पर मक्खी बैठती है। लेकिन जानते हो अब तुम इस घर से नहीं जा सकते। यदि

जाना ही पड़ा तो हम चले जायेंगे। महापंडित ! बात-बात में क्रोध अपराध है।

**वात्स्यायन**—अपराधी उपस्थित है, दण्ड की घोषणा की जाए !

**सुवासिनी**—तो सुनो, तुम्हें जहाँ बैठने को कहा जाये, बैठ जाओ और सुवास को बताये बिना कोई कदम न उठाओ !

सुनकर शकटार को हँसी आ गई और वे यह कहते हुए चले गये कि तुम दोनों बड़े हो गये पर बचपन अभी तक नहीं गया।

पिता के चले जाने पर सुवासिनी के हृदय-सिन्धु में ज्वार आ गया। वह बिना श्वास लिये फूट पड़ी, जैसे आज वह आँसुओं से सारी पीड़ा धो डालेगी।

सुवास को रोते देख कौटिल्य को हँसी आ गई पर दूसरे ही क्षण वे रो पड़े, जैसे हर्ष और शोक का एक ही साथ समन्वय हुआ हो। और फिर सुख और दुःख को दबाते हुए उन्होंने कहा—पागल बन रही हो सुवास ! संसार में यदि कोई भावुकता के सहारे जीना चाहता है तो जी नहीं सकता। प्रेम मनुष्य की बुद्धि को भटकाता है। पहले समस्याओं का हल है पीछे सुख। जो केवल भावुकता के पीछे दौड़ता है वह रेत को पानी समझने वाले प्यासे मृग की तरह मर जाता है। मुझे लक्ष्य से पहले कुछ नहीं सूझता।

**सुवासिनी**—मैं तुम्हारे पैरों की गति बनकर लक्ष्य तक साथ चलूँगी।

**कौटिल्य**—समाज के लिए व्यक्ति को अपनी बलि दे देनी चाहिये। मैं अपने लिए कुछ भी नहीं हूँ, जो कुछ हूँ वह समष्टि के लिए। मेरे सामने केवल एक ही लक्ष्य है और वह है सर्व हित।

**सुवास**—तो क्या आप मुझे अपने लक्ष्य में बाधक समझते हैं ?

**कौटिल्य**—नहीं, तुम चाहो तो लक्ष्य तक शीघ्र पहुँचा जा सकता है। लेकिन तुम्हारे उस चाहने में स्वार्थ का कण भी नहीं होना चाहिए।

**सुवास**—मैं भरसक यत्न करूँगी।

**कौटिल्य**—हम किसी प्रकार नन्द की राजसभा में प्रवेश चाहते हैं। तुम मनीषी हो, कोई उपाय सूझता है ?

**सुवासिनी**—अनुकूल अवसर पर आपने यह कहा। इस बृहस्पतिवार को मगधाधिपति महानन्द के पिता का श्राद्ध है। उसमें



परम विद्वान् पंडितों को निमन्त्रित किया जायेगा। निमन्त्रण का कार्य पिता जी के सुपुर्द किया गया है। आपसे विद्वान् और कौन है! अग्रासन के लिए आपसे उचित महानन्द को और कौन मिलेगा! एवं जो उच्चासन को सुशोभित करता है वह राजसभा में विद्वान् पंडित का आसन प्राप्त कर लेता है, ऐसी नन्द परिवार की प्रथा है।

**कौटिल्य**—तब तो उपाय सामने है। अब हम कुछ विश्राम करना चाहते हैं।

**सुवासिनी**—मैं कहना चाहती थी पर आपने कह कर मेरे मुँह की बात छीन ली। आप सो जाइये, मैं आपके अर्थशास्त्र का अध्ययन करूँगी।

वात्स्यायन ने लेटकर आँखें बन्द कर लीं। उन्होंने सोना चाहा, पर आँखों में नींद न थी। वे कभी आँखें खोलते और फिर बन्द कर लेते। उनका यह नाटक देख सुवास ने कहा—क्यों, नींद नहीं आती क्या?

**वात्स्यायन**—नहीं सुवास! मैं सोना चाहता हूँ, पर पलक झपकते ही मुझे ऐसा लगता है जैसे सिकन्दर की सेना के घोड़े मेरी छाती पर दौड़े चले आ रहे हैं।

सुवास चिन्ता, इतनी चिन्ता! कौटिल्य! क्या तुम्हें यह पता नहीं कि महामात्य राक्षस की रक्षा में मगध पूर्ण सुरक्षित है।

**कौटिल्य**—जब सारा भारतवर्ष दास हो जायेगा तो फिर मगध भी सुरक्षित नहीं रह सकेगा। इसीलिए विदेशियों को इस देश की सीमा से बाहर निकाले बिना मुझे सन्तोष नहीं है।

**सुवास**—लो, पिता जी भी आ गये।

**कौटिल्य**—पिता जी आ गये, पर मुझे उन पर इतना विश्वास नहीं है जितना तुम पर।

**सुवास**—मेरी याद में तो उन्होंने किसी के साथ विश्वासघात तक नहीं किया।

**कौटिल्य**—मैं यह नहीं कह रहा कि वे विश्वासघात करते हैं, पर कभी-कभी किसी पर भी विश्वास करके वे भूल कर बैठते हैं।

आगे कौटिल्य कुछ कहे इससे पहले ही शकटार वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आते ही कहा—‘अरे, तुम अभी तक बातों में ही व्यस्त हो!’

**वात्स्यायन**—बहुत दिन बाद मिले हैं न, इसलिए बातें बहुत

इकट्ठी हो गई हैं फिर आपके आने की प्रतीक्षा भी कर रहे थे।

**शकटार**—मेरी प्रतीक्षा ! किसलिए ?

**वात्स्यायन**—इसलिए कि आपके द्वारा महानन्द की राजसभा में स्थान मिल जाये।

**शकटार**—यह तो कठिन दीखता है, क्योंकि राक्षस हृदय से मुझे दबा हुआ साँप समझते हैं।

**सुवास**—एक उपाय है पिताजी ! महाराज महानन्द के पिता का श्राद्ध होने वाला है। आप आचार्य वात्स्यायन को अग्रासन पर विराजमान करा दीजिये ! अपनी बुद्धि-कुशलता से आगे की ये आप संभाल लेंगे।

**शकटार**—ठीक है, यह तो हो सकता है, क्योंकि ब्राह्मणों को निमन्त्रण देने का काम मेरे ही सुपुर्द किया गया है। लेकिन रहस्य खुल गया तो !

**सुवास**—किसी बात को जब शंका की दृष्टि से देखने लगते हैं तो भय बढ़ता ही जाता है। भली से भली बात भी दोष की दृष्टि से दोषपूर्ण दिखाई देने लगती है। व्यर्थ की शंका से व्यवधान उपस्थित होता है।

**शकटार**—अच्छा तो श्राद्ध में अग्रासन पर आचार्य वात्स्यायन ही विराजमान होंगे।

बातों ही बातों में समय बीता और श्राद्ध का दिन आ गया। विशाल मण्डप में ब्रह्मभोज की व्यवस्था हुई। अपनी-अपनी चौकी पर ब्राह्मण भोजन के लिए विराजमान हो गये। आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन अग्रासन पर विराजे और उनके बिल्कुल सामने की चौकी पर सिरघुटा ब्राह्मण भासुरक विराजमान हो गया, जिसकी आँखों में भोजन की प्रतीक्षा के साथ-साथ न जाने क्या-क्या था। एक नये और प्रचण्ड तेजधारी ब्राह्मण को सबसे ऊँचे आसन पर आसीन देख शेष सभी ब्राह्मणों की भृकुटियाँ तन गईं। सभी आपस में कानाफूसी करने लगे। पर वात्स्यायन ने सब को देखकर भी गम्भीरता धारण कर ली।

निश्चित समय पर महानन्द संकल्प के लिए पधारे। भोज-मण्डप में आते ही उन्होंने एक दृष्टि चारों तरफ डाली और ऊँचे आसन पर एक काल भुजंग ब्राह्मण को विराजमान देख क्रोध से बोले—‘यह स्याही का पहाड़ कहाँ से बुला लिया ?’



अपने हृदय की आग पर जल पड़ता देख शेष सभी ब्राह्मण अट्टहास कर उठे। सबको हँसता देख वात्स्यायन मुस्कराते हुए उठे। भासुरक तो पहले से ही तना खड़ा था, पर गुरु के डर से कुछ बोला नहीं। वात्स्यायन दो पल तक मुस्कराते रहे और फिर बोले—‘बिल्कुल ठीक इसी प्रकार राजा जनक की सभा में एक बार ऋषि अष्टावक्र को देखकर राजसभा हँसी थी। जानते हो उन्होंने हँसते देखकर क्या कहा था—‘यह सभा चमारों की है, विद्वानों की नहीं।’ यदि मैं भी यही कह दूँ तो?’

सुनते ही सबके मुख पर खिसियाहट की अँधेरी छा गई। महानन्द भी मौन हो गये। आखिर वे खिसियाहट उतारते हुए बोले—‘तो आप कोई अष्टावक्र के गुरु आ पहुँचे हैं! पर आपको यह पता नहीं कि अग्रासन पर किसी पिशाच-मूर्ति को बैठने की स्वीकृति महानन्द नहीं देता है।’

वात्स्यायन को क्रोध आ गया। उनकी आँखें उबल उठीं। भासुरक यह देखते ही घबरा उठा। वात्स्यायन कुछ कहें इससे पहले ही वह बोला—‘महाराज महानन्द की जय हो! इस अग्रासन से काजल के पहाड़ को उठाकर मुझे बैठा दीजिए! मुझे भूख भी बहुत लग रही है। यह भूख आपके पित्रों की है। रात स्वप्न में मुझे आपके पूर्वज दिखाई दिये थे। उन्होंने कहा—‘ओ परम ब्राह्मण! कल तू हमारे वंशज महानन्द से प्रकार-प्रकार के भोजन हमारे लिए जीमना।’ इसलिए मुहूर्त न निकलने पाये, मैं अग्रासन पर विराजने के लिए तैयार हूँ।

इस ब्राह्मण की बात सुनते ही हँसी की एक बाढ़-सी आई और शान्त हो गई। पर महानन्द की आँखों में अभी तक लाली थी। उन्होंने शकटार की ओर देखते हुए कहा—इस काल-भुजंग को किसने निमन्त्रण दिया है?

**शकटार**—ऐसा न कहिए महाराज! ये परम विद्वान् ब्राह्मण आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन हैं। मैंने इनको श्रेष्ठ और विद्वान् ब्राह्मण समझकर ही निमन्त्रण दिया है।

**महानन्द**—हम ऐसी भद्दी आकृति के ब्राह्मण को कभी भी अग्रासन नहीं दे सकते। इसे इस ब्रह्मभोज से निकाल दो।

वात्स्यायन से अब न रहा गया। उनकी आँखें लाल हो गई। उन्होंने हुँकारते हुए कहा—ब्राह्मण का अपमान आग होता है।

महानन्द में इतनी सहनशक्ति कहाँ थी ! उसने गरजते हुए कहा—  
महानन्द के सामने एक ब्राह्मण का इतना साहस !

कहता हुआ नन्द आगे बढ़ा । उसने विष्णुगुप्त के बाल पकड़ कर  
खींचे और कहा—‘चल हट, निकल यहाँ से !’

घी में आग लग गई । पर महाक्रोधी ब्राह्मण ने उसी धधकती हुई  
ज्वाला को शरबत की घूँट की तरह पीते हुए कहा—‘इतना क्रोध क्यों  
करते हो महाराज ! मैं तो स्वयं जा रहा हूँ ।’

कह कर अपनी चोटी को उँगली पर लपेटते हुए और हृदय में  
महानन्द के नाश की प्रतिज्ञा दोहराते वे अग्रासन से नीचे आ गये । जैसे  
ही वात्स्यायन अग्रासन से नीचे उतरे वैसे ही राक्षस ने भोज-मण्डप में  
प्रवेश किया । मण्डप में गम्भीर वातावरण देख उन्होंने परिस्थिति को  
पहचानते हुए कहा—क्या ब्रह्मभोज समाप्त हो गया ? आप चल कैसे  
दिये महाराज !

**महानन्द**—हमने इस काल-भुजंग ब्राह्मण को अग्रासन से उठा  
दिया है ।

**राक्षस**—विद्वता का मूल्य आकृति से नहीं आँका जाता, महाराज !  
अपमानित ब्राह्मण की ओर देखते हुए—‘आप कौन हैं, महाराज !’

**शकटार**—ये परम विद्वान् ब्राह्मण आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन  
हैं ।

**राक्षस**—क्या अर्थशास्त्र के रचयिता विष्णुगुप्त वात्स्यायन !

नन्द की ओर देखते हुए—महाराज ! धन्य है यह राज्य जो यहाँ  
इनके चरण आये !

और विष्णुगुप्त की ओर देखते हुए बोले—क्षमा कीजिए महाराज !  
अनजाने में चूक हो गई । नाम सुना था, आज दर्शन भी हो गये । हम  
धन्य हैं ।

राक्षस के वाक्यों से शेष ब्राह्मणों के मुख की कान्ति थर्रा उठी । वे  
एक-दूसरे के मुँह को देखते ही रह गये और आपस में चर्चा करने  
लगे । प्रत्येक के मुँह से वात्स्यायन का चरित्र वर्णन होने लगा—‘ये हैं  
वे तपस्वी ब्राह्मण विष्णुगुप्त वात्स्यायन, जिनकी विद्वता तक्षशिला  
विश्वविद्यालय के कण-कण में गूँज रही है । ऐसे विद्वान् ब्राह्मण का  
अपमान करके महानन्द ने सचमुच बड़ा अनर्थ किया है ।’



लेकिन महानन्द को जब क्रोध आता था तो सातों समुद्रों का जल भी उसे ठण्डा नहीं कर सकता था। उसने अपने परम हितैषी राक्षस की बात पर भी विशेष ध्यान न देते हुए विष्णुगुप्त को धक्का दिया और कहा—‘जो जितना विद्वान् होता है वह उतना ही दूसरे को मूर्ख बनाता है। चली आती हुई प्रथा को मैं तोड़ना नहीं चाहता, नहीं तो इच्छा होती है कि अपने राज्य से एक-एक ब्राह्मण को समाप्त कर दूँ। ब्राह्मण और भिक्षुक में क्या कोई भेद है! ठगने की विद्या को विद्वत्ता के नाम से पुकारने वाले ब्राह्मण राज्य के लिए कलंक हैं। ये घमण्डी राजा के ऊपर भी राज करना चाहते हैं। चले जाओ! मुझे ऐसे ब्राह्मणों की आवश्यकता नहीं है।’

राजा के भयंकर शब्द सुनकर ब्राह्मण वात्स्यायन के साथ ही साथ चलने लगे, पर राक्षस ने उन्हें रोकते हुए कहा—‘हे ब्राह्मणो! मगधाधिपति महाराज महानन्द किसी कारण अत्यन्त क्रुद्ध हो गये हैं। इनके इस क्रोध को सत्य न समझें। ब्राह्मणों के परम भक्त राजा कुछ ही समय बाद अपनी कठोर भूल का भारी प्रायश्चित्त करेंगे।’

राक्षस कहते रहे पर वात्स्यायन न रुके। कुछ ब्राह्मण उनके साथ ही चले गये और कुछ ठिठक कर आगे बढ़ते गये।

महानन्द उस भोज-मण्डप में ऐसे खड़े रह गये जैसे श्मशान में कोई चिता जलती रहती है। राक्षस ने अपने माथे पर हाथ रखते हुए महानन्द की ओर देखा और फिर बोले—‘राज्य और राजा का कल्याण विरोध शान्त करने में है, विरोध बढ़ाने में नहीं। वात्स्यायन का अपमान करके हमने अग्नि में घी डाल दिया। यह धधकती हुई ज्वाला कहीं वन की आग न बन जाये!’

**नन्द**—‘हमारे सिर में दर्द होने लगा है राक्षस! हम महल में जाते हैं, राज्य की चिन्ता तुम करो!’

कह कर महाराज महल में चले गये और राक्षस सोचते रह गये।

राजमद में किसी का तिरस्कार गर्दन पर गिरी तलवार से भी भयंकर होता है। अहं में किसी का अपमान पता नहीं कब विस्फोट कर बैठे। बड़े से बड़े को यह सोच लेना चाहिए कि छोटी से छोटी चिंगारी भी उसे स्वाहा कर सकती है। गुरुत्व का अस्तित्व लघुता की नींव पर टिका रहता है। जब नींव हिलती है तो ऊँची से ऊँची मीनार भी धूलि-धूसरित हो जाती है।

गुप्त गृह में गुप्त बैठक हो रही थी। महामात्य राक्षस के चेहरे के पृष्ठ क्षण-क्षण में बदल रहे थे। अर्थमन्त्री सन्नद्धराज उनके समीप ही सोच रहे थे। गृहमन्त्री वक्र गम्भीर मुद्रा में न जाने कहाँ थे। राक्षस ने गृहमन्त्री की बहुत धीरे से कही किसी बात के उत्तर में गर्दन हिलाते हुए कहा—‘और बातों से इतना भय नहीं है जितना घर के झगड़ों से। वात्स्यायन का अपमान करके महाराज ने एक नया वितण्डा खड़ा कर दिया है। राज्य के ब्राह्मण उनके साथ हो गये हैं। किसी भी तरह यह आग बुझनी चाहिये।’

**वक्र**—वात्स्यायन को किसी तरह मरवा डाला जाये, आग सरलता से शान्त हो जायेगी।

**राक्षस**—यह इतना सरल नहीं है, जितना तुम समझ रहे हो। वात्स्यायन में अद्भुत तेज है। उनके सामने जाते ही मृत्यु अपना इरादा बदल देती है।

**वक्र**—दूसरा उपाय यह है कि उन्हें अपना बनाने का यत्न किया जाये।

**राक्षस**—यह राज्य के लिए हितकर हो सकेता है। वात्स्यायन को साथ लेकर हम मगध राज्य की शक्ति को दृढ़ कर सकते हैं।

**राक्षस**—पर इतनी दृढ़ नहीं कि दुर्बल न हो जाए। यह गृह-कलह इसी प्रकार बढ़ती चली गई तो निश्चित ही सिकन्दर मगध पर भी अधिकार कर लेगा। देखते नहीं, मगध की आर्थिक स्थिति कितनी दयनीय है।

**सन्नद्धराज**—राजकोष हर क्षण खाली होता जा रहा है। अन्य राज्यों से व्यापारिक सम्बन्ध टूट जाने के कारण इन दो-तीन वर्षों में आय बिल्कुल नहीं हुई। पंचनद तक सिकन्दर के अधिकार के बाद आयात-निर्यात बिल्कुल बन्द हो गया है और इधर उत्पादन की गति भी मन्द होती जा रही है। हो सकता है कि यदि युद्ध हो तो हमें अन्य राज्यों से ऋण लेना पड़े।

**राक्षस**—ऋण लेने का अर्थ है—मगध राज्य को बन्धक रखना।



लेकिन कुछ भी हो, मुझे मगध राज्य के सेठों पर विश्वास है। चन्दनदास जैसे धनवान जब तक मगध में जीवित हैं तब तक आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक समस्या हल हो सकती है। हाँ, यह प्रश्न इस समय अधिक विचारणीय नहीं है, इस समय विचारणीय है—कुचक्रों से रक्षा। अन्तःपुर की सुरक्षा बड़ी सावधानी से होनी चाहिये वक्रराज ! किसी अत्यन्त विश्वस्त को दुर्ग की रक्षा का भार सौंपो !

**वक्र**—अन्तःपुर की रक्षा के लिए सेनाजित सतर्क हैं, महामात्य !

**राक्षस**—कोई असावधानी तो नहीं होगी ?

**वक्र**—विश्वास रखिये।

**राक्षस**—शेष मन्त्रियों और सेनाध्यक्षों में से यद्यपि कोई ऐसा नहीं है जो हमारा शत्रु हो, लेकिन फिर भी प्रत्येक पर कड़ी दृष्टि आवश्यक है।

**वक्र**—भय की कोई बात नहीं।

**राक्षस**—भय तो नहीं है, पर विस्फोट जब कभी भी होता है घर की गहराई के अन्दर से ही होता है।

**वक्र**—मगध राज्य के कण-कण में तलवार की धार बिछी हुई है। जीवन से जो ऊब चुका होगा वही इधर आँख उठाने का साहस करेगा।

**राक्षस**—आँखें किसी पल भी बन्द नहीं होनी चाहियें, चाहे सोने का बहाना किये हुए जागते भी रहो। और मगध की सीमाएँ तो बिल्कुल सुरक्षित हैं न ? सुना है सिकन्दर किसी भी क्षण आक्रमण कर सकता है। पहले ही आक्रमण में यदि वह आग न बुझी तो भारी पड़ जायेगी।

**वक्र**—आग ने यदि इस ओर मुँह किया तो हमारी हवा उसका रुख यूनान की ओर मोड़ देगी।

**राक्षस**—अच्छा तो तुम दुर्ग और अन्तःपुर को देखो तथा मैं आचार्य वात्स्यायन को सभालता हूँ। ध्यान रहे, दुर्ग में चोर न लगने पायें।

और भी बहुत सी रहस्य की बातें कर राक्षस अपनी राह पर चल दिये और वक्र अन्तःपुर में आ गये। प्रत्येक पर गहरी दृष्टि डालते हुए वे सेनाजित के पास पहुँचे। वक्रराज को देखते ही सेनाजित अभिवादन करते हुए कहने लगे—अकस्मात् अमात्य ने क्यों कष्ट किया ?

**वक्र**—महामात्य की आज्ञा हुई कि अन्तःपुर और दुर्ग पर बड़ी सतर्कता रात-दिन रहनी चाहिये। हवा कब आई, कब निकली और किधर से गई, यह तक हमें पता रहे।

**सेनाजित**—सेनाजित के रहते किसकी सामर्थ्य है कि जो इन दीवारों में छेद कर जाये! परिन्दा भी पर नहीं मार सकता।

**वक्र**—परिन्दे के पर से डर नहीं होता सेनाजित! राजा के लिए सबसे बड़ा भय राजमहल का रहस्य होता है। तुम्हें हर रानी पर और अन्तःपुर में आने वाली प्रत्येक परिचारिका पर गिद्धदृष्टि रखनी है। स्त्रैणता मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

**सेनाजित**—मैं विष और अमृत को पहचानता हूँ, अमात्य!

**वक्र**—मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है।

कहकर वक्र चले गये और सेनाजित अन्तःपुर के उपवन में टहलने लगे। वे दस-बीस पग ही भ्रमण कर पायें होंगे कि सामने से विचक्षणा एक अत्यन्त सुन्दर षोडशी के साथ आती दिखाई दी। उसे देखते ही सेनाजित के माथे में बल पड़ गये। भृकुटी चढ़ाते हुए सेनाजित ने कहा—‘यह तुम्हारे साथ कौन है, राजरानी!’

**विचक्षणा**—यह कात्यायन की पुत्री उमा है, सेनापति!

**सेनापति**—यह महल में किसलिए जा रही है?

**विचक्षणा**—मैंने जितना आपको बता दिया वह भी महाराज की आज्ञा के विरुद्ध है। इससे अधिक जानने की चेष्टा न करो!

कहती हुई विचक्षणा अन्तःपुर की ओर चल दी और सेनाजित उमा की तरफ देखते रह गये। उमा ने भी करुणा भरी दृष्टि से सेनापति की ओर देखा पर कुछ कह न सकी।

सेनापति तरह-तरह के विचारों में गोते लगाने लगे। थोड़ी देर बाद उमा विचक्षणा के साथ वापिस आई। उसने फिर सेनापति की ओर गीली आँखों से देखा और देखती ही देखती चली गई।

सेनाजित सोच में पड़ गये। कठिनाई से उन्होंने सारा दिन काटा। शाम को अवकाश पाकर वे कात्यायन के निवास पर पहुँचे। दूर से उन्हें देखते ही उमा ने द्वार खोल दिया। सेनापति के बैठते ही वह रोने लगी। रोते ही रोते उसने कहा—मेरी रक्षा करो सेनापति! मेरे पिता बन्दीगृह में हैं, महाराज मुझे अपनी कुत्सित भावनाओं से डसना चाहते



हैं।

सुनकर सेनाजित शूल और फूल के मध्य में फँस गये। वे मन ही मन सोचने लगे कि महामात्य राक्षस के अतिरिक्त और कौन है जो महाराज की इच्छा में बाधक बन सके! लेकिन प्रत्यक्ष में उन्होंने कहा— 'डरो मत उमा! मैं अपनी भरसक शक्ति से तुम्हारी रक्षा करूँगा। अब मैं अधिक यहाँ नहीं ठहर सकता। राज्य-कर्मचारी हाथ में फूल लिये शूलों की नोक पर चलता है, पता नहीं किस समय राजा के रोष की ज्वाला उसे जला डाले।'

सेनाजित चले गये। उनके पैर बढ़ रहे थे किन्तु हृदय पीछे खिंचा जाता था। प्रथम दर्शन में ही उन्होंने उमा पर अपने को खो दिया। पर कर्तव्य के सामने उनकी भावना जमी नहीं। वे पुनः रक्षा के कार्यों में आ जुटे।

इधर उमा कुछ देर तक रोती रही, आखिर फिर जब अकेले पड़े-पड़े ऊबने लगी तो शकटार के घर सुवासिनी के पास आ गई। उसकी आँखें लाल देख सुवासिनी ने पूछा—क्या बहुत रोई आज?

**उमा**—रोने के अतिरिक्त मेरे लिए और है ही क्या संसार में! पिता बन्दीगृह में हैं और उधर महाराज मुझे अपनी कुत्सित वासना से कुचलना चाहते हैं।

**सुवास**—तो फिर क्या हुआ री! मगधाधिपति महाराज नन्द तुझे अपनी रानी बनाना चाहते हैं, इससे बड़ा हर्ष किसी कन्या के लिए और क्या हो सकता है! राजरानी बनकर राजमहल का सुख भोग ले न!

**उमा**—यह हँसी का समय नहीं है सुवास! छेड़खानी हर समय नहीं सुहाती। मुझे कोई मार्ग बताओ!

**सुवास**—संसार में सम्मान से जीने के लिए मनुष्य के पास अपनी शक्ति के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। कौन किसी के आँसू पोंछता है! मैं भी पिता के बन्दी रहते हुए अकेली रही, पर चट्टान की तरह। नारी झुकाई नहीं जाती, झुक जाती है। इच्छा के विरुद्ध किसी पुरुष का आलिंगन करने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन शान्ति देता है उमा! जाओ स्वयम् को संभालो, रोना पाप है। महानन्द से कहो, मेरे पिता को छोड़ दो, उसके बाद मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर सकूँगी।' समय है, इससे लाभ उठाओ! स्त्री के पीछे दौड़ने वाले पुरुष को मूर्ख बनाना

स्त्री के लिए खेल है। लेकिन यदि स्त्री स्वयम् खिलौना बन जाये तो पुरुष उसे तोड़-फोड़ कर फेंक देता है।

सुवास के शब्दों से उमा को बल मिला। 'मैं स्वयम् शक्ति हूँ, मेरा कोई कर ही क्या सकता है!' कहती हुई उमा आवेश में चली गई।

उमा चली गई और सुवास आप ही आप कहने लगी—'नन्द, महापापी! तूने कितनी कन्याओं का कौमार्य नष्ट किया है! तूने कितनी भोली और सुन्दर स्त्रियों को सताया है। किन्तु कोई ऐसा नहीं जो तुझसे पूछे, बता तेरे पापों का दण्ड क्या दिया जाये?'

सुवास कुछ और भी कहती किन्तु सहसा एक दूसरे कक्ष की ओर से बाहर निकल वात्स्यायन ने रौद्र रस भंग कर दिया। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—'हमसे भी अधिक क्रोध क्यों कर रही हो सुवास!'

**सुवास**—अकारण कुछ नहीं होता आर्य! महानन्द के नाम से कुलीन कन्याएँ काँप उठी हैं। अभी-अभी चाचा कात्यायन की पुत्री उमा रोती हुई आई थी।

**वात्स्यायन**—वह मैंने सब देख लिया और सुन भी लिया। हमें उसे देखकर जितना दुःख हुआ उससे कहीं अधिक हर्ष इसलिए हुआ कि हमने सुवास की शक्ति और बुद्धि प्रत्यक्ष देखी। क्या बात कही है तुमने! 'नन्द से कहो कि मेरे पिता को छोड़ दो, उसके बाद मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर दूँगी।' कामी अपने जीवन का मूल्य देकर भी मृत्यु से स्त्री मोल लेने को तैयार हो जाता है। तुमने हमारे लिए एक नई सड़क बना दी।

**सुवास**—क्या मुझे मात दे रहे हो? प्रशंसा करके उपहास करने का भी गुण होता है।

**वात्स्यायन**—तर्क में मैं तुमसे हार जाऊँगा।

सुवास ने मन ही मन में कहा, 'लेकिन मैं तो कभी की हार चुकी हूँ।' और फिर प्रत्यक्ष में कहने लगी—'हारकर भी कभी-कभी मनुष्य जीत जाता है।'

उत्तर में वात्स्यायन कुछ कहना ही चाहते थे कि दूसरे कक्ष में शकटार से किसी की बातचीत की गुनगुनाहट सुनाई दी। उनके कान दूसरी ओर लगे देख सुवास ने कहा—'आप बैठिये, मैं देखती हूँ कौन है।'



सुवास गई और उलटे पैरों राह से ही वापिस आकर बोली—महामात्य राक्षस आये हैं। कोई रहस्य जान पड़ता है। वैसे वे आते तो रहते हैं, पर आज कुछ अधिक भोले दिखाई देते हैं। आप कहीं छिप जाइये!

वात्स्यायन ने एक पल सोचा और फिर बोले—छिपने से सन्देह हो सकता है। राक्षस को मेरे यहाँ होने का पता है, इसलिए तुम वहाँ जाओ और यह प्रकट कर देना कि वात्स्यायन यहाँ हैं।

**सुवास**—अच्छा तो आप दूध पी लीजिए और पुस्तकालय में आराम करिये! मैं आपको दूध देती जाऊँ।

**वात्स्यायन**—मेरे दूध की चिन्ता न करो! मैं स्वयं दूध लेकर पी लूँगा। तुम जाओ!

‘अच्छा तो पी अवश्य लेना!’ कहती हुई सुवास चली गई और उस कक्ष में आ गई जिसमें शकटार और राक्षस विराजमान थे।

सुवास को देखते ही शकटार ने कहा—‘आओ बेटी!’ और राक्षस ने कहा—‘बैठो सुवास!’

सुवास बैठ गई। कुछ पलों तक सब मौन बैठे रहे। आखिर राक्षस फिर बोले—आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन के अपमान से मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं उनसे भेंट करना चाहता हूँ।

शकटार कुछ कहें इससे पहले ही सुवास ने कहा—हाँ-हाँ, भेंट कर लीजिये, वे अन्दर हैं। कहिये तो बुला लाऊँ?

**राक्षस**—हाँ, बड़ी कृपा होगी, इसी आकांक्षा से आया हूँ।

सुवास घर में गई और आचार्य वात्स्यायन को बुला लाई। बड़ी गम्भीरता और शान्ति से जैसे ही वात्स्यायन ने उस बड़े कक्ष में प्रवेश किया जिसमें उनकी प्रतीक्षा हो रही थी, वैसे ही राक्षस ने उठकर आदर से उनको नमस्कार करके बैठाया तथा पश्चात्ताप की भाषा में कहने लगे—‘आपके तिरस्कार से मैं बहुत लज्जित हूँ।’

**वात्स्यायन**—मुझे बिल्कुल भी दुःख नहीं है, आप व्यर्थ ही चिन्ता करते हैं। मुझे आपकी सौम्यता से जितना हर्ष हुआ है वह वर्णनातीत है। महानन्द चाहे कोई भी अपराध कर डाले, पर जब तक आपकी बुद्धि, सभ्यता और सौम्यता उसके साथ है, तब तक उसके दोष भी गुण हैं। धन्य है महानन्द! जिसने आप जैसे महामात्य एवं

सखा प्राप्त किये।

**राक्षस**—प्रशंसा करके मनुष्य को मोह लिया जाता है। आपके विवेक का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये।

**वात्स्यायन**—राज्याधिकारी की प्रार्थना नहीं, आज्ञा होती है महामात्य! आप आज्ञा दे सकते हैं।

**राक्षस**—यहाँ मैं महामात्य की स्थिति में उपस्थित नहीं हुआ हूँ, अपितु मेरे अपने का अर्थ मगध का भविष्य लाभ है।

**वात्स्यायन**—कहो महामात्य! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

**राक्षस**—मैं चाहता हूँ कि आप मगध के प्रधान पण्डित का आसन ग्रहण कर लें!

**वात्स्यायन**—यदि आपके हृदय में मेरा आसन है तो मैं प्रधान आसन पर ही विराजमान हूँ। क्या राज्य के आसन पर बैठने से ही कोई बड़ा पण्डित बन सकता है?

**राक्षस**—जिस राज्य में किसी की योग्यता का उचित मूल्यांकन नहीं है, वह राज्य नहीं। अर्थशास्त्र के रचयिता परम विद्वान् आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन को राज्य में सम्मानित आसन देकर हम उन पर कोई कृपा नहीं कर रहे, बल्कि अपने राज्य का सम्मान बढ़ा रहे हैं।

**वात्स्यायन**—प्रतिष्ठा की उलटी रीति होती है महामात्य! जब तक कोई उसे नहीं चाहता तो वह उसके पीछे-पीछे परछाई की तरह लगी रहती है और जब कोई उसे चाहने लगता है तो वह उससे दूर भाग जाती है। ब्राह्मण के लिए त्याग शोभनीय है, पद-लोलुपता के बोझ से वह दब जाता है। मैं वन में किसी पेड़ के नीचे बैठकर राष्ट्र को जितना दे सकता हूँ, उतना राज्य द्वारा दिये गये आसन पर बैठकर नहीं। ब्राह्मण के लिए पेड़ की छाया में सबसे बड़ा सुख है।

**राक्षस**—लेकिन राज्य को आज पेड़ की छाया के नीचे बैठने वाले तपस्वी नहीं चाहियें। जिस समय राष्ट्र पर चारों ओर से आपत्तियों के तूफान उमड़े चले आ रहे हों उस समय सबसे बड़ा धर्म यही है कि जो किसी भी तरह राष्ट्र की सेवा कर सकता है, करे। यदि आज आप राज्य के साथ होंगे तो राष्ट्र की संगठन-शक्ति में सत्गुणा बल आ



जायेगा। आपकी आवाज में अतुल बल है। यदि आपकी आवाज राज्य की आवाज के साथ न मिली तो संगठन छिन्न-भिन्न होने का भय है। आपके अपमान से ब्राह्मण बिगड़ बैठे हैं। कितनों ही के हृदय इस अवसर की प्रतीक्षा में हैं कि मगध राज्य नष्ट हो जाये। ऐसे समय में आपका मौन रहना उचित नहीं। मगध की रक्षा के लिए मैं आपसे दान माँगता हूँ। स्वीकार कर लीजिये मेरी प्रार्थना!

वात्स्यायन सोच में पड़ गये। कुछ देर विचार करने के बाद उन्होंने कहा—‘हम राज्य का आसन ग्रहण नहीं करेंगे महामात्य! पर मगध राज्य की शक्ति के विकास में सहयोगी अवश्य बने रहेंगे। विदेशियों के मुँह मोड़ने में हमारा स्वर तुम्हारे साथ रहेगा। हमारा श्वास-श्वास राष्ट्र की रक्षा और विकास के लिए तत्पर है। पर हम राज्य के आसन पर बैठकर त्याग के महत्त्व को आँच नहीं आने देंगे। हम एक साधारण ब्राह्मण हैं। ढाई गज वस्त्र तन ढकने के लिए और एक चादर ओढ़ने के लिए, बस यही हमको चाहिये।’

सुनकर राक्षस की आँखें छलछला आईं। उन्होंने अत्यन्त शान्त होकर कहा—महापुरुष! आपकी महानता का सत्य इसी में हो सकता है, पर मगध के महामात्य का सत्य भी इसी में है कि वह आपको निर्धन वेश में न रहने दे।

**वात्स्यायन**—किसी राष्ट्र में किसी मनुष्य का जो छोटे से छोटा वेश है, उस राष्ट्र के बड़े से बड़े व्यक्ति के लिए सबसे बड़ी गरिमा इसी में है कि वह उसी वेश को अपना ले।

**राक्षस**—लेकिन मगध में तो कोई ऐसा नहीं जिसके पास पहनने के लिए पूरे वस्त्र और खाने के लिए पेट भर अन्न न हो।

**वात्स्यायन**—है नहीं, पर यदि ब्राह्मण साधु-जीवन त्याग कर राजसी ठाट-बाट में हो गये तो अन्न और वस्त्र का अकाल पड़ सकता है। और जिस राष्ट्र में अन्न, वस्त्र एवं जीवन की आवश्यक वस्तुएँ नहीं मिलतीं वह राष्ट्र नरक हो जाता है। मुझे देशभक्त रहने दो महामात्य! राजभोगी नहीं।

**राक्षस**—आप अपने लिए नहीं, तो राष्ट्र तथा अन्य शुभ कार्यों के लिए तो अधिकार स्वीकार कर लीजिये! आपको जितने अर्थ की आवश्यकता हो, राक्षस का कोष खुला पड़ा है।

**वात्स्यायन**—आवश्यकता जिस वस्तु की होती है, मनुष्य उसे

प्राप्त कर सकता है।

**राक्षस**—तो मैं यह मान लूँ कि आप विरोध न उठने देंगे और मगध के सहयोगी रहेंगे।

**वात्स्यायन**—जो मैंने कहा है, उसका निर्वाह करूँगा।

इसके बाद राक्षस चलने के लिए उठे। उठकर उन्होंने एक बार सुवासिनी की ओर आकांक्षा भरी दृष्टि से देखा और फिर एकदम चल दिये।

राक्षस के चले जाने पर वात्स्यायन कहने लगे—मगध के महामात्य का चरित्र निस्सन्देह आदर्श है। महानन्द जितना घृणित है, राक्षस उतने ही उत्कृष्ट। न जाने क्यों राक्षस महानन्द के परम भक्त हैं।

**सुवास**—बुरे से बुरे व्यक्ति में भी कुछ न कुछ गुण होते हैं। महानन्द में भी एक बड़ा गुण है और वह है शत्रु तथा सखा की पहचान। मनुष्य को पहचानने में महानन्द की आँखें चूक नहीं करतीं। वह यह जानता है कि राक्षस का साथ छोड़ देने पर मगध राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। इसलिये वह अपने व्यक्तिगत जीवन में स्वतन्त्र रह कर राज्य का भार राक्षस पर छोड़ निश्चिन्त है। राक्षस भी महानन्द की कृपाओं से दबे हुए हैं। महानन्द की कृपा से ही एक सनाढ्य आज महामात्य के आसन पर आसीन है।

**शकटार**—लेकिन कृपा कोई तभी करता है जब किसी में कुछ गुण होते हैं। राक्षस को नन्द ने दया दान में नहीं दी, बल्कि वे अपने बल और बुद्धि के सहारे मगध को सुरक्षित रखते हुए महामात्य के आसन पर पधारे हैं। इन विषम परिस्थितियों में यदि राक्षस के अतिरिक्त कोई और होता तो निश्चित ही मगध नाश को प्राप्त हो गया होता। घर के कुचक्रों और बाहर के आक्रमणों से मगध को सुरक्षित रखना महामात्य राक्षस का ही कार्य है।

**वात्स्यायन**—यह सब कुछ होते हुए भी राष्ट्र के लिए महानन्द फूस के नीचे दबी हुई आग है। उस पर यदि किसी समय भी पागलपन सवार हुआ तो वह राक्षस के ऊपर भी दाँत पीस सकता है। जब तक महानन्द है तब तक मगध आग के मुँह है। सारे राष्ट्र की रक्षा के लिए महानन्द को मिटाना ही पड़ेगा।

**शकटार**—राक्षस के कड़े पहरे के अन्दर महानन्द को मिटाना



सरल नहीं लगता।

**वात्स्यायन**—बड़े-बड़े महारथियों के पहरों में राज्य करते हुए दुर्योधन को पाण्डव मिटा डालेंगे, क्या कोई जय से पहले यह कल्पना कर सकता था? अकेले कृष्ण की बुद्धि ने अजेय वीरों और सेना पर जय पाई।

**सुवास**—दुर्योधन को दुनिया बुरा कहती है, पर तर्क कहता है कि नीति-कुशल वह पाण्डवों से कहीं अधिक था। वह हारा, इसका अर्थ उसकी अयोग्यता नहीं, अपितु कृष्ण का कपट और भाग्य का दोष है।

**वात्स्यायन**—हारने पर हर मनुष्य यही कहता है जो तुम कह रही हो। क्या कपट कृष्ण के पास ही था? दुर्योधन ने कपट को कपट से क्यों नहीं काट डाला? यह नहीं कि दुर्योधन ने कपट के हथियार नहीं चलाये, चलाये अवश्य, पर अधूरे।

**सुवास**—जो हारता है उसमें दुनिया दोष निकाला ही करती है। हारना संसार में सबसे बड़ा पाप है।

**शकटार**—यह तो नया शास्त्रार्थ छिड़ गया। छोड़ो इन बातों को, देखो द्वार पर कोई आया जान पड़ता है।

वात्स्यायन कुछ उत्तर दे दे इससे पहले ही प्रहरी ने प्रवेश करते हुए कहा—‘दरवाजे पर दो नवयुवक आये हुए हैं। वे आचार्य वात्स्यायन से मिलना चाहते हैं। कहते हैं कि हम उनके विद्यार्थी रह चुके हैं, उनसे कुछ अर्थ पूछने आये हैं। उन्होंने कहा यदि आचार्य जी न समझें तो उन्हें बता देना कि वे विद्यार्थी जो आपकी पूजा के लिए फूल लाते थे।’

**वात्स्यायन**—बस-बस, हम समझ गये। उन्हें भेज दो!

प्रहरी चला गया और दोनों शिष्य पहुँचे। आते ही उन्होंने वात्स्यायन के चरण छुए।

आशीर्वाद का हाथ उनकी पीठ पर रखते हुए वात्स्यायन ने खड़े होते हुए कहा—आओ, हम दूसरे कक्ष में बैठेंगे।

आचार्य के साथ शिष्य एक दूसरे कक्ष में आ गये। बैठने के बाद वात्स्यायन ने कहा—‘कहो भागुरायण! क्या समाचार है! और शार्ङ्गरव! तुम पंचनद अभी हो आये या नहीं?’

**शार्ङ्गरव**—पंचनद हो आया गुरुदेव! आज ही वहाँ से कुसुमपुर

आया हूँ।

**वात्स्यायन**—कहो, चन्द्रगुप्त और सिंहाक्ष सकुशल तो हैं!

**शार्ङ्गरव**—आपका वरद हस्त जिसके सिर पर हो उसका अमंगल भला कैसे हो सकता है! लेकिन वैसे वे आग से खेल रहे हैं।

**वात्स्यायन**—आग से खेलना तो मनुष्य का धर्म है। जो राह की आपत्तियों से डरकर आगे नहीं बढ़ता यह भूमि उसके लिए अभिशाप है। क्या चन्द्रगुप्त मगध आने के लिए कहता था?

**शार्ङ्गरव**—आना तो चाहते हैं, पर अभी आ नहीं पायेंगे। चन्द्रगुप्त के वहाँ से हटते ही अब तक का बना बनाया खेल बिगड़ जायेगा।

**वात्स्यायन**—और सिकन्दर का अगला कदम क्या है?

**शार्ङ्गरव**—मगध की ओर बढ़ने का स्वप्न देख रहा है, पर उसकी सेना का साहस नहीं होता। सम्भव है बरसात बाद वह चढ़ाई करे। पर जैसा उसकी सेना का रुख है उससे तो सिकन्दर बहुत निराश प्रतीत हो रहा है। यह भी हो सकता है कि वह पंचनद से ही ग्रीस वापस लौट जाये। ऐसी अवस्था में भारत में सेल्यूकस उसका प्रतिनिधि रहेगा।

**वात्स्यायन**—सेल्यूकस सिकन्दर से कहीं भयंकर है शार्ङ्गरव! सिकन्दर वीर है, पर अत्याचारी उतना अधिक नहीं जितना सेल्यूकस। सेल्यूकस जब आगे बढ़ा तो कितने ही गाँवों में उसने यह भी न सोचा कि हमारे दौड़ते हुए घोड़ों की टापों से कितने निरीह कुचले जा रहे हैं। आतंक जमाने के लिए उसने हरे-भरे खेत जलाये, गरीबों के घर फूँके। पर यह आग अब आगे नहीं बढ़ सकेगी।

इसके बाद भागुरायण की ओर देखते हुए वात्स्यायन ने कहा—  
'कहो भागुरायण! मगध के नागरिकों का क्या समाचार है?'

**भागुरायण**—महामात्य राक्षस की रक्षा में उन्हें अपनी सुरक्षा का पूरा विश्वास है। महाराज नन्द के प्रति भी अब उनका कोई प्रत्यक्ष बड़ा विरोध नहीं है। राक्षस का कुछ ऐसा कुचक्र फैला हुआ है कि सबकी नन्द के राज्य में भारी भक्ति दिखाई देती है।

**वात्स्यायन**—यह भक्ति हृदय से है या आतंक और नीति से?

**भागुरायण**—यद्यपि आतंक और नीति से है फिर भी नन्द के राज्य की प्रशंसा सुनी जाती है।

**वात्स्यायन**—क्या इस बात की आवश्यकता है कि इस शान्ति



से संचालित राज्य में क्रान्ति हो ?

**भागुरायण**—यह तो गुरुदेव ही सोच सकते हैं। हम तो केवल आज्ञा-पालक सेवक हैं।

**वात्स्यायन**—तो सुनो, हम एक नया मार्ग निकाल रहे हैं। कूटनीति के स्थान पर अब साधु-नीति का अनुसरण करेंगे। शान्ति, सत्य, प्रेम और आदर्श मनुष्य के सबसे बड़े साथी हैं। हम उन्हें साथ लेकर जनता का स्तर ऊँचा उठायेंगे, जन-जन में वीर भावनाएँ जागृत करेंगे और जब जनता जाग उठेगी तो हम शान्ति से या शस्त्रों से विदेशियों को इस देश से बहुत दूर खदेड़ देंगे। पर इस सबके लिए जनता का वात्स्यायन पर विश्वास अनिवार्य है। जन-जन में हमें अपना विश्वास जमाना होगा।

कल प्रातः से हमारा कार्यक्रम होगा—गाँव-गाँव में भ्रमण। जागरण के गीत गा-गा कर हम सोते देश को जगा देंगे। तब जनता को राज्य की तलवारों से भी बड़ा विश्वास अपने हाथों के बल पर होगा। कल प्रातः हमारी नई यात्रा शुरू हो जायेगी।

**भागुरायण**—हमारे लिए क्या आज्ञा है ?

**वात्स्यायन**—आज ही एक ढोल लेकर ढिंढोरा पीट डालो कि “कल प्रातः से धर्म और नीति के पंडित आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन जागरण और धर्म का सन्देश लेकर देश भर की यात्रा करेंगे। उनकी यह यात्रा अथक होगी, तब तक जब तक कि देश विदेशियों से मुक्त होकर पूर्ण शान्ति प्राप्त नहीं कर लेगा। आचार्य वात्स्यायन हर चौपले और बस्ती में जन-जन से अपनी बात कहेंगे। आशा है, आप महात्मा वात्स्यायन के प्रवचनों से मुक्ति और शान्ति प्राप्त करेंगे।”

आचार्य की आज्ञा पाते ही भागुरायण और शार्ङ्गरव ढिंढोरा पीटने चले गये और वात्स्यायन सोचते-सोचते उठे। वे आप ही आप कहने लगे—‘मनुष्य के उद्देश्य और आदर्श महान् होने चाहियें। जो स्वयं को समष्टि में घोल देता है, संसार उसका विश्वास करता है। जिसका विश्वास है, उसका संसार है; जिसका विश्वास नहीं, उसका कोई भी नहीं होता। पर विश्वास भी उसी का होता है जिसे स्वयं पर विश्वास होता है। इसलिए विश्वास से विश्वास पैदा कर कर्म करो, तभी तो संकल्प पूरे होंगे। विश्वास से असत्य भी सत्य है और अविश्वास से सत्य भी असत्य है।’

वात्स्यायन आप ही आप और भी कुछ कहते पर सुवास ने आकर उनका ध्यान भंग कर दिया।

सुवास को देखते ही वात्स्यायन ने कहा—क्यों सुवास! मनुष्य जब अकेला होता है तब सत्य उसके साथ रहता है या जब वह किसी के साथ होता है तो सच्चा होता है?

**सुवास**—क्या मैंने आकर आपका सत्य भंग कर दिया?

**वात्स्यायन**—मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है सुवास! बल्कि मैं यह कहना चाहता हूँ कि मनुष्य जब दूसरे से बातें करता है तो उसके हृदय के किसी न किसी कोने में असत्य छिपा रहता है। लेकिन जब वह अकेले में विचारता है तो सत्य और असत्य का शुद्ध निर्णय कर लेता है।

**सुवास**—क्या आचार्य वात्स्यायन आज दार्शनिक चिन्तन कर रहे हैं?

**वात्स्यायन**—नहीं, अपितु हमने एक नई दिशा का निर्माण किया है। मनुष्य संसार में यदि सत्य के सहारे जीवित रहे तो लक्ष्य उसके निकट आ जाता है।

**सुवास**—सत्य अमृत नहीं, विष भी है। समय के अनुसार सत्य और असत्य का उपयोग मनुष्य का धर्म होना चाहिये। राजनीति में यदि कोई सत्य का पुजारी अवसर पड़ने पर भी असत्य न बोले तो परिणाम में राज्य की हत्या हो जाती है और फिर प्रजा 'त्राहि-त्राहि' पुकार उठती है। तभी तो कूटनीतिज्ञ कृष्ण ने सत्यवादी युधिष्ठिर से छल अथवा सच्चाई से असत्य कहलवाया।

**वात्स्यायन**—आदर्श और यथार्थ में कितनी विषमता है! आदर्श कहता है असत्य पाप है और यथार्थ कहता है असत्य भी सत्य है। संसार के टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर जो नीति-कुशल नहीं, वह गिर पड़ता है और यात्री उसे कुचलते हुए चले जाते हैं। लेकिन मृत्यु का सत्य कहता है, 'नश्वरता के लिए सत्य को छोड़कर मनुष्य को मिलता ही क्या है! तेरी अन्तिम गति धूल के कणों तक ही तो है।'।

**सुवास**—नश्वरता और मृत्यु के डर से जो संसार से पलायन करते हैं वे इस जीवित सृष्टि के हत्यारे हैं। मृत्यु से संसार तो नहीं मरता, इसलिए संसार को जो अपने अन्तिम श्वास से भी सजाते हैं, वे अमर



हैं।

**वात्स्यायन**—तुम्हारे तर्क अकाट्य होने लगे हैं सुवास ! लेकिन हमारी दिशा बदल चुकी है। हम कल से सत्य, प्रेम और देशभक्ति का सन्देश लेकर प्रयाण करेंगे।

**सुवास**—तो क्या आप यहाँ से चले जायेंगे ?

**वात्स्यायन**—सदा कौन कहाँ रहता है !

**सुवास**—चाँद जहाँ था वहीं है, सूर्य जहाँ रहता है वहीं रह रहा है। ध्रुवतारे ने अपना स्थान नहीं छोड़ा। आश्चर्य है कि कैसे एक महापण्डित यह कह रहे हैं कि सदा कौन कहाँ रहता है !

**वात्स्यायन**—सूर्य सबको प्रकाश देने के लिए दिशा बदलता है। क्या जब काले-काले मेघ घिरे होते हैं तब चन्द्रमा को तुमने चलते नहीं देखा ? यदि मनुष्य कहीं बँधकर बैठ जाये तो उसकी दशा गड्ढे में भरे बरसाती जल जैसी हो जाती है। मनुष्य के कल्याण के लिए मुझे अथक यात्रा करनी ही है। कल सूर्योदय के साथ-साथ वात्स्यायन भी चल पड़ेगा।

**सुवास**—तो सुवास भी उनके साथ चलेगी।

**वात्स्यायन**—यह नहीं होगा। नारी के साथ होने से पुरुष के पैर लड़खड़ा जाते हैं।

**सुवास**—नारी को साथ न लेकर पुरुष अपनी गति का साथ छोड़ देता है। पुरुष के स्वर के साथ जब नारी का स्वर भी मिल जाता है तो जागरण और जय मिलने में देर नहीं लगती।

**वात्स्यायन**—किन्तु किसी कुमारी को साथ देखकर समाज क्या कहेगा ! तुम इस समाज को नहीं जानतीं सुवास ! यहाँ सीता और चन्द्रमा पर भी दोष लगे हैं। किसी भी राष्ट्र-सेवी को यहाँ फूँक-फूँक कर पैर रखना पड़ता है।

**सुवास**—तो क्या समाज के डर से गति रोकना कायरता का लक्षण नहीं ?

**वात्स्यायन**—अन्धी वीरता से नाश को प्राप्त होना पड़ता है। जब तक देश को वात्स्यायन पर पूर्ण विश्वास नहीं हो जायेगा तब तक वात्स्यायन हर उस बात से बचता रहेगा जिससे उसके माथे पर स्याही का एक कण भी लग सके। यदि मनुष्य संसार में कमल की तरह न रह

सका तो उसका जीवन कीड़े की तरह हो जाता है। तुम हमारी मौन सहायक रहो, प्रभु और महाशक्ति से हमारी सफलता की कामना करती रहो।

प्रातः सुवास ने मौन होकर हृदय से नमस्कार किया और वात्स्यायन ने मनुष्य की सफलता के लिए कदम उठाया।

X

X

X

जो चरण विश्वास से आगे बढ़ते हैं जनता उनके पीछे-पीछे चल पड़ती है। वात्स्यायन आगे बढ़े। उनके कदम के साथ ही साथ आवाज दूर तक फैलने लगी। वे अकेले चले थे, पर हर नये कदम पर उनके साथ अनेक पैर मिलते चले गये।

चलते-चलते वात्स्यायन एक बड़ी बस्ती में रुके। भीड़ ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। 'महात्मा वात्स्यायन की जय! ऋषिवर वात्स्यायन की जय! आचार्य विष्णुगुप्त की जय!'

जयघोष से आकाश गूँज उठा। जय के उत्तर में हाथ जोड़ते हुए शान्त होकर वात्स्यायन ने कहना शुरू किया—'मैं आपसे सत्य और प्रेम का नाता जोड़ने आया हूँ। धरती मनुष्य से सत्य, प्रेम और वीरता का अमृत चाहती है।'

'आप देख रहे हैं और इतिहास साक्षी है, जहाँ सत्य और प्रेम है वहीं संगठन है, और जहाँ संगठन है वहीं जय। आपस में प्रेम न होने के कारण विश्वास उठता जा रहा है और विश्वास न होने से ही इस बड़े देश की शक्ति बिखर गई है। हम समष्टि से हटकर व्यक्तिवादी होते जा रहे हैं। हम जड़ से अलग पेड़ को खड़ा रखना चाहते हैं, पर जड़ के बिना पेड़ को खड़ा करना हथेली पर सरसों जमाना है। जनता की शक्ति में बड़ी शक्ति होती है। जिस राजा के साथ जनता का हृदय नहीं उस राजा के हाथों में देश अरक्षित है। हमारा देश अरक्षित होता जा रहा है। विदेशियों ने हमारे देश के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया है। देश को उनके पंजे से मुक्त करने के लिए हम सबको एक होकर वीरता से डटना पड़ेगा। हर्ष है कि भारतवर्ष में मगध एक संगठित और शक्तिशाली राज्य है जिसके बल को देखकर विदेशी आगे बढ़ने का साहस नहीं कर रहे। पर दूसरी ओर मगध के नाश के लिए चिंगारियाँ भी दबी पड़ी हैं। हमारे अपने ही समय की प्रतीक्षा में हैं। हमें विदेशियों से भी बड़ा भय घर से है। मैं घर में प्रेम देखना चाहता हूँ।'



वात्स्यायन प्रवचन कर रहे थे और नागरिकों की भीड़ शान्ति से श्रवण कर रही थी। लेकिन उसी भीड़ में दो व्यक्ति ऐसे थे जिनका ध्यान सुनने में नहीं था, अपितु वे देख रहे थे वात्स्यायन की गतिविधि! एक व्यक्ति ने दूसरे से कहा—‘वात्स्यायन सचमुच बड़े महात्मा जान पड़ते हैं।’

दूसरा व्यक्ति—‘लेकिन हम किसी को महात्मा समझकर भूल करेंगे। हमारा धर्म यही है कि प्रत्येक को सन्देह की दृष्टि से देखें। तुमने और भी कुछ देखा, इसी भीड़ में वह एक सिरघुटा कौन है! हमारी-तुम्हारी बातें वह बड़े ध्यान से सुन रहा था। तभी मैं तुम्हें वहाँ से उठाकर इस दूसरे स्थान पर ले आया हूँ। जान पड़ता है यह कोई गहरा साधु है। चलो, महामात्य तक यह सन्देश पहुँचायें।’

दोनों व्यक्ति उठकर चल दिये। जब वे कुछ दूर चले गये तो सिरघुटा भी उठा और उनके पीछे-पीछे चल पड़ा।

□□

न धरती की परिक्रमा रुकती है, न सूर्य और चन्द्र का कर्म। उत्तरदायित्व का निर्वाह करने वाले क्या कभी थक कर बैठते हैं! शासन के भार का सुख उस नियंता से पूछो जिसे सबकी चिन्ता रहती है। थके प्राणियों को शयन की थपकियाँ देने के हेतु सूरज चन्द्रमा को शासन के कर्म हेतु सोतों को जगाने चला जाता है, पर कोई-कोई ऐसा बिरला भी होता है जो सूरज के साथ चलता है और चन्द्रमा के साथ जागता है।

संध्या ढलती जा रही थी। कर्मचारीगण मुक्त होकर अपने-अपने घर चले गये थे, किन्तु महामात्य राक्षस अभी तक अपने कार्यालय में व्यस्त थे। वे कभी किसी कागज को पढ़ते और कभी किसी कागज पर कुछ लिखते।

उनके कक्ष में दीपक जल गये पर आकाश में आज एक भी तारा न था। अभी कुछ घण्टों पहले सूर्य प्रखरता से निकल रहे थे और अभी-अभी बादल घिर आये। आवश्यक कागजों से दृष्टि हटाते हुए महामात्य ने वातायन से झाँक आकाश की ओर देखा और आप ही आप कह उठे—‘बहुत रात हो गई दीखती है, पर अभी तो बहुत कार्य शेष है। हमने गुप्तचराधिप विराध को याद किया था, वे अभी तक नहीं आये!’ और फिर उन्होंने तुरन्त प्रहरी को बुलाने का ढोल-स्वर किया।

शब्द सुनते ही प्रहरी आया। महामात्य ने आज्ञा दी—गुप्तचराधिप विराध को सूचित करो कि राक्षस ने इसी समय आपको स्मरण किया है।

प्रहरी चला गया। कुछ देर बाद विराध आ गये। देखते ही महामात्य ने कहा—हम बहुत देर से आपकी प्रतीक्षा में हैं।

**विराध**—आज्ञा मिलते ही आने लगा था, पर दो भेदियों के अकस्मात् आ जाने से रुक गया। अवकाश पाते ही सेवा में उपस्थित हूँ।

**राक्षस**—यदि राजहित के कारण अधिकारी की आज्ञा का उल्लंघन भी हो जाये तो अनुचित नहीं। कहो, क्या समाचार है?

**विराध**—पंचनद से गुप्तचरों द्वारा जो समाचार मिल रहे हैं उनसे शीघ्र ही भीषण विस्फोट की सम्भावना है। सूचना मिली है कि यूनानियों



की सेना में कितने ही भारतीय भर्ती हो गये हैं। तक्षशिला कुमार आम्भी और मालव कुमार सिंहाक्ष सेना के एक-एक भाग के सेनापति नियुक्त हुए हैं। सुना है चन्द्रगुप्त नाम का कोई एक युवक यूनानियों का बड़ा सहायक है। यूनानियों को उस पर बड़ा भरोसा और विश्वास है। पंचनद की चुनी हुई अश्व सेना उसके अधिकार में है। इस प्रकार यूनानियों के साथ तक्षशिला, मालव, पंचनद और कितने ही देशद्रोही मगध पर टूटना चाहते हैं।

**महामात्य**—यदि संसार की सारी शक्तियाँ भी मिलकर मगध पर टूट पड़ें तो भी मगध का बाल बाँका नहीं हो सकता विराध! अभी राक्षस की बुद्धि और भुजाओं में बल है। हमने चूक की कि उस दिन आपस की शत्रुता छोड़ पंचनदाधिप महाराज पुरु की उनके न माँगने पर भी सहायता न की। होनी होकर ही रहती है। मैं जो चाहता हूँ वह सभी तो नहीं चाहते। हाँ, मगध की आन्तरिक दशा कैसी है?

**विराध**—मगध की आन्तरिक दशा बहुत अच्छी है महामात्य! जन-जन महामात्य के जीवन की कामना करता रहता है। सारा मगध एक सूत्र में बँधा प्रतीत होता है और हर्ष है कि महात्मा वात्स्यायन के सन्देशों से मगध राज्य की जड़ें और भी मजबूत होती जा रही हैं। वे द्वार-द्वार पर जन-जन को मानवता और देशभक्ति का सन्देश देते हैं। हमारे भेदिये ने अपने कानों से सुना है कि महात्मा वात्स्यायन अपने प्रवचन में कह रहे थे—‘महामात्य राक्षस के हाथों में हम सुरक्षित हैं।’ पता नहीं महामात्य! महात्मा वात्स्यायन की वाणी में कैसा आकर्षण है कि मगध का जन-जन उनका भक्त होता जा रहा है।

सुनकर महामात्य ने अपना माथा उँगली से कुरेदा और फिर सोचते हुए कहने लगे—महात्मा वात्स्यायन निस्सन्देह मनुष्यों में श्रेष्ठ जान पड़ते हैं। वे त्यागी और तपस्वी ब्राह्मण हैं। मेरे कहने पर भी उन्होंने राजसभा का रत्नासन स्वीकार नहीं किया। हृदय उनके आकर्षण से खिंचा जा रहा है, पर बुद्धि कभी-कभी कहती है कि राजनीति में महात्मा से महात्मा की बार-बार परीक्षा करनी चाहिए। विराध! हमारे गुप्तचर वात्स्यायन की प्रत्येक प्रवचन सभा में रहने चाहियें। महात्मा वात्स्यायन पर कड़ी दृष्टि रखी जाये। लेकिन किसी को कानोंकान यह पता न चले कि महात्मा वात्स्यायन पर राज्य की ओर से सन्देह की कोई झलक भी है।

**विराध**—आपके कहे बिना ही मैं सतर्क हूँ।

**राक्षस**—अच्छा तो अब तुम जाओ! पर्याप्त रात हो चुकी है।

अभिवादन कर विराध महामात्य के कार्यालय से बाहर आये। वे बहुत थक चुके थे, अतः सीधी अपने निवास की राह पकड़ी। कुछ ही देर में वे अपने घर आ गये। उन्होंने घर में जाकर सोने के लिए वस्त्र उतारे ही थे कि द्वारपाल ने आकर कहा—दो सेवक किसी सिरघुटे को पकड़ कर लाये हैं। वे इसी समय आपसे भेंट करना चाहते हैं।

**विराध**—कौन हैं सेवक?

**द्वारपाल**—वे ही जो पिछले सप्ताह प्रातः आपसे बातें कर रहे थे।

विराध ने कुछ सोचा और कहा—उन्हें हमारे अतिथि-कक्ष में बैठाओ, हम आते हैं।

द्वारपाल चला गया। उसने दोनों सेवकों और तीसरे उस अपरिचित को अतिथि-कक्ष में बैठाया। थोड़ी देर बाद विराध वहाँ आये। आते ही उन्होंने पैनी दृष्टि से तीनों की देखा और आँखें चढ़ाते हुए बोले—क्यों विनायक! यह कौन है?

उत्तर में विनायक ने कहा—यह किसी शत्रु का कोई धूर्त भेदिया पड़ता है। महात्मा वात्स्यायन की हर प्रवचन सभा में यह उपस्थित रहता है। हमने कई दिन तक इससे पूछताछ की, पर इसके उत्तर सन्देह पैदा करते हैं। यह कभी कुछ बताता है, कभी कुछ।

आगे विनायक कुछ कहें इससे पहले ही वे बन्दी महोदय उलटा-सीधा मुँह बनाते हुए बोले—“मैं धूर्त नहीं हूँ महाराज जी! धूर्त ये दोनों हैं जो मुझ निर्दोष के पीछे पड़े हुए हैं। जिधर मैं जाता हूँ उधर ही ये भूत की तरह घूमते दिखाई देते हैं। मैं एक शिक्षित और सच्चा ब्राह्मण हूँ। पर दुर्भाग्य का मारा हुआ इस रूप में भ्रमण करता रहता हूँ, नहीं तो यह महात्मा वात्स्यायन मेरे सामने क्या है! मैं दर्शन, अर्थशास्त्र, ज्योतिष सब विद्याओं में पारंगत हूँ। भृगुसंहिता के अनुसार मैं पूर्व जन्म का योगभ्रष्ट संन्यासी हूँ, नहीं तो इस युग का सबसे बड़ा महात्मा मैं होता। अब भी बड़े-बड़े पंडितों से शास्त्रार्थ कर सकता हूँ। प्रतिदिन यह सोचकर वात्स्यायन की सभा में जाता हूँ कि उससे शास्त्रार्थ करूँगा, पर यह सोचकर मौन हो जाता हूँ कि कागों की सभा में हंस की कौन सुनेगा!”



सुनकर विराध को हँसी आ गई। उन्होंने हँसते हुए कहा—तुम्हें पागलपन का रोग तो नहीं है ?

**साधु**—यदि नन्द के राज्य में पढ़े-लिखे पागल हैं तो मैं अवश्य पागल हूँ।

**विराध**—तुमने पढ़ा कहाँ है ?

**साधु**—कहीं भी नहीं, अपने आप पढ़ा है।

**विराध**—मूर्ख ! क्या बेसिर-पैर की बातें करता है ?

**साधु**—बेसिर-पैर की बातें नहीं। एकलव्य ने भी तो अपने आप ही पढ़ा था। मैंने भी बृहस्पति की मूर्ति सामने रखकर शिक्षा प्राप्त की है।

साधु के उत्तरों से विराध उलझन में पड़ गये। वे सोचने लगे, “एक बार सोचता हूँ तो यह पागल जान पड़ता है और दूसरी बार सोचता हूँ तो यह विद्वान सिद्ध होता है।” सोचते-सोचते विराध ने प्रत्यक्ष में कहा—तुम्हारा नाम क्या है ?

**साधु**—मेरी माँ ने मेरा नाम भास्कर रखा था। पर माँ मर गई और निर्धनता में मुझसे सेवा लेने वालों ने बिगाड़ते-बिगाड़ते ‘भासुरक’ कर दिया।

**विराध**—लेकिन क्या तुम्हें यह मालूम नहीं कि महाराज नन्द के राज्य में व्यर्थ इधर-उधर घूमने वाले को दण्ड भोगना पड़ता है ?

**भासुरक**—आप मुझे सेवा-कार्य दे दीजिये, मैं व्यर्थ नहीं घूमूँगा। जब से गाँव से आया हूँ तब से कार्य ढूँढ़ रहा हूँ, पर सारा श्रम व्यर्थ हो जाता है।

**विराध**—अच्छा, हम तुम्हें अपने विभाग में रख लेते हैं, पर यह ध्यान रहे यदि हमें तनिक भी यह गन्ध आई कि तुम किसी शत्रु के भेदिये हो तो नीचे आग जलाकर ऊपर तुम्हें टाँग दिया जायेगा और तुम तड़प-तड़प कर जल जाओगे।

**भासुरक**—मैं आपका आभारी हूँ और आपकी सेवा स्वीकार करता हूँ।

विराध ने विनायक को आज्ञा दी—सावधानी से इसे अपने यहाँ रख लो ! लेकिन यदि यह तनिक भी हिले तो तुरन्त सूचना देना !

कहकर थके हुए विराध जाकर सो गये और भासुरक ने विनायक तथा जीवधर्म को कृतज्ञता से देखते हुए कहा—आपने बड़ी कृपा की

जो मुझे पकड़ लाये ! उदरपूर्ति की समस्या से मुक्त मनुष्य राजा के समान है । कभी-कभी विष भी अमृत हो जाता है । आपकी दया का मैं सदा आभारी रहूँगा ।

भासुरक ने कुछ ऐसी लच्छेदार बातें की कि जीवधर्म और विनायक दोनों उसे भला समझने लगे । साधु भासुरक ने जो दोनों की प्रशंसा बखानी तो दोनों उसके हितैषी बनने की मन ही मन में कामना करने लगे । जिस नीतिकार ने यह कहा कि निन्दक को निकट रखना चाहिये, उस नीतिकार को यह भी कहना चाहिए था कि प्रशंसक से दूर रहना चाहिये । अपनी प्रशंसा सुनकर मनुष्य गुब्बारे की तरह फूल जाता है और बालक भी उसे खेल-खेल में पलक मारते ही फोड़ सकता है ।

धीरे-धीरे भासुरक का प्रभाव बढ़ता गया । जैसे-जैसे दिन बीतते गये वैसे ही वैसे मगध राज्य के गुप्तचर विभाग पर वह छाने लगा । अपनी कुशल बुद्धि और अथक श्रम से वह महामात्य के चुने हुए भेदियों में गिना जाने लगा ।

X

X

X

समय ने तेजी के पग बढ़ाये । बादलों का रुख मगध की ओर दिखाई देने लगा । महामात्य के कानों में तरह-तरह के समाचार आने शुरू हो गये । उठती हुई विभीषिका देख राक्षस ने एक दिन एकान्त में गुप्तचराधिप विराध से कहा—समय भयानक है ! आँखें यदि पल भर भी बन्द हुईं तो लुटेरे दिन दहाड़े चढ़ आयेंगे । कोई असावधानी न होने पाये ।

**विराध**—हमारी आँखें खुली हुई हैं, महामात्य !

**राक्षस**—सिकन्दर की सेना के आस-पास हमारे गुप्तचर हैं न ?

**विराध**—हाँ, महामात्य ! भासुरक के नेतृत्व में हमने अपने चुने हुए भेदिए वेष बदलकर भेजे हुए हैं । आज ही भासुरक ने समाचार भेजा है कि चन्द्रगुप्त नाम का युवक महाराज नन्द की परित्यक्ता रानी मुरा का पुत्र है ।

**राक्षस**—यह भासुरक बड़ा चतुर और चालाक भेदिया है । यह बात उसने बड़े रहस्य की खोजी है । जान पड़ता है प्रतिशोध की ज्वाला से धधकती हुई मुरा अपने पुत्र द्वारा यूनानियों की सहायता से मगध राज्य का ध्वंस करना चाहती है ।



**विराध**—सूचना मिली है कि चन्द्रगुप्त युद्धकुशल वीर सेनाधिप है। उसके संरक्षण में विद्रोही भारतीयों की रणबाँकुरी सेना है।

**राक्षस**—हमारी शक्ति चाहे कितनी भी अजेय हो, फिर भी शत्रु को छोटा समझना भूल है। शत्रु सिर उठाते जा रहे हैं। उनका सिर कुचलने के लिए यदि हम आक्रमण की प्रतीक्षा न करके आक्रान्ता बन जायें तो ?

**विराध**—अपने घर में शत्रु की शक्ति दुगुनी होती है महामात्य ! इसलिए उसे ही यहाँ आने का अवसर दिया जाये तो सरलता होगी।

**राक्षस**—सरलता कायरता का दूसरा नाम है। खैर, यह तुम्हारे सोचने की बात नहीं। इस पर मन्त्रिगण विचार करेंगे। तुम यह बताओ, राज्य के उच्चाधिकारियों की रक्षा के लिए उनके अंगरक्षकों में तो कोई अविश्वासी नहीं है ?

**विराध**—नहीं महामात्य ! मैंने स्वयं परीक्षा के बाद भेदिये नियुक्त किये हैं।

**राक्षस**—महाराज की देख-रेख को भी सतर्क गुप्तचर नियुक्त हैं न ?

**विराध**—महाराज के निजी महल तक में मैंने गुप्तचरायें भेजी हुई हैं। परिचारिकाओं में कितनी ही प्रवीण गुप्तचरायें हैं।

**महामात्य**—हमें एक अत्यन्त विश्वस्त भेदिया अपने लिए चाहिए। हम चाहते हैं तुम रहो ! पर ऐसा करने से सारा गुप्तचर विभाग उचित रीति से संचालित न हो सकेगा। क्या कोई और अत्यन्त विश्वस्त है ?

**विराध**—है।

**राक्षस**—कौन है ? और तुम उसके बारे में क्या जानते हो ?

**विराध**—वह भासुरक का बाल सहचर है। भासुरक ने ही उसे हमारे विभाग में वृत्ति दिलाई है।

**राक्षस**—नये व्यक्ति पर तुमने इतना विश्वास कर लिया कि उसे हमारे पास रखने को उद्यत हो गये !

**विराध**—इसलिए कि भासुरक के पंचनद जाने के बाद वह भासुरक का स्थानापन्न है और उस स्थान पर वह बड़ी कुशलता से कार्य कर रहा है। उसने कितनी ही रहस्य की बातों का पता लगाया है। कल ही उसने कोई भी सहायता न होते हुए दो भेदिये पकड़ लिये।

उसने उन्हें ऐसा चक्का दिया कि घुमा फिराकर अपने सिपाहियों के निकट ले आया और उन्हें बन्दी करा दिया। उनकी जेब से कई कागज के कागज मिले हैं। उनमें मगध के मुख्य-मुख्य स्थानों के चित्र भी हैं। एक कागज पर लिखा है कि 'मगध में शरद पूर्णिमा के अवसर पर कौमुदी महोत्सव बड़े समारोह से होता है। उस समय राजा, प्रजा, सेना सब आनन्द में ऐसे डूब जाते हैं जैसे शराबी अपने होश में नहीं रहते।'

राक्षस—यदि ऐसा है तब तो उसे हमारे पास छोड़ दो, लेकिन फिर भी तुम्हें पूरा विश्वास होना चाहिये। मुझे यदि तनिक भी सन्देह हुआ तो उसके साथ तुम्हें भी मृत्यु-दण्ड भोगना पड़ेगा।

विराध—और शत्रुओं के उन दोनों भेदियों को क्या दण्ड दिया जाये ?

राक्षस—उन्हें बन्दी रखा जाये। भय से और हर तरह से उनसे पूछताछ करते रहो ! उनकी मृत्यु न हो और उनमें जीवन भी न रहे।

विराध—जैसी आज्ञा।

राक्षस—और हाँ, यह तो हम पूछना ही भूल गये कि महात्मा वात्स्यायन की क्या गतिविधि है ?

विराध—उनकी गति तपते रवि और अमृत भरे शशि की तरह है। उनके चरणों की धूल माथे पर लगाने के लिए जनता उत्सुक रहती है। बालक, बूढ़े, युवा, स्त्री, पुरुष सभी को उनके दर्शनों से जीवन मिलता है।

सुनकर राक्षस ने माथे पर उँगली रखकर सोचा और फिर बोला—वे अकेले ही चलते हैं या उनके साथ और भी हैं ?

विराध—उनके साथ केवल उनका शिष्य रहता है, जिसका नाम शार्ङ्गरव है।

राक्षस के माथे पर कुछ बल-से पड़ गये। उन्होंने विराध से कहा—तुम जाओ, हम कुछ चिन्तन करना चाहते हैं।

विराध चले गये और राक्षस चिन्तन करने लगे “महात्मा वात्स्यायन ! सूर्य के प्रकाश की तरह उनका तेज फैलता जा रहा है। उनके कथन में शक्ति है। वे जो कुछ कहते हैं सत्य लगता है। कितना विश्वास है उस व्यक्ति में ! जिसे स्वयं पर विश्वास होता है उस पर सबकी श्रद्धा हो जाती है। वस्तुतः वात्स्यायन का चरित्र अनुकरणीय है। वे कथनी और करनी में भिन्न नहीं लगते। देश के लिए उनके रोम-



रोम में भक्ति है। मनुष्यता के लिए वे भीख माँगते फिरते हैं। उनकी यात्रा से देश और राज्य के चरण दृढ़ हुए हैं।

“लेकिन फिर सोचना पड़ता है कि वात्स्यायन महात्मा हैं या राजनीतिज्ञ! देखने से पता चलता है कि वे महात्मा हैं, राजनीतिज्ञ नहीं। उनकी राजनीति जितनी भी है वह प्रत्यक्ष देशभक्ति मात्र है। वे मनुष्य की जय चाहते हैं।”

“कभी-कभी महात्मा पर सन्देह भी होता है, लेकिन जब उनके सामने जाता हूँ तो आँखें झुक जाती हैं। पता नहीं कैसा तेज है महात्मा वात्स्यायन में! कैसा तप है उनका! अवश्य ही उनमें सत्य, प्रेम और त्याग का प्रकाश है। यह हमारे लिए गौरव है। मगध में ऐसे महात्मा का होना अँधेरे में उजाले का होना है।

“सब होते हुए भी और उसका भला करते हुए भी संसार में जीवन कितना कठोर होता है! राजनीतिक एवं सामाजिक व्यक्ति का जीवन आग और पानी का खेल है। तनिक-सी चूक हुई कि निर्माण नाश में बदल जाता है, इसलिए हर समय सिर में दर्द रहता है। राजनीति सिर-दर्द का ही दूसरा नाम है। रात-दिन वातचक्र की तरह घूमना पड़ता है। कभी-कभी तो थक कर विश्राम करने को जी चाहता है, पर विश्राम जैसे हमारे लिए विधाता ने रचा ही नहीं। कितना कठोर जीवन है! मगध का महामात्य और किसी के प्यार के लिए तरसता रहे! हम सुवास के प्यार की सिहरन के सहारे ही सो सकते हैं। पर जैसे शिशु का चाँद को छूने का प्रयत्न असफल खेल है, उसी प्रकार सुवास भी हमसे दूर है। प्रथम तो राजनीति की उलझनों से अवकाश ही नहीं मिलता। जो जितना बड़ा होता है उसका उत्तरदायित्व भी उतना ही बड़ा होता है। बादल पृथ्वी की प्यास बुझाते हैं पर स्वयम् वाष्प की तृषा हैं।

“कितना प्यासा हूँ मैं! सब समझते हैं और यह सत्य भी है कि आज रूप और वैभव मेरी उँगली पर खेल सकते हैं। किन्तु यह कौन जानता है कि तारे चाँद को नहीं छू सकते! बचपन से लेकर आज तक थपकियों के लिए तरसते हैं। न माँ की थपकियाँ मिलीं और न सुवासिनी का प्यार! बिखरा हुआ बचपन अरक्षित होकर भटकने लगा। उसने दृढ़ता से पग जमाये पर अशान्ति अभी तक नहीं मिटी। यह मेरी दुर्बलता है या कर्तव्य की कठोरता?

“कुछ भी हो, जैसे जीवन चलता है चलने दो ! निराश्रित पवन भी तो आधारहीन है ।

“यह क्या ! हृदय स्मन्दित होने लगा । मन चाहता है सुवास के पास चलो, पर स्वाभिमान कहता है मत जाओ ! तिरस्कार से यदि स्वर्ग भी मिले तो तुच्छ है । सुवासिनी हमारे प्यार की हँसी उड़ाती है, हमारे ही सामने ! मन खीज उठता है, पर क्षण दो क्षण के लिए ही ! चलो, चलें सुवास के घर ! पर वहाँ पहुँचने पर मन पर कितना बोझ हो जायेगा ! जो होगा, हो जायेगा ।”

कहते-कहते राक्षस चल दिये और बात की बात में सुवास के निवास पर आ पहुँचे ।

सुवास ने राक्षस को देखते ही शिष्टता से आदर दिया, पर हृदय से वह झिझकी । कुछ देर मौन रहने के बाद सुवास ने कहा—कहिये, महामात्य ने पधारने का कैसे कष्ट किया ?

**राक्षस**—संसार में भोलापन भी एक बड़ा गुण होता है । जानते हुए भी अनजान बनने का प्रदर्शन कितना सरल है सुवास ! क्या हृदय की भाषा वाणी से कहकर ही समझाई जा सकती है ?

**सुवास**—आपके हृदय पर मुझे तरस आता है ।

सुनकर राक्षस का स्वाभिमान जाग उठा । उन्होंने रूँधे कण्ठ से कहा—तरस भिखारी पर आता है, भीख माँगने नहीं आया । न जाने क्यों इस व्यस्त जीवन में भी चारों ओर तुम्हारी मूर्ति आँखों को दिखाई देती है । बहुत बार सोचता हूँ प्यार हार का दूसरा नाम है, लेकिन फिर हृदय मचलने लगता है, आँसू बरबस बरस पड़ते हैं । तुम्हें मुझसे भय लगता है तो मैं नहीं आया करूँगा ।

**सुवास**—किसी की विवशता को कोई पहचान नहीं पाता । सब अपने हृदय की भाषा सुनते हैं । न जाने क्यों मेरा मन प्यार से दूर रहना चाहता है । मुझे संसार में प्यार से बड़ी देशभक्ति दिखाई देती है । महामात्य ! जब तक देश से विदेशियों का पूर्णतः निष्कासन नहीं हो जायेगा तब तक मेरा मस्तिष्क इन बातों में नहीं उलझना चाहता ।

**राक्षस**—प्रतिज्ञा पर प्रतिज्ञा करती रहो या यह कहो कि बहाने पर बहाना टटोलती जा रही हो !

**सुवास**—आश्चर्य है कि मगध के शक्ति-सम्पन्न राजभक्त महामात्य देशभक्ति को खेल समझ रहे हैं ! देखते नहीं, महामात्य



वात्स्यायन देश के लिए द्वार-द्वार पर आवाज लगा रहे हैं। जिस समय देश पर शत्रुओं के झण्डे फहरा रहे हों उस समय प्यार की झन्कार सुनने वाले कान पाप के गीत सुनते हैं। ऐसे समय सुवास की ओर मत देखो महामात्य! महात्मा वात्स्यायन और भारत के भविष्य की ओर देखो! तुम अपने अभाव को सबसे बड़ा दुःख समझते हो। क्या तुमने कभी वात्स्यायन के जीवन की झलक देखी है जिसे न शैशव में माँ की गोद मिली और न बचपन में पिता की छाया और आज जो धरती पर सोता है तथा आकाश की चादर ओढ़ता है। जानते हो किसलिए? दुखियों के आँसू पोंछने के लिए, देश की स्वतन्त्रता अक्षय रखने के लिए।

राक्षस ने भावुकता से नहीं बल्कि ध्यान से सुवास का शब्द-शब्द सुना और फिर गम्भीरता से कह उठे—राक्षस आँखें बन्द करके मगध राज्य का संचालन नहीं करते। वे महात्मा वात्स्यायन और परिस्थितियों को पहचानते हैं। हो सकता है सुवास के हृदय में उनका गहरा सम्मान हो, लेकिन यह बात नहीं कि राक्षस महात्मा वात्स्यायन का मान नहीं करते। अच्छा सुवास! अब हम जाते हैं। तुम्हारे प्यार से आज हमें नई प्रेरणा मिली। आज पता चला कि प्यार पैरों को गति देता है। हम जय के लिए जा रहे हैं, अब उसी दिन मिलेंगे जिस दिन देश विदेशियों से मुक्त होगा और राज्य भर में शान्ति की मुरली सुनाई देगी।

आगे कुछ कहे बिना ही आवेश में महामात्य अपने निवास पर पहुँचे और तुरन्त विराध को बुलाया। विराध के आते ही महामात्य ने कहा—किसी भी तरह पता लगाओ कि वात्स्यायन कहाँ पैदा हुए, कौन उनकी माता थी, कौन उनके पिता थे तथा शैशव से लेकर अब तक का उनका जीवन-चरित्र क्या है? हम जन्म से लेकर अब तक का उनका इतिहास जानना चाहते हैं।

**विराध**—इस ओर यत्न तो पहले से ही किया जा रहा है पर कुछ स्पष्ट पता नहीं चलता। केवल इतना ही पता चलता है कि बचपन में ये अनाथ की तरह भटक रहे थे, मोहनस्वामी नामक किसी अध्यापक ने इन्हें पाला और शिक्षा दी। तदनन्तर ये तक्षशिला विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए गये। वहाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपनी प्रखर बुद्धि और सेवा के कारण आचार्य नियुक्त हुए और अब लोक-कल्याण के लिए एक महात्मा के रूप में समक्ष हैं।

**राक्षस**—यह पर्याप्त नहीं है। मैं जानना चाहता हूँ वात्स्यायन का

बचपन। मुझे सन्देह है कि कहीं यह महात्मा वात्स्यायन चणक-पुत्र कौटिल्य तो नहीं हैं! मुख पर वही साधुता, सम्भाषण में वैसी ही मृदुता! अन्तर है तो यह कि कौटिल्य एकदम श्वेत था और महामात्य वात्स्यायन बिल्कुल काले हैं। उनके दाँतों को देखकर भी लगता है कि वे कौटिल्य नहीं, क्योंकि कौटिल्य के दूध से पूरे दाँत थे और महात्मा वात्स्यायन का सामने का दाँत नहीं है।

**विराध**—कौटिल्य तो कभी का मर चुका है महामात्य! खोज करने से यही पता चला है कि वह गङ्गा में डूब गया था।

**राक्षस**—यह तो हम भी जानते हैं, पर आज कहीं से एक ऐसी गंध आई है कि महात्मा वात्स्यायन के रूप में चणक-पुत्र कौटिल्य है, इसलिए पूरी जाँच चाहता हूँ।

**विराध**—पता निकालने के लिए पूरा प्रयत्न किया जायेगा, महामात्य!

महामात्य चले गये और विराध ने जीवधर्म गुप्तचर को बुलाया। जीवधर्म के आते ही विराध ने कहा—महात्मा वात्स्यायन की प्रार्थना-सभा में साधु का वेष बनाकर जाओ और जाकर उनसे एकान्त में बड़े हर्ष से नमस्कार करके कहना, 'अरे कौटिल्य! तुम आज यहाँ इस रूप में कहाँ?' वे तुम्हें आश्चर्य से देखकर पूछेंगे, 'तुम कौन हो?' तो तुम कहना 'हमें नहीं पहचानते! हम दारुवर्मा के मौसेरे भाई हैं। उस दिन जब हम बचपन में आये थे और तुम्हारे साथ कबड्डी खेल रहे थे, भूल गये हमको!'

विराध की बातें सुनते ही जीवधर्म के मस्तिष्क में बवंडर आ गया। उसे बारह-तेरह वर्ष पहले की गाँव की गंगा किनारे की कोई घटना याद आ गई। पर उसने हृदय में उठते हुए सभी भावों को दबाते हुए कहा—'अर्थात् मुझे यह भेद निकालना है कि महात्मा वात्स्यायन कौटिल्य नाम के किसी बालक के रूपान्तर हैं या और कोई।'

**विराध**—तुम बहुत चतुर हो जीव! तभी तो हमने तुम्हें इस कार्य के लिए चुना।

**जीव**—गन्ध मिलनी चाहिये, फिर तो चाहे भेद समुद्र के अन्तराल में भी क्यों न छिपा हो, खोजने में जीवधर्म को देर नहीं लगती।

कहकर जीवधर्म अपने स्थान पर आये और एक नौजवान साधु का बाना पहना तथा फिर चिमटा बजाते हुए चल दिये। घूमते-फिरते



अलख जगाते और 'जय शम्भो' के नाद से कानों के पर्दे फाड़ते हुए वे आगे बढ़े। उनकी वाणी पर साधुओं का स्वर था और हृदय में हलचल। वे सोचे रहे थे, 'राज्य की सेवा भी कितनी कठोर होती है। कहीं वस्तुतः महात्मा वात्स्यायन के चोले में वही गाँव में अकस्मात् मिला हुआ साथी कौटिल्य हुआ तो आज कर्तव्य और मैत्री में युद्ध छिड़ जायेगा। पर किया क्या जाये? जब ओखली में सिर दे दिया तो मूसलों से क्या डरना?'

'जय शम्भो! जय भोले भण्डारी!'

और फिर इसी प्रकार अलख जगाते हुए जीवधर्म वात्स्यायन की चलती-फिरती कुटी पर आ पहुँचे।

संध्या समय था। महात्मा वात्स्यायन एक बड़ी भीड़ के सामने उपदेश कर रहे थे। जीवधर्म ने बड़े ध्यान से उन्हें देखा, पर मुँह देखकर उसने मन ही मन कहा—'यह कौटिल्य तो नहीं है। वह एकदम गौरा था और ये एकदम श्याम! उसका एक-एक दाँत कुन्दकली जैसा था और इनका तो आगे का दाँत ही नहीं। एक बात अवश्य है कि उस आकृति का ध्यान करके मुख की ओर देखने से वह झलक-सी मारती है, लेकिन यह तो भ्रम भी हो सकता है। जब हम किसी तने को मनुष्य समझकर भय की दृष्टि से देखते हैं तो वह मनुष्य ही दीखने लगता है। फिर क्या करूँ? क्या गुप्तचराधिप से जाकर कह दूँ कि महात्मा वात्स्यायन कौटिल्य नहीं हैं?'

'वापस जाने से पहले परीक्षा आवश्यक है। मुझे गुप्तचराधिप के कहे के अनुसार करना चाहिये।'

हृदय में महात्मा की पूरी परीक्षा का निर्णय कर जीवधर्म समय की प्रतीक्षा करने लगा। महात्मा का प्रवचन समाप्त हुआ, उपदेश के बाद वे अपनी कुटिया में चले गये। जब प्रवचन में आये हुए श्रोता भी अपने-अपने स्थान को चले गये तो अवसर पाकर जीवधर्म कुटी के द्वार पर पहुँचा। वह कुटी के भीतर प्रवेश करना चाहता था कि शार्ङ्गरव ने कुटी से बाहर निकलते हुए कहा—कहिये?

**जीव**—हम वात्स्यायन से एकान्त में वार्त्तालाप करना चाहते हैं। उनकी कीर्ति सुनकर सीधे काशी से चले आ रहे हैं।

**शार्ङ्गरव**—काशी से आये हो चाहे उत्तराखण्ड से, गुरुदेव अब भेंट नहीं करेंगे।

**जीव**—तू उनका चार दिन का शिष्य होकर हमारा अपमान करता है। जा, उनसे कह कि काशी के एक परम संन्यासी और आपके लँगोटिया सखा इसी समय आपसे भेंट करना चाहते हैं।

**शार्ङ्गरव**—चार दिन के शिष्य और चार दिन के साधु में कोई अन्तर नहीं होता साधु महाराज ! यदि आप वस्तुतः साधु होते तो तनिक-सी बात पर क्रोध न करते।

जीवधर्म ने मन ही मन में कहा—‘यह तो पूरा गुरुघंटाल मालूम होता है, सरलता से दाल नहीं गलने देगा। इसलिए अब कोई नई चाल चलनी चाहिये!’ और फिर प्रत्यक्ष में कहने लगा—मेरा स्वभाव कुछ तेज बोलने का है, मैं क्रोध नहीं कर रहा। नाराज न होओ और अपने गुरुदेव से जाकर कहो कि आपका बचपन का गंगातट वाला साथी जीवधर्म आपके दर्शन करना चाहता है।’

कुछ सोचकर शार्ङ्गरव ने उत्तर दिया—अच्छा मैं जाकर कहता हूँ, इतने आप उस पेड़ के नीचे विराजिये; क्योंकि गुरुजी संध्योपासना कर रहे हैं। वे तनिक उठें तो मैं निवेदन करता हूँ।

जीवधर्म पेड़ के नीचे जा बैठा और शार्ङ्गरव ने कुटी में प्रवेश किया। जाते ही गुरुदेव से बोला—‘एक साधु-वेशधारी नवयुवक आपसे भेंट करना चाहता है। वह अपना नाम जीवधर्म बता रहा है। कहता है, तुम्हारे गुरु हमारे गंगा-तट के बालसखा हैं।’

सुनकर वात्स्यायन ने गम्भीर होकर कहा—‘जीवधर्म, हमारा गंगा-तट का बालसखा!’ और मन ही मन में मौन होकर कहने लगे—‘कहीं यह वही जीवधर्म तो नहीं है जिसे कौटिल्य के जीवित रहने का रहस्य मालूम है! यदि यह वही है तो हमें इससे हानि तो नहीं हो सकती, पर समयान्तर से मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। कल जो सखा था आज वह शत्रु भी हो सकता है। यह भेद अभी खुलना नहीं चाहिये कि कौटिल्य ही महात्मा वात्स्यायन है, इसलिए सहसा विश्वास करना नीति के विरुद्ध है।’ और प्रकट में कहने लगे—शार्ङ्गरव ! क्या पता है साधु के वेष में कोई शत्रु हो। और इतनी बात बढ़ जाने पर उससे भेंट न करना भी सन्देह पैदा करता है, अतएव उससे जाकर कहो, ‘वे कहते हैं, हमारा तो गंगा-तट का कोई सखा जीवधर्म नहीं है, इसलिए भेंट की कोई आवश्यकता नहीं।’ यदि फिर भी वह हठ करे तो उसे हमारे पास ले आना।



आज्ञा पाकर शार्ङ्गरव कुटी से बाहर आये और साधु महाराज से बोले—‘गुरुदेव कहते हैं, हमारा गंगा-तट का कोई सखा जीवधर्म नहीं है, इसलिये भेंट की कोई आवश्यकता नहीं।’

**जीव**—बहुत दिन की बात होने के कारण तुम्हारे गुरुदेव को स्मरण नहीं रहा है, सामने होने से वे पहचान लेंगे।

**शार्ङ्गरव**—तुम हठ करते हो तो चलो!

जीवधर्म ने शार्ङ्गरव के साथ कुटी में प्रवेश किया। अभ्यागत को देखते ही वात्स्यायन ने आदर से बैठने का संकेत किया, जीवधर्म बैठ गये। कुछ देर तक वे बड़े ध्यान से वात्स्यायन के मुँह की ओर ताकते रहे। पर जब-जब भी जीवधर्म ने उनके मुँह की ओर देखा तब-तब ही महात्मा वात्स्यायन ने अपना मुँह कुछ विशेष ढंग का बना लिया।

कुछ देर देखने के बाद जीवधर्म ने कहा—आपका प्रवचन सुनते हुए मुझे ध्यान हुआ कि आप मेरे गंगा-तट वाले सखा कौटिल्य हैं, इसलिए दर्शनों की आकांक्षा हुई।

**वात्स्यायन**—यहाँ तो मैं अभी कुछ दिन से आया हूँ। बचपन से लेकर अब तक की शेष आयु गान्धार में कटी है। चलो, तब सखा नहीं थे तो क्या हुआ, अब सखा हो गये। कहिये, इस यौवन में ऐसा क्या वैराग्य सूझा जो भगवा कपड़े पहन लिये?

**जीव**—संसार की नश्वरता देखकर परमहंस हो गये हैं।

वात्स्यायन ने मुस्कराते हुए कहा—देश को साधुओं की आवश्यकता नहीं है, वीर चाहियें। जिस समय रणक्षेत्र में शत्रु लोहा लेकर ललकार रहा हो, उस समय देश के युवक यदि साधु होकर चिमटा लड़खड़ाते रहेंगे तो न देश रहेगा, न साधु। मुझे तुम्हारे शरीर पर भगवा वस्त्र देखकर क्षोभ हुआ। उतार दो इन्हें और कमर से तलवार बाँध लो! आज ‘जय शम्भो’ के नाद की आवश्यकता नहीं, ‘हर हर महादेव’ की हुँकार में ‘जय भारत’ कहो! यह बनावटी बाना छोड़ दो और राष्ट्रीय सेना में शामिल हो जाओ! हमने सम्पूर्ण भारत की अखण्ड स्वतन्त्रता के लिए एक राष्ट्रीय सेना का निर्माण किया है। हम चाहते हैं और भारतमाता चाहती है कि समस्त नवयुवक राष्ट्रीय सेना में शामिल हो जायें। बस, हमें तुमसे और कुछ नहीं कहना, तुम जा सकते हो।

हतप्रभ हो जीवधर्म चला गया। वह उलझन में पड़ गया, किसी भी निर्णय पर न पहुँच सका। अपने और महात्मा वात्स्यायन के धागे

उलझाता-सुलझाता चलता रहा और इधर वात्स्यायन ने शार्ङ्गरव से कहा—वत्स ! यह साधु रहस्य से खाली नहीं आया था । जान पड़ता है कोई नयी हवा चली है । हो सकता है कि राज्य हमें विद्रोही घोषित कर दे, इसलिए कुछ काम बहुत शीघ्र होने हैं । क्या भागुरायण से कोई समाचार मिला ?

शार्ङ्गरव—नहीं गुरु जी ! केवल इतनी सूचना मिली है कि वह महामात्य राक्षस का निजी गुप्तचर होकर उनके साथ रहता है ।

वात्स्यायन—भागुरायण, तुम धन्य हो ! तुम आस्तीन में सांप की तरह महामात्य से जा लिपटे । और भासुरक ?

शार्ङ्गरव—वह राज्य की ओर से मुख्य गुप्तचर होकर पंचनद गया हुआ है ।

वात्स्यायन—हर तीर ठीक निशाने पर बैठ रहा है । अच्छा वत्स ! हम अमात्य शकटार से आज रात को ही भेंट करना चाहते हैं ।

शार्ङ्गरव—तो क्या आप उनके घर जायेंगे ?

वात्स्यायन—हाँ, कुटी पर तुम रहोगे । हम वेश बदलकर शकटार के पास जा रहे हैं । लाओ, उनके पड़ौसी सेठ घनश्यामदास वाले कपड़े ।

रात के लगभग ग्यारह बजे होंगे जब मलमल की धोती, रेशम का कुर्ता और सिल्क की पगड़ी बाँध सेठ घनश्यामदास अमात्य शकटार के दरवाजे पर पहुँचे । देखते ही द्वारपाल हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और बोला—अमात्य हैं सेठजी ! कहीं से थोड़ी देर हुई अभी आये हैं, भोजन करके ही चुके हैं, आप अन्दर चले जाइये !

सेठ जी ने अपनी उसी पुरानी लचक से, जिससे वे कभी-कभी अमात्य से मिलने आया करते थे, घर में प्रवेश किया ।

सेठ जी को देखते ही अमात्य शकटार ने नमस्कार का उत्तर देते हुए कहा—कहिये सेठ जी ! आज इतनी रात गये कैसे पधारने की कृपा की ?

सेठ जी ने अपने सिर की पगड़ी उतारी और कहा—एक अत्यन्त आवश्यक कार्य से आया हूँ ।

पगड़ी उतारते ही शकटार ने कहा—‘अरे तुम ! चलो, गुप्त कक्ष में बैठें । अँधेरे में दीपक का उजाला होगा ।’



शकटार के गुप्त कक्ष में बैठते हुए वात्स्यायन ने कहा—जान पड़ता है रहस्य खुल गया। महामात्य को मुझ पर सन्देह होने लगा है। अवश्य उन्हें किसी से पता लग गया है कि महात्मा वात्स्यायन के रूप में चणक-पुत्र कौटिल्य है। उनके गुप्तचर मेरे पग-पग पर दृष्टि रखते हैं। कहीं आपके मुँह से तो कोई बात महामात्य के कानों तक नहीं पहुँच गई।

**शकटार**—नहीं वत्स! मेरे मुँह से तो स्वप्न में भी कोई बात नहीं निकली।

**वात्स्यायन**—यह भेद मेरे, आपके, सुवासिनी और शार्ङ्गरव के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। अवश्य ही किसी से चूक हुई है। तनिक सुवास से तो पूछिये!

‘बेटी सुवास!’ शकटार ने आवाज दी।

‘आई पिताजी!’ कहती हुई सुवास पढ़ती-पढ़ती पुस्तक बन्द करके आई उसे देखते ही वात्स्यायन ने गम्भीर होकर कहा—नीतिकारों ने सत्य कहा है कि नारी से अपने रहस्य की बात नहीं कहनी चाहिये, उसके पेट में गुप्त से गुप्त बात भी नहीं रुकती।

**सुवास**—आखिर बात क्या है महात्मा!

**वात्स्यायन**—महामात्य राक्षस को यह पता कैसे चला कि महात्मा वात्स्यायन के रूप में कौटिल्य है?

सुनकर सुवास गम्भीर हो गई। वह सोचने लगी, सोचते-सोचते उसने कहा—‘मैंने यह नहीं कहा कि वात्स्यायन के रूप में कौटिल्य है, लेकिन चूक मेरी अवश्य हुई है। जब मैंने कहा कि महात्मा वात्स्यायन वे हैं कि जिनको न शैशव में माँ की गोद मिली और न बचपन में पिता की छाया, तो महामात्य कुछ गम्भीर हो गये थे। अब मैं समझी कि वे क्यों गम्भीर हुए थे।’

**वात्स्यायन**—राजनीति में कम से कम बोलना भी एक बड़ा गुण है। पर अब बीती बात को सोचने से क्या! बादल घिरते आ रहे हैं, विस्फोट में देर नहीं होनी चाहिए। राष्ट्रीय सेना तन-मन-धन से उद्यत

है। पर पंचनद से चन्द्रगुप्त का कोई निश्चयात्मक समाचार नहीं मिला। यदि उधर से चन्द्रगुप्त आक्रमण करे और इधर से राष्ट्रीय सेना विद्रोह कर बैठे तो तीर ठीक लक्ष्य पर लगेगा।

**शकटार**—यह बात तो मैं बताना ही भूल गया कि कात्यायन महानन्द के कारागृह से मुक्त हो गये हैं, पर उमा को महानन्द की रानी बनना पड़ा।

**वात्स्यायन**—राजाओं के लिए यदि कोई साँपिन होती हैं तो उनकी रानियाँ ही। जो राजा स्त्रैणता का दास होता है वह अवश्य ही एक दिन नाश को प्राप्त होता है। कुशल नीतिज्ञ को अपनी सिद्धि के लिए सुन्दर और चतुर तरुणियाँ रखनी चाहियें।

**शकटार**—हमारा पैर साँप के फण पर है, मौका पाते ही वह डस सकता है। महामात्य राक्षस खुली आँखों सोते हैं। उनके भेद को पहचानना नारद मुनि के लिए भी सरल नहीं। न जाने कितने गुप्त शस्त्र उन्होंने सुरक्षित रख छोड़े हैं।

**वात्स्यायन**—प्रतिद्वन्दी की प्रशंसा करके मेरे हाथ ढीले करने की चेष्टा न करो चाचाजी! वात्स्यायन आग से खेलता है और पानी को जटाओं में रोक लेता है। आप राज्य के अन्दर चिंगारियाँ बोते रहिये, मैं बाहर से आग और पानी लेकर आता हूँ। अच्छा नमस्कार! अब अधिक नहीं ठहरूँगा। आवश्यकता पड़ने पर मैं किसी न किसी प्रकार आपसे मिल लूँगा। यदि कोई विशेष सूचना हो तो आप किसी तरह मेरी कुटी तक पहुँचा दें।

कहकर वात्स्यायन ने सिर पर पगड़ी रखी और चल दिये।

इधर-उधर घूमते हुए और लोगों की तीक्ष्ण आँखों को छलते-छलते अँधेरे में छिपते हुए महात्मा वात्स्यायन अपनी कुटी पर आ गये।

कुटी के द्वार पर शार्ङ्गरव सतर्कता से खड़े थे। गुरुदेव को देखते ही शार्ङ्गरव ने कहा—‘कल महामात्य राक्षस ने आपसे भेंट का अवसर चाहा है। अभी-अभी उनका दूत आया था। मैंने कह दिया कि गुरुदेव थककर सोये हैं। जागने पर मैं उनसे आपका निवेदन दूँगा।’

**वात्स्यायन**—वत्स शारंगरव! कुटी के आस-पास बरसात के कारण घास पैदा हो गई है। साँप, बिच्छुओं का डर है। जरा सावधानी से सोना!

**शार्ङ्गरव**—राम की रक्षा के लिए यदि लक्ष्मण जाग सकते हैं तो



क्या गुरुदेव के लिए शार्ङ्गरव नहीं जाग सकता ! मेरा भी अर्जुन की तरह निद्रा पर अधिकार है, गुरुदेव !

शार्ङ्गरव जागते रहे और महात्मा वात्स्यायन सो गये । प्रातः पाँच बजे के लगभग शार्ङ्गरव ने गुरुदेव को जगाया और कहा—यदि आज्ञा हो तो राजभवन के निकट वाले बगीचे से आपकी पूजा के लिए फूल ले आऊँ !

गुरुदेव एकदम उठे और आकाश की ओर देखते हुए बोले—‘तुम्हें हमें कुछ देर पहले जगा देना चाहिए था । देर हो गई जान पड़ती है । अब भी शीघ्र जाओ, कहीं ऐसा न हो कि फूल न मिलें ।’

गुरुदेव जाकर दिनचर्या में लग गये और शिष्य फूल लेने चला गया । वह लगभग कोस भर गया होगा कि सामने से कोई राज्याधिकारी आता दिखाई दिया । शार्ङ्गरव ने उससे रास्ता बचाकर दूसरी ओर को चलना चाहा, पर वह कड़ी आँखों से देखता हुआ सामने ही आ पहुँचा और डाटता हुआ बोला—‘ओ साधु ! कौन है ? कहाँ जाता है ?’

**शार्ङ्गरव**—जान पड़ता है मगध में आँखों वाले भी अन्धे होते हैं । स्वयं ही तो कह रहे हो ‘ओ साधु’ और फिर पूछते हो ‘कौन है’ । हैं कौन ! हम हैं महात्मा वात्स्यायन के शिष्य शार्ङ्गरव, गुरुदेव की पूजा के लिए फूल लेने जा रहे हैं ।

**अधिकारी**—जानते नहीं यह राजमार्ग है । महात्मा वात्स्यायन के शिष्य हो इसलिए छोड़ देते हैं, नहीं तो अभी बन्दी बना लेते । राजाज्ञा है कि इस पथ से कोई अपरिचित आने-जाने न पाये । तुम फूल लेने दूसरे मार्ग से जाया करो ।

**शार्ङ्गरव**—गुरुदेव की आज्ञा है कि कोई भी ऐसा काम मत करना जिससे राजदण्ड भोगना पड़े । जिस देश में रहना उस देश के विधान को हमारी आज्ञा की तरह मानना । मुझे पता नहीं था, इसलिए इधर से चला आया, अब आगे से नहीं आया करूँगा ।

**अधिकारी**—सचमुच महात्मा वात्स्यायन इस युग के सबसे बड़े महापुरुष हैं । उनके शिष्य के दर्शन कर हम कृतार्थ हो गये । बुरा न मानना महात्मा ! हम राजसेवक हैं, कर्तव्य-पालन हमारा धर्म है ।

‘साधु भलाई-बुराई और दुःख-सुख से दूर रहता है ।’ कहता हुआ शार्ङ्गरव आगे बढ़ गया । तेजी से पैर बढ़ाता हुआ वह अपने लक्ष्य पर पहुँचा । इधर-उधर फूल तोड़ वह अपने प्रतिदिन वाले पेड़ के पास

पहुँचा। पेड़ के तने के खोखर में पड़े सूखे पत्तों के नीचे से टटोलते-टटोलते उसने एक लिपटा हुआ कागज निकाला और चल दिया।

जब वह काफी दूर निकल गया और ऐसे स्थान पर गया जहाँ दूर-दूर तक कोई दिखाई न देता था तो उसने कागज खोला और पढ़ने लगा—“स्थिति भयंकर है। सूरज निकल आया है और प्रत्येक वस्तु दिखाई देने लगी है, केवल दीपक तले अँधेरा है। मैं अब किसी समय भी सूर्य से अलग नहीं रह सकता। सम्भवतः पत्र भी अब न लिख सकूँ। तुम भी अब इन उपवन में न आना। हो सका तो मैं किसी प्रकार सूचना दूँगा। कण-कण में सूर्य की किरणें फैली हुई हैं।”

“एक भयंकर जीव यहाँ है, जो भूत की तरह आप पर छाया हुआ है। आपका अब तक का जीवन-चरित्र यहाँ आ गया है। कोई भी पल प्रलय की तरह टूट सकता है। क्रान्ति में जितनी देर होगी उतनी ही असफलता निकट आने की सम्भावना है। चन्द्रगुप्त को मारने का अथवा बन्दी बनाने का षड्यन्त्र रचा जा रहा है। नमस्कार! ‘भ० र०’।”

पत्र पढ़कर शार्ङ्गरव के माथे पर श्रम-कण झलक आये। उसने अपनी चाल तेज की और बात ही बात में गुरुदेव की कुटी पर आ पहुँचा।

शिष्य को चिन्तित देख गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा—क्या बात है, वत्स!

शार्ङ्गरव ने घबराते हुए सारी कहानी कह सुनाई। सुनकर गुरुदेव ने हँसते हुए कहा—अब कोई चिन्ता की बात नहीं। आग बुझाई जा सकती है, पर राख को बुझाकर कोई क्या करेगा। हम वहाँ तक आ पहुँचे हैं जहाँ से हार पीछे रह चुकी है। घबराओ मत, अपना कार्यक्रम उसी प्रकार बनाये रखो! और हाँ, आज महामात्य से हमारी भेंट भी तो है न! उनके पास सूचना भेज दो कि आज प्रार्थना प्रवचन से पूर्व हम अपनी कुटी पर उनसे भेंट करेंगे। और इस पत्र को आज की रोटी बनाने के लिए आग सुलगाने के काम में ले लो।

महामात्य से भेंट का समय आ पहुँचा। कुटी के चारों ओर और राजभवन से कुटी तक के मार्ग पर पहरा लग गया।

निश्चित समय पर महामात्य महात्मा की कुटी पर आ गये। महात्मा ने महामात्य का मानवोचित सत्कार करते हुए कुशासन पर पधारने के लिए कहा।



पर महामात्य ने भूमि पर बैठते हुए कहा—महात्मा का आसन महामात्य से ऊँचा होता है। आप पधारिये, मेरे लिए आपके चरणों का स्थान राजसिंहासन से भी मान्य है।

**वात्स्यायन**—आपकी सरलता पर तो देवताओं को भी मुग्ध होना पड़ेगा। कहिये, महामात्य ने यहाँ तक पधारने का कैसे कष्ट किया?

**महामात्य**—जय का आशीर्वाद लेने आया हूँ।

**वात्स्यायन**—मगध के यशस्वी महामात्य को कौन परास्त कर सकता है!

**महामात्य**—चिंगारियों का जाल जिस तरह फैल रहा है उससे क्या स्वाहा नहीं हो सकते! सुना है मालव, गान्धार, पंचनद तथा चन्द्रगुप्त जैसे कितने ही वीर योद्धा सिकन्दर के साथ मिलकर मगध पर चढ़ाई करने के लिए आ रहे हैं। उनकी गति रोकने के लिए सीमा पर सेना लगा दी गई है।

**वात्स्यायन**—देशद्रोहियों के लिए भारत की तलवारों में अभी धार पर्याप्त है। चिन्ता न करो महामात्य! तुम्हारी राजकीय सेना के साथ-साथ मगध तथा आस-पास की जनता का हर बूढ़ा और युवक 'राष्ट्रीय रक्षा दल' का सैनिक है। मैंने जन-जन में देशभक्ति की भावना जगा दी है। यदि ग्रीक मगध की ओर बढ़ें तो तुम पंचनद की ओर प्रस्थान कर दो—

**महामात्य**—जिस देश के साथ आप जैसे महात्मा का हृदय और मस्तिष्क है उस देश में 'पराजय' शब्द का जन्म नहीं होता। मगध राज्य में आज आध्यात्मिक और शारीरिक बल की कमी नहीं। हमारे राज्य के अन्तर्गत कितनी ही ऐसी शक्तियाँ हैं जो आक्रान्ता को लोहे के चने चबा देंगी। गान्धार, मालव, पंचनद और चन्द्रगुप्त जैसे कितने ही एक साथ मिलकर चाहे ग्रीकों के साथ चले आयें, मगध की शक्ति उन्हें कुचल डालेगी। वैसे तो मगध का बल ही बहुत है लेकिन फिर भी अधीनस्थ राजाओं को सूचित किये देता हूँ कि अपनी तलवारें तेज कर लें, और....." कहते-कहते राक्षस रुक गये।

**वात्स्यायन** ने कहा—और क्या, महामात्य।

**महामात्य**—कुछ नहीं, सोच रहा था कौशाम्बी को एक पत्र लिख दूँ, लेकिन सोचता हूँ परिणाम कुछ न निकलेगा। वह छोटा-सा राज्य यदि ग्रीकों को मार्ग न देने की घोषणा भी कर दे तो वे बलात् मार्ग

ले लेंगे, इसलिए चुप हो गया। विदेशियों की सेना को कहाँ रोकना चाहिये, इस असमंजस में हूँ महात्मा।

**वात्स्यायन**—मेरा विचार है, तुम अपनी सेनाओं का प्रस्थान कौशाम्बी की ओर कर दो! आस-पास के राजा तुम्हारे सहायक हैं। उत्तरापथ से पंचनद की मिलती हुई सीमा पर मोर्चा बनाकर यदि शत्रु को रोका जा सके तो और भी अच्छा है। कहीं ऐसा न हो कि कौशाम्बी और उत्तरापथ विदेशियों के भय से मार्ग दे दें या उनमें मिल जायें, क्योंकि शक्ति के साथ सब घुलते जाते हैं। और यदि किसी प्रकार हो सके तो विदेशियों से मिले हुए विद्रोहियों को भी लालच या भय से अपनी ओर खींचने का यत्न करना।

**महामात्य**—मगध की मन्त्रि-परिषद् नीतिनिपुण है। उसमें समस्याओं पर विचार किया जा चुका है। कल फिर राज्य परिषद् बैठेगी, जो कुछ निर्णय होना है कल हो जायेगा। अच्छा, अब आज्ञा महात्मा।

**वात्स्यायन**—जाओ और जैसे भी हो इस देश का गौरव-ध्वज ऊँचा उठाते रहो।

‘महाशक्ति की कृपा से ऐसा ही होगा।’ कहते हुए महामात्य ने प्रस्थान किया। मार्ग में वे सोचने लगे, ‘बड़ा ही रहस्यमय व्यक्ति है यह महात्मा! बातें करने पर ऐसा लगता है जैसे इसके रोम-रोम में देशभक्ति भरी हुई है। कितना काम किया है इस व्यक्ति ने! सारे देश में विदेशियों के प्रति घृणा फैला दी। राष्ट्रीय सेना का संगठन भागीरथ प्रयत्न है। पर कहीं यह राजद्रोही हो जाये तो परिणाम क्या होगा? राजा और जनता में युद्ध! इसलिए आँखें बन्द नहीं रहनी चाहियें। राष्ट्रीय सेना पर महात्मा वात्स्यायन और शकटार का अधिकार है। ये दोनों यद्यपि देश के मेरुदण्ड हैं तथापि परिवर्तन होते क्या देर लगती है। कौन जानता है किसी के हृदय में क्या है। हो सकता है यह महात्मा चणक-पुत्र ही हो और इसके हृदय में पिता के प्रतिशोध की कोई गहरी आग दबी पड़ी हो, लेकिन यह समय ऐसा नहीं है कि महात्मा वात्स्यायन और शकटार को प्रत्यक्ष प्रतिद्वन्द्वी बनाया जाये। आज इनकी आवाज में बल है। यदि इस समय हम इन उलझनों में पड़ गये तो विदेशियों को बल मिल जायेगा। इस कठोर समय में इन्हें शत्रु बनाना उचित न होगा। राजतन्त्र में यह आवश्यक है कि प्रजा में जो उभरता



दिखाई दे उसे राजभक्त बना लिया जाये।

‘पश्चिम से काले बादल उठ रहे हैं, विद्युत् की कौंध से हृदय चमत्कृत हो उठते हैं। धरा प्यासी प्रतीत होती है, नहीं-नहीं, देवी चण्डी तृषातुर भटक रही है। तो क्या सचमुच रुधिर-वर्षण होगा? अब युद्ध टाला नहीं जा सकता। तो फिर आओ महादुर्गे! तलवारें तुम्हारी पिपासा शान्त करने के लिए म्यानों में लपलपा रही हैं।’

सोचते-सोचते महामात्य राजभवन में आ गये। आज वे ऐसे व्यग्र थे जैसे ज्वारभाटे के समय सिन्धु की लहरें होती हैं। रात भर युद्ध के चित्र बनाते रहे। सवेरे कुछ हल्के से शयन के बाद वे ऐसे उठे जैसे कोई विकराल स्वप्न देख चौंककर उठ बैठता है। उठते ही वे एक दक्ष सैनिक की भाँति खड़े हो गये। बड़ी तेजी से उन्होंने कितने ही राजकीय कार्य समाप्त किये और फिर मन्त्रि-परिषद् की बैठक के लिए प्रस्थान किया।

इधर से महामात्य और उधर से महानन्द एक साथ ही मन्त्रि-परिषद् में पधारे। उन्हें देखते ही अमात्यवृन्द सादर उठे और अभिवादन कर अपने-अपने स्थान पर विराजमान हो गये। बैठते ही महामात्य ने कहना शुरू किया—‘प्रत्यक्ष है कि विदेशियों की गतिविधि और अपने घर की हलचल से आप परिचित हैं। ग्रीक बढ़ते-बढ़ते पंचनद तक आ पहुँचे हैं। कितने ही देशवासियों ने सिर झुकाकर उनका स्वागत किया और उन्हें मार्ग दिया। यूनानी केवल वीर ही नहीं, बुद्धिमान भी हैं। पंचनद के राजा पुरु को उन्होंने जय करने के बाद स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया और उसे अपना मित्र बना लिया। अब वह छोटे-छोटे देशद्रोही राजाओं का साथ ले सारे भारत पर राज करने का स्वप्न पूरा करना चाहता है। सुना है उसके साथ चन्द्रगुप्त नाम का कोई एक रणदक्ष भारतीय युवक भी है, जो एक विशाल सेना का सेनापति घोषित किया गया है।

‘अब युद्ध निश्चित है। हमें उनके आक्रमण की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। सेनापति वक्रराज के संचालन में सीमा पर सेना लगाकर लुटेरों के पास सूचना भेज देनी चाहिये कि यदि आगे बढ़ने का साहस किया तो ग्रीस की स्वतन्त्रता से भी हाथ धो बैठोगे। मनुष्यता इसी में है कि सकुशल यूनान वापिस चले जाओ। हमारे घर में मतभेदों से तुम्हारा हम पर राज करने का स्वप्न कभी पूरा न होगा। यदि हमारे कहने पर

तुमने अपना मुँह यूनान की ओर न मोड़ा तो तुम्हें यूनान से भी हाथ धोना पड़ेगा।'

महामात्य अपना वक्तव्य दे ही रहे थे कि मन्त्रि-परिषद् में डर का डंका सुनाई दिया। दूसरे ही क्षण द्वार की ओर देखा तो विराध घबराया हुआ दिखाई दिया। लड़खड़ाती हुई वाणी से उसने कहा—'बड़ा भयंकर समाचार है महामात्य! अभी-अभी गुप्तचरों से सूचना मिली है कि चन्द्रगुप्त के संचालन में भारतीय और विदेशी सेना बड़ी संख्या में मगध की ओर प्रस्थान कर रही है। सुना है मगध और पंचनद के मध्य के राजाओं ने उन्हें मार्ग देना स्वीकार कर लिया है। और यह भी पता चला है कि चन्द्रगुप्त महाराज की परित्यक्ता पत्नी मुरा का पुत्र है।'

महामात्य कुछ कहने के लिए सोच ही रहे थे कि महाराज महानन्द दाँत पीसते हुए पहले ही बोले—चींटी पहाड़ पर चढ़ना चाहती है। सेनापति वक्रराज! मगध की अजेय सेना ले जाकर चन्द्रगुप्त को जीवित या मृतक ले आओ, जिससे मुरा के सामने उसका सिर काटा जा सके।

**महामात्य**—आवेश के साथ बुद्धि का सहयोग अनिवार्य है। वक्रराज! जाओ और सीमा पर चन्द्रगुप्त की गति रोको। सन्नद्धराज को भी अपने साथ लेते जाना। जहाँ तक हो चन्द्रगुप्त को बन्दी बनाने का प्रयत्न करना।

वक्रराज चले गये और महामात्य ने विराध से कहा—किसी भेदिये को राजसैनिकों के साथ पिप्पलीकानन भेजो, वहाँ से मुरा को ससम्मान सैनिक नियन्त्रण में राजभवन में ले आओ। लेकिन सावधान, कोई उपद्रव न होने पाये।

आज्ञा पाकर विराध चले गये। उसके बाद सबसे विदा ले महामात्य ने महानन्द से कहा—'महाराज! लपटें चारों ओर से उठ खड़ी हुई हैं। हो सकता है कुलूत और कश्मीर से भी हमें सहायता लेनी पड़े। चिन्ता की अब कोई बात नहीं। आप सुख से सोइये, महामात्य राक्षस के रहते मगध-नरेश को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।'।

**महानन्द**—तुम्हारे रहते चिन्ता करने की तो हमें आवश्यकता नहीं, लेकिन न जाने क्यों कभी-कभी हृदय काँप उठता है।

**महामात्य**—यह मनुष्य की दुर्बलता है, आप महल में जाइये।

महाराज महल में चले गये। उनको उदास देख महारानी सुनन्दा ने कहा—यह क्या, मगधाधिपति के माथे पर चिन्ता की रेखायें! सूरज



के माथे पर श्रमकण ! क्या बात है ?

**महानन्द**—कुछ नहीं महारानी ! ऐसे ही जरा सिर भारी हो गया ।

**सुनन्दा**—आप लेट जाइये, सिर दबा दूँगी, चित्त शान्त हो जायेगा ।

**महानन्द**—नहीं, यह ऐसा दर्द नहीं है जो दबाने से ठीक हो जायेगा ।

**सुनन्दा**—अन्ततोगत्वा बात क्या है ?

**महानन्द**—राजा कितना भी निर्द्वन्द्व क्यों न हो जाये, लेकिन कभी न कभी चिन्तायें उसे घेर लेती हैं । आज हमें अपनी एक भारी भूल का पश्चात्ताप है ।

**सुनन्दा**—भूल मनुष्य से होती है । यदि वस्तुतः भूल है तो पश्चात्ताप करना व्यर्थ है । भूल सुधारी जा सकती है, लेकिन अन्याय से जब प्रतिशोध की चिंगारी उठती है तो अनिष्ट अनिवार्य हो जाता है । कहीं आप अन्याय को भूल तो नहीं समझ रहे हैं ।

**महानन्द**—मुरा के परित्याग से आज अंगारे सुलग उठे हैं । उसका पुत्र चन्द्रगुप्त सेना इकट्ठी करके हमसे युद्ध करने आ रहा है ।

कुछ चिन्तित होकर सुनन्दा ने कहा—अनीति एक न एक दिन रंग लाती ही है । आपको बहुत बार समझाया, लेकिन आप न समझे । तनिक सी बात पर शकटार और कात्यायन को बन्दी बना लिया, मुरा का परित्याग कर दिया और फिर दोनों को मुक्त भी कर दिया । चोट खाये हुए राजमन्त्री दबे हुए सर्प होते हैं महाराज ! अवसर पाते ही वे डंक मार देते हैं । लेकिन अब इन बातों को सोचने से क्या, भविष्य की सोचिये ।

**महानन्द**—महानन्द के आड़े आना आग से खेलना है । अभी तक मुरा ने हमारी दया देखी है, क्रोध नहीं । अब वह अपनी आँखों के सामने चन्द्रगुप्त का सिर कटता भी देख लेगी । इस समय हम बहुत थक चुके हैं । महामात्य के रहते हमें राज-काज की उलझनों में उलझने की क्या आवश्यकता है ? अभी लड़ाई दूर है । सुरा लाओ, विचक्षणा और उमा से कहो कि हम घुँघरुओं की झनकार सुनना चाहते हैं । नृत्य होने दो, गाने वालियों को गाने दो । पता नहीं कल क्या हो, इसलिये आज तो जी भरकर हँस लें ।

दृश्य बदल गया । कोमल-कोमल उँगलियों से सोमपान, मगध

की अप्सराओं का मादक नृत्य और सुरीले कण्ठों के गीतों ने महाराज को झुमा दिया। मदालस में झूमते हुए महाराज ने अपना एक हाथ विचक्षणा के गले में तथा दूसरा उमा के कण्ठ में डाल दिया और लड़खड़ाती हुई वाणी में कहा—तुम तृप्ति और प्यास से भी सुन्दर हो। संसार का सारा सत्य सुरा और सौन्दर्य में है। जिस समय थिरकते हुए पैरों से, लाली भरी सुरमई आँखों से देखती हुई, अधरों से चाँदनी लुटाती कोई रूपसी एक हाथ से सुरा का चषक ओठों से छुवाती है और दूसरे हाथ से तृप्ति का कण्ठ स्पर्श कर वक्ष से वक्ष का संयोग करती है उस समय यदि किसी से कहा जाये 'तुझे स्वर्ग का राजा बनायेंगे, चल अभी!' तो वह यही कहेगा 'स्वर्ग का राज्य तो इस समय मेरे अंक में है।' क्यों विचक्षणा!

विचक्षणा ने महाराज की ओर देखा और हँस पड़ी। महाराज को जैसे मद का एक और प्याला मिल गया। उन्होंने रूप और जवानी में खोते हुए कहा—नृत्य बन्द कर दो और ज्योत्स्ना में स्नातु दुग्ध-सी फेनिल श्वेत शैया पर रसपान करने दो।

नृत्य की झनकार मौन हो गई। चाँदनी में महाराज को अँगड़ाइयों ने घेर लिया। आकर्षण, स्पन्दन और फिर स्पर्श। इसके बाद आँखों में आलस्य आया और महाराज सो गये।

तारों भरी रात में महाराज सो रहे थे और उधर से झेलम तथा चेनाब नदी के मध्यवर्ती वन में चन्द्रगुप्त एक अद्वितीय सुन्दरी से बातें कर रहा था। सुन्दरी के घने गुम्फित घुँघराले बालों में बड़ी ही अद्भुत चित्रकारी थी। बड़ी-बड़ी आँखें, नुकीली नाक, मोती से दाँत और गुलाबी गाल पाषाण को भी द्रवित कर रहे थे। मानो पत्थरों को फोड़ती हुई प्रणय-सरितायें सिन्धु की ओर गतिमान थीं। उसके गौर वर्ण से चाँदनी लज्जित थी, पतले-पतले ओठों से किसलय शरमा रहे थे और वक्ष पर मानो विधाता ने आँखों की विवशता का सारा श्रृंगार धर दिया था। ज्ञान और विज्ञान भी इस अद्भुत सौन्दर्य के सामने तेजहीन होने में अपना अभिमान मान सकते थे। समीर के साथ सुरभि उड़ते हुए इस दिव्य बाला ने चन्द्रगुप्त की ओर आशा से देखते हुए कहा—'कौन जानता है युद्ध में क्या होगा? हार भी हो सकती है और जीत भी। लड़ाई के मैदान में सैनिक सिर से कफन बाँध कर जाता है। जीवित यदि लौट आये तो बड़ी तकदीर है। मगध की सेना का नाम सुनते ही



यूनान की बहादुर सेना के हथियार छूट जाते हैं। आप उस आग की ओर जाने का विचार छोड़ दीजिये, मेरे साथ यूनान चलो, न सही राजमहल, कोई झोंपड़ी तो मिलेगी। वहाँ तुम राजा होंगे और मैं रानी। मैं तुम्हें मौत के मुँह में न जाने दूँगी।'

**चन्द्रगुप्त**—रूप और जवानी अन्धा बना देती है। प्यार को यदि बेड़ियाँ बनाकर पैरों में पहन लिया जाये तो प्यार की पवित्रता पर स्याही लग जाती है, हेलन! मैं युद्ध में जाऊँगा और अवश्य जाऊँगा, चाहे मुझे अकेले ही तलवार खींचकर क्यों न बढ़ना पड़े। जो पुत्र युवक होकर भी अपनी माँ की आँखों के आँसू न पोंछ सकता, वह मुर्दा है। मेरे पैरों की जंजीर न बनो, मेरे जीवन की गति बनो हेलन! तुम एक श्वास से अपने अरमानों की जयमाला गूँथो और दूसरे से मेरी चिता की आग सुलगाती रहो। यदि मुझे जय मिली तो तुम मेरे गले में जयमाला डाल देना; और यदि मृत्यु मिली तो तुम मेरी चिता पर अपने हाथ से दो अंगारे रख देना।

हेलन का फूल-सा मुँह आँसुओं से भीग गया। उसने तड़पते हुए कहा—यदि तुम राजा ही बनना चाहते हो तो मैं तुम्हें यूनान का राजा बना दूँगी। अपनी युक्तियों से मैं तुम्हें हिन्दुस्तान के जीते हुए प्रदेशों का शासक बना सकती हूँ। लेकिन जिस मगध पर आक्रमण करने की हिम्मत सिकन्दर तक की न हुई उस पर तुम चढ़ाई करने का साहस मत करो। सिकन्दर महान् अब्बाजान को हिन्दुस्तान के जीते हुए प्रदेशों का प्रतिनिधि बनाकर ग्रीस वापिस चले गये, इसलिए कि उनकी हिम्मत टूट गई।

**चन्द्रगुप्त**—तुम अपने प्यार के लिए अपना देश बेच सकती हो, लेकिन चन्द्रगुप्त वीर है। वह अपने प्यार से तुम्हारे देश का सौदा नहीं करना चाहता और न ही तुम्हें ऐसा करने की प्रेरणा दे सकता है।

तलवार म्यान से कुछ ऊपर खींचते हुए—यदि इस भवानी में कुछ शक्ति हुई तो मैं अपनी ताकत से अपने देश का राजा बन जाऊँगा। मुझे अपना देश चाहिये, दूसरे का देश नहीं। तुम चन्द्रगुप्त की रानी बन सकती हो, चन्द्रगुप्त के देश की शासिका नहीं।

**हेलन**—मुझे केवल चन्द्रगुप्त चाहिये और कुछ नहीं।

**चन्द्रगुप्त**—तो फिर ईश्वर से प्रार्थना करो कि मेरी जय हो और तुम्हारी इच्छा पूरी हो।

**हेलन**—जबान से कहना जितना आसान है मन को समझाना उतना ही मुश्किल है। मर्द कठोर होते हैं। क्या पता है समय के साथ तुम मुझे भूल जाओ।

**चन्द्रगुप्त**—वह पुरुष नहीं जो अपने वचन से बदल जाये। लेकिन हमारी हर इच्छा के लिए अन्तिम स्वीकृति हमारे गुरुदेव की होगी।

**हेलन**—आप मुझे बताइये आपके गुरु कौन हैं? मैं उनके हाथ जोड़ूंगी, पैर पड़ूंगी, मिन्नतें करूंगी और कहूंगी 'सेल्यूकस की बेटी हेलन को चन्द्रगुप्त को भीख में दे दीजिये।'

**चन्द्रगुप्त**—भीख भिखारी माँगते हैं। प्यार जय का दूसरा नाम है। कायरता से मुझे घृणा है। अब अधिक अवकाश नहीं है। जय से पहले मैं अपने गुरु का पता तुम्हें न बताऊँगा।

**हेलन**—परवरदिगार तुम्हारी जिन्दगी सलामत रखे।

चन्द्रगुप्त उठकर चले गये। जब तक वे आँखों से ओझल नहीं हो गये हेलन उधर ही देखती रही और फिर बगीचे में होती महल में आ गई। रात भर वह चन्द्र के स्वप्न देखती रही। प्रातः जब काफी दिन चढ़ गया तो सेल्यूकस ने आकर अपनी प्यारी बेटी को जगाया।

हेलन कुछ अनमनी-सी उठी। सेल्यूकस ने उसकी ओर गौर से देखा। बेटी के माथे पर चिन्ता की रेखायें देख उन्होंने कहा—आजकल तुम इतनी परेशान क्यों रहती हो, हेलन!

**हेलन**—कुछ नहीं अब्बाजान! सोचती हूँ कि किस दिन आपको लड़ाई के मैदान से छुट्टी मिलेगी।

**सेल्यूकस**—बहादुर की जिन्दगी लड़ाई के मैदानों में ही होती है। मालिक सिकन्दर को नहीं देखा, आँधी और पानी में भी घोड़ों की पीठ से नहीं उतरते थे। बीमारी ने जब उन्हें बिल्कुल मजबूर कर दिया तब कहीं वे यूनान वापिस गये, नहीं तो शायद वे पूरे हिन्दुस्तान को फतह किये बिना न जाते।

**हेलन**—विश्व-विजय का स्वप्न भी कितना भयंकर होता है! लेकिन स्वप्न क्या कभी पूरे होते हैं। कौशल, कौशाम्बी और मगध इन तीन बड़ी शक्तियों के रहते पता नहीं हिन्दुस्तान की फतह कौन देखेगा।

**सेल्यूकस**—हेलन! आज हमें यह भी पता चला है कि बहादुर बाप के कायर बेटी भी होती है। हमें उम्मीद थी कि मालिक के चले



जाने के बाद तुम हमारी हिम्मत बढ़ाओगी। लेकिन हम तुम्हें पतझड़ के पत्ते की तरह डाँवाँडोल देख रहे हैं।

**हेलन**—गलत फरमा रहे हैं अब्बाजान! मैं डरती नहीं, बल्कि सोचती हूँ अपनी महत्वाकांक्षा के लिए खून बहाना कहाँ तक उचित है।

**सेल्यूकस**—अगर महत्वाकांक्षा इन्सान के साथ न हो, तो इन्सान और मिट्टी में फर्क ही क्या है? लेकिन आज तुम हिन्दुस्तान की भाषा क्यों बोलने लगी हो?

**हेलन**—हिन्दुस्तान की मलिका बनने का स्वप्न देख रही हूँ, इसलिये जरूरी है कि यहाँ की भाषा भी सीख लूँ। आपके सेनानायक चन्द्रगुप्त से मैंने संस्कृत भी सीखी है और उसको यूनानी भाषा सिखाई भी है।

**सेल्यूकस**—चन्द्रगुप्त सचमुच एक बहादुर जवान है। उसके इरादे हमारे मालिक से बड़े हैं। अगर वह यूनानी होता तो मैं तुम्हारी शादी इस नौजवान से कर देता।

**हेलन**—शादी के लिए रूप और गुण का तुल्य होना आवश्यक है, यह जरूरी नहीं कि एक देश और एक जाति में ही शादी हो।

**सेल्यूकस**—हम अब से पहले ही तुम्हारे दिल की बात समझते थे, आज बात साफ हो गई। पर बेटी! राजनीति की चौपड़ की गोटों का कुछ पता नहीं चलता दाँव उलटा भी पड़ सकता है। कल क्या होगा, यह कोई नहीं जानता।

इतने में एक सफीर घबराया हुआ आया और एक ही श्वास में कहता चला गया—‘गजब हो गया, मालिक सिकन्दर हमसे हमेशा के लिए जुदा हो गये।’

**सेल्यूकस**—यह हम क्या सुन रहे हैं! इस खबर से पहले हमारे कान बहरे क्यों नहीं हो गये! हमारा मालिक ही नहीं, दुनिया का सबसे बड़ा रोशनचिराग बुझ गया। हेलन! आज हमारी कमर टूट गई।

हेलन ने पिता को पकड़ कर बैठाया और धैर्य देती हुई बोली—मौत के आगे किसी की नहीं चलती। न जाने कितने सिकन्दर इस धरती पर आए और चले गये। उनकी रुह को रोने से शान्ति नहीं मिलेगी। उनकी तसल्ली के लिए उनके स्वप्नों को यूनान बनाइये।

**सेल्यूकस**—इस वक्त कुछ अच्छा नहीं लगता, झण्डे झुकवा दो

और घोषणा कर दो 'मालिक की मौत के शोक में जब तक कोई दूसरा हुक्म जारी न हो सारे काम बन्द रहेंगे।'

हवा की तरह सिकन्दर की मृत्यु की खबर संसार भर में फैल गई। कितने ही राज्यों ने झण्डे आधे झुका दिये। सिन्धु, गान्धार और पंचनद की ध्वजाएँ भी आधी झुक गई। पर मगध, कौशल और कौशाम्बी के झण्डे नहीं झुके।

कितनी विचित्र है यह दुनिया! कहीं शोक होता है तो कहीं हर्ष! कहीं शान्ति होती है तो कहीं संघर्ष! सारी सृष्टि तो दूर रही, एक ही स्थान के सारे व्यक्ति एक रस में एक साथ नहीं हो पाते। सेल्यूकस मालिक के शोक में आँसू बहा रहे थे और उधर फिलिप चन्द्रगुप्त से कह रहा था—'यह अवसर उचित है, सेल्यूकस के हाथों से जीते हुए प्रदेश छीने जा सकते हैं।'

**चन्द्रगुप्त**—जब कोई सोता हो, निःशस्त्र हो अथवा मृत्यु के शोक में राजकार्य बन्द कर चुका हो तब तलवार उठाना भारतीय वीरों के गौरव के विरुद्ध है। सिकन्दर की मृत्यु से सेल्यूकस इस समय बहुत दुखी हैं। ऐसे समय में युद्ध के बाजे बजाने उचित नहीं।

**फिलिप**—उचित और अनुचित क्या होता है! जैसे भी हो जीतना चाहिये। सिकन्दर की मृत्यु हो गई तो हम क्या करें! उसने हमारे साथ कौन-सी भलाई की है! लड़ाइयाँ हमने भी लड़ीं, खून हमने भी बहाया, लेकिन जाते समय बादशाह सेल्यूकस को बना गये। सेल्यूकस के बूढ़े हाथों में राज्य की बागडोर कब तक रह सकती है! वह तो हमारे कन्धों पर बन्दूक चलाता है। तुम चिन्ता न करो चन्द्रगुप्त! तलवारें म्यान से खिंचते ही सेल्यूकस भाग जायेगा और फिर इस खूबसूरत मुल्क के उत्तर और पश्चिम में हम और तुम राजा होंगे।

**चन्द्रगुप्त**—बात तो तुम्हारी ठीक है फिलिप! लेकिन क्या तुम्हें पूरा यकीन है कि यूनानी सिपाही सेल्यूकस से लड़ाई के लिए तैयार हो जायेंगे?

**फिलिप**—थोड़े से सिपाही यदि न भी तैयार हुए तो हमारा बिगड़ेगा भी क्या!

**चन्द्रगुप्त**—गोनस तो पूरी तरह से तुम्हारा मददगार है न?

**फिलिप**—उसके हृदय में तो आग सुलग रही है। हमारे इशारे की देर है। वह केवल राज्य के लोभ से ही विद्रोह करने के लिए प्रस्तुत



नहीं है अपितु उसके दिल में सेल्यूकस के द्वारा छोड़ी हुई अपनी माँ के प्रतिशोध की भावना भी है।

**चन्द्र**—तो फिर आज सिंहाक्ष, आम्भी और कुमार मलय से परामर्श कर लूँ। तुम भी मध्य रात्रि के बाद उसी गुप्त गुहा में मिलना।

**फिलिप**—अच्छा तो मैं अब मातमपुरी के लिए सेल्यूकस के पास जा रहा हूँ।

फिलिप चला गया और चन्द्रगुप्त के एक विशेष प्रकार का संकेत करने पर छिपा हुआ भासुरक सामने आया। देखते ही चन्द्रगुप्त ने कहा—यहाँ की सारी हलचल तुम्हारे सामने है। तुम तुरन्त मगध समाचार भेज दो कि पंचनद से आगे बढ़ने की अभी कोई सम्भावना नहीं है। सेल्यूकस की सेना में विद्रोह की आग धधकना चाहती है। गुरुदेव की आज्ञा मिलने की देर है। भासुरक! क्या किसी प्रकार तुम हनुमान बनकर जल्दी से जल्दी गुरुदेव तक यह सब समाचार पहुँचा सकते हो?

**भासुरक**—जल्दी से जल्दी क्या, बात की बात में! हर पाँच-पाँच कोस की मंजिल पर हमारा संदेशवाहक तार की तरह पुरा हुआ है। एक से दूसरे पर, दूसरे से तीसरे पर इस तरह हवा की तरह पहुँच भी जायेगा और आ भी जायेगा।

**चन्द्र**—तो तुम गुरुदेव तक शीघ्रातिशीघ्र यहाँ की परिस्थितियों का भेद भेज दो।

सुनते ही भासुरक नौ दो ग्यारह हो गया और चन्द्रगुप्त अपने चक्र में लग गये। वे चले और सीधे मलय के पास आये।

चन्द्रगुप्त को देखते ही मलय ने कहा—बहुत देर से आपकी प्रतीक्षा कर रहा था।

**चन्द्र**—सिकन्दर की मृत्यु से हमारा चित्र ही बदल गया।

**मलय**—यह तो हमारे लिए मार्ग सरल हुआ है। राजनीति में जो परिस्थितियों से लाभ नहीं उठाता, वह मूर्ख है।

**चन्द्र**—अपना आशय स्पष्ट कहो, कुमार।

**मलय**—आशय स्पष्ट है। यूनानियों को निकाल भगाने का इससे अच्छा अवसर कौन-सा होगा।

**चन्द्र**—लेकिन पहले यूनानियों की सहायता से मगध विजय तो कर लें।

**मलय**—परायों के पैर इतने आगे न बढ़ाओ कि वे हमारे पैरों की बेड़ियाँ बन जायें। पहले इन गैरों से मुक्त हो लो, फिर संगठित होकर मगध को जय करना सरल होगा।

**चन्द्र**—फिलिप और गोनस भी इसी समय विद्रोह करने को प्रस्तुत हैं।

**मलय**—तो फिर विचार व्यर्थ है। शुभस्य शीघ्रम्।

**चन्द्र**—आज मध्य रात्रि के बाद उसी गुप्त गुहा में फिलिप से बातें होंगी।

**मलय**—सिंहाक्ष और आम्भी भी उस समय वहाँ होंगे ?

**चन्द्र**—क्या होना चाहिये ?

**मलय**—उनका होना आवश्यक है। तक्षशिला-नरेश ने जिस प्रकार ग्रीकों को भारतवर्ष में घुसाया है, तक्षशिला-कुमार की सहायता से उसी प्रकार हम उन्हें निकाल भी सकते हैं। सिंहाक्ष को हमें बहुत दूर तक अपने साथ रखना है।

**चन्द्र**—पर तत्काल युद्ध होने से पहाड़ी सेना हमारी सहायता के लिए कैसे आ सकेगी ?

**मलय**—पहाड़ी सेना न आ सकेगी तो कोई हानि नहीं। पंचनद, तक्षशिला और सिन्धु प्रदेश की सेना यूनानियों को निकालने के लिए पर्याप्त है। शायद हमें इतने सिपाहियों की भी आवश्यकता न पड़ेगी। युद्ध तो अधिक फिलिप और गोनस को करना पड़ेगा।

**चन्द्र**—किन्तु हमारी असावधानी से कहीं तलवारों की धारों का रुख न बदल जाये।

**मलय**—दुर्गा का कवच हमारी रक्षा करेगा। हमारे हाथों में भी तलवारें तैयार रहेंगी।

**चन्द्र**—आज मेरा हृदय गद्गद है कुमार ! तुम्हारे शब्दों से मुझे विश्वास हो गया कि भारत-भूमि पर अब साम्राज्यवादी भेड़ियों का राज नहीं रह सकता। साम्राज्यवाद की ज्वाला बुझाने के लिए सिन्धु का गम्भीर जल उमड़ पड़ा है। अच्छा, मैं जा रहा हूँ। कुमार आम्भी प्रतीक्षा में होंगे।

चन्द्रगुप्त चले गये और मलय उत्साह से आप ही आप कहने लगे—‘बस, अब वह दिन दूर नहीं जब मलय सारे भारतवर्ष का



सम्राट् होगा।'

मलय हर्ष से धीमे स्वर में यह उच्चारण कर ही रहे थे कि छाया ने आकर स्वप्न से ध्यान भंग कर दिया। वह अपने अल्हड़पन से बोली—भैया! क्या यही वह वीर चन्द्रगुप्त था, जिसके गुण आप प्रायः गाया करते हैं?

मलय—हाँ, छाया! यही वह चन्द्रगुप्त है जिसने समस्त भारत में एक छत्र राज्य स्थापित करने का बीड़ा उठाया है।

छाया—सचमुच भैया! विशाल मस्तक, आजानु बाहू, आकर्षक आँखें! ऐसा सुन्दर युवक मैंने इससे पहले कभी नहीं देखा।

मलय—वास्तव में ईश्वर ने उसे गुणों के अनुरूप ही रूप भी दिया है। किन्तु यह समय रूप और गुणों की व्याख्या के लिए नहीं है। छाया! जाओ और ईश्वर से प्रार्थना करो कि तुम्हारा भाई भारत का भावी सम्राट् हो।

सुनकर हर्षोल्लसित होती हुई छाया तीव्रता से बगीचे में एक गुलाब के गमले के पास आ खड़ी हुई और आप ही आप कहने लगी—'ईश्वर चन्द्रगुप्त को जय दे! विश्व में उसकी कीर्ति के गीत गाये जायें। कितने सुन्दर हो तुम! क्या तुम इतने ही मृदुल भी हो? तुम्हारी आभा ने मुझे क्रय कर लिया है। छाया! यह स्वप्न है। स्वप्न क्या किसी का पूरा होता है? होता क्यों नहीं! यदि लगन सच्ची है तो...'।

'मैं तुम्हारे चरणों में समर्पण फूल चढ़ाती हूँ, स्वीकार करो!' कहते हुए छाया ने गुलाब के पौधे से फूल तोड़ा, किन्तु काँटे ने हथेली में चुभकर रक्त से फूल को भिगो दिया।

हथेली में लहू देखकर छाया ने कहा—'यह क्या! यह हाथ में मेंहदी और अलकों का सिन्दूर है।'

प्यार भी कितना स्पृहणीय होता है। दुःख मीठे लगते हैं, त्याग में आनन्द आता है, सर्वस्व समर्पण की इच्छा होती है। सृष्टि का उद्गम, रागों का जन्म, सौन्दर्य और शक्ति की उत्पत्ति प्रीति के सुन्दर क्षणों से ही तो प्राप्त है। जब दो प्राणों के संस्वार गूँजते हैं तो ललित कलाओं के फूल खिलते हैं।



चन्द्रगुप्त ने शिविर में प्रवेश किया ही था कि सैनिक ने पीछे ही पीछे आ अभिवादन कर कहा—एक ज्योतिषी आये हुए हैं। कहते हैं ‘चन्द्रगुप्त से हमारा पुराना परिचय है।’ आज्ञा हो तो अन्दर आने दूँ?

चन्द्रगुप्त ने सोचते हुए उत्तर दिया—क्या नाम बताया है अपना? सैनिक—नाम तो कुछ नहीं बताया। जब मैंने पूछा तो उन्होंने कहा कि कुसुमकानन वाले ज्योतिषी जी आये हैं।

चन्द्र—अच्छा, कुसुमकानन वाले ज्योतिषी जी हैं, उन्हें सादर से ले आओ।

सैनिक गया और ज्योतिषी जी को साथ ले सपदि चला आया। ज्योतिषी जी को देखते ही चन्द्रगुप्त ने एक सुसज्जित चौकी की ओर संकेत कर कहा—‘बैठिये, महाराज!’

ज्योतिषी जी ठसके से पधार गये। चन्द्रगुप्त ने उनकी ओर ध्यान से देखते हुए कहा—कहिये ज्योतिषाचार्य जी महाराज! आजकल ग्रहचाल क्या कर रहे हैं?

ज्योतिषी—नौ दुर्गे का कवच तुम्हारी कमर पर है सेनाधिप! चारों ओर मंगल ही मंगल है। तुम्हारी राशि बहुत अनुकूल है, लेकिन...

चन्द्र—लेकिन क्या?

ज्योतिषी—लेकिन यह चामुण्डा का भैरवी संगीत छिड़ेगा, भयंकर युद्ध से धरा हिल जायेगी, पर तुम्हारा बाल बाँका न होगा।

चन्द्र—आपकी वाणी सफल हो!

ज्योतिषी—हमारी वाणी तो सफल होगी ही, पर कहीं जय पाकर हमारे लड्डुओं को न भूल जाना।

‘कौन, भासुरक! सचमुच आज तो तुमने ऐसा रूप बनाया कि मैं भी अभी तक सन्देह ही में पड़ा हुआ था। कहो, क्या कोई ताजा समाचार है?’

ज्योतिषी—समाचार यह है कि गुरुदेव तक हम सूचना भेजें कि इससे पहले ही उनको हर बात की खबर मिल गई। महामात्य राक्षस



को भी गतिविधि का पता हो गया है। यद्यपि उन्हें विश्वास है कि आपस में विद्रोह होने के कारण ग्रीक मगध पर तुरन्त ही आक्रमण नहीं करेंगे, तथापि मगध की सेना सावधानी से मोर्चों पर लगी हुई है।

गुरुदेव ने मौखिक आज्ञा भी भेजी है कि समय से लाभ उठाना बुद्धिमानी है। यदि फिलिप और गोनस लोभवश सेल्यूकस के शत्रु होने को तैयार हैं तो उनको भड़काकर युद्ध छिड़वा दो। षड्यन्त्र अचूक हो, विस्फोट से पहले चिंगारी की चमक दिखाई न दे।

**चन्द्र**—पर यह सूचना लाने वाला विश्वस्त तो है न? पहले तो गुरु जी का आदेश था कि चढ़ाई मगध की ओर हो।

**ज्योतिषी**—पर अब परिस्थितियों को देखकर विचार बदल गया। सूचना लाने वाले ने वह गुप्त संकेत बताया जो मेरे और गुरुजी के अतिरिक्त कोई नहीं जानता।

**चन्द्र**—तो फिर ज्वाला धधकेगी। गुरुदेव की आज्ञा की प्रतीक्षा के लिए ही मैंने परसों गुप्त गुहा में अन्तिम निश्चय नहीं होने दिया। अब गुरुदेव देखेंगे कि कम से कम रक्त बहाकर कितनी शीघ्र विदेशियों को आर्य भूमि से निकाल दिया गया।

**ज्योतिषी**—जय हो! कम से कम के नहीं, अधिक से अधिक के क्रियाकाण्ड होने चाहियें, जिससे दुनिया में जनसंख्या कम रहे और थोड़े रहने वालों को पेट भर आनन्द से भक्षण को मिलता रहे। जय लड्डू महाराज की! अब हम चलें सेनाधिप।

**चन्द्र**—कहाँ चले ज्योतिषी जी!

**ज्योतिषी**—जय काली! जाते समय किसी को टोकना नहीं चाहिये। ज्योतिष-शास्त्र के अठारहवें अध्याय में सत्रहवें पृष्ठ पर दूसरे अनुच्छेद की नवीं पंक्ति में लिखा है 'गमनकाले कुत्रकारः निषिद्धः।'।

**चन्द्र**—लिखा है या न लिखा है, लेकिन तुमने तो पढ़ ही लिया। कहिये, अब कब दर्शन होंगे महाराज!

**ज्योतिषी**—हम तो ईश्वर की तरह हर समय हर स्थान पर रहते हैं। जब आवश्यकता होगी प्रकट हो जायेंगे। जय काली!

ज्योतिषी जी चले गये। चन्द्रगुप्त उनके जाने के बाद कुछ देर तक तो सोचते रहे और फिर एक नायक को बुलाकर कहा—'हम अभी कुमार मलय से मिलने जा रहे हैं। तुम यहाँ सतर्कता से रहना, कोई

आये तो यह न बताना कि सेनाधिप कहाँ गये हैं।'

'जैसी आज्ञा!' कहकर सैनिक पहरे पर खड़ा हो गया और चन्द्रगुप्त ने सादे वस्त्रों में मलय के महल की ओर प्रस्थान किया। अपने शिविर से महल तक जाते-जाते मन ही मन में न जाने कितने चित्र बनाये और मिटाये।

मलय के महल में पहुँचते ही छाया सामने पड़ी। छाया ने चन्द्रगुप्त की ओर एकटक देखते हुए कहा—विराजिये सेनाधिप! भैया अभी-अभी लेटे हैं। क्या उन्हें जगा दूँ?

**चन्द्र**—सैनिक के लिए अश्व की पीठ ही शैया होती है। हाँ, उनको जगा दो!

छाया ने मुस्कराते हुए कहा—भैया को जगाने जा रही हूँ लेकिन मुझे तो स्वयं नींद आ रही है। यदि वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते सो गई तो दोष न देना।

**चन्द्र**—जब तक हमारे हाथों में भवानी की शक्ति है तब तक नारियों को सुख से सोने को कौन रोक सकता है! जाओ, तुम सो जाओ, कुमार को मैं स्वयं जगा लूँगा।

**छाया**—नहीं-नहीं, मेरा यह अर्थ नहीं है।

**चन्द्र**—यौवन में मचलती हुई नारी का अर्थ कठपुतली की तरह नाचने वाला मदान्ध क्या समझेगा! स्त्री एक विचित्र पहेली है।

**छाया**—आश्चर्य है, नारी को आज तक पुरुष ने खिलौना समझा है। आज आप उसे पहेली बता रहे हैं।

**चन्द्र**—यह समय मनोविज्ञान के विश्लेषण का नहीं है छाया। देर हो रही है, कुमार को तुरन्त जगा दो।

**छाया**—तो अवकाश की प्रतीक्षा करती रहूँ न?

**चन्द्र**—मनुष्य जीवन भर और करता ही क्या है! कौन जानता है कि कल का सूर्य कौन देखेगा।

**छाया**—ऐसी बात न कहो सेनाधिप! छाया की जिन्दगी सेनाधिप की जिन्दगी है।

**चन्द्र**—तुम्हारी शुभकामनाओं के लिए धन्यवाद! जान पड़ता है तुम मलय को जगाओगी नहीं, अच्छा मैं ही जाता हूँ।

'नहीं नहीं, मैं जा रही हूँ।' कहती हुई छाया गई और उसने कुमार



को उठाते हुए कहा—‘भैया भैया ! चन्द्रगुप्त आये हैं।’

मलय सुनते ही उठे और एक बड़े कक्ष में आकर चन्द्रगुप्त से बातें करने लगे।

**चन्द्र**—तुम्हारी दूरदर्शिता पर शत-शत बधाई कुमार ! विस्फोट के लिए यही अनुकूल समय है। क्या कल ही रात्रि को फिलिप और गोनस को आगे करके धावा बोलना उचित होगा ?

**कुमार**—आज रात को गुप्त गुहा में विस्फोट के साथ ही साथ पूरा चित्र निश्चित हो जाना चाहिए।

**चन्द्र**—तो फिर आज रात को गुप्त गुहा में ?

**मलय**—हाँ, पर भेद नहीं खुलना चाहिये।

**चन्द्र**—चिन्ता न करो राजकुमार !

और भी बहुत सी गुप्त बातें मलय और चन्द्र करते रहे। बातों ही बातों में समय बीत जाता है। रात हो गई। कुछ देर पहले चन्द्रगुप्त कुमार से बातें कर रहे थे और अब हम उन्हें गुप्त गुहा में फिलिप के साथ बातें करते देख रहे हैं। फिलिप ने गुहा के बाहर की ओर झाँकते हुए कहा—अभी तक सब नहीं आये ?

**चन्द्र**—आते ही होंगे। मेरे और तुम्हारे से भी अधिक लगन उन दोनों में है। यह लो सिंहाक्ष और आम्भी साथ ही साथ आ रहे हैं। और देखो, गोनस और मलय भी आगे-पीछे आ रहे हैं।

कुछ ही देर बाद गुप्त गुहा में षड्यन्त्रकारियों की एक अत्यन्त गोपनीय बैठक आरम्भ हुई। चन्द्रगुप्त ने फिलिप की ओर देखते हुए कहा—कल मध्य रात्रि को जिस समय शंख का महाशब्द सुनाई दे उसी क्षण विद्रोह कर दिया जाये और विद्रोह फिलिप तथा गोनस की सेना से शुरू होगा।

**फिलिप**—हमला बोलते ही खतरे का घंटा बजेगा और सेल्यूकस की अजेय सेना मौत की तरह टूटेगी। इसलिए दूसरी ओर से चन्द्रगुप्त उस अजेय सेना से युद्ध के लिए तैयार रहें।

**चन्द्रगुप्त**—चिन्ता न करो फिलिप ! सेल्यूकस की मुख्य सेना के सामने मैं अपनी सेना के साथ तुम्हारी मदद के लिए तैयार रहूँगा। सिंहाक्ष सेल्यूकस के अत्यन्त विश्वस्त सेनानायक फिजिल्ड की गति रोकेँगे और कुमार मलय तात्कालिक आवश्यकता के लिए अपनी सेना

सहित तैयार रहेंगे। यदि युद्ध के समय तीन बार शंख की आवाज हुई तो सांकेतिक दिशा की ओर से कुमार आक्रमण करके विजय में सहायक होंगे और आम्भी उत्तर की ओर कटिबद्ध रहेंगे। यदि शत्रु ने चक्कर काटकर उधर से हमें घेरना चाहा तो ये मोर्चा लेंगे और तभी हम इधर से इसकी सहायता को पहुँच जायेंगे।

**आम्भी**—लेकिन विजय के बाद जीते हुए प्रदेशों के बँटवारे का चित्र भी अभी बना लेना चाहिये।

**चन्द्र**—इसके लिए अभी सोचने की आवश्यकता नहीं; और एक प्रकार से सोचा हुआ तो है ही। सिंधु-नरेश कुमार आम्भी होंगे और पंचनदाधीश पंचनद के उत्तराधिकारी कुमार मलय हैं ही। शेष प्रदेशों के मालिक फिलिप और गोनस रहेंगे। लेकिन वैसे इन सब प्रदेशों में हम सबका सामूहिक राज्य होगा।

**फिलिप**—सैनिक पहले जीतते हैं बाद में बँटवारा करते हैं। यह बँटवारे का समय नहीं है।

**मलय**—विजय का ताज तुम्हारे सिर पर है फिलिप! कल विस्फोट में चूक न हो। अब समय नष्ट करना व्यर्थ है, कल मध्य रात्रि में!

षड्यन्त्रकारियों की बैठक समाप्त हो गई। सब अपने-अपने शिविर में चले गये।

किन्तु थोड़ी ही देर बाद चन्द्रगुप्त और कुमार मलय फिर एक बन्द कमरे में मिले। चन्द्रगुप्त ने बहुत धीरे से कहा—आम्भी पर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता।

**मलय**—भरोसा राजनीति में किसी पर भी नहीं करना चाहिये। पर चिन्ता की कोई बात नहीं है। मोर्चाबन्दी इस तरह होगी कि आवश्यकता पड़ने पर हम सबसे घिरकर भी सुरक्षित रहेंगे।

**चन्द्रगुप्त**—और कहीं सेल्यूकस को समय से पहले पता चल गया तो ?

**मलय**—तो भी कुछ हानि नहीं है।

**चन्द्र**—स्वार्थ का भूत भी कितना भयंकर होता है। सेल्यूकस को हम पर पूरा भरोसा और फिलिप हमें अपना दोस्त समझता है।

**मलय**—यही तो राजनीति की सिद्धि है कि हमारे दो दुश्मन आपस में शत्रु होकर दोनों हमें अपना मित्र समझते रहें।



**चन्द्रगुप्त**—बात तो तब है जब इस पहले ही तीर से इन गैरों से मुक्ति मिल जाये।

**मलय**—अब परिणाम सोचने का समय नहीं रहा, खुली आँखों से कार्य करने का समय है। अब तुम गुप्त द्वार से जाओ चन्द्रगुप्त! तुम्हारी जय हो!

गुप्त द्वार से चन्द्रगुप्त चले गये। जिस समय वे अपने शिविर में पहुँचे उस समय सुबह होने में कुछ देर बाकी थी। चन्द्रगुप्त कुछ सोचते हुए शैया पर बैठ गये। वे आप ही आप चिन्तन करने लगे, 'भावना और कर्तव्य में कितना गहरा युद्ध छिड़ गया है! हेलन, तुम क्या सोचोगी? यही न, चन्द्रगुप्त कितना निकृष्ट है! पर यह कौन जानता है कि आर्यावर्त की जय होगी और चन्द्रगुप्त के हृदय की मृत्यु! सैनिक का प्यार कच्चे धागे में लटकती तलवार की तरह होता है। मैंने और तुमने भूल की हेलन! जो अन्त सोचे बिना ही एक-दूसरे के निकट आ गये। कितनी विवशता होती है जीवन में!

'कितना विचित्र है संसार! पर कितनी विचित्रता है मनुष्य की! सेल्यूकस और फिलिप में कितना अन्तर है! लेकिन सेल्यूकस महान् है और फिलिप स्वार्थी! जो अपने स्वार्थ के लिए अपनों का शत्रु हो सकता है तो वह कल हमारा शत्रु क्यों नहीं हो सकता! लेकिन हमें इस सबसे क्या! हम तो विदेशियों से मुक्ति चाहते हैं।'

चिन्तन ही चिन्तन में चन्द्रगुप्त ने आकाश की ओर देखा। सूर्य निकल चुके थे। चन्द्रगुप्त और भी सोचते रहते पर सहसा एक सैनिक ने प्रवेश करते हुए कहा—हवा दिशाहीन हो रही है, पता नहीं किस ओर से आँधी उठ खड़ी हो। अतः आज आपका किसी भी समय एकाकी और अरक्षित रहना उचित नहीं।

**चन्द्र**—तुम जैसे सैनिक जिसकी रक्षा के लिए हर समय जागते रहते हैं उस पर भला आँच कैसे आ सकती है। कहो तेजसिंह! तुम्हारे सिपाही हर स्थान पर सजग तो हैं न।

**तेजसिंह**—सजग तो हैं, पर मोदक न मिलने के कारण वे कभी-कभी ऊँघने लगते हैं।

मुस्कराते हुए चन्द्रगुप्त ने कहा—तुम्हारे मोदक भंडार में जमा हो रहे हैं, इकट्ठे मिल जायेंगे। सचमुच तुम दिन और रात की तरह हर समय रहते हो।

तेजसिंह—लो तो अब हम रात होते हैं, आवश्यकता होने पर फिर दिन हो जायेंगे।

जिस प्रकार बादलों के आने पर सूर्य ओझल हो जाता है उसी प्रकार सैनिक वेषधारी भासुरक बात करते-करते ओझल हो गये। पर उनको गये हुए पहर भर भी नहीं हुआ था कि वे घबराये हुए फिर आये और एक ही श्वास में कहने लगे—कुचक्र खुल गया! सेल्यूकस की आँखें खुल गईं! सावधान! समय से पहले ही आग धधकना चाहती है।

भासुरक आगे कुछ कहना चाहते थे कि आपत्ति का शंख बज उठा। चन्द्रगुप्त ने तलवार म्यान से खिंचते हुए कहा—‘युद्ध शुरू हो गया, सेल्यूकस की सेना का घोष है। जान पड़ता है आक्रमण सेल्यूकस ने कर दिया। फिलिप की सेना की हुँकार भी सुनाई देने लगी। युद्ध सामने है, अब परिणाम सोचने का अवसर नहीं रहा। मृत्यु या जय, दो में से एक ही लेकर लौटेंगे। करना या मरना ही अब सामने है। अच्छा, विदा!’

नंगी तलवार हाथ में लिये चन्द्रगुप्त ने शंख बजाया और हुँकारते हुए शिविर से बाहर निकले। वे घूम कर अपनी सेना के मध्य आये और मोर्चों पर चट्टान की तरह जम गये।

□□



रक्त में भीगे सैनिक ने प्रवेश करते हुए कहा—‘कुमार मलय सेल्यूकस की सेना में घिर गये हैं। सेनाधिप फिलिप और फिजिल्ड में घोर युद्ध हो रहा है। सिंहाक्ष दक्षिण मोर्चे पर बड़ी वीरता से लड़ रहे हैं। समय से पहले विस्फोट होने से हम सब घिर गये। आप आगे के मुँह में हैं, पिछले मार्ग से निकल तुरन्त भाग जाइये, अन्यथा मृत्यु निश्चित है।’

चन्द्रगुप्त ने हुँकारते हुए कहा—‘कायरता के शब्द उच्चारण करने से पहले अच्छा होता कि तू युद्ध-भूमि में मर जाता। वीरगति प्राप्त होने वाले मृत्युञ्जय होते हैं। हम मृत्यु के आलिंगन के लिए प्रस्तुत हैं।’ एक सेनानायक की ओर देखते हुए—‘तुम कुछ सैनिकों के साथ शिविर की रक्षा करो! मैं चुने हुए सैनिकों के साथ कुमार मलय की रक्षा के लिए प्रस्थान करता हूँ।’

चन्द्रगुप्त यह कहकर शंख बजाना ही चाहते थे कि खून में सनी हुई नंगी तलवार हाथ में लिए सेल्यूकस गर्जता हुआ सामने आ पहुँचा और दाँत पीसता हुआ बोला—‘आज एक-एक विश्वासघाती की लाश कुत्तों के फाड़ने के लिए मैदान में दिखाई देगी। चील और कौवों को मनचाही खुराक मिलेगी।’

चन्द्रगुप्त ने पैतरा बदलकर सामने होते हुए उत्तर दिया—‘तुमने निर्दोषों के रक्त से धरती को रँग अवश्य दिया, पर महाचण्डी का खप्पर अभी खाली है। वह आज उन लुटेरों के रक्त से भरेगा जो शान्ति से बैठे हुए देश की स्वतन्त्रता पर आक्रमण करते हैं, जो अपनी पाशविक शक्ति से मनुष्यता को कुचलना चाहते हैं, जिनके खूनी पैरों के निशान हिन्दुकुश गुहा से पंचनद तक की भूमि पर ताजे लहू की तरह आज भी चमक रहे हैं।’

**सेल्यूकस**—अब और भी आगे तक जमीन लाल होगी। मालिक की मौत के मातम के समय गद्दारी करने वालों के सिर ठोकड़ों से कुचलने का वक्त आ गया।

**चन्द्रगुप्त**—ईमानदारी की दुहाई देने वाले तनिक अपने मुँह की

नकाब उठाकर तो देखें। कहाँ था उस समय न्याय जब चुपचाप भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी, जब रात में झेलम नदी पार कर बहुत बड़ी सेना से छोटे से राजा पुरु को घेरा था, जब स्वयं राजा बनने के लिए अपनों के साथ हठधर्मी की थी ? दूसरों को उपदेश देने के लिए सभी ईमानदार बन जाते हैं। अब भी समय है। तुम्हारा देश यूनान है। जो रक्तपात हो चुका है, वो हो चुका। वापिस चले जाओ ! इतिहास कहेगा कि मनुष्य कुछ समय के लिए पागल हुआ था, पर समयान्तर से वह फिर मनुष्य हो गया। इस तरह भारत और यूनान में गहरी मित्रता होगी।

**सेल्यूकस**—यह समय तलवार से फैसला करने का है, उपदेश सुनने का नहीं। तलवार निर्णय करेगी कि भारत यूनान का क्या सम्बन्ध है। सावधान !

कहते हुए सेल्यूकस ने तलवार का वार चन्द्रगुप्त पर किया, पर चन्द्रगुप्त ने पैतरा बदलकर उसका वार खाली खो दिया और ललकारते हुए कहा—हम अपने अतिथि पर इतनी निर्दयता से आक्रमण नहीं करते। चन्द्रगुप्त नहीं चाहता कि सेल्यूकस उसकी तलवार का भोग बने। वह उसका सम्मान करता है। भला इसी में है कि तुम यूनान चले जाओ भारत के साथ ऐसा रिश्ता जोड़ दो जो कभी न टूटे।

**सेल्यूकस**—यदि तलवार उठाने की शक्ति नहीं है तो आत्म समर्पण कर दे ! कैद में तुझे आराम की रोटियाँ मिलेंगी।

**चन्द्रगुप्त**—अभी तक लोहे से टकराने का अवसर ही नहीं मिला है। यूनानाधिप ! यदि तलवार से खेलने का बहुत ही चाव है तो जी खोलकर अरमान पूरे कर लो।

चन्द्रगुप्त के मुँह से पूरी बात भी न निकली थी कि सेल्यूकस ने तड़पकर वार पर वार करने शुरू कर दिये। पर चन्द्रगुप्त ने तेजी और रणकुशलता से सेल्यूकस के सारे वार खाली खो दिये। जब उसने देखा कि शत्रु से यदि इस समय मित्रता का व्यवहार किया तो भारत सदा के लिए दास होगा ही, साथ ही चन्द्रगुप्त और गुरुदेव का मान भी मिट्टी में मिल जायेगा, तब वह भी द्वन्द्व-युद्ध के लिए डट गया। कुछ ही देर बाद सेल्यूकस का श्वास फूलने लगा, उसका हाथ ढीला हो गया। दूसरी ओर जो उसने दृष्टि डाली तो देखा कि उसकी सेना भाग रही है। ठीक इसी समय चन्द्रगुप्त की तलवार सेल्यूकस की कोहनी में उछलती हुई लगी। सेल्यूकस के हाथ से तलवार छूट गई और चन्द्रगुप्त ने अपना



हाथ रोक लिया।

सेल्यूकस शर्मिन्दा होकर खड़ा रह गया। उसने अपने दोनों हाथ बढ़ाते हुए कहा—अब मैं तुम्हारा बन्दी हूँ।

उसी समय चारों ओर से जय के शंख सुनाई देने लगे। सेल्यूकस की पराजय हुई और चन्द्रगुप्त की जय। मलय और सिंहाक्ष भी जय के आवेश में गद्गद वहाँ आ पहुँचे जहाँ चन्द्रगुप्त के सामने सेल्यूकस गर्दन झुकाये खड़ा था। कुमार ने सेल्यूकस को देखते हुए कहा—कहो सेल्यूकस! तुम्हारे साथ क्या व्यवहार किया जाये?

**सेल्यूकस**—जैसा बहादुर, बहादुर के साथ करता है।

**चन्द्रगुप्त**—यदि अरमान पूरे न हुए हों तो तुम तलवार फिर उठा सकते हो।

**सेल्यूकस**—बहादुर कभी दान में ली हुई तलवार नहीं उठाया करता।

**मलय**—हर उजाले के साथ अँधेरा भी होता है। हमारी जय हुई, लेकिन दुःख है कि फिलिप फिजिल्ड से लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गये और फिजिल्ड घायल हैं।

सुनते ही सेल्यूकस ने एक लम्बा श्वास लेकर अट्टहास करते हुए कहा—मुझे हार का इतना रंज नहीं, जितनी यह सुनकर खुशी हुई कि गद्दार फिलिप मर गया। फिजिल्ड! तुमने मालिक का नमक हलाल किया।

चन्द्रगुप्त! तुम्हारे लिए यह भी दुःख का नहीं, हर्ष का समाचार है। जो गद्दार अपने भाइयों का न हुआ वह तुम्हारा क्या होता!

**चन्द्रगुप्त**—और गोनस कहाँ है?

**सिंहाक्ष**—वह तो युद्ध होने से पहले ही कहीं डरकर भाग गया।

**चन्द्रगुप्त**—अब अपने मेहमान के लिए क्या आज्ञा है?

**मलय**—इसका निर्णय तुम ही करो चन्द्रगुप्त!

**चन्द्रगुप्त**—मेरा निर्णय यदि आप सब मानने को प्रस्तुत हैं तो यह है कि अपने अतिथि सेल्यूकस को मुक्त किया जाये और सकुशल उन्हें यूनान की सीमा में भेजने का प्रबन्ध हो।

सुनकर सेल्यूकस ने आँखें झुका लीं और मलय ने मुस्कराते हुए कहा—तुम्हारी वीरता धन्य है चन्द्रगुप्त।

चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को बन्दी से अतिथि बना लिया। उनके साथ सम्मान का वह व्यवहार किया कि सेल्यूकस दाँतों तले उँगली दबा गये। युद्ध की परिस्थिति से वातावरण कुछ शान्त होते ही सेल्यूकस को यूनान के लिए विदा करने की तैयारियाँ हुईं।

X

X

X

आज सेल्यूकस भारत से विदा होंगे, लेकिन सेल्यूकस की प्यारी पुत्री हेलन तो उसी दिन से आँसुओं के हार पिरो रही है जिस दिन से उसने अपने यूनान जाने का फैसला सुना।

न जाने किस तरह अवसर पाकर वह चन्द्रगुप्त के पास अन्तिम भेंट करने आई।

चन्द्रगुप्त से आँखें मिलते ही बहुत रोकने पर उसकी आँखों से दो आँसू निकल पड़े। हेलन की आँख में आँसू देख चन्द्रगुप्त ने कहा— बहादुर राजकुमारी की आँखों से आँसू नहीं निकला करते। तुम भारत से यूनान जा रही हो, लेकिन चन्द्रगुप्त के हृदय से दूर नहीं जा रही।

**हेलन**—दिल को बहकाने का यह अच्छा बहाना है। स्वप्नों की बातें सुनने में सुन्दर लगती हैं पर उनमें असलियत नहीं होती।

**चन्द्रगुप्त**—यदि इस तरह की कल्पनाओं से मन को न समझाया जाये तो सम्भव है मनुष्य के जीने का आधार ही न रहे।

**हेलन**—आप स्वप्न को सत्य में क्यों नहीं बदल देते ?

**चन्द्रगुप्त**—क्या तुम्हारे पिता यह स्वीकार करेंगे ?

**हेलन**—हमारे देश में कन्या की स्वीकृति मान्य होती है।

**चन्द्रगुप्त**—किन्तु हमारे देश के आदर्श में माता-पिता की स्वीकृति आवश्यक है। जब तक तुम्हारे पिता खुशी से तैयार न होंगे तब तक चन्द्रगुप्त विवश है।

**हेलन**—दूसरी भाषा में आप मुझे अस्वीकार कर रहे हैं।

**चन्द्रगुप्त**—नहीं हेलन ! तुम ऐसा न समझो। तुम्हारे बिना चन्द्रगुप्त भी शान्ति से नहीं रह सकेगा। पर अभी चाँदनी रातें दूर हैं। आज मैं अपनी इच्छा का अकेला ही अधिकारी नहीं। मेरा जीवन देश का जीवन है। गुरुदेव की आज्ञा के बिना मैं कुछ नहीं कर सकता। मेरा पहला लक्ष्य सम्पूर्ण भारत में एकसंघीय राज्य की स्थापना है। उसके बाद ही हो सकता है कि मेरे लिए चाँदनी रातें आयें। तब तक के लिए



तुम्हें धैर्य रखना पड़ेगा।

**हेलन**—प्रत्यक्ष और परोक्ष में प्यार परिवर्तनशील होता है। अच्छा, तुम्हारी विजय हो! साथ ही याद रखना कि सेल्यूकस की बेटी चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध जोड़ चुकी है। वह अब उससे दूर भी ऐसे ही रहेगी जैसे कोई पतिव्रता दुल्हन विवाह के बाद द्विरागमन की प्रतीक्षा करती रहती है।

कह कर हेलन चली गई और चन्द्रगुप्त देखते रह गये। कुछ देर बाद सेल्यूकस अपनी प्यारी बेटी और यूनानी सैनिकों के साथ यूनान को प्रस्थानार्थ नौकाओं पर सवार हुए। चन्द्रगुप्त अपने साथियों सहित ससम्मान उनको विदा देने आये।

लहरों पर तैरती हुई नौकाएँ चल पड़ीं। चन्द्रगुप्त एकटक नौकाओं को देखते रहे। उधर हेलन के हृदय में ज्वार उठ रहा था। चन्द्रगुप्त ने हेलन की ओर भीगी हुई पुतलियों से देखा और आप ही आप कहने लगे—‘इस विदा को जीत कहूँ या हार?’

प्रतिध्वनि में जमीन कहने लगी, ‘हार में जीत और जीत में हार होती है। राही का काम चलना है, परिणाम में मनुष्य को जो भी मिले वह सन्तोष से स्वीकार करना चाहिये। दुनिया मनुष्य को हाथ फैलाये देख घृणा करती है। दुर्बल विचारों के लिए मनुष्य नहीं बना।’

और फिर धीमे स्वर में गुनगुना उठे—‘विवशता के अनुसार मनुष्य की कल्पनाओं का सत्य कितनी शीघ्र ढह जाता है। चन्द्रगुप्त और भी कुछ सोचते रहते पर एक हृष्ट-पुष्ट सेनानायक ने समीप आकर कहा—‘थक गये होंगे सेनाधिप! विश्राम के लिए चलिये।’

‘विजय और विश्राम में बहुत दूर का अन्तर होता है। जीवन में विश्राम कहाँ है तेजसिंह! चलो, चलें।’ कहते हुए साथियों सहित चन्द्रगुप्त ने प्रस्थान किया और जैसे-जैसे राह आती गई सब अपने-अपने मार्ग की ओर फट गये।

चलते-चलते कितने रास्ते फटते हैं! चाहे उठा हुआ कदम लौटकर फिर उसी स्थान पर आ जाये, पर उसी बीच में बहुत-सी राहें आती हैं। जन्म से मृत्यु तक चलने में न जाने कितने पैर उठाने पड़ते हैं। चलते-चलते चन्द्रगुप्त ने सेनानायक की ओर देखते हुए कहा—अब क्या किया जाए?

**नायक**—मैं आज ही मगध जा रहा हूँ। वहाँ से जैसी गुरुदेव की आज्ञा होगी।

**चन्द्र**—पर इस बीच में ?

**नायक**—इस बीच में आप पंचनद, तक्षशिला और सिंधु को एक सूत्र में बाँधे रखने का प्रयत्न करते रहिये। तुरन्त ही यदि कोई आपत्ति हो तो स्थानान्तरित चरों द्वारा सूचना भिजवा दें।

चन्द्रगुप्त अपने डेरे में आ गये और नायक ने वेष बदलकर मगध की राह पकड़ी। पथिक जब बढ़ने लगता है तो मंजिल हार मान लेती है। चलता-चलता राही लक्ष्य पर आ पहुँचा।

. X

X

X

पाटलिपुत्र में आज यह कौन पागल राजा की तरह राजमार्ग पर घूम रहा है। सिर पर राजमुकुट नहीं तो क्या हुआ, आधी गाँठ लगी हुई चोटी तो ताज की तरह सीधी खड़ी है। राजसी परिधान नहीं तो क्या हुआ, कमर पर पड़ी हुई चादर, जिसका एक छोर पृथ्वी से छू रहा है, वह क्या किसी राजा के पीठ-परिधान से कम है ! कोई माने या न माने, लेकिन ये मस्तराम तो आप ही कहते चले आ रहे हैं—‘हट जाओ, श्री श्री एक सौ आठ, दो सौ सोलह, चार सौ बत्तीस, बत्तीस सौ चौसठ मगध-महाराज नन्द पधार रहे हैं। सावधान, मार्ग छोड़ दो !’

इस विचित्र ठाठ से राजमार्ग पर भ्रमण करते हुए मस्त पागल को दूर से दो राजसैनिकों ने देखकर रोका और कहा—यह राजमार्ग है, तू कौन स्वतन्त्रता से चला आ रहा है ?

**पागल**—हम मगध के सम्राट् महाराज नन्द हैं। तुमने हमें अभिवादन न करके अनुशासन भंग किया है। हम तुम्हें मृत्यु-दण्ड देते हैं। कल सवेरे चौराहे पर तुम्हें सूली पर चढ़ाया जायेगा।

कहकर मस्तराम आगे बढ़ा, पर दोनों सैनिकों ने उसे पकड़ लिया और कहा—अब तुझे पागलपन का पूरा स्वाद मिल जायेगा। जब नंगी कमर पर कोड़े पड़ेंगे तब तुझे पता चलेगा।

सुनते ही पागल ने दाँत पीसे और भयंकर आँखें निकाल कर उनकी ओर देखा। फिर अपने एक हाथ को झटका दे एक सैनिक को कमर पर लाद दूसरे का हाथ पकड़ चक्कर काटने लगा।

चक्कर काटते हुए सैनिकों ने जो उसकी फटी हुई आँखें, पिसते



हुए दाँत और विकराल रूप देखा तो घबरा गये तथा घूमते हुए बोले—  
'जय हो, मगध-महाराज की जय हो ! हमें क्षमा कीजिये !'

सैनिकों को गिड़गिड़ाते देख पागल ने उन्हें छोड़ दिया और आज्ञा दी—'मगध महाराज आज्ञा देते हैं कि अनुशासन में उनके आगे-आगे चलो !'

चुपके-से एक सैनिक ने दूसरे सैनिक से कहा—इसे इसी प्रकार चुपचाप महामात्य के पास तक ले चलो । उनकी आज्ञा है कि राजमार्ग पर जो भी नया व्यक्ति दिखाई दे उसे हमारे सामने उपस्थित किया जाये ।

आगे-आगे सैनिक और पीछे-पीछे मस्तराम झूमते-झूमते चल दिये । प्रासाद के निकट आने पर सैनिक ने कहा—अन्दर प्रवेश कीजिये ! महामात्य ने आपको स्मरण किया है ।

मस्तराम बेधड़क अन्दर चले गये । महामात्य ने उसे देखते ही सैनिकों से कहा—आज यह किस देश का पक्षी पकड़ लाये ?

**सैनिक**—सावधान रहिये महामात्य ! यह ऐसे देश का भूत है जो मनुष्य को फिरकनी की तरह घुमाता है । भगवान की दया से हमारी तो जान बच गई ।

सैनिक को कुछ कहते सुन पागल ने फिर उसी रूप में आँखें निकालीं । विकराल रूप देखते ही सैनिक तो वहीं के वहीं खड़े रह गये, पर महामात्य ने मुस्कराते हुए कहा—कहिये महाराज ! आपको कोई कष्ट तो नहीं है ?

**पागल**—आप जैसे कुशल महामात्य की देख-रेख में महाराज को क्या कष्ट हो सकता है । दूर-दूर की सुगन्ध लेकर पवन हर समय महाराज के साथ रहता है ।

विचित्र वाक्य सुनकर महामात्य ने कुछ सोचने के बाद सैनिकों की ओर देखते हुए कहा—'जाओ और विराध को कहते जाओ कि महामात्य के पास एक भयानक पागल आ गया है, उसे ठीक करने के लिए अपना कोड़ा लेकर तुरन्त चले आयें ।'

**पागल**—नहीं, अब कोड़े की आवश्यकता नहीं, महाराज ने दोनों सैनिकों को क्षमा कर दिया है ।

पागल कहता रहा और सैनिक चले गये । जब सैनिक चले तो

पागल ने होश में आकर कहा—मैं भासुरक हूँ महामात्य ! पंचनद से सीधा चला आ रहा हूँ। अब वहाँ कोई आपत्ति नहीं है। आपस में विद्रोह हो जाने के कारण वहाँ के भारतीय राजाओं से सेल्यूकस का घोर युद्ध हुआ। सेल्यूकस की पराजय हुई और चन्द्रगुप्त के षड्यन्त्रकारी दल की जय। पराजित सेल्यूकस के साथ चन्द्रगुप्त ने कोई दुर्व्यवहार नहीं किया, बल्कि उन्होंने सेल्यूकस को सेना सहित शान्तिपूर्वक इस तरह यूनान के लिए विदाई दी जिस प्रकार कोई राजा अपने अतिथि को विदा करता है।

अब वहाँ शान्ति है। मगध की ओर आक्रमण करने का भी कोई इरादा प्रतीत नहीं होता।

**महामात्य**—आम्भी, मलय और सिंहाक्ष चन्द्रगुप्त के प्रति क्या व्यवहार रखते हैं ?

**भासुरक**—ऐसा व्यवहार देखने में आया जैसे चारों सगे भाई हों। आम्भी उनमें एक ऐसा अवश्य है जो बात-बात में बिदक जाता है। वह लालची और डरपोक स्वभाव का है।

**महामात्य**—तब क्या ये सब मिलकर मगध की ओर बढ़ने का प्रयत्न नहीं करेंगे ?

**भासुरक**—लड़ाई पर लड़ाई होने के कारण सब थक गये हैं, अतः शीघ्र ही कोई सम्भावना नहीं दीखती।

**महामात्य**—आज नहीं तो कल सम्भावना हो सकती है।

**भासुरक**—कल की कौन जानता है !

**महामात्य**—राजनीति में सौ वर्ष परे की सोचनी चाहिये। वह असफल राजनीतिज्ञ है, जिसे कल का पता नहीं। जो कुछ तुमने कहा हमने सुन लिया। जब तक तुम्हें कोई दूसरी आज्ञा न मिले तुम यहीं एक कक्ष में विश्राम करो।

अभिवादन कर भासुरक एक कक्ष में विश्राम के लिए चले गये और विराध ने महामात्य के कक्ष में प्रवेश किया। विराध को देखते ही महामात्य ने कहा—पंचनद से आये हुए समाचार तुमने सुने ?

**विराध**—भेदिये भासुरक से मेरी भेंट मगध में प्रवेश करते ही हो गई थी। आप उसके मुँह से स्वयं सारी कहानी सुन लें, इसलिए मैंने ही उसे आपके पास भेजा था।



**महामात्य**—वहाँ हुई नई घटनाओं से क्या निष्कर्ष निकाला ?

**विराध**—यह तो स्पष्ट है कि यूनानियों के वापस चले जाने से चन्द्रगुप्त मगध की ओर बढ़ने का साहस न करेगा।

**महामात्य**—यह सोचना भारी भूल है। मुझे ऐसा लग रहा है जैसे धीरे-धीरे एक बड़ा जाल फैलता जा रहा है।

महामात्य आगे भी कुछ कहते पर सहसा जीवधर्म ने प्रवेश करते हुए कहा—‘जाल फैलता ही नहीं जा रहा है, फैल चुका है महामात्य। एक प्रकार से मगध का राज्य आपके हाथों से निकल चुका। सारे राज्य पर छा जाने वाला यह महात्मा विष्णुगुप्त मगध पर अधिकार कर चुका है। जन-जन के हृदय में उसके प्रति श्रद्धा है। एक बड़ी संगठित राष्ट्रीय सेना उसके अधिकार में है। शकटार और कात्यायन बाहर से राजभक्त हैं और अन्दर से महात्मा विष्णुगुप्त के साथी। यह स्वतन्त्र सेना राज्य की रक्षा के लिए नहीं बनी, अपितु राज्य हड़पने के लिए यह एक षड्यन्त्र रचा गया है। कुचक्रियों का यह संगठन सारे भारतवर्ष में फैल चुका है। आपके घर में हो सकता है बहुत से भेदिये शत्रु के हितैषी हों। यहाँ की तिल-तिल बात महात्मा विष्णुगुप्त तक पहुँच जाती है। चन्द्रगुप्त महात्मा वात्स्यायन का शिष्य है और वह जो कुछ कर रहा है, अपने गुरु के संकेत से ही कर रहा है।

**महामात्य**—तुमने जो कुछ कहा वह अक्षरशः सत्य है जीवधर्म! निस्संदेह हम इस समय राज्य के नाममात्र के अधिकारी हैं। लेकिन अब भी समय हमारे हाथ में है। आज ही रात को वात्स्यायन, शकटार और कात्यायन की मृत्यु होनी चाहिये। और मृत्यु इस प्रकार हो कि किसी को यह पता न चले कि मृत्यु कराई गई है।

**विराध**—इसका एक उपाय है। किसी प्रकार तीनों को एक ही स्थान पर इकट्ठे कर उस मकान में आग लगा दी जाये, जिसमें वे हों।

**महामात्य**—तीनों को एक स्थान पर जोड़ने का उपाय किया जाये ?

**जीव**—इसका उपाय मैं बता सकता हूँ।

**महामात्य**—फिर संकोच क्यों कर रहे हो ? तुरन्त कहो।

जीव आप शकटार को बुलाकर कहें कि ‘आज रात को अपने निवास पर महात्मा वात्स्यायन, कात्यायन तथा तुम मिलना। नई

राजनीतिक हलचलों से होने वाली परिस्थितियों पर विचार करना है।'

**महामात्य**—और फिर ?

**जीव**—फिर यही कि आप वहाँ न पहुँचे और शकटार के निवास पर तेल, कपूर आदि शीघ्रता से धधकने वाले पदार्थ छिड़के हुए हों तथा समय पर तुरन्त आग लगा दी जाये। उसके बाद दूसरे दिन इन महात्माओं की मृत्यु के उपलक्ष में शोक मनाया जाये।

महामात्य ने कुछ देर सोचा और फिर गम्भीरता से कहा—'यही होगा। आज रात्रि को तीनों अग्नि की भेंट कर दिये जायेंगे। अब तुम आग लगाने की सामग्री जुटाओ और मैं तीनों को एक स्थान पर जोड़ने का प्रयत्न करता हूँ।'

जीवधर्म और विराध पृथक्-पृथक् चले गये तथा महामात्य सोचते हुए एक ओर को चल दिये। उनके मस्तिष्क में हलचल थी। उसके सामने कर्तव्य और इच्छा का संघर्ष नाचने लगा। वे विचार कर रहे थे, 'बड़ी विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। शकटार का घर जलाते समय सुवास भी वहीं होगी। यदि उससे यह भेद खोला जायेगा तब तो षड्यन्त्र सफल नहीं हो सकता। फिर कैसे उसे वहाँ से हटाया जाये? उमा के द्वारा कुछ काम बन सकता था, पर क्योंकि कात्यायन को भी अग्नि भेंट चढ़ाना है, इसलिये उससे भी मदद नहीं मिल सकती। फिर क्या किया जाये? उपाय यही हो सकता है कि राजमहल में आज महिलाओं का कोई कल्पित उत्सव किया जाये।'

बात दिमाग में आते ही महामात्य महानन्द के पास पहुँचे और एकान्त में कुचक्र की सारी योजना उन्हें सुना दी। सुनते ही महाराज हर्ष से हुँकार उठे और कहने लगे—'मैं तो बहुत बार कहता रहा हूँ कि ये तीनों हमारे राज्य के लिए विष हैं। तुमने बहुत ही उचित और सामयिक सोचा राक्षस! विचक्षणा बड़ी चतुर नारी है, उससे हानि की सम्भावना नहीं हो सकती।'

**राक्षस**—पर नारी पर विश्वास करते मुझे डर लगता है। वह जान दे सकती है पर रहस्य की बातें अपने पेट में नहीं पचा सकती। रहस्य की बात सुनते ही नारी के पेट में दर्द होने लगता है।

**नन्द**—नारी जितनी दुर्बल होती है उससे कहीं अधिक जिद्दी होती है। पर इस सबसे क्या! हम षड्यन्त्र का स्पष्टीकरण तो विचक्षणा



से नहीं कर रहे। आज 'करवा चौथ' है, इस उपलक्ष में विचक्षणा ने व्रत किया होगा। उससे यदि यह कहा जाये कि चन्द्रोत्सव समारोह से मनाओ, व्रत के बाद अपनी सहेलियों और प्रतिष्ठित नर-नारियों को साथ ही भोज दो तो वह इसके लिए सहर्ष तैयार हो जायेगी।

X

X

X

“करवा चौथ है, विचक्षणा की ओर से शाम को प्रतिभोज होगा। मेरे लिए भी निमन्त्रण आया है पिता जी! बड़े आग्रह से कह गई हैं। कह गई हैं कि नहीं आओगी तो मैं तुम्हें स्वयं लेने आऊँगी।” सुवासिनी ने अपने बूढ़े पिता का माथा दबाते हुए कहा।

**शकटार**—जाने के लिए मना तो नहीं करता बेटी! पर तुम न जाओ तो ठीक है जो समय प्रति-भोज का है उसी समय महात्मा वात्स्यायन आने वाले हैं, कात्यायन भी आयेंगे। महामात्य को हम तीनों से कुछ आवश्यक बातें करनी हैं, वे भी पधार रहे हैं। आतिथ्य के लिए तुम्हारा यहाँ रहना आवश्यक है।

**सुवास**—तो क्या हुआ पिताजी! मैं सब व्यवस्था कर जाऊँगी। अतिथि को अपनी चौकी के पास ही आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु मिल जायेगी। हर समय अकेले रहते-रहते मन ऊब जाता है, मैं आज जरूर जाऊँगी।

**शकटार**—तेरी ऐसी प्रबल इच्छा है तो तू अवश्य जाना।

समय निकलता चला गया और कुचक्र का समय निकट आने लगा। सुवासिनी ने विचक्षणा द्वारा आयोजित उत्सव में गमन किया और महात्मा वात्स्यायन शकटार के निवास पर आये। सुवास को घर में न पा वात्स्यायन ने उत्कंठा से पूछा—छुई-मुई कहाँ है?

शकटार ने मुस्कराते हुए कहा—राजमहल में रानी विचक्षणा की ओर से कोई उत्सव है, वह वहाँ चली गई है। मैंने मना भी किया पर उसकी अतीव इच्छा देख रोका नहीं।

वात्स्यायन ने पल भर के लिए कुछ सोचा और फिर कहा—राक्षस बहुत चतुर हैं चाचाजी। कहीं आज की इस आकस्मिक भेंट में कोई रहस्य तो नहीं है?

**शकटार**—राक्षस रहस्यमय व्यक्ति हैं पर उनकी नीयत खराब नहीं है।

**वात्स्यायन**—यह सत्य है कि राक्षस व्यक्तिगत रूप से शुद्ध हैं, पर जिस राज्य के वे महामात्य हैं उसकी रक्षा में वे सब कुछ कर सकते हैं।

चर्चा हो ही रही थी कि कात्यायन भी आ गये। शकटार ने कात्यायन को ससम्मान आसन पर बैठने के लिए संकेत किया, पर कात्यायन ने बैठने से पहले ही कहा—‘शीघ्र ही यहाँ से भागिये ! कुछ ही देर बाद इस महल में आग लगेगी, ऐसी भयंकर आग जिससे सम्भवतः पास-पड़ौसियों के घर भी राख हो जाएँ। चारों ओर फूस बिछा हुआ है। राक्षस यहाँ नहीं आयेंगे। यह तो आप सबको मारने का षड्यन्त्र है। नमस्कार, “बादल”, मैं जाता हूँ।

**वात्स्यायन**—कौन, भ० र० ! तो कात्यायन कहाँ हैं ?

**भ० र०**—वे धतूरे की गोली खाये नशे में बुत राजोद्यान में पड़े हैं। शीघ्रता कीजिये, पिछले दरवाजे से निकल जाइये। मैं भी कात्यायन के कपड़े यहीं फेंक गायब होता हूँ।

वात्स्यायन तुरन्त खड़े हुए और शकटार को साथ ले पिछले दरवाजे से चले गये। कात्यायन वेशधारी ‘भ० र०’ ने कात्यायन के कपड़े उतार वहीं चौकी पर रखे और उन कपड़ों के नीचे पहने हुए जीवधर्म के परिधान में दिखाई देता हुआ एक दूसरे दरवाजे से बाहर निकला। जैसे ही वह बाहर आया कि शकटार का घर धूँ धूँ जलने लगा।

□□



“अमात्य शकटार का घर जल गया। महात्मा वात्स्यायन भी वहीं थे। भयंकर दुर्घटना हो गई।” प्रत्येक की जिह्वा पर यही बात थी। शोक-संतुप्त जनता शकटार के घर की ओर उमड़ी चली आ रही थी। कोई कहता था—‘सुना है महामात्य और कात्यायन भी वहीं थे।’ कोई कह रहा था—‘अवश्य ही सब जल गये होंगे। न जाने किस पाप से यह ज्वाला लगी है, न जाने क्यों देव हमसे रूठा है!’

इसी तरह भीड़ बढ़ती गई। शकटार के घर से दूर-दूर तक जनता छा गई। जनसमुदाय बढ़ रहा था और प्रयत्नों से अग्नि धीरे-धीरे शान्त हो रही थी।

जब आग बुझ गई तो सैनिकों के साथ महामात्य वहाँ पधारे। उनके साथ शकटार-पुत्री सुवासिनी भी थी। सुवास की हालत देखकर पत्थर भी फटने को मचल रहे थे। वह चीत्कार करती हुई चिल्ला रही थी—‘यह क्या हुआ पिता जी! अब मेरा संसार में कौन है! मैं भी इस जलते हुए घर में जलकर प्राण दे दूँगी। हट जाओ! मुझे न रोको, मैं अब जीवित रहना नहीं चाहती।’

इस प्रकार कहती हुए सुवास ने दौड़कर जलने की चेष्टा की, पर राक्षस ने उसे पकड़ते हुए कहा—पगली न बनो सुवास! जीवन और मरण किसी के हाथ में नहीं होता। और अभी इतनी उत्तेजित क्यों हो रही हो, सम्भव है जिस समय आग लगी हो वे यहाँ न हों।

**सुवास**—नहीं-नहीं, मैं उन्हें यहीं छोड़कर गई थी। इसमें सन्देह नहीं कि वे इस घर के साथ जलकर राख हो गये।

**राक्षस**—धैर्य रखो, सुवासिनी!

**सुवास**—धैर्य कैसे रखूँ महामात्य! भाई मर गये, माँ मर गई और पिताजी भी चल दिये। एक मैं ही अभागी संसार की ठोकरें खाने के लिए शेष रह गई।

**राक्षस**—मनुष्य यदि सारे विश्व को अपना कुटुम्ब मान ले तो उसे माता और पिता का प्रतिबिम्ब प्रत्येक में मिल सकता है।

**सुवास**—समझाना बहुत सरल होता है, पर समझना सरल नहीं

होता।

राक्षस ने सुवासिनी को कुछ महिलाओं के साथ शान्ति के लिए दूसरे स्थान पर भेज भीड़ को सम्बोधित करते हुए कहा—‘हमें बड़ा शोक है कि हमारे वयोवृद्ध अमात्य शकटार, कुशल मन्त्री कात्यायन तथा हमारे राष्ट्र नेता महात्मा वात्स्यायन इस आकस्मिक दुर्घटना से हमसे सदा के लिए विदा हो गये। दैव की गति बड़ी विचित्र है। मनुष्य शोक मनाने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता है। इन महापुरुषों की मृत्यु से हमारे राष्ट्र को बड़ा धक्का लगा है, एक प्रकार से हम सब अनाथ हो गये। इन महात्माओं ने मगध की जो महान् सेवाएँ की हैं उनसे हम कभी उन्नत नहीं हो सकते। महात्मा वात्स्यायन ने राष्ट्रीय सेना का निर्माण कर इस देश की शक्ति को अजेय बनाया। उनके न होने से राष्ट्रीय सेना के हर सैनिक की आँखें गीली हैं। यह ऐसा घाव है जो कभी नहीं भर सकता। शोक! महाशोक!

अब धैर्य ही रखना पड़ेगा। हम उनकी आत्मा को रो-रो कर शान्ति नहीं दे सकते। उनकी आत्म-शान्ति के लिए हमें उनके अधूरे कार्य पूरे करने हैं। अपनी राष्ट्रीय सेना के द्वारा राष्ट्र की आशातीत सेवा करके ही हम स्वर्ग के देवताओं को प्रसन्न कर सकते हैं।

उनकी स्थान-पूर्ति तो नहीं हो सकती, लेकिन कल से राष्ट्रीय सेना का संचालन भी राज्य के महाबली परमवीर प्रधान सेनापति वक्रराज करेंगे। राज्य को आशा है कि प्रजा और राजा का पिता एवं पुत्र जैसा पवित्र नाता जैसा महात्मा वात्स्यायन चाहते थे वैसा सदा बना रहेगा।

महामात्य यह घोषणा कर ही रहे थे कि भीड़ के पिछले भाग से जयघोष सुनाई दिया, ‘महात्मा वात्स्यायन की जय! त्याग और तपस्या के अवतार आचार्य विष्णुगुप्त की जय!’ एवं जयघोष के बीच महात्मा वात्स्यायन अन्धकार को चीर कर निकलते हुए दिवाकर-सदृश महामात्य के समक्ष आ खड़े हुए।

महात्मा वात्स्यायन को एकाएक आँखों के सामने देख महामात्य के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पर वे सारे आश्चर्य को अन्दर ही अन्दर दबा गये और प्रत्यक्ष में दौड़कर महात्मा का स्वागत करते हुए बोले—‘आज हम मर कर जी गये।’

**वात्स्यायन**—विधि की विडम्बना बड़ी विचित्र है! वह जिसे बचाना चाहता है उसे मृत्यु के मुँह से भी बचा लेता है। व्यक्ति कुछ



और सोचता है, और ईश्वर कुछ और चाहता है।

**राक्षस**—ईश्वर जो करता है वह अच्छा ही करता है। इस भयंकर आग लगने से हम तो यह समझ बैठे थे कि हमारे देश का सबसे बड़ा महात्मा हमसे विदा हो गया।

**वात्स्यायन**—लाक्षागृह से पाण्डव भी बचकर निकल गये थे। इसी प्रकार आपकी कृपा से हम भी बच गये। अब आपको राष्ट्रीय सेना-संचालन के बारे में चिन्ता न करनी पड़ेगी।

**राक्षस**—आप जब हैं तो मुझे चिन्ता किस बात की! लेकिन यह तो बताओ अमात्य शकटार कहाँ हैं? उनकी पुत्री सुवासिनी उनको मरा समझकर ऐसी दशा में है जैसी दशा में राम के वन जाने पर दशरथ थे। यदि थोड़ी देर तक और अमात्य शकटार के दर्शन न हुए तो सम्भव है भावावेश में सुवासिनी अपने प्राण दे दे।

**वात्स्यायन**—चिन्ता न करो, शकटार के जीवित होने का सन्देश सुवासिनी तक पहुँच चुका है। जिस समय आग लगी उस समय शकटार अपने निवास के बाहर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। महल में आग लगते ही वे घबराकर मेरे साथ भागे। भागते-भागते उन्होंने बताया, 'कात्यायन मेरे महल में ही थे।' इस समय शकटार राष्ट्रीय सेना के शिविर में हैं।

'मुझे तुरन्त पिताजी के पास ले चलो! मैं जब तक उन्हें अपनी आँखों से नहीं देख लूँगी तब तक उनके जीवित होने का विश्वास नहीं होगा।' घटना-स्थल पर सुवासिनी ने तीर खाई हिरनी की तरह प्रवेश करते हुए कहा।

**वात्स्यायन**—तुम्हारे पिता जीवित हैं सुवास! थोड़ी ही देर में तुम उन्हें अपनी आँखों से देख लोगी। चलो, हम तुम्हें उनके पास ले चलते हैं।

राक्षस की ओर देखते हुए—अब आप चिन्ता छोड़कर विश्राम कीजिये! बुरा समय टल गया।

**राक्षस**—जैसी महात्मा की इच्छा!

महामात्य ने राजभवन की ओर प्रस्थान किया और महात्मा सुवासिनी को साथ ले राष्ट्रीय शिविर की ओर चले। शिविर के बाहर बूढ़े शकटार उत्सुकता से टहल रहे थे। जनता की भीड़ के बीच वात्स्यायन

के साथ सुवासिनी को आते देख हर्ष से उनकी आँखें छलछला आईं।

पिता को देखते ही सुवासिनी दौड़कर उनके चिपट गई। पिता और पुत्री का वह मिलाप इतना करुण था कि देखने वालों की भी आँखें भर आईं। इस करुणाजनक दृश्य में न जाने अतीत के कितने दृश्य सुवासिनी और शकटार की आँखों के आगे नाच उठे। कभी-कभी कोई एक ही बात सारे जीवन के चित्र प्रत्यक्ष कर देती है। शकटार की आँखों के सामने भी सारा अतीत घूम गया। राजनीति के प्रत्यावर्तन में चाहे कितना भी जीवन उलझ जाये लेकिन फिर भी कभी-कभी मनुष्य के किसी न किसी कोने में छिपी वेदना जाग ही उठती है।

भावनाओं के उमड़ते हुए सिन्धु को वात्स्यायन ने मर्यादा और कर्तव्य की शृङ्खलाओं से बाँधते हुए कहा—यह अवसर भावुकता में बहने का नहीं है। वे कायर होते हैं जो रो-रोकर अपने हृदय की आग ठंडी करना चाहते हैं। जीवन के शोले जय के अर्घ्य से बुझते हैं। रोने से उपहास होता है। आँसुओं की पहचान करने वाले मृदुल हृदय इस दुनिया में कहाँ हैं! इसलिए इन अमूल्य मोतियों को बिखेर कर जीवन का मूल्य कम मत करो! यदि जीना चाहते हो तो उन हाथों से जीवन छीन लो जिनकी इच्छाओं के बन्दीगृह में जीवन छटपटा रहा है।

**सुवासिनी**—सुनने में इस प्रकार की भाषा बहुत मधुर होती है, पर हार कर मनुष्य रो ही पड़ता है।

**वात्स्यायन**—हार कर रोना तो सभी जानते हैं, पर दुःख में हँसना जीवन का सर्वोत्तम गुण है। हारने पर जो हँसते हैं वे एक न एक दिन फिर जीत जाते हैं। छोड़ो यह रुदन-कांड, जीवन की अगली मंजिल तुम्हारे पैरों की प्रतीक्षा कर रही है।

और फिर जन-समुदाय की ओर देखते हुए बोले—देख लिया महानन्द के राज्य का नग्न चित्र! ये हैं वे परम पूज्य अमात्य शकटार! जिनको इस अत्याचारी राज्य में नोच-नोच कर नष्ट किया गया है। इनको बन्दीगृह में डाल इनके सारे परिवार को बिना अन्न के तड़पा-तड़पा कर मार डाला गया और अब भी इनकी एकमात्र पुत्री सुवासिनी को अपनी कुत्सित भावनाओं की तृप्ति के लिए छल से अपने यहाँ बुला पिता को घर सहित जलाने का वीभत्स षड्यन्त्र रचा गया। कहो, क्या अब भी तुम महानन्द को अपना राजा मानना चाहते हो?



जन-समुदाय उत्तेजित होकर एक ही स्वर में बोला—नहीं, बिल्कुल नहीं। हम राजमहल में आग लगा देंगे।

**वात्स्यायन**—राजमहल में आग लगाने से क्या लाभ है! राजा को बदल दो, जनता का प्रतिनिधि राजा होने से अन्याय मिट जायेगा। मगध का सुयोग्य अधिकारी नन्द का पुत्र आपका प्रतिनिधित्व करने के लिए आ रहा है। आप अपने भावी शासक का स्वागत करने के लिए तैयार रहिये।

जनता उत्सुकता से एक साथ कह उठी—कौन है वह? और कहाँ से आ रहा है?

**वात्स्यायन**—वह है चन्द्रगुप्त, महाराज की परित्यक्ता रानी मुरा जिसकी माता है और महानन्द जिसका पिता है, उसने भारत में घुसे हुए ग्रीकों को अपनी बुद्धि और तलवार के बल से खदेड़ कर निकाल दिया और जो अब पहाड़ी राजाओं को एक सूत्र में बाँधता हुआ विशाल शक्ति के साथ राप्ति नदी के तट पर पथरवा घाट तक आ पहुँचा है, जहाँ से मगध की सीमा बहुत दूर नहीं रह जाती। राप्ति नदी पार कर नौतनवा में आते ही वह मगध की सीमा के तट पर आ लगेगा। कहो, क्या आप सब चन्द्रगुप्त के पग से पग मिलाकर चलने को तैयार हैं?

उत्तेजित जनता से जयघोष की तरह एक ही आवाज आई—महात्मा वात्स्यायन की जय हो! हम आपकी आज्ञा पर अपना रक्त तक देने को तैयार हैं।

**वात्स्यायन**—तो फिर समय आने तक आप शान्ति से रहें। अब आप विश्राम कर सकते हैं।

‘जय’ बोलती हुई भीड़ तितर-बितर हो गई और वात्स्यायन शकटार तथा सुवासिनी के साथ शिविर में बनी कुटी में चले गये।

कुटी में महात्मा वात्स्यायन के आसन पर बैठ जाने के पश्चात् शिष्य शार्ङ्गरव ने उनके पद पर प्रक्षालित किये और फिर गुरुदेव के लिए फलादि पत्ते में ले आया। वात्स्यायन आये हुए फलों में से सबको बाँट शेष फल खाने लगे।

लेकिन वे अभी फल खा ही रहे थे कि राष्ट्रीय सैनिक ने प्रवेश करते हुए कहा—महामात्य राक्षस ने मगध की राजकीय सेना मगध के चारों ओर लगा दी है। आपको तथा शकटार को विद्रोहियों का संचालक

घोषित कर दिया है ! साथ ही हर्ष और शोक का यह समाचार भी सुनाना पड़ रहा है कि कात्यायन जले नहीं, उन्हें बन्दी बनाकर कठोर पहरों में रख छोड़ा है। हो सकता है राजकीय सेना राष्ट्रीय सेना पर अभियान भी करे। अतः सतर्कता के लिए राष्ट्रीय सेना ने भी मोर्चाबन्दी कर ली है।

**वात्स्यायन**—अपने बचाव के लिए सावधान रहिये ! जब तक राजकीय सेना आगे न बढ़े तब तक राष्ट्रीय सेना को आक्रान्ता बनने की आवश्यकता नहीं।

अभिवादन करके सैनिक चला गया और वात्स्यायन ने शार्ङ्गरव की ओर गुप्त संकेत किया। इंगित पाते ही शिष्य शकटार और सुवासिनी की ओर देखता हुआ बोला—आप बहुत थक गये होंगे, अब बड़े डेरे में विश्राम कर लीजिये। गुरुदेव के विश्राम का भी समय हो गया है।

सुवासिनी और शकटार जब विश्राम के लिए चले गये तो वात्स्यायन ने शार्ङ्गरव को बिल्कुल पास बिठाकर कहा—आस-पास तो पूरी सुरक्षा है न ?

**शार्ङ्गरव**—इस सारे वन में एक परिन्दा भी पर नहीं मार सकता। राष्ट्रीय सैनिक के वेष में कदम-कदम पर गुप्तचर हैं।

**वात्स्यायन**—राक्षस की ओर का कोई समाचार मिलना तो अब दुरूह हो गया है।

**शार्ङ्गरव**—महामात्य ने इतनी कठोर आज्ञाएँ लगा दी हैं कि चिड़िया का बच्चा भी उधर से इधर नहीं आ सकता। भागुरायण और भासुरक अब लाचार होंगे।

**वात्स्यायन**—आचार्य विष्णुगुप्त के 'अर्थशास्त्र' में लाचारी के लिए कोई स्थान नहीं। लाचारी मृत्यु का ही दूसरा नाम है। शत्रु की नीति और गुप्त रहस्य की जानकारी के बिना शत्रु पर विजय नहीं हुआ करती। जब तक विभीषण से रामचन्द्र को लङ्का का रहस्य नहीं मिला तब तक क्या राम रावण पर जय पा सके !

**शार्ङ्गरव**—आप यदि चाहेंगे तो पाताल में छिपा हुआ रहस्य भी प्रकट हो जायेगा। गुरुदेव की शक्ति अपार है।

**वात्स्यायन**—प्रिय शिष्य, मेरी शक्ति जो कुछ है वह तुम जैसे त्यागी और सच्चे शिष्यों के बल पर ही है। मुझे अपने से भी अधिक



विश्वास अपने शिष्यों पर है, जो मुझे सुलाने के लिए स्वयं जागते हैं।

**शार्ङ्गरव**—आपके एक-एक अक्षर के मूल्य हमारे कोटि-कोटि जन्म भी कम हैं। आपकी दी हुई विद्या से हम जन्म-जन्मान्तर ही सुखी और यशस्वी रहेंगे।

**वात्स्यायन**—ईश्वर की कृपा से तुम्हारी विद्या जन्म-जन्मान्तर में फलती रहेगी। शिष्य! किसी विश्वस्त को पथरवा घाट के वनों में भेजो और जैसे ही चन्द्रगुप्त के आने की सूचना मिले वैसे ही सावधानी से उसे हमारे पास लाने की व्यवस्था करो। घाघरा नदी के किनारे चन्द्रगुप्त के स्वागत में सैनिकों की पंक्तियाँ सजा दो! जैसे ही चन्द्रगुप्त आये तुमुल जयनाद से उसका स्वागत हो! प्रत्येक सैनिक उसका अभिवादन करे। चन्द्रगुप्त के यहाँ आते ही हम राष्ट्रीय सेना का संचालन उसके हाथ में सौंप देंगे। देखो! शार्ङ्गरव! राक्षस बहुत दूरदर्शी है। कहीं ऐसा न हो कि वह नीति से चन्द्रगुप्त को हानि पहुँचा दे। वह किसी भी उपाय से उसे मारना चाहेगा, इसलिए उसकी अंगरक्षा तुम करोगे। चन्द्रगुप्त का शिविर हमारी झोंपड़ी के बराबर रहेगा। चन्द्रगुप्त वही भोजन करेगा जो हम अपने हाथ से बनायेंगे। चन्द्रगुप्त एक कदम के लिए भी वहाँ चलेगा जहाँ के लिए हम आज्ञा देंगे।

**शार्ङ्गरव**—गुरुदेव की आज्ञानुसार हर पग उठेगा।

**वात्स्यायन**—और सुनो! चन्द्रगुप्त की वेश-भूषा के चार कृत्रिम चन्द्रगुप्त रहेंगे। असली चन्द्रगुप्त की अंगरक्षा उन विश्वस्त चन्द्रगुप्तों के द्वारा ही होगी। असली चन्द्रगुप्त का पता किसी को भी नहीं चलना चाहिये। देखो शार्ङ्गरव! तनिक सी चूक न होने पाये, असली चन्द्रगुप्त को अपनी आँखों से छिपने न देना।

**शार्ङ्गरव**—गुरुदेव चिन्ता न करें!

X

X

X

दूसरे दिन 'चन्द्रगुप्त की जय' नाद से घाघरा नदी का निकटवर्ती क्षेत्र गूँज उठा। सैनिक अभिवादन से राष्ट्रीय सेना ने चन्द्रगुप्त का सम्मान किया। और फिर वहाँ से तुमुल जयघोष के बीच चन्द्रगुप्त आचार्य विष्णुगुप्त वात्स्यायन की कुटी पर आये।

कुटी पर आते ही 'चन्द्रगुप्त की जय' का नाद 'महात्मा वात्स्यायन की जय' के नाद में बदल गया। चन्द्रगुप्त 'महात्मा वात्स्यायन की जय'

का तुमुल घोष करते साष्टांग प्रणाम कर उनके पैरों में पड़ गये। प्रेम के अर्घ्य से शिष्य ने गुरुदेव के चरण धो डाले। चन्द्रगुप्त की अपार भक्ति से गुरुदेव का हृदय उमड़ आया। उन्होंने अपना वरद हस्त चन्द्रगुप्त की कमर पर रखते हुए कहा—‘मगध के भावी सम्राट्! हम तुम्हारा राज्याभिषेक आज ही करते हैं।’

इतना कहते ही गुरुदेव ने कुशा की फाड़ से अपनी कनिष्ठ उँगली चीरी और रक्त-तिलक चन्द्रगुप्त के भाल पर लगाते हुए बोले—लंका-विजय करने से पूर्व ही विभीषण के मस्तक पर राज्याभिषेक का तिलक लगाने वाले राम! बाह्यण की प्रतिज्ञा पूरी करना।’

तदनन्तर गुरुदेव ने उमड़ते हुए सैनिकों की ओर देखकर कहा—‘अब आप विश्राम करें! चन्द्रगुप्त भी लगातार यात्रा करते-करते थके हुए हैं, अतः उनके लिए विश्राम आवश्यक है।’

वात्स्यायन की वाणी सुनते ही सैनिक अपने-अपने डेरों में चले गये। जब एकान्त हो गया तब गुरुदेव ने चन्द्रगुप्त से भी विश्राम करने को कहा। पर चन्द्रगुप्त ने उत्तर में निवेदन किया—युद्ध-काल में नींद कैसे आती है! आपकी आँखें जागते-जागते लाल हो गई हैं। मैं पहरों पर हूँ, कुछ देर के लिए सो जाइये!

**वात्स्यायन**—मैं यदि सो गया तो तुम सब मिलकर भी राक्षस की खुली आँखों से सावधान न रह सकोगे। व्यर्थ के शिष्टाचार में समय खोने से क्या लाभ। यह बताओ कि पर्वतीय राजाओं से तुम्हारी क्या सन्धि हुई है?

**चन्द्रगुप्त**—उन्होंने हमें मार्ग दे दिया और समय पड़ने पर अपनी सेना भी देने का वचन दिया है। पर विजय के बाद वे हमसे घाघरा नदी तक अपना स्वतन्त्र राज्य चाहते हैं।

**वात्स्यायन**—और पंचनदाधिपति से क्या शर्तें तय की हैं?

**चन्द्रगुप्त**—मगध की विजय के बाद समस्त जीते हुए भारत में से उनको आधा राज्य देना होगा।

वात्स्यायन ने अपने चिबुक पर उँगली रख सोचते हुए कहा—यह एक टेढ़ी समस्या है, पर देखा जायेगा। और सेल्यूकस के यूनान लौटने तक कोई नई बात तो नहीं हुई?

**चन्द्रगुप्त**—कोई नई बात तो नहीं, गुरुदेव! पर...



**वात्स्यायन**—पर क्या ?

**चन्द्रगुप्त**—कुछ नहीं, गुरुदेव !

**वात्स्यायन**—जान पड़ता है ऐसी बात है जिसे तुम वात्स्यायन से भी छिपाना चाहते हो ।

**चन्द्रगुप्त**—छिपाना नहीं चाहता, गुरुदेव के क्रोध से डरता हूँ ।

**वात्स्यायन**—जानते नहीं, गुरु से चोरी करने वाला जन्म-जन्मान्तरों में भी शान्ति नहीं पाता ।

**चन्द्रगुप्त**—मुझे संकोच होता है । आपकी आज्ञा के बिना मैं अपराध कर बैठा ।

**वात्स्यायन**—अब दूसरा अपराध न करो, स्पष्ट कहो !

**चन्द्रगुप्त**—जितना मुझे सेल्यूकस के ग्रीस लौट जाने का हर्ष है, उससे अधिक मैं उनकी पुत्री हेलन के जाने से दुखी हूँ । अब मैं चलना चाहता हूँ, पर जैसे कोई भीषण धक्का मुझे पीछे खींच लेता है । मेरा हृदय टूटना चाहता है । सोचता हूँ व्यर्थ है इतना रक्तपात ! बेकार है हर समय तलवारों की चमचमाहट ! उस राज्य की प्राप्ति से क्या जिससे शान्ति न मिले ! इस सिंहासन से तो वन में संन्यासी का वह कुशासन बहुत महत्त्वपूर्ण है जहाँ शान्ति से श्वास तो लिये जा सकते हैं ।

सुनते ही वात्स्यायन की आँखें अंगारा हो गईं । वे आँधी से हिलते हुए पेड़ की तरह काँपने लगे, भौंहें तन गईं और माथे में बल पड़ गये । दाँतों की कड़कड़ाहट से सारी कुटी कड़कड़ाती हुई प्रतीत होने लगी । उनका यह रूप देख चन्द्रगुप्त का सारा प्यार घनसार हो गया । उसने हाथ जोड़ते हुए कहा—क्षमा ! अग्नि के साक्षात् रूप गुरुदेव ! क्षमा !

**वात्स्यायन**—कायर कहीं के ! तूने मेरी जीवन भर की तपस्याओं पर पानी फेर दिया ! संसार से भागने की कामना करने वाले अभागे मनुष्य ! तुझसे तो वह मकड़ी ही अच्छी है जो बार-बार गिर कर भी किसी न किसी क्षण अपना लक्ष्य पा ही लेती है ।

**चन्द्रगुप्त**—आप शान्त हो जाइये गुरुदेव ! आपका यह विराट् रूप देख मैं काँप उठा । विश्वास रखिये, आपकी आज्ञा के बिना मैं अब कभी कुछ नहीं करूँगा ।

**वात्स्यायन**—नारी मनुष्य के पैरों की जंजीर है । युद्ध-काल में यदि किसी का वीरत्व हनन करना हो तो उसके लिए मद भरे नयनों

का एक आकर्षण पर्याप्त है। इस विषैली धार से जो सावधान नहीं रहते वे जीवन में पराजय देखते हैं। चन्द्रगुप्त! मुझे अपने जीवन से भी अधिक तुम्हारा जीवन प्यारा है।

**चन्द्रगुप्त**—ऐसा न कहिये गुरुदेव! आप एक नहीं हजार चन्द्रगुप्त बना सकते हैं, पर हजार चन्द्रगुप्त भी मिलकर एक वात्स्यायन नहीं बना सकते।

**वात्स्यायन**—तेरी अटूट श्रद्धा से मेरा भयंकर क्रोध भी शान्त हो जाता है। तुम्हारा जीवन ऐसा नहीं जिसे यूँ ही पानी में बहा दिया जाये। कदम-कदम पर उसकी रक्षा अनिवार्य है। जब तक तुम सम्राट् के आसन पर बैठकर सारे देश में शान्ति स्थापित न कर चुको तब तक तुम्हारे लिए दूसरी दिशा नहीं है।

**चन्द्रगुप्त**—ऐसा ही होगा गुरुदेव! चाहे श्वास-श्वास तड़पता रहे पर आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूँगा।

**वात्स्यायन**—तो फिर फूँक-फूँक कर कदम रखो! मगध घिर चुका है, केवल दुर्ग पर चन्द्रगुप्त का झंडा फहराना शेष रह गया है। लेकिन वहाँ तक पहुँचने में यदि एक कदम भी डगमगा गया तो फिसल कर उसी प्रकार नीचे गिर सकते हैं जिस प्रकार चढ़ाई की चोटी से फिसला हुआ व्यक्ति तलहटी में ही आकर गिरता है। अब तुम जाओ और यह लो मगध राज्य का चित्र, इसे भली-भाँति देख लो! तुम्हारे नाम का डेरा दूसरा है और रहने के लिए मेरे निकट ही एक डेरा रहेगा। अपने रहने के डेरे में कुछ विश्राम कर सकते हो, पर उस डेरे में तुम किसी अन्य से भेंट नहीं कर सकते और न ही किसी को यह मालूम होगा कि चन्द्रगुप्त उस डेरे में रहते हैं।

प्रणाम करके चन्द्रगुप्त अपने रहने के डेरे में चले गये। चन्द्रगुप्त के जाते ही वात्स्यायन ने शार्ङ्गरव को और निकट बैठाते हुए कहा—भावना और कर्तव्य में बड़ा अन्तर होता है। हृदय का सत्य समाज की भाषा से पृथक् है। समाज में कठोरता होती है और हृदय में मृदुता। समाज की वेदी पर न जाने कितने हृदयों का बलिदान हुआ है। चन्द्रगुप्त ने हेलन से प्यार करके कोई पाप नहीं किया। यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मैंने चन्द्रगुप्त पर क्रोध तो किया क्योंकि समयानुसार वह करना आवश्यक था, पर चन्द्रगुप्त की तड़प को मैं अच्छी तरह पहचान गया हूँ, कहीं ऐसा न हो उसका हृदय टूट जाये, इसलिए उसे सेना के



कार्यों में इतना व्यस्त रखो कि उसके मस्तिष्क में किसी दूसरी बात की गन्ध तक न आने पाये। हाँ, कहो महामात्य राक्षस की कोई गन्ध मिली ?

**शार्ङ्गरव**—कुछ नहीं, गुरुदेव !

इतने में एक सैनिक ने आकर कहा—गजब हो गया गुरुदेव ! चन्द्रगुप्त के डेरे में उनका अंगरक्षक मरा हुआ पाया गया।

**वात्स्यायन**—क्या उसका शस्त्र से वध किया गया है ?

**सैनिक**—नहीं, वहाँ रक्त का एक छींटा भी नहीं। पता चला है भोजन करने के बाद जब उन्हें देखा गया तो वे मरे पड़े थे।

**वात्स्यायन**—अवश्य ही उसको भोजन में विष दिया गया है, जाओ, अंगरक्षक के शव की परीक्षा की जाये। पता लगाने का यत्न करो कि उसकी मृत्यु कैसे और किसके हाथों से हुई है ?

सैनिक चला गया और गुरुदेव ने शार्ङ्गरव की ओर देखते हुए कहा—यह कैसी असावधानी है ?

**शार्ङ्गरव**—असावधानी नहीं गुरुदेव ! सावधानी है। इस अंगरक्षक पर मुझे सन्देह था, इसीलिए मैंने वहाँ कृत्रिम चन्द्रगुप्त के रहने की व्यवस्था की थी और उस कृत्रिम चन्द्रगुप्त को सतर्क भी कर दिया था। इसलिए जो विष मिला भोजन यह अंगरक्षक चतुरता से चन्द्रगुप्त को खिलाना चाहता था, चन्द्रगुप्त ने रसोइये की मदद से वह भोजन उलटा उस अंगरक्षक को ही खिला दिया।

**वात्स्यायन**—वाह ! खूब ! तुमने नाग को उसी के फण से मार डाला। कौन कह सकता है कि स्वार्थ और राजनीति की नागिन किसे डसेगी ! प्रतिभा की भवानी जब अनुकूल होती है तो शत्रुओं को उनके ही विष से समाप्त कर देती है। चन्द्रगुप्त के प्राणों के भूखे राजलोलुपो ! आज प्रतिभा के हाथों में चामुण्डा का खड्ग है, भक्षकों के प्राण संकट में हैं। अपने प्राणों की रक्षा का उपाय करो ! चन्द्रगुप्त को तो कराल काल भी नहीं मार सकता।

□□

जाल डालने से जाल काटना कठिन होता है। आग सुलगाने वाले यह भूल जाते हैं कि पानी में भी आग होती है। जल से जब ज्वाला दहकती है तो जाल तो क्या लोहे की दीवारें तक राख कर डालती है। विषाक्त तत्त्वों के निर्माताओं को यह समझ लेना चाहिए कि आशा निराशा में भी बदल सकती है, घेरने वाले घिर भी सकते हैं।

“हम घिर गये हैं, सन्नद्धराज ! चारों ओर से ऐसा जाल डाला गया है कि कोई भी छोर निकलने के लिए न छोड़ा।” चिन्ता से हथेली पर ठोड़ी रखते हुए महामात्य राक्षस ने कहा।

**सन्नद्धराज**—अब भी चिन्ता की आवश्यकता नहीं, महामात्य ! हमारी वीर सेना के सामने आते ही वे नये सैनिक मैदान छोड़कर भाग जायेंगे। आप आज्ञा दीजिये, भूखे सिंहों की तरह हमारे वीर इन विद्रोहियों को नष्ट कर डालेंगे।

**राक्षस**—मुझे तुम्हारी और वक्रराज की वीरता पर भरोसा है, पर सेना पर मेरा पूरा विश्वास नहीं है। मुझे सेना में विद्रोह की चिंगारियाँ चमकती दिखाई दे रही हैं। अब क्या होगा ?

“होगा क्या, मगध के राजमहल धूँ-धूँ करके जलेंगे, रक्त की नदियाँ बहेँगी, भूत प्रेत नाचेंगे ! क्या इससे भी अधिक कुछ और होना शेष है ? आस्तीन का साँप पालते रहे और जब उन्होंने डंक मार दिया तो सोच रहे हो अब क्या होगा। शत्रु जब सिर पर चढ़ आया तब यदि आँखें खुलीं तो क्या खुलीं ! यदि उसी दिन शकटार, कात्यायन और वात्स्यायन के सिर काट डाले होते जिस दिन इनके पर निकले थे तो आज ये बुरे दिन न देखने पड़ते। छोटे से छोटे शत्रु पर भी दया भारी भूल है। आश्चर्य है, राक्षस जैसा बुद्धिमान् महामात्य भी एक ब्राह्मण के इतने बड़े कुचक्र में फँस गया कि उसे निकलने का रास्ता ही नहीं सूझ रहा ! यदि कोई रास्ता नहीं है तो फिर तलवार खींचकर प्रत्यक्ष युद्ध की घोषणा कर दो और मरने से पहले उन विद्रोहियों के रक्त से अपनी प्यास बुझा डालो जो मगध राज्य की छाती पर हुँकार रहे हैं।” महानन्द ने दाँत पीसते हुए कहा।



राक्षस उत्तर में कुछ कहें उससे पहले ही एक सैनिक ने आकर कहा—‘अभी-अभी सूचना मिली है महाराज ! कि आठों नन्द-कुमारों का किसी ने वध कर डाला ।’

सुनते ही महानन्द चौंक पड़े, उनका चेहरा तमतमा उठा । क्रोध से काँपते हुए उन्होंने कहा—‘सुन रहे हो राक्षस ! शत्रु के कदम कहाँ तक बढ़ गये हैं ! मुझे लग रहा है जैसे कोई स्थान ऐसा नहीं रह गया जहाँ विद्रोही उपस्थित न रहते हों ।’

**राक्षस**—विद्रोह तूफान की तरह चढ़ता चला आ रहा है, तर्क के लिए अवकाश नहीं रह गया । सन्नद्धराज ! महाराज को महल के गुप्त द्वार से दूसरे उस महल में ले जाओ जो आपत्ति-काल के लिए सुरक्षित रख छोड़ा है । और वक्रराज ! तुम तुरन्त हमारे साथी पाँचों राजाओं को सूचना भेजो कि अपनी सेना लेकर तत्काल आयें । विराध ! तुम्हें पूरी स्वतन्त्रता है कि जैसे चाहो चन्द्रगुप्त, वात्स्यायन और शकटार को मार डालो ।

**विराध**—चन्द्रगुप्त के मरने की तो आज सूचना मिल गई होती, पर दुर्भाग्य ने हमारे ही विष देने वाले भेदिये की जान ले ली ।

**राक्षस**—जितनी भी प्रच्छन्न शक्तियाँ हैं अब उनके उपयोग का समय आ गया है । विषकन्या और किस दिन काम आयेगी ! वायुविष का प्रयोग और कब करोगे ? तुम्हारे पास अपने जितने भी जादू हैं उन सबको छोड़ सकते हो । अब तुम स्वतन्त्र हो, जब तक हमारी कोई दूसरी आज्ञा न मिले जैसे चाहो करो ! लेकिन यह ध्यान रहे कि किसी तरह मगध के दुर्ग पर शत्रुओं का अधिकार यदि हो भी जाये तो भी हमारे साथियों पर उनका अधिकार न होने पाये । साथी यदि साथ रहे तो दुर्ग फिर छीना जा सकता है । तुम जाओ और शत्रुओं की आँखों से दूर रहो । देखना विराध ! यह समय ऐसा है कि मुझ पर भी विश्वास न करना । तुम कहाँ हो, जीव कहाँ है, भागुरायण कहाँ है, यह सब तुम्हारे अतिरिक्त आपस में किसी दूसरे को पता न चले ।

**विराध**—और आप कहाँ रहेंगे, महामात्य !

**राक्षस**—इसकी चिन्ता तुम न करो ! राक्षस जहाँ भी रहेगा, आवश्यकता पड़ने पर तुम्हें उसकी खबर मिल जायेगी ।

विराध चले गये और महामात्य ने वक्रराज की ओर देखते हुए कहा—‘सेना मोर्चों पर लोहे की दीवार की तरह अड़ी रहे । जब तक

तुम्हारे लोहे में दम रहे शत्रु से लोहा लेते रहना और यदि वीरगति को प्राप्त हो जाओ तो एक-एक सैनिक को सेनापति बनने का आदेश दे जाना। देखना, मगध राज्य का ध्वज झुकने न पाये।'

तलवार खींचते हुए वक्रराज सेनानायकों की ओर चल दिये तथा महामात्य अपने महल में घुस, न जाने किस और गायब हो गये।

X

X

X

मगध भर में भय की कालिमा घिर उठी। पता नहीं किस क्षण क्या हो जाये! आशंका से नागरिक सुरक्षा व्यवस्था में लगने लगे। राज्य की ओर से सारा क्षेत्र अशान्त घोषित कर दिया गया। तूफान ही की तरह क्रान्ति की आँधी आती है। क्रान्ति जब जागती है तो हरी-हरी दूब में भी चिंगारियाँ फूट पड़ती हैं। विद्रोह की आग वन की आग की तरह होती है।

बादलों की तरह विद्रोहियों की सेना महानन्द के हाथों से मगध का राज्य छीनने को उतावली हो उठी। तुमुल विद्रोही नाद, लहराते हुए विप्लव के ध्वज और झनकारती हुई तलवारों के बीच मानो साक्षात् वीरता हुँकारी हो।

हुंकारते हुए चन्द्रगुप्त ने गुरुदेव से राज्य पर आक्रमण करने की आज्ञा माँगी। गुरुदेव ने आशीर्वाद का हाथ कमर पर रखते हुए कहा— 'चन्द्रगुप्त! तुम्हारी विजय निश्चित है। 'संदेहात्मक विनश्यति', इसलिए सन्देह न करना।'

साथ ही वीरता के आवेश में अन्धे होकर किसी भी ओर न टूट पड़ना। शत्रु के दाँतों के नीचे दबने की अपेक्षा एक कदम पीछे हटने में कोई हानि नहीं होती। तुम अपने विश्वस्त सैनिकों से पृथक् न होना।

'और लो, यह कृत कुण्डल, गिरगिट, छिपकली और दुमई साँप का अर्क। इसमें आवश्यकता पड़ने पर आग लगा देना, जिससे भीषण विषैला धूम्र उठ कर सबको मूर्छित कर देगा और तुम यह घास चबा लेना जिससे सुरक्षित रहोगे।'

**चन्द्रगुप्त**—तो फिर आज्ञा है, गुरुदेव!

**वात्स्यायन**—रास्तों का चित्र तो भली-भाँति समझ लिया है न! युद्ध के लिए तलवार चलाने की कुशलता जितनी आवश्यक होती है उतनी ही दिशाओं की जानकारी की आवश्यकता होती है।



**चन्द्रगुप्त**—आपके आशीर्वाद से मैं सतर्क हूँ गुरुदेव !

**वात्स्यायन**—जाओ। माँ दुर्गे ! अपने इस बालक के साथ रहना।

पैर छूकर चन्द्रगुप्त ने शंखनाद किया। सारी सेना शंखघोष सुनते ही हुँकार उठी और देखते ही देखते एक विशाल सेना मगध राज्य पर आक्रमण के लिए चल पड़ी। 'चन्द्रगुप्त की जय', 'महात्मा वात्स्यायन की जय' और 'जय भारत' के नारों से आकाश गूँजता जाता था।

हवा से बातें करती हुई राष्ट्रीय सेना राजकीय सेना के सामने आ गई। पर चन्द्रगुप्त के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि युद्ध से पहले ही राजकीय सेना पीछे की ओर हट रही है। वे निर्णय न कर सके कि ऐसी अवस्था में अपनी सेना को क्या आज्ञा दें। सेना के पीछे हटने का रहस्य उनकी समझ में न आया। पर समय अधिक सोचने का न था। एक चतुर सेनानायक की ओर देखते हुए उन्होंने कहा 'शत्रु सेना डरकर पीछे हट रही है। अपनी सेना लेकर तुम उन पर टूट पड़ो, मैं दुर्ग की ओर प्रयाण करता हूँ।'

चन्द्रगुप्त की आज्ञा सुनते ही भूखे भेड़ियों की तरह एक गुल्म पीछे हटी हुई राज-सेना पर टूट पड़ा और इधर चन्द्रगुप्त ने दुर्ग की ओर प्रस्थान किया। लड़ता-लड़ता चन्द्रगुप्त आगे बढ़ता चला गया। दुर्ग-द्वार पर घोर युद्ध हुआ। पर चन्द्रगुप्त के कदम न रुके। वह भूखे सिंह की तरह दहाड़ता हुआ जिस ओर निकल जाता था उस ओर मुर्दे ही मुर्दे दिखाई देने लगते थे। इस प्रकार चन्द्रगुप्त घोर युद्ध कर रहा था और चन्द्रगुप्त की सेना दुर्ग में घुस चुकी थी। दुर्ग के अन्दर कण-कण में घमासान संग्राम से रक्त ऐसे बह रहा था मानो रक्त के तालाबों में रक्त बरस रहा हो।

तलवारों से खेलता-खेलता चन्द्रगुप्त भी न जाने किस ओर ओझल हो गया। चन्द्रगुप्त को अपने मध्य न देख सेना हतोत्साहित होने लगी। इतने में 'महाराज महानन्द की जय' का एक तुमुल घोष सुनाई दिया, और दूसरे ही क्षण एक हाथ में रक्तभीगी तलवार तथा दूसरे में लहू से लथपथ गर्दन से कटा हुआ सिर चोटी पकड़े सैनिकों के साथ नन्द ने गुप्त द्वार से प्रवेश किया। महानन्द को देखते ही राजकीय सेना चौगुने बल से हुँकार उठी। साथ ही महानन्द ने गर्जते हुए कहा—'यह है चन्द्रगुप्त का सर, मैंने उसे मार डाला। विद्रोहियों में से एक भी बचकर न जाये, इन सबके सिर उतार लो!'

उत्तर में दुर्ग की चोटी से राजकीय झण्डा उतारते हुए चन्द्रगुप्त ने कहा—‘महात्मा वात्स्यायन की जय ! अच्छा हुआ महाराज भी यहाँ आ गये, नहीं तो मुझे आपके स्वागत के लिए दूसरे महल में जाना पड़ता ।’

चन्द्रगुप्त को देखते ही राष्ट्रीय सेना उत्साह से गर्जने लगी । फिर दोनों ओर से तलवारों की खनखनाहट कानों के पर्दे फाड़ने लगी । चन्द्रगुप्त के बढ़ते हुए चरण देखकर महानन्द ने भागने का यत्न किया पर दौड़ कर नंगी तलवार लिये चन्द्रगुप्त ने उन्हें ललकार कर कहा—मैं संसार को यह कहने का अवसर नहीं दूँगा कि चन्द्रगुप्त का पिता कायर था, वह युद्ध-भूमि से भाग गया । तलवार उठाओ ।

**महानन्द**—उस ब्राह्मण के बहकाये में आकर अपने ही वंश और राज्य को मिटाने वाले ! तूने यह भी न सोचा कि मगध राज्य को मिटाकर अपना ही नाश कर रहा है ।

**चन्द्रगुप्त**—तलवार सामने आते ही पिता के हृदय में पुत्र का प्रेम जाग उठा !

चन्द्रगुप्त आगे भी कुछ कहना चाहता था, पर नन्द ने उसका ध्यान हटा देख अवसर पा पैर से चन्द्रगुप्त को धक्का दे तलवार का वार उसके सिर पर कर दिया ।

चन्द्रगुप्त की ढाल से उछलता हुआ तलवार का वार उसके माथे पर लगा । महानन्द दूसरा वार करना ही चाहता था, पर चन्द्रगुप्त पूरा बल लगाकर उससे पहले ही उठ खड़ा हुआ और फिर पिता एवं पुत्र की तलवारें टकराने लगीं ।

लड़ता-लड़ता नन्द थक गया तथा चन्द्रगुप्त की तलवार से टकराते-टकराते उसकी तलवार टूट गई । अपनी मृत्यु निकट देख महानन्द ने आत्म-समर्पण कर दिया, उसकी सेना ने हथियार डाल दिये ।

चन्द्रगुप्त ने महानन्द को बन्दी बना लिया तथा ‘चन्द्रगुप्त की जय’ से आकाश गूँज उठा ।

वायु वेग से चन्द्रगुप्त की जय का समाचार दिशाओं में गूँज उठा । महानन्द को बन्दी कर चन्द्रगुप्त ने एक सुरक्षित महल में भेज दिया । चारों ओर राष्ट्रीय सेना के विश्वस्त सैनिकों का घेरा डाल दिया गया ।

राष्ट्रीय सेना को सावधान रहने की आज्ञा दे चन्द्रगुप्त गुरुदेव की



कुटिया की ओर चल दिये। द्रुतगति से अश्व पीठ पर सवार विजयी चन्द्रगुप्त बात की बात में गुरुदेव के चरणों में आ पहुँचे। चरण स्पर्श कर गर्व से उन्नत किन्तु विनय से नत चन्द्रगुप्त ने कहा—“आपके आशीर्वाद से हमारी विजय हो गई, महानन्द बन्दी कर लिये गये हैं।”

**वात्स्यायन**—और महामात्य राक्षस ?

**चन्द्रगुप्त**—उसका कुछ पता नहीं, गुरुदेव !

**वात्स्यायन**—तो अभी जय दूर है। दृष्टि चूकते ही जीती हुई बाजी हार में बदल सकती है। मगध के प्रधान सेनापति वक्रराज और सन्नद्धराज का क्या हुआ ?

**चन्द्रगुप्त**—वक्रराज का कुछ पता नहीं। सन्नद्धराज ने हमारी सेना से घोर युद्ध किया। उनकी तलवार से तीनों कृत्रिम चन्द्रगुप्त मारे गये। चतुर्थ नकली चन्द्रगुप्त का सिर महाराज ने उतार लिया। पर सन्नद्धराज भी इस घोर युद्ध में लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गये। ऐसे बाँके वीर की मृत्यु का मुझे दुःख है। भारत के कितने वीर इस प्रकार अपनी ही तलवारों से कट-कट कर मिट चुके और मिटते जा रहे हैं।

**वात्स्यायन**—इस विनाश से देश को बचाने के लिए ही तो सारे कुचक्र रच रहा हूँ चन्द्रगुप्त ! महानन्द को बन्दी करके कहाँ रखा है ?

**चन्द्रगुप्त**—एक महल में, जिसके चारों ओर राष्ट्रीय सेना का कठोर पहरा है।

**वात्स्यायन**—ऐसे भयंकर शत्रु को बन्दी रखना सर्प के फण को मुट्ठी में दबाना है। कल सवेरे उसे इस दुनिया से दूर पहुँचाना होगा, जहाँ से वह सताने के लिए फिर से न आ सकेगा।

**चन्द्रगुप्त**—क्या अर्थ गुरुदेव ! क्या कल सवेरे आप उनका वध कर देंगे ?

**वात्स्यायन**—हाँ।

**चन्द्रगुप्त**—नहीं गुरुदेव ! इतनी शीघ्रता न कीजिये। यदि उन्हें बन्दीगृह में ही रखा जाये तो वे हमारा बिगाड़ ही क्या सकते हैं।

**वात्स्यायन**—शत्रु जीवित रह कर बहुत कुछ बिगाड़ सकता है। महानन्द ने जिस दिन शकटार और कात्यायन को बन्दी बनाया था, यदि उसी दिन उनके सिर भी काट डालता तो मगध का महाराज आज बन्दी न होता।

**चन्द्रगुप्त**—तो उनकी दया का प्रतिकार यह नहीं कि हम उन्हें मार डालें। आखिर वे पिता हैं।

वात्स्यायन ने माथे पर उँगली रखकर सोचा और फिर कहा—  
“मोह उमड़ आया। यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मैं सोचूँगा। तुम जाओ, मुझे सोचने दो!”

गुरुदेव की आज्ञा पा चन्द्रगुप्त अपनी सेना की ओर चले गये। चन्द्रगुप्त के जाने के बाद वात्स्यायन ने शार्ङ्गरव को निकट बुलाते हुए कहा—“तुम अभी जाओ और आज ही रात में मुरा को अपने साथ लाओ! कहना आचार्य वात्स्यायन ने सपदि बुलाया है।”

आचार्य की आज्ञा पाते ही शार्ङ्गरव अभिवादन करके चले गये और वात्स्यायन सोचने लगे—“हाथ में आये शत्रु को छोड़ना पाप है। चन्द्रगुप्त नहीं चाहता कि महानन्द का वध किया जाये। उसके जीवित रहने का अर्थ होगा—चन्द्रगुप्त की मृत्यु! और मेरी प्रतिज्ञा? उसका भी न जाने क्या हो! यह समय चूकने का नहीं है, कल सूर्योदय होते ही महानन्द का सिर काट डालना ही होगा। वृक्ष के नीचे दबे हुए पिता के फूलों का तर्पण उनके हत्यारे के रक्त से करने में अब देरी नहीं करनी चाहिए। उनकी भटकती हुई आत्मा प्यासी है। महानन्द का रक्त पिये बिना पिता की आत्मा तृप्त नहीं होगी। कौटिल्य की प्रतिज्ञा कल पूरी होगी, निश्चित होगी। यदि अमृत के कुण्ड ने भी कल महानन्द की रक्षा करनी चाही तो मेरी ज्वाला उसे सुखा देगी।”

इस प्रकार वात्स्यायन लगातार सोचते रहे। उनकी विचारधारा तब टूटी जब शार्ङ्गरव के साथ मुरा ने मध्य रात्रि के बाद कुटी में प्रवेश किया। मुरा को देखते ही आचार्य वात्स्यायन ने कहा—बैठो देवि!

**मुरा**—क्या आज्ञा है महात्मा! इस रात में मुझे किसलिए याद किया?

**वात्स्यायन**—आपत्ति-काल में शक्ति की आवश्यकता होती है। तुम शक्ति हो मुरा! तुम्हारे राम का राज्य स्थापित होना चाहता है, पर तुम्हें अपना हृदय पत्थर का करना होगा।

**मुरा**—पहेली क्यों बुझा रहे हो महात्मा! स्पष्ट क्यों नहीं कहते?

**वात्स्यायन**—स्पष्ट यह है कि महानन्द बन्दी हो गये हैं। मगध पर चन्द्रगुप्त विजयी हो चुके हैं। कल प्रातः तुम्हें अपनी आज्ञा से



महानन्द का वध कराना होगा।

**मुरा**—क्या कहा महात्मा! पत्नी की आज्ञा से पति का वध! शास्त्रों में कहा है, 'पति कैसा भी हो, पर पत्नी के लिए पूज्य है।'

**वात्स्यायन**—यह पत्नी पति का वध नहीं कर रही, बल्कि राजमाता राजपुत्रों की रक्षा के लिए एक अत्याचारी का वध करेगी। क्या तुम्हें वह कथा याद नहीं जब देवी दुर्गा ने असुरों का नाश करने के लिए काली का रूप धारण कर अपने पति शिव की छाती पर भी पैर रख दिया था? वह तुम्हारा पति कहाँ! वह तो नारी के लिए पाप है।

**मुरा**—नहीं, महात्मा! भारतीय नारी यह निकृष्ट कार्य करने के लिए कभी तत्पर नहीं होगी।

**वात्स्यायन**—यदि तत्पर नहीं होगी तो उसे कल या परसों ही अपने पुत्र चन्द्रगुप्त का वध देखना पड़ेगा। महामात्य राक्षस अभी जीवित है। उनके कुचक्रों से बचना सरल नहीं। यदि तुम अपने पुत्र की मृत्यु देख सकती हो तो महानन्द को जीवित रखो!

**मुरा**—नहीं-नहीं, सचमुच महाराज बड़े क्रोधी हैं। यदि चन्द्रगुप्त उनके हाथ में आ गया तो वे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। मैं आपकी आज्ञा मानने को तैयार हूँ।

**वात्स्यायन**—तो फिर सूर्योदय होते ही!

**शार्ङ्गरव**—सूर्योदय होने में केवल प्रहर बाकी है।

**वात्स्यायन**—तो फिर हम इसी समय चलना चाहते हैं। बन्दीगृह तक पहुँचते-पहुँचते सूर्योदय हो जायेगा। शार्ङ्गरव! तुम चन्द्रगुप्त के पास रहना, जब तक महानन्द का वध न हो तब तक वह वहाँ न आने पाये और शकटार को सब कुछ बता कर इसी समय वध-स्थल पर जाने को कहते जाना।

मुरा के साथ उसी समय प्रस्थान कर सूर्योदय से पूर्व ही वात्स्यायन वहाँ आ गये जहाँ महानन्द बन्दी थे।

महात्मा वात्स्यायन को देखते ही सेनानायक ने दूर से ही सैनिक अभिवादन किया। पर अभिवादन के साथ ही साथ कड़कती हुई आवाज में बोला—“यद्यपि मैं देख रहा हूँ कि गुरुदेव आ रहे हैं, फिर भी सन्देह निवारण के लिए गुप्त संकेत किये बिना आगे कदम बढ़ाने की कृपा न करें।”

**वात्स्यायन—**“वनराज !”

सुनकर सैनिक ने मार्ग छोड़ दिया और ससम्मान उन्हें एक कक्ष में ले गया। मुख्य द्वार पर एक दूसरे सैनिक को नियुक्त कर वह उन्हें एक बड़े कक्ष में ले गया। थोड़ी देर बाद शकटार भी वहाँ आ गये। शकटार के आने पर वात्स्यायन ने अभीष्ट बातें शुरू कीं—सवेरे महानन्द का वध होगा।

**शकटार—**एकदम वध करने से सहसा ही कोई भयानक आपत्ति तो नहीं आ पड़ेगी ?

**वात्स्यायन—**क्या तब आपत्ति आई थी जब बिना अन्न के तुम्हारे बच्चे भूख से तड़पा-तड़पा कर मार डाले थे ? क्या तब कोई पहाड़ टूटा था जब तुम बन्दीगृह में थे और तुम्हारी पत्नी वियोग की साँसें गिन-गिन कर इस दुनिया से विदा हो गई थी ? उस दिन क्या प्रलय हुई थी जिस दिन मेरे पिता का सिर काट कर चौराहे पर लटकाया था ? कात्यायन की पुत्री को बलात् अपनी इच्छाओं की दासी बनाते समय किसने आपत्ति उठाई थी ? मुरा का परित्याग करते समय क्या पृथ्वी काँपी थी ? अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए राजकोष लुटाते समय जब बिजलियाँ नहीं टूटीं तो आज उस अन्यायी का वध करते समय विपत्ति का भय क्यों ? जान पड़ता है अत्याचार सहते-सहते आप भी अत्याचार सहने के अभ्यासी हो चुके हैं। यदि इस बार महानन्द को अवसर मिल गया तो वह दिन दूर नहीं जब हम सबके सिर काटकर चौराहे पर लटका दिये जायेंगे।

**शकटार—**बस-बस, और याद मत दिलाओ ! मेरा रक्त उबाल लेने लगा है। मैं अपने हाथ से उसका सिर काटूँगा।

**वात्स्यायन—**नहीं, ब्राह्मण का हृदय मृदुल होता है। कहीं आपको अपने महाराज पर दया आ गई तो सारा खेल बिगड़ जायेगा। यह कार्य कात्यायन के हाथों से कराना होगा।

**शकटार—**कात्यायन कहाँ हैं, उनका कुछ पता है ?

**वात्स्यायन—**वे एक काल-कोठरी में बन्दी थे, हमारी सेना ने उन्हें मुक्त किया है। इस समय वे एक सुरक्षित स्थान पर विश्राम कर रहे हैं।

**शकटार—**तो उनको अभी बुलाना चाहिये।



**वात्स्यायन**—आपके आने से पूर्व ही मैंने सेनानायक को उन्हें लेने भेज दिया है, वे आते ही होंगे।

बातें हो ही रही थीं कि कात्यायन भी आ गये। शकटार ने कात्यायन को देखते ही अपने हृदय से लगा लिया। दोनों की आँखों से दुःख और सुख के आँसू बह चले। सुख के बाद दुःख में जितने आँसू निकलते हैं, दुःख के बाद सुख का साथ मिलने पर उससे भी अधिक अश्रु-पात होता है।

पर जिस प्रकार नदी के जल का प्रवाह पहाड़ से टकराकर रुक जाता है उसी प्रकार वात्स्यायन की हुँकार ने उन प्रेम के आँसुओं को रोक दिया। एक भीषण अट्टहास करते हुए वात्स्यायन बोले—रो रहे हो! हारा हुआ जुवारी रोया करता है, पर आज आश्चर्य है कि जीता हुआ जुवारी रो रहा है! रोने के लिए पुरुष नहीं बना, स्त्रियाँ रोती हैं। पुरुष पाषाण से भी दृढ़ होता है। संसार लोहे के मनुष्य के लिए है। मोम का मनुष्य किस काम का, जो अग्नि के तनिक ताप से ही बह जाये। यह समय रोने का नहीं, जीवन की सारी हारें जीत में बदलने का समय है। कात्यायन! देखते हो, सूर्यदेव अन्धकार का वक्ष चीरते हुए चले आ रहे हैं। इस समय उनका रूप ऐसा है जैसे उन्हें किसी ने रक्त में स्नान करा दिया हो।

**कात्यायन**—सत्य कह रहे हैं, महात्मा!

**वात्स्यायन**—क्या सत्य कह रहे हैं?

**कात्यायन**—यही कि सूर्य रक्त वर्ण है।

**वात्स्यायन**—तुम कुछ भी नहीं समझे।

**कात्यायन**—आपका अर्थ समझना क्या सरल है महात्मा! समझाने की कृपा कीजिये!

**वात्स्यायन**—सूर्य नन्द द्वारा हुई हत्याओं से लाल है, उस नन्द की हत्याओं से जिसने मुझ पर, तुम पर, शकटार पर और इस देवी मुरा जैसी न जाने कितनी अबलाओं पर अत्याचार किया है, उसी की हत्याओं से सूर्य लाल हो गये हैं।

**कात्यायन**—और इसी रक्त को धोने के लिए सम्भव है भगवान् भास्कर के उपासक प्रतिदिन अर्घ्य चढ़ाते हैं, पर पुजारियों की पूजा अभी तक असफल है।

**वात्स्यायन**—पूजा सफल होना चाहती है। आज तुम्हें सूर्य को जल का अर्घ्य नहीं देना है, आज सूर्यदेव पर महानन्द के रक्त का अर्घ्य चढ़ाना होगा। लो यह खड्ग! इससे तुम्हें अभी नन्द का सिर काटना है।

खड्ग लेते ही कात्यायन ने कहा—कहाँ है महानन्द? मैं खड्ग से पीछे, पहले तो नाखूनों से उसे नोचूँगा, दाँतों से उसे ऐसे फाड़ डालूँगा जैसे भूखा शेर हाथी के मस्तक को फाड़कर खा जाता है।

**वात्स्यायन**—कहीं तुम्हारे हाथ काँप तो नहीं जायेंगे?

**कात्यायन**—हिमालय चाहे काँप जाये, पर कात्यायन के हाथ नहीं काँपेंगे।

**वात्स्यायन**—आज तक तुमने किसी का वध जो नहीं किया है।

**कात्यायन**—पर अपनी आँखों से नन्द को वध करते देखा तो है।

**वात्स्यायन**—फिर भी तुम यह एक गिलास पी जाओ! इसके बाद तुम्हारे हृदय का मनुष्य मर जायेगा। फिर वध करते समय तुम्हारे हाथ नहीं काँपेंगे।

वात्स्यायन के हाथ से गिलास ले कात्यायन एकदम पी गये। पीने के थोड़ी ही देर उनकी आँखें अंगारे की तरह लाल-लाल हो गई। मुख पर एक भयावनी रंगीनी नाच उठी। जब वात्स्यायन ने देखा कि कात्यायन अब अपने आपे में नहीं है, उसके हृदय में दया मर चुकी है, तब उन्होंने कहा—“अब चलो!”

खड्ग लेकर झूमते हुए कात्यायन, वात्स्यायन, शकटार और मुरा के साथ उस स्थान पर आये जहाँ महानन्द कठोर पहरे में बन्दी थे।

महानन्द को देखते ही वात्स्यायन ने मुस्कराते हुए कहा—मगध के महाराज को कोई कष्ट तो नहीं हुआ?

**नन्द**—अब तक तो कोई कष्ट नहीं हुआ था, पर अब महात्मा के वेष में चाण्डाल को देखकर जी चाहता है कि महात्मा वेषधारी कुटिल को दाँतों से नोच डालूँ।

**वात्स्यायन**—बल अभी बाकी है, कुछ देर में बल भी नष्ट हो जायेंगे। बहुत बढ़ चुके हैं तुम्हारे पाप! अब तुम्हें उनसे मुक्ति मिलने वाली है। मृत्यु की गोद में शान्ति से सोने के लिए प्रस्तुत हो जाओ।



**नन्द**—क्या ! क्या तुम मेरा वध करने आये हो ? ब्राह्मण ! ऐसा अन्याय न कर । न्याय से मुझे मृत्यु-दण्ड का दोषी ठहराये बिना ही मेरा वध करने चले आये !

**वात्स्यायन**—न्याय ! तुम्हारे मुँह से न्याय शब्द शोभा नहीं देता । कहाँ गया था उस दिन तुम्हारा न्याय जब एक निर्दोष बूढ़े ब्राह्मण चणक का तुमने वध किया था, जब शकटार और कात्यायन को बन्दी बनाकर उनके बच्चों को तड़पा-तड़पा कर मार डाला था, जब बलात् सतीत्व नष्ट किये, जब अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए राजकोष फूँक डाले, जब अपनी तृप्ति के लिए दूसरों का सुख और शान्ति मिटा डाली, जब मुरा को भिखारिन बनाकर अपने ही पुत्र के प्राण लेने को पागल बन गये थे ? अब न्याय-न्याय पुकार उठे !

तुम क्षमा के पात्र नहीं हो । तुम पर दया करनी निरीह जनता के साथ अन्याय करना है । अब अधिक अवसर नहीं है । मृत्यु से पहले यदि कोई इच्छा हो तो अपने जीवन के अतिरिक्त तुम पूरी कर सकते हो ।

**नन्द**—नन्द ने भिखारी बनकर कभी किसी से कुछ नहीं माँगा । उसने जो चाहा अपनी भुजाओं से प्राप्त किया है । तुम चाहे मुझे पापी कहकर पुकारो, पर मैं स्वयं को निर्दोष मानता हूँ । संसार में मनुष्य अपने आपको धिक्कारता हुआ न जिये, बल्कि जीने के लिए अपनी हर तृप्ति मुट्ठी में बन्द रखे, भूल जाये उन स्मृतियों को जो उसे जीवन से वैराग्य की ओर ले जाती हैं ।

मरने से पहले यह कहने की इच्छा है कि हाथ में आये हुए शत्रु को जो जीवित छोड़ देता है उसी के हाथों एक दिन अपनी मृत्यु करवा डालता है । यदि चणक के साथ ही साथ मैं कात्यायन और शकटार के भी सिर काट डालता तो आज एक कुटिल ब्राह्मण के समक्ष अपराधी की तरह न खड़ा होता ।

**वात्स्यायन**—अपराध से बचने के लिए दूसरा अपराध करके नीति-कुशलता से चाहे कोई अपना आतंक जमा ले, पर अत्याचारी को अत्याचारों का दण्ड किसी भी तरह मिले बिना नहीं रहता । तुमने राजा होकर जनता का रक्त चूसा ।

**नन्द**—राजा को मिटा कर जनता की रक्षा करने वाले रक्त चूसने

के लिए हजारों राजा पैदा कर देते हैं। जिस देश में राजा नहीं होता, वह देश निरंकुश होता है। यदि मगध के महानन्द का बल न होता तो विदेशी कभी के समस्त भारत पर छा गये होते।

**वात्स्यायन**—जिस देश में अनेक राजा होते हैं, उस देश को नष्ट करने के लिए विदेशियों की आवश्यकता नहीं होती; आपस की तलवारें अपनों का ही रक्त पी डालती हैं। बस, अब तो और कुछ कहना-सुनना नहीं है। कात्यायन! काट डालो इस अन्यायी का सिर जिसने अपने हाथों से मेरे बूढ़े पिता का सिर काटा था। मेरे पिता की हड्डियाँ वृक्ष के नीचे दबीं इस अत्याचारी के रक्त की प्यासी हैं।

**नन्द**—ओह, तू चणक-पुत्र है!

**वात्स्यायन**—हाँ, मैं चणक-पुत्र हूँ जो बचपन से कौटिल्य के नाम से पुकारा जाता था, जिसने बचपन से आज तक अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेने के लिए तपस्याएँ की हैं। कात्यायन, उतार लो इस अत्याचारी का सर!

कात्यायन खड़ग तानकर आगे बढ़ा और महानन्द ने अत्यधिक गम्भीर होकर मुरा की ओर देखते हुए कहा—“देवि! मैंने चणक का वध करके कोई अपराध नहीं किया, पर तुम्हारा परित्याग करके भारी अपराध किया है। संसार में अनेक स्त्रियों से सम्बन्ध होना कोई विशेष पाप नहीं, पाप तो यह है कि अनेकों की तुष्टि और निर्वाह न हो सके तथा भूल जाये दूसरी के बाद एक को। मैंने तुम्हें भुलाकर एवं दोषी ठहराकर जो अन्याय किया है उससे मेरी आत्मा को इतना दुःख है कि वध से भी मुझे शान्ति न मिलेगी। मनुष्य कितनी भूल करता है जब वह किसी स्त्री पर अपना एकाधिपत्य चाहता है और स्वयम् अनेकों से सम्बन्ध रखकर भी सन्तोष नहीं पाता। न जाने पुरुष स्वयम् को पापी जानकर भी सन्तोष क्यों मानता है और नारी को सन्देह की भावना मात्र से पापी मानकर घृणा कर बैठता है। यदि कोई नारी भूल कर बैठे तो उसके लिए इतना बड़ा दण्ड नहीं होता जितना बड़ा मैंने तुमको दे डाला। मुझे क्षमा न करना देवि! यदि कर सको तो ईश्वर से इतनी प्रार्थना कर देना कि मैं अगले जन्म में तुम्हारे प्रति किये पाप से मुक्ति पा सकूँ।”

कहते-कहते नन्द का कण्ठ रूंधने लगा और उधर मुरा की आँखें



छलछला आई। चाणक्य ने वातावरण में परिवर्तन होते देख अट्टहास करते हुए कहा—“तुम्हारी इन भीगी बातों से अब भविष्य तुम्हारे हाथों में न खेल सकेगा। चन्द्रगुप्त के प्राण अब तुम्हारी मुट्ठी में नहीं सोंपे जा सकते।”

कहते-कहते चाणक्य क्रोध से उबलने लगे और उन्होंने गर्जते हुए कहा—“कात्यायन! देखते क्या हो, काट लो इस पापी का सिर!”

कात्यायन ने झूमते हुए खड्ग का एक भरा हुआ हाथ नन्द की गर्दन पर मारा और सिर कट कर उछलता हुआ मुरा की गोद में आ गिरा।

□□

महानन्द का कटा हुआ सिर मुरा की गोद में था और धड़ भूमि पर पड़ा था। मुरा आँखें झुकाये सिर की ओर निहार रही थी। चाणक्य ने अपनी चोटी उँगली में लपेटते हुए कहा—“आज प्रतिज्ञा पूरी हुई।”

इतने में चन्द्रगुप्त ने क्रोध में प्रवेश करते हुए कहा—मेरी अनुपस्थिति में पिता का वध किसने किया ?

**कात्यायन**—मैंने।

**चन्द्रगुप्त**—किसकी आज्ञा से ?

कात्यायन कुछ कहें कि उससे पहले ही चाणक्य ने कहा—मेरी और राजमाता की आज्ञा से।

**चन्द्रगुप्त**—संसार क्या कहेगा, पुत्र ने राज्य के मोह से पिता का वध कर डाला !

**चाणक्य**—हिरण्यकशिपु का वध प्रह्लाद ने नहीं किया था, अपितु उसके अत्याचारों ने उसे नाखूनों से फाड़ डाला था। मोह में न आओ चन्द्रगुप्त ! राजनीति दया से दूर रहती है।

चारों ओर काल विकराल रूप धारण किये खड़ा है। यह समय व्यर्थ खोने के लिए नहीं। तुम्हारे पिता के क्रिया-कर्म से पहले तुम्हारा राज्याभिषेक होगा। आज ही तुम्हें दो विपरीत कर्म करने हैं। एक हाथ से राज्य की बागडोर सँभालनी है और दूसरे हाथ से पिता का क्रिया-कर्म करना है।

**चन्द्रगुप्त**—यह क्या कह रहे हैं गुरुदेव ! समाज मुझे घृणा से देखेगा। इतिहास मेरे माथे पर स्याही के टीके लगायेगा। पिता और पुत्र का प्रेम कलंक के नाम से पुकारा जाने लगेगा।

**चाणक्य**—जितने भी कलंक होंगे वे सब चाणक्य के माथे पर लगेंगे, चन्द्रगुप्त को उनकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

शकटार की ओर देखते हुए, ‘आप नन्द के दाहकर्म का प्रबन्ध कराइये !’ और कात्यायन की ओर देखते हुए, ‘तुम चन्द्रगुप्त के शासक होने की घोषणा कर दो, साथ ही साथ यह भी घोषणा करो कि महानन्द के क्रिया-कर्म के बाद अभिषेकोत्सव होगा।’



X

X

X

सूर्य शून्य में गहरे उतर रहे थे और इधर शोण नदी के तट पर महानन्द की चिता धधक रही थी। अस्त होते हुए सूर्य लाल थे और इधर चिता से लाल-पीली लपटें उठ रही थीं। अग्नि अग्नि को पी रही थी, जल जल में डूब रहा था, वायु वायु में घुल मिल रही थी, मिट्टी मिट्टी में समाती जा रही थी और शून्य शून्य में तादात्म्य था। पर चन्द्रगुप्त की आँखों में आँसू थे और मुरा की छाती पर पाषाण पड़े थे। मगध का महाराज, जिसकी हुँकार से सिकन्दर के बढ़ते हुए कदम रुक गये, जिसकी गर्जना से सिंहों की दहाड़ रुक जाती थी, जिसके पगों में भूचाल और हाथों में तूफान बन्दी था, आज वही मुट्ठी भर धूल हुआ जा रहा है।

मृत्यु! कितनी कठोर होती है यह! कोई भी तो नहीं बचता इससे! जिस मुरा के रूप को देखकर पूर्णिमा का चाँद शरमा जाता था, आज उसी को विधवा देखकर चिता की लपटें शोक मना रही हैं। खुली हुई कबरी, बिखरे हुए बाल, पुँछा हुआ सिन्दूर, नंगे हाथ-पैर, सफेद सादी धोती, कितनी क्रूर लीला है! न जाने किस नियन्ता का नियतिवाद संसार पर शासन करता है।

संसार की भलाई और बुराई मरने के साथ ही चली जाती है। बहुत जल्दी ही भूल जाता है मनुष्य बड़ी-बड़ी बातों को भी। चिता के पास से मनुष्य गीली आँखें लेकर लौटता है और फिर कुछ दिन बाद आँखें हँसी देखने लगती हैं। भीगी आँखें आँचल से पोंछती हुई मुरा चन्द्रगुप्त तथा अन्य राज्याधिकारियों के साथ फिर उसी महल में आ गई जिस महल से वह परित्याग करके निकाली गई थी। पर अब आई भी तो क्या आई, महल उसे खाने को दौड़ रहा था। लेकिन चन्द्रगुप्त अब भी उसकी आशा का एक दीपक था, जिसके प्रकाश में उसके आँसू छिप जाते थे।

मुरा की आँखों में आँसू थे, पर चाणक्य की आँखों में चिन्ता चक्कर काट रही थी। चन्द्रगुप्त की रक्षा, महानन्द की मृत्यु से उठे हुए तूफान की शान्ति, इतने बड़े राज्य का अस्त-व्यस्त दशा में सँभालना, चन्द्रगुप्त की मानसिक दशा को शीघ्र बदलना; और उधर कण-कण में छिपे हुए राक्षस के कुचक्रों से सावधान रहना, आदि-आदि न जाने कितने प्रश्न थे उस अकेले के सामने। किन्तु उनका हँसता हुआ मुख

देखकर कौन कह सकता था कि चाणक्य के रोम-रोम में समस्याएँ और लहरें हिलोरें ले रही हैं।

पल-पल में उनकी मुखाकृति न जाने कितने भाव बिजली की तरह दमका अन्तर की गहराई में विलीन कर गम्भीर दिखाई देती थी। हृदय में तूफानों को छिपाये हुए विवेक को साथी बना चाणक्य वहाँ आये जहाँ महानन्द की मृत्यु के शोक में मुरा उदास बैठी थी और चन्द्रगुप्त अपने आँसू पोंछते हुए उन्हें समझा रहे थे।

पास ही बिछी हुई एक चौकी पर कुछ पलों तक तो वे गम्भीर मुद्रा में मौन बैठे रहे, और फिर माथे में बल डालते हुए मुरा की तरफ देख बोले—‘यदि आँसू ही बहाती रहीं तो वह घड़ी दूर नहीं जब चन्द्रगुप्त की मृत्यु पर भी आँसू बहाने पड़ेंगे। राजा का एक पग श्मशान में होता है और दूसरा राजसिंहासन पर। रोने के लिए राजा को अवकाश नहीं होता और न ही राजा को अधिक हँसने का समय होता है। जब कोई अधिक रोता है या अधिक हँसता है तो शत्रुओं को आक्रमण करने का अनुकूल अवसर मिल जाता है।’

**मुरा**—शोक में रोना और हर्ष में हँसना स्वाभाविक है, महात्मन्!

**चाणक्य**—लेकिन जो शोक में रुदन को छिपा लेता है और हर्ष में हास्यातिरेक को दुबका सकता है, पराजय उसके पास नहीं आती; अन्यथा शोक दूसरों के लिए उपहास बन जाता है और हर्ष अपने लिए दुःख हो जाता है।

**मुरा**—तो क्या आज्ञा है मेरे लिए ?

**चाणक्य**—चन्द्रगुप्त की रक्षा और उत्कर्ष के लिए पाषाण से भी कठोर बन जाओ।

**मुरा**—चन्द्रगुप्त अब आपकी छाया में है। उसके पिता, गुरु, रक्षक सब कुछ आप ही हैं।

**चाणक्य**—तो तुम अपने महल में जाओ तथा अन्य रानियों से ऐसा सम्पर्क स्थापित करो जिससे उनके हृदय का शोक और विरोध दूर हो जाये। साथ ही प्रत्येक पर सन्देह की दृष्टि रखो, पर ऐसे कि कोई यह न समझे कि सन्देह किया जा रहा है। चन्द्रगुप्त को मैं अपने साथ लिये जा रहा हूँ। कहाँ ले जा रहा हूँ, क्या करूँगा, यह सब तुम्हें जानने की आवश्यकता नहीं।

**मुरा**—जैसी आचार्य चाणक्य की आज्ञा।



मुरा को महल में भेज, चन्द्रगुप्त को साथ ले चाणक्य उस सुदृढ़ दुर्ग में आये जहाँ विश्वस्त प्रहरी सावधानी से पहरा दे रहे थे। यही वह दुर्ग है जहाँ चन्द्रगुप्त के निवास की व्यवस्था की गई है।

आगे-आगे चाणक्य और पीछे-पीछे चन्द्रगुप्त ने दुर्ग में प्रवेश किया। दुर्ग की ईंट-ईंट और कण-कण को गहरी दृष्टि से देखते हुए चाणक्य ने चरण आगे बढ़ाये। एक के बाद दूसरे कक्ष में प्रवेश करते हुए वे उस कक्ष में आये जहाँ चन्द्रगुप्त के शयन की व्यवस्था की गई थी। पर जैसे ही उन्होंने कक्ष में पैर रखा वैसे ही उनकी दृष्टि उस चींटी पर पड़ी जो फर्श के नीचे से चावल का कण मुँह में दबाये निकल रही थी।

चाणक्य चन्द्रगुप्त के साथ तुरन्त उस कक्ष से बाहर आ गये। एक सैनिक को आह्वान करते हुए उन्होंने कहा—‘फर्श के नीचे की ईंट उखाड़ डालो!’

आज्ञा पाते ही सैनिक ने भाले से खोद-खोद कर ईंट निकाल डालीं। ईंटों के हटते ही नीचे की ओर सीढ़ियाँ दिखाई दीं। पैड़ियाँ देखते ही चाणक्य चन्द्रगुप्त के साथ दौड़कर तुरन्त दुर्ग के बाहर आ गये और प्रहरियों को आज्ञा दी कि चन्द्रगुप्त के शयन-कक्ष में मिट्टी का तेल और कड़वा तेल छिड़क कर आग लगा दो।

इधर चाणक्य ने आज्ञा दी, उधर शयन-कक्ष धूँ-धूँ जल उठा तथा लपटों से जल गये और भी कई बहुमूल्य कक्ष।

चन्द्रगुप्त की समझ में कुछ भी नहीं आया। उसने आश्चर्य से पूछा—इसमें क्या रहस्य है, गुरुदेव!

**चाणक्य**—इसमें तुम्हारी मृत्यु का रहस्य था। शत्रु का तुम्हें मारने के लिए भूमि के नीचे का रास्ता था। अब अपने रास्ते से रास्ता बनाने वाले ही जल गये होंगे।

**चन्द्रगुप्त**—जान पड़ता है कि शत्रुओं का जाल चारों ओर फैला हुआ है।

**चाणक्य**—वह राजा बनने योग्य नहीं जो जाल में फँस जाये। जो राजा यह कहे कि शत्रु ने मुझे धोखा दिया है वह राज नहीं कर सकता।

कहते हुए गुरुदेव चन्द्रगुप्त को एक दूसरे सुरक्षित महल में ले आये। यहां आकर चन्द्रगुप्त को विश्राम के लिए कह एक सैनिक को आज्ञा दी कि शार्ङ्गरव को बुला लाओ, कात्यायन और शकटार को भी

बुलाते लाना ।

सैनिक चला गया । थोड़ी देर बाद शार्ङ्गरव आ गये । उन्हें स्नेह से पास बैठाते हुए चाणक्य ने कहा—मगध निवासियों का चन्द्रगुप्त के प्रति क्या दृष्टिकोण है ?

**शार्ङ्गरव**—विश्वस्त भेदिये ने बताया है कि चारों ओर घोर विरोध है । बिना राजदरबार में निर्णय किये नन्द का वध करने से विद्रोह वैर का रूप धारण करता जा रहा है । न जाने कहाँ से चिंगारी छूटी है जो विरोध की आग बढ़ाती ही चली जा रही है ।

**चाणक्य**—विरोध शान्त करने का यत्न किया ?

**शार्ङ्गरव**—सारे यत्न असफल हो रहे हैं । चन्द्रगुप्त के पक्ष की बात मुँह से निकालते ही नागरिक खाने को दौड़ते हैं ।

**चाणक्य**—क्या तुमने कुछ ऐसे आदमियों का पता लगाया जो भोले-भाले नागरिकों को भड़काते हैं ? शार्ङ्गरव ! कुछ ही आदमी ऐसे होते हैं जो सारी जनता में असन्तोष की ज्वाला धधका डालते हैं । तुम अपने निपुण भेदिये को भेजकर उनका पता लगाओ । विद्रोहियों का पता तभी लगेगा जब तुम्हारे भेदिये उनमें बिल्कुल मिल जायेंगे । भेदिये को समझा देना कि यदि कोई चन्द्रगुप्त और चाणक्य को एक शब्द भी कहे तो तुम दो कहना । इस प्रकार उन विद्रोहियों के पते निकालो जो चिंगारियाँ छोड़ रहे हैं ।

**शार्ङ्गरव**—फिर क्या होगा, गुरुदेव !

**चाणक्य**—अन्तिम निर्णय पहले नहीं हुआ करता । समय के साथ जो होगा वही करेंगे । और हाँ, भासुरक और भागुरायण का कुछ पता है ?

**शार्ङ्गरव**—कुछ पता नहीं, गुरुदेव ! न जाने कैसा षड्यन्त्र है !

**चाणक्य**—ये सब राक्षस के कुचक्र हैं । कभी-कभी राक्षस की बुद्धि से ईर्ष्या होती है शार्ङ्गरव ! अच्छा, अब तुम अपने कार्य में लगो । रात के अँधेरे में भी तुम्हारी आँखें खुली रहनी चाहियें ।

**शार्ङ्गरव**—चिन्ता न करें गुरुदेव ! शार्ङ्गरव में अर्जुन की तरह जागने की क्षमता है ।

कहते हुए शार्ङ्गरव चले गये तथा कात्यायन और शकटार पधारे । उन दोनों को देखते ही चाणक्य ने कहा—चारों ओर सेना सावधानी से



तैनात है न ?

**कात्यायन**— एक-एक सैनिक जाग रहा है ।

**चाणक्य**— लेकिन इस तरह जाग रहे हैं कि उनकी आहट बिल्कुल भी न हो ?

**कात्यायन**— जी !

**चाणक्य**— सबसे अधिक भय कहाँ है ?

**शकटार**— राजदरबार के पीछे वाले मैदान से परे एक पहाड़ी है । कुछ उड़ती हुई सूचना मिली है कि राक्षस ने अपने चुने हुए सैनिक वहाँ लगा रखे हैं, जो अवसर पाकर रात को भी आक्रमण कर सकते हैं । और यह खबर मिली है कि राक्षस को यह विश्वास है कि चाणक्य तक हमारी सेना के यहाँ छिपने का पता नहीं पहुँच सकता । सुना है सैनिकों का बड़ा अद्भुत व्यूह है ।

**चाणक्य**— तो तुमने क्या प्रबन्ध किया ?

**शकटार**— पहाड़ी के इस ओर काली रात में मिले हुए हमारे सिपाही भी लग चुके हैं ।

**चाणक्य**— हम उस स्थान पर इसी समय चलना चाहते हैं और चन्द्रगुप्त भी हमारे साथ चलेगा । यदि कहीं असावधानी में रात को ही शत्रु टूट पड़े तो जीत हार में बदल जायेगी । शत्रु हम पर आक्रमण करे और हम अपनी रक्षा करने तब चलें जब वह हमारे सिर पर चढ़ आये, तब रक्षा नहीं हुआ करती । यदि शत्रु इस बात से अनभिज्ञ है कि हम तक उसका रहस्य नहीं पहुँच सकता तो हमें इसका लाभ उठाना चाहिए । वे हम पर टूटें, इससे पहले ही हमारी सेना उन पर आक्रमण करे ।

**शकटार**— पर उनकी शक्ति का कुछ पता नहीं । न जाने कितनी ताकत छिपी हुई है उनकी ।

**चाणक्य**— यह जानने के लिए हम वहाँ चल रहे हैं ।

चन्द्रगुप्त को साथ ले सशस्त्र सैनिकों की सुरक्षा में चाणक्य चुपचाप उस स्थान पर आये जहाँ भारी भय था । काले वस्त्र पहने काली रात में ये चुपचाप काल-से वहाँ ऐसे आ रुके कि किसी एक ने भी उन्हें न देखा ।

इस घोर अन्धकार में दूरी पर पेड़ की आड़ लिये छोटा-सा दीपक जला, एक सैनिक कुछ लिख रहा था ।

चाणक्य ने दूर से जलते हुए दीपक और लिखते हुए सैनिक को देखते ही कहा—यह कौन है ? क्या कोई शत्रु का भेदिया है ?

**सेनानायक**—शत्रु का भेदिया नहीं, अपना ही सिपाही है।

**चाणक्य**—लेकिन यहाँ दीपक जलने का अर्थ हम सबकी मृत्यु है। शत्रु इस जलते दीपक को देखते ही हमारा सारा भेद समझ जायेगा।

**सेनानायक**—इस अपराध के दण्ड में मैं अभी उसका सिर काट डालता हूँ।

**चाणक्य**—मृत्यु दण्ड तो उसे भोगना ही होगा। सैनिक का यह अक्षम्य अपराध है। पर पहले देखो कि वह क्या लिख रहा है।

सेनानायक दबे पैर सैनिक के पास गये। सैनिक देखते ही चौंक कर खड़ा हो गया। सामने सेनानायक को देखते ही उसने गर्दन झुका ली।

दीपक बुझा धीमे शब्दों में सेनानायक ने कहा—तुमने दीपक जलाकर हमारी जीत की चिता जलाने का प्रयत्न किया है, इस अपराध में तुम्हें तुरन्त मृत्यु-दण्ड भोगना होगा। पर मृत्यु-दण्ड भोगने से पहले यह बताओ कि क्या लिख रहे थे ?

**सैनिक**—मृत्यु तो सैनिक की प्रियतमा होती है, नायक ! दीपक जलाकर भूल हुई। पर क्या करता ! रात्रि के सूने अन्धकार में कविता जाग उठी और मैं लिखे बिना न रह सका।

सेनानायक ने चाणक्य की ओर देखते हुए कहा—सैनिक के हृदय और हाथ में केवल तलवार की धार जगाने का अधिकार है। मृत्यु के लिए तैयार हो जाओ !

**चाणक्य**—ठहरो सेनानायक ! कवि अपराधी नहीं होता। जो कवि को अपराधी समझकर दण्ड देते हैं, अपराधी वे होते हैं। इस सिपाही को मुक्त कर दो और कहो कि शक्ति-संगठन और उन्नति के गीत गाता रहे, देश में विश्वास और उत्साह की आग फूँके।

**सैनिक**—करुणा पर आपने शाश्वत सत्य की छाप लगा दी। गहरे अन्धकार और युद्ध की विभीषिका में मैं इसी सत्य का गीत लिख रहा था। संसार रक्त नहीं, गति चाहता है। युद्ध की ज्वाला से प्रकृति विधवा हो जाती है। लिख रहा था—क्या मनुष्य की चिता पर रोने के लिए श्मशान ही शेष रह जायेगा अथवा मनुष्य के शव को जलाने



वाला ही कोई संसार में नहीं रहेगा।

रोको, महात्मा ! रुधिरप्रिया की तृषा को रोको !

**चाणक्य**—जब रोग के उपचारार्थ विष-प्रयोग की आवश्यकता हो तब मधु देने से मृत्यु हो जाती है कवि ! युद्ध-काल में लेखनी को तलवार बन जाना चाहिये।

कहते हुए चाणक्य एकदम बदल कर आवेश में बोले—पूरे बल के साथ पहाड़ी के उस पार टूट पड़ो, सेनानायक !

आज्ञा पाते ही सेनानायक गुप्त आक्रमण के लिए बढ़े। पर चाणक्य ने रोकते हुए कहा—शतावरी योग से बने हुए धुएँ का प्रयोग करो। बिजली से जले हुए वृक्ष से जो अणुशक्ति तैयार की है, यदि आवश्यकता हो तो घिर जाने पर उसका प्रयोग करना। लेकिन किसी भी प्रकार राक्षस की मृत्यु न होने पाये। वे जीवित ही बन्दी होने चाहियें, इसलिए पहले उस मादक धूम्र की गोलियाँ जलाकर पहाड़ी के उस ओर डालो जिससे जागे हुए सो जाते हैं। बढ़ो आगे बढ़ो !

सुनते ही सेनानायक दलसहित त्वरित गति से पहाड़ी के उस ओर आक्रमण के लिए चल दिये और चन्द्रगुप्त आदि के साथ चाणक्य अपने सुरक्षित स्थान पर वापिस आ गये।

निवास पर आये चाणक्य को अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि सेनानायक निराश मुद्रा में उनके सामने आ कहने लगा—सब व्यर्थ हो गया महात्मा ! शत्रु को किसी तरह हमारे रहस्य का पता चल गया। पहाड़ी के उस पार तो अब चिड़िया का बच्चा भी नहीं है।

**चाणक्य**—कुछ पता चला कहाँ चले गये ?

**सेनानायक**—कुछ नहीं।

**चाणक्य**—उस ओर कुछ चिह्न दिखाई देते हैं ?

**नायक**—पैरों के चिह्न हैं, पर वे किसी एक दिशा में नहीं, चारों दिशाओं में दिखाई देते हैं।

**चाणक्य**—तुम्हारी बुद्धि धन्य है राक्षस ! पर चाणक्य भ्रम में नहीं पड़ सकता। तुम जाओ सेनानायक ! कण-कण पर दृष्टि रखो। पहाड़ी के उस ओर से सेना अभी न हटाना, हो सकता है अवसर पाकर कोई नया फूल खिले।

अभिवादन कर सेनानायक चले गये। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की

ओर देखते हुए कहा—कल प्रातः तुमको मगध के गौरवशाली राजसिंहासन पर आसीन होना है। उसकी रक्षा कर सकोगे? हृदय, बुद्धि और भुजाओं में बल है?

**चन्द्रगुप्त**—गुरुदेव के चरणों के प्रताप से यह सेवक भूमण्डल का भार भी अपने लिए हल्का समझता है।

**चाणक्य**—राजा को साँपों से खेलना पड़ता है। राजधर्म बड़ा कठोर धर्म है। वही राजा जीवन में सुख और मृत्योपरान्त यश पाता है जो राजर्षि रहकर देश की सेवा करता है, पर उसके पास गिद्ध की दृष्टि, सिंहों का साहस, इन्द्रियों पर अनुशासन, रहस्य छिपाने की क्षमता जैसे गुणों का सुरक्षित रहना आवश्यक है। राजा को वृद्धों के सम्पर्क से बुद्धि और गुप्तचरों से आँखें लेनी चाहिएँ। आज रात को तुम सोओगे नहीं। प्रातः होने में थोड़ी ही देर है, तब तक तुम राज-सिंहासन पर बैठने से पहले मेरे अर्थशास्त्र से “राजव्यवहार अध्याय” का अध्ययन कर जाओ।

**चन्द्रगुप्त**—मुझे कण्ठस्थ है गुरुदेव! फिर भी आपकी आज्ञानुसार मैं उसकी पुनरावृत्ति किये लेता हूँ।

चन्द्रगुप्त कौटलीय अर्थशास्त्र के पृष्ठ पढ़ने लगे और चाणक्य दीवार से कमर लगा बैठे-बैठे विचारों के तार सुलझाते हुए आप ही आप अन्तरगर्भ से बोले—“राज्य प्राप्त करना इतना कठिन नहीं, जितना कठिन राज्य सुरक्षित रखना है। राज-रस मधु नहीं, विषपान है। वही राजा राज कर सकता है जो विष पिये और अमृत उगलता रहे।”

सोचते-सोचते चाणक्य आप ही आप मुस्करा उठे और फिर तुरन्त उनकी आँखों से दो आँसू निकल पड़े। हर्ष और शोक के इस समन्वय को रात्रि के घूँघट में छिपी हुई प्रकृति ने पहचानते हुए मूक भाषा में कहा—“जो जितना बड़ा होता है उसके हृदय की पीड़ा उतनी ही बड़ी होती है। जो जितना महान् होता है वह उतना ही अपमान का पात्र बनता है। किसी का सुख और कीर्ति संसार की द्वेषाग्नि से फूटकर निकलती है। पर संसार में मनुष्य को लौह पुरुष बनकर ही जीना चाहिये। राजनीतिज्ञ, महात्मा और जन-सेवक को अपना सर्वस्व औरों के लिए समर्पण करना पड़ता है। प्रेम, भोग और संसार के सुखों से नाता तोड़ देना चाहिए। चाणक्य! तू स्वयम् को सब में देख। फूलों की सुरभि में तेरी सुरभि है। तेरा इतिहास भविष्य के नीतिकारों के लिए



मार्ग है। देखता नहीं, संसार को ज्योति देने वाला सूर्य भी तो जलता है, संसार को शीतलताप्रदान करने वाले चन्द्रमा के हृदय में भी आग होती है। अपने सुख की चिन्ता मनुष्य की दुर्बलता है। सवेरे के उजाले में अँधेरे को देखने वाले सदा सोये रहते हैं। देख, राक्षस नई शक्ति के साथ तुझे हड़पने चला आ रहा है।

“नहीं, नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। चाणक्य के शव पर ही राक्षस की विजय हो सकती है। चाणक्य शत्रु को मारने से पहले कभी नहीं मरता।”

सोचते-सोचते रात बीत गई और दिन निकल आया। सूर्य अभी आकाश से मुँह निकाल ही रहे थे कि चाणक्य ने शार्ङ्गरव को पास बुलाकर कहा—चन्द्रगुप्त आज से मगध के सम्राट् हैं, पर सिंहासनारूढ़ होने का उत्सव नहीं मनाया जायेगा। राज्याभिषेक की घोषणा मात्र ही होगी।

**शार्ङ्गरव**—क्या बिना उत्सव के नागरिक चन्द्रगुप्त को अपना सम्राट् स्वीकार कर लेंगे ?

**चाणक्य**—जनता में ढिंढोरा पिटवा दिया जायेगा कि सम्राट् चन्द्रगुप्त अस्वस्थ हैं, इसलिए अभिषेकोत्सव के लिए आगामी तिथि निश्चित की जायेगी। सिंहासनारूढ़ आज इसलिए किया गया कि ज्योतिष शास्त्र के अनुसार यह तिथि सर्वश्रेष्ठ है। जिस दिन सम्राट् के राज्याभिषेकोपलक्ष में उत्सव होगा उस दिन राज्य की ओर से प्रत्येक को वस्त्र, द्रव्य आदि बाँटे जायेंगे। शार्ङ्गरव ! इससे नागरिक लोग लालच के वशीभूत होकर शान्त रहेंगे और चन्द्रगुप्त की जय मनाने में अपना सौभाग्य समझेंगे।

**शार्ङ्गरव**—आपकी दूरदर्शिता से तो सूर्य की किरणें भी चौंक जाती हैं। पर आचार्य ! गुप्तचरों से यह पता चला है कि नागरिक लोग विद्रोह का झण्डा उठाना चाहते हैं और राक्षस के संरक्षण में कितने ही छोटे-छोटे राजाओं के मिलने की भी सूचना मिली है। अवसर पाते ही ये सब एक भारी तूफान के रूप में टूटना चाहते हैं।

**चाणक्य**—चिन्ता न करो, चाणक्य की आँखों से कुछ भी छिपा नहीं है। नागरिकों के विद्रोह का कारण भी राक्षस की बुद्धि ही है। जनता को भड़काने वाले भेदिये नागरिकों में मिल गये हैं। छोटे-छोटे राजाओं की बात राक्षस से बिगाड़ी जा सकती है और थोड़े समय में

राक्षस के चुने हुए सेनापतियों को मारने का उपाय भी मैंने सोच लिया है।

**शार्ङ्गरव**—क्या गुरुदेव !

**चाणक्य**—व्यापारियों, नागरिकों, ग्वालों तथा मदिरा बेचने वालों के रूप में अपने गुप्तचर चारों ओर छोड़ने होंगे। छोटे-छोटे राज्यों में भी अपने गुप्तचर छोड़ दो।

**शार्ङ्गरव**—इससे क्या होगा गुरुदेव !

**चाणक्य**—बिना युद्ध के विजय होगी। हमारा बाल भी बाँका न होगा और शत्रु मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। छोटे-छोटे राज्यों में जो गुप्तचर होंगे वे उन राज्यों के विश्वासपात्र बनकर राजाओं के मन में यह बात बैठा देंगे कि राक्षस स्वार्थ के कारण तुम्हें अपने साथ मरवाना चाहता है। वह यदि हार गया तो तुम्हारी मृत्यु है ही, यदि जीत गया तो तुम्हें इस डर से अपने अधीन कर लेगा कि कहीं ये किसी दिन विद्रोह न कर बैठें। दूसरी ओर चाणक्य और चन्द्रगुप्त बड़े धर्मात्मा और वीर हैं, उनके साथ मिलने से तुम्हारा हर प्रकार से कल्याण है। इससे वे डर जायेंगे और हमारे साथ मिलने को आतुर हो उठेंगे।

**शार्ङ्गरव**—व्यापारियों, नागरिकों, ग्वालों और मदिरा वालों को क्या करना होगा ?

**चाणक्य**—व्यापारियों के साथ धन देकर सुन्दर-सुन्दर नवयुवती वेश्याओं को शत्रु की सेना के आस-पास भेजो। वे अपने रूपजाल से ऐसा नृत्य करें कि राक्षस के सेनापति भी उन पर लट्टू हो जाएँ। जब इस प्रकार उन कामिनियों का जादू राक्षस के प्रधान साथियों पर चल जाये तब वे नवयुवतियाँ किसी प्रकार प्यार ही प्यार में हल्का विष खिलाकर उन सब को मार डालें। व्यापारी आपस में झगड़ा करके खाने की वस्तुओं को स्पर्धा से सस्ती करेंगे, इससे शत्रु के सैनिक खाने की वस्तुओं को खूब खरीदेंगे। पर वस्तुओं में विष मिला होगा, जिससे वे सैनिक मारे जायेंगे। इसी प्रकार मदिरा वाले मदिरा में विष मिलाकर शत्रु की सेना को पिला दें। ग्वाले दूध में विष मिलाकर शत्रु की सेना को पिला दें। घास-दाने वाले उनमें विष मिलाकर शत्रु के घोड़ों तथा हाथियों को खिला दें जिससे वे सब मर जायें तथा साथ ही साथ अपने गुप्तचर नागरिक 'महामारी फैलती जा रही है' इस प्रकार का शोर मचा दें।



अच्छा, अब सिंहासनारूढ़ का समय हो गया है। पर सिंहासन पर चन्द्रगुप्त की पादुकाएँ रखकर कहना कि चन्द्रगुप्त अस्वस्थ हैं। हो सकता है कि सिंहासन के समीप ही चन्द्रगुप्त की मृत्यु का कोई षड्यन्त्र हो।

X

X

X

सिंहासनारूढ़ होने का समय हो गया। राजप्रासाद साधारण ढंग से सजा दिया गया। प्रधान राजकर्मचारी अपने-अपने स्थान पर सतर्कता से विराज गये। मुख्य द्वार पर कठोर पहरा लग गया। सबकी आँखें चन्द्रगुप्त और चाणक्य के आगमन की प्रतीक्षा में दरवाजे पर जा लगीं।

गर्भ-कक्ष में चाणक्य और चन्द्रगुप्त कुछ अत्यन्त आवश्यक अधिकारियों के मध्य व्यस्त थे। अधिकारियों को आदेश देकर विदा करते हुए चाणक्य ने शार्ङ्गरव से कहा—‘यदि सिंहासनारोहण के समय बादल दिखाई दें तो तुरन्त मृत्यु-भस्म का प्रयोग करना और अपने सब साथी सुरक्षित रहने के लिए जीवन-औषधि का प्रयोग पूर्व ही कर लें।

अब तुम जाओ! विधिपूर्वक सिंहासनासीन की रीति सम्पन्न करो। कहना, ‘आचार्य चाणक्य कुछ देर बाद पधरेंगे, उन्होंने आज्ञा दी है कि मैं राज्याभिषेक कराऊँ।’

आदेश पाकर शार्ङ्गरव चले गये। राजप्रासाद में उनके पहुँचते ही हर्षध्वनि होने लगी। चाणक्य और चन्द्रगुप्त के जयनाद से दिशाएँ गूँज उठीं।

विधिपूर्वक सिंहासनारोहण की रीति आरम्भ होते ही पण्डितों ने वेद-मन्त्रों का उच्चारण किया, अग्नि में आहुतियाँ डाली जाने लगीं। हर्ष और अर्चना का यह उत्सव हो ही रहा था कि यज्ञ-कुंडों में से उड़ता हुआ धुआँ चारों ओर फैला। फैलते-फैलते वह धुआँ इतना तमावृत हो गया कि हाथ को हाथ न दिखाई दिया। शार्ङ्गरव ने यह घोर विनाशक अन्धकार देखते ही अपनी आँखों में एक विशेष प्रकार का अंजन आँजा और पूजा-पात्र में से मुट्ठी भर-भर कर भस्म उड़ाई।

भस्म के उड़ते ही अन्धकार फट गया और शार्ङ्गरव ने कठोरता से आज्ञा दी कि इन पण्डितों को बन्दी बना लो।

□□

दुःख-सुख हार-जीत की लहरों पर तैरते हैं। सन्तरण लहरों से खेलता है। कहीं भँवर आता है तो तैराक डूबने लगता है। किसी को वीचियाँ अतल में विलीन कर देती हैं और कोई वीचियों को चीरता हुआ तट तक पहुँच जाता है। दुःख के बाद सुख, सुख के बाद दुःख आते-जाते हैं; पर वे जीवनहीन होते हैं जो पराजय से साहस छोड़ बैठते हैं। लड़ाइयाँ सिर्फ शस्त्रों से नहीं, शास्त्रों और साहस के नेतृत्व से जीती जाती हैं।

एक गुप्त गुहा में राक्षस साथियों के साथ बातों में डूबे हुए थे। कभी वे बातें करते-करते चिन्ता से अपना माथा ठोंकने लगते थे और कभी सोचते-सोचते अतीव गम्भीर हो जाते थे। बातें किसी अत्यन्त गूढ़ विषय पर हो रही थीं। विचार-विमर्श हो ही रहा था कि एक तिलकधारी पण्डित ने प्रवेश किया।

अभिवादन कर पण्डित ने विनम्रता से कहा—विषाक्त धूम्र द्वारा अभिषेक क्रिया भंग करने वाले हमारे हितैषी पण्डित चाणक्य के परम सिद्ध शिष्य शार्ङ्गरव ने बन्दी बना लिए। चन्द्रगुप्त मगध के अधिपति घोषित कर दिये गये।

**राक्षस**—जान पड़ता है दैव ही प्रतिकूल है, तभी तो सारी सिद्ध क्रियाएँ असफल हो रही हैं। और नागरिकों की क्या दशा है विराध!

**विराध**—नागरिकों की भक्ति अभी आप में है, पर चाणक्य युक्तियों से कुछ ऐसा प्रचार कर रहे हैं जिससे धीरे-धीरे नागरिकों के हृदय में आपके लिए घृणा के भाव भरते जा रहे हैं।

**राक्षस**—इस प्रचार के प्रतिकारार्थ तुम्हारे गुप्तचरों की व्यवस्था तो ठीक है न ?

**विराध**—यद्यपि चाणक्य ने कण-कण में गुप्तचर छोड़े हुए हैं, फिर भी वेश बदलकर हमारे गुप्तचर जहाँ-तहाँ काम कर रहे हैं।

राक्षस ने एक लम्बा श्वास लेकर माथे पर उँगली रखी और फिर आवेश में कहा—चाहे कितनी भी चतुरता से बचे, पर मेरी आग चाणक्य को जलाये बिना नहीं रह सकती। मैं अपने स्वामी नन्द की हत्या का



बदला अवश्य लूँगा, उनके साथियों में ऐसा भेद-बीज बोऊँगा कि वह ब्राह्मण आप से आप मेरे अधिकार में आ जायेगा। साथियो ! कुलूताधिपति, चित्रवर्मा, सिन्धुराज, सिन्धसेन और कश्मीर नरेश पुष्कर नयन हमारे साथ मिलकर कुसुमपुर पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्तुत हैं। और भी कई राजाओं से मैंने सन्धि कर ली है। पर आक्रमण करने से पूर्व हम चाणक्य और चन्द्रगुप्त से उनके साथियों को अलग कर देना चाहते हैं। इसलिए हम महाराज पुरु के पास अपने गुप्तचरों से सन्देश भेजना चाहते हैं कि चाणक्य सारे संसार पर एकमात्र राज्य करने की आकांक्षा से अपनी शक्ति बढ़ाता जा रहा है। हमें अत्यन्त विश्वस्त गुप्तचरों से पता चला है कि वह अवसर पाकर आपको जीते हुए राज्यों के भाग देने के बदले उलटे आप ही के राज्य पर अधिकार कर लेगा। अतः आप हमारे साथ मिलकर राज्यलोलुप चाणक्य और चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई करें। जय के बाद हम आपके पुत्र मलय को मगध का सम्राट् मान लेंगे।

**जीवधर्म**—यह आपने अच्छी युक्ति सोची। इस प्रकार लोभवश सारा पंचनद हमारे साथ हो जायेगा और हमारी पराजय जय में बदल जायेगी।

**राक्षस**—पहाड़ी राजाओं और मालव-नरेश से भी हमको सन्धि करनी होगी, जिससे जय के बाद कोई शक्तिशाली राजा हम से ही युद्ध के लिए तैयार हो जाये या पंचनद की नीयत में कोई भावना जाग उठे तो मालव और पंचनद को आपस में भिड़ा कर हम सुख की बाँसुरी बजा सकेंगे।

**विराध**—सत्य कहते हैं, स्वामी !

**राक्षस**—आज ही अपना दूत वेश बदलकर महाराज पुरु के पास भेजो !

विराध ने जीवधर्म की ओर देखते हुए कहा—यह कार्य तुमसे अधिक कुशलता से कोई दूसरा नहीं कर सकता।

**जीवधर्म**—मैं इसी क्षण जाने को प्रस्तुत हूँ।

कहते हुए जीवधर्म ने गमन के लिए पग उठाया और राक्षस ने भरे कंठ से कहा—“दैव की लीला बड़ी विचित्र है ! मनुष्य सोचता कुछ है पर परिणाम कुछ और निकलता है। न जाने विधाता की कैसी विडम्बना है ! सच है जिसे ईश्वर बचाता है, उसे मृत्यु भी नहीं मार

सकती। तभी तो चन्द्रगुप्त को मारने के सारे षड्यन्त्र असफल होते जा रहे हैं। सुरंग के द्वारा चन्द्रगुप्त की मृत्यु के लिए जो षड्यन्त्र रचा था, उसमें उलटे हमारे ही साथी मारे गये। विष मिले भोजन का परिणाम भी प्रतिकूल ही हुआ। हमारे चतुर रसोइये ही उससे उलटे मारे गये। रात्रि में आक्रमण के लिए जो गुप्त राह निकाली थी, वह भी छिपी न रह सकी। पता नहीं कैसे हमारे गोप्य से गोप्य रहस्य का भी चाणक्य को पता चल जाता है। न जाने उस ब्राह्मण को कौन-सी भूत-विद्या सिद्ध है कि हमारे अन्तर की बातें भी वह जान लेता है।”

‘पर चाहे चाणक्य कितना भी चतुर हो, मेरी चोटों से बच नहीं सकता। मैं भेद-नीति से उसके ही मित्रों को उसका शत्रु बना दूँगा। युद्ध-नीति का ऐसा गूढ़ प्रयोग करूँगा कि शत्रु की धूलि का भी पता न मिलेगा। और तो और, मैं चन्द्रगुप्त और चाणक्य में भी लड़ाई के मन्त्र फूंक दूँगा यदि किसी तरह भी शत्रु पर जय नहीं हुई तो मैं अपना शस्त्र उठाकर स्वयम् चन्द्रगुप्त और चाणक्य के सिर काट दूँगा।’

आवेश में खड़े होकर—कोई है ? हमारा वध-शस्त्र लाओ !

सुनते ही सेवक ने उपस्थित होकर कहा—वह तो कुसुमपुर में ही रह गया।

**राक्षस**—ओह ! भावावेश में मनुष्य कितनी शीघ्र दौड़ पड़ता है, पर तूफान के वेग से जिस प्रकार बड़े से बड़ा वृक्ष एक ही झोंके में गिर पड़ता है, उसी प्रकार मनुष्य की उड़ान भी गिर पड़ती है। सेवक ! भागुरायण से कहो कि राक्षस ने तुम्हें तुरन्त बुलाया है।

सेवक चला गया और भागुरायण अभिवादन करते हुए पधारे। राक्षस ने उन्हें अपने पास बैठाते हुए कहा—तुमको रूपवती विषकन्या के साथ कुसुमपुर जाना है। यह विषकन्या हाव-भाव, संगीत और नृत्यकला में अनुपम है। कुसुमपुर में आगामी पूर्णिमा पर कौमुदी महोत्सव के साथ ही साथ चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेकोपलक्ष में विराट उत्सव होगा, जिसमें राज्य के मुख्य-मुख्य नागरिकों एवं सम्बन्धित रजवाड़ों की ओर से सम्राट् चन्द्रगुप्त को भेंट दी जायेंगी। उसी अवसर पर तुम एक सम्पन्न पर्यटक के नाते वहाँ चन्द्रगुप्त को यह परम सुन्दरी विषकन्या भेंट करना। तुम अभी से कुसुमपुर जाकर अपनी ऐसी प्रसिद्धि फैलाओ कि चारों ओर तुम्हारी धूम मच जाये। भोज आदि की व्यवस्था कर नगर के मुख्य-मुख्य व्यक्तियों पर अपना प्रभाव जमा लो जिससे कि



अनुकूल अवसर पर राजसभा में तुम सम्मान से विषकन्या की कलाओं का प्रदर्शन कर चन्द्रगुप्त को उसकी मृत्यु भेंट कर सको।

**भागुरायण**—जैसा आपने कहा वैसा ही होगा।

**राक्षस**—और देखो, कुसुमपुर में हमारा परम हितैषी मित्र चन्दनदास रहता है। तुम पहले जाकर उसी के यहाँ निवास करना। तुम्हें जितने धन की आवश्यकता होगी वहाँ सब मिल जायेगा।

**भागुरायण**—तो फिर मैं आज ही चला जाऊँ न ?

**राक्षस**—आज ही नहीं अभी।

X

X

X

विषकन्या को साथ लेकर जैसे ही भागुरायण ने प्रस्थान के लिए पैर उठाया, वैसे ही विराध ने प्रवेश करते हुए कहा—“कहाँ का गमन हो रहा है, भागुरायण जी !”

**भागुरायण**—स्वामी की आज्ञानुसार कुसुमपुर जा रहा हूँ।

**विराध**—अब आपको कष्ट न करना पड़ेगा। विषकन्या को लेकर मैं कुसुमपुर जा रहा हूँ, आप यहाँ स्वामी के ही पास रहिये। परम श्रद्धेय स्वामी राक्षस ने अपनी आज्ञा बदल कर आपको यहीं ठहरने की और मुझे कुसुमपुर जाने की आज्ञा दी है।

**भागुरायण**—यह तो बहुत ही अच्छा हुआ। बाल ब्रह्मचारी होने के कारण नवयुवती के साथ जाना मैं वैसे ही पाप मानता हूँ। फिर विषकन्या के साथ जाना तो साक्षात् मृत्यु के संग जाना है। अच्छा हुआ आपने जो इस घोर मृत्यु से मुझे बचा लिया।

प्रत्यक्ष में ऐसा कहकर मन ही मन में भागुरायण सोचने लगे—“विराध बड़े विकट व्यक्ति हैं। जान पड़ता है उन्हें मुझ पर सन्देह होने लगा है। अब बड़ी विचित्र परिस्थिति आ गई है। विषकन्या चन्द्रगुप्त की मौत बनकर कुसुमपुर जा रही है। यदि चन्द्रगुप्त से इसका स्पर्श हो गया तो अवश्य ही उसकी मृत्यु हो जायेगी। अब क्या करूँ, मैं तो बत्तीस दाँतों में जीभ की तरह बन्दी हूँ। क्या हो, कैसे गुरुदेव तक यह समाचार भेजूँ ?”

भागुरायण सोच में डूब गये और विराध ने विषकन्या के साथ कुसुमपुर की राह पकड़ी। बहुमूल्य वेशभूषा और अनोखे ठाठ-बाट के साथ चातुर्य और रूप ने कुसुमपुर में अपना आसन जमाया। कुछ ही

दिनों में विराध ने सोमदेव के नाम से स्वयं को विख्यात कर चारों ओर अपनी धाक जमा ली। अब उनको प्रत्येक उत्सव के लिए निमन्त्रण आने लगे। नगर के बड़े-बड़े सेठों के यहाँ उनका सम्मान होने लगा। चन्दनदास जैसे नगर सेठ स्वयं उनका परिचय कराते और उनकी प्रशंसा करते—“आप हमारे कश्मीर के एक मित्र हैं। सारे संसार का आपने भ्रमण किया है। कला और सौन्दर्य के आप पारखी हैं। आप एक बेजोड़ सौदागर हैं। एक से एक हीरा आपके हाथों में आता है। रत्नों के भण्डार हैं आप!”

चारों ओर सोमदेव की चर्चा के गीत गाये जाने लगे। सोमदेव जब कभी भी कहीं जाते तो सज्जित घोड़ागाड़ी में उनकी सवारी निकलती, दो-चार सवार उनके साथ चलते।

इस अनोखे ठाठ-बाट में अन्ततोगत्वा वह उत्सव का दिन भी आया जिस दिन की नागरिक एवं दूर-दूर के राजा बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। यही वह दिन है जिस दिन चन्द्रगुप्त की सवारी निकलनी है; और आज ही तो है कौमुदी महोत्सव! शुभ्र चाँदनी में खिले हुए चमेली के श्वेत फूलों की सुगन्ध से सारा कुसुमपुर सुगन्धित है। सफेद शीशों से फूटकर निकलता हुआ शुभ्र प्रकाश पूर्णिमा की चाँदनी से मिलकर पेड़ों से झाँकता हुआ ऐसा लगता है मानो हरे-हरे पत्तों में अगणित दीपक जगमगा रहे हों।

नागरिकों ने आज नये-नये वस्त्र पहन रखे हैं। स्वर्णाभूषण और सुगन्धित लेपों से सोने में सुगन्ध फूट रही है। नागरिकों ने आज अनोखा शृंगार किया है। हीरे और जवाहरात में जगमगाती हुई नवयुवतियाँ मधुर मुस्कानों में ऐसी मोहक लग रही हैं जैसे धरती पर अगणित चन्द्रमा उतर आये हों। देवगण आज असमंजस में हैं। उन्हें बार-बार भ्रम होता है कि स्वर्ग आकाश में है या धरती पर, चाँद-तारे नभ में निकलते हैं या पृथ्वी पर निवास करते हैं।

इस अद्भुत रमणीयता में रमण करते हुए नागरिकगण एवं दूर-दूर से पधारे हुए दर्शक उस उत्सव-मण्डप में शामिल हुए जिसकी शोभा आज इन्द्र की सभा से भी अनूठी है। सलमे-सितारे और सोने के तारों से जड़े बड़े-बड़े शामियाने, चारों ओर जगमगाते हुए ज्योतिस्तम्भ, दूर-दूर के कलाकारों द्वारा निर्मित बड़े-बड़े द्वार, दर्शकों और अधिकारियों के बैठने के लिए पृथक्-पृथक् सम्मानित आसन, दूर-



दूर के देशों से आये हुए गलीचों से गर्व करता हुआ गरिमाशाली मंच और अवर्णनीय न जाने क्या-क्या समारोह-मण्डप की छटा बढ़ा रहे थे।

दर्शक तथा सभी आमन्त्रित महानुभाव अपने-अपने स्थान पर आ विराजे। अधिवेशन शुरू होने में अभी थोड़ी देर शेष है। सब की आँखें चाणक्य और चन्द्रगुप्त की प्रतीक्षा में पृष्ठद्वार की ओर टिकी हुई हैं।

कुछ ही पलों बाद जय-ध्वनि गूँज उठी। साधारण वस्त्र एवं जनेऊधारी आचार्य चाणक्य के साथ चन्द्रगुप्त पधारे! नर-नारियों एवं अभ्यागतों ने पुष्प-वर्षा से चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त का स्वागत किया। चाणक्य ने पैनी दृष्टि से एक बार चारों ओर देखा और चन्द्रगुप्त के बराबर में बिछी हुई चौकी पर गम्भीरता से बैठ गये।

आचार्य के बैठने के बाद चन्द्रगुप्त बैठे। उनके बैठते ही सैनिक बाजा बजना बन्द हो गया और वीणा पर मंगल गीत आरम्भ हुआ। गीत की ऐसी तान छिड़ी कि प्रकृति के साथ-साथ जड़ भी झूमने लगे। तदनन्तर सबने ध्वजा-वन्दना की और राष्ट्र-गीत गाया।

राष्ट्र-गीत समाप्त होते ही जयघोष के मध्य आचार्य चाणक्य उठे और नम्रता से बोले—

“आगन्तुक अभ्यागतों एवं अन्य राज्यों से पधारे हुए प्रतिष्ठित राजावृन्द! आज का महत्त्वपूर्ण दिवस इतिहास में सदा अमर रहेगा, क्योंकि आज आपने देश की बागडोर एक ऐसे होनहार वीर के हाथों में सौंपी है जो गौरवशाली देश का एक गौरवशाली युवक है। मुझे विश्वास है कि चन्द्रगुप्त भारत के लिए अनुपम सम्राट् सिद्ध होंगे। उनके राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं होंगे। हम मानव हैं, मानवता हमारा धर्म है। हम हर देश के साथ मानवता का व्यवहार रखेंगे। पर यदि किसी देश ने हमसे दुर्व्यवहार किया तो हमारे पंजे शेर के पंजे होंगे।

अब आपके सामने हमारे पड़ोसी राजा पर्वतक देश के हित में कुछ कहेंगे।”

करतल-ध्वनि के मध्य चाणक्य बैठ गये और पर्वतक उठे। उठते ही उन्होंने कहा—“किसकी शक्ति है जो हमारे सामने ठहर सके! हमारी भुजाओं के बल ने ही महानन्द जैसे पराक्रमी किन्तु पापी राजा

को हार दी है। निस्सन्देह आचार्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त बुद्धिमान् एवं वीर हैं। उन्होंने आधा राज्य देने के नाते हमसे सन्धि करके एक बड़े राज्य की स्थापना की है। छोटे-छोटे राज्य आज एक झण्डे के नीचे आ गये हैं। अब मगध से उधर के प्रदेश चन्द्रगुप्त के राज्य में रहेंगे और मगध से इधर के प्रदेशों पर हम राज करेंगे। इस प्रकार भारत दो बड़े भागों में रहेगा और हमारी जय अक्षय होगी।”

पर्वतक गर्व से वक्ष उभारे गर्वीले वाक्यों की वर्षा करते जा रहे थे और चाणक्य मन ही मन में गम्भीर चिन्तन कर रहे थे। जब राजा अपना भाषण समाप्त कर चुके तो जयघोष के बाद चन्द्रगुप्त को भेंट देने का कार्यक्रम आरम्भ हुआ।

अपनी-अपनी श्रद्धा और शक्ति के अनुसार भेंट दी जाने लगीं। हीरे, मोती और रत्नों के आभूषण, हाथी, घोड़े, गाय आदि तरह-तरह के पदार्थों से भेंट-स्थल भर गया।

सब अपनी-अपनी भेंट देते जा रहे थे और भेंट-अधिकारी भेंटदाताओं के नामों की घोषणा कर भेंट स्वीकार कर रहे थे। पर जब भेंट-दाता सोमदेव का नाम उच्चारित गया और उनकी भेंट सामने आई तो सारी सभा स्तब्ध रह गई। विश्वमोहिनी रूपवती विषकन्या को देखते ही सब की आँखें निर्निमेष हो गईं। जैसे ही मखमली डोली से झिलमिलाती हुई चपला बाहर निकली वैसे ही सब एकटक देखने लगे। समारोह में सुन्दरी ऐसी लग रही थी मानो मेघों में बिजली चमक रही हो।

सारी उपस्थिति चमत्कृत हो उठी, रूप के चमत्कार ने मानो सब पर जादू कर दिया। किन्तु चाणक्य तनिक भी चमत्कृत नहीं हुए। उस अद्भुत छटा के चमत्कार में वे मुस्कराते हुए अपने आसन से उठे और तुरन्त ही गम्भीर होकर बोले—“हम भेंटदाता को सामने चाहते हैं।”

उत्तर में सोमदेव सामने आ गये। उन्हें देखते ही चाणक्य एक हल्की मुस्कराहट से बोले—मेनका और रति से भी सुन्दर ये कौन हैं?

**सोमदेव**—यह सिन्धु पार की एक नर्तकी कुमारी है। इसके नृत्य पर पत्ता-पत्ता झूम उठता है। जब यह गाती है तो विपरीत ऋतु में भी फूल खिल उठते हैं, जब यह हँसती है तो दूर-दूर तक चाँदनी बिखर जाती है, यह जिस राह पर चलती है वह रेशमी हो जाती है।

सुनते-सुनते चाणक्य को एक जोर की हँसी आ गई और हँसते-



हँसते ही उन्होंने कहा—कवियों की भाषा को भी मात करने वाली तुम्हारी वाक्-पटुता पर मुग्ध हुए। अब कहिये, तुम्हें यह कैसे मिली ?

सोमदेव कुछ सटपटाये पर तुरन्त ही सँभल कर बोले—जी, मैं इसे इसकी माता से असंख्य रत्नों के बदल क्रय कर लाया। सम्राट् चन्द्रगुप्त के लिए लाखों रत्नों की अपेक्षा मैंने यह भेंट अनमोल समझी।

**चाणक्य**—हम तुम्हारी भेंट से प्रसन्न हुए। पर क्या तुमने क्रय करते समय इसकी माता से इसके अवगुण भी पूछे थे ?

**सोमदेव**—ऐसी आकर्षक निधि में क्या अवगुणों की कल्पना हो सकती है, आचार्य !

**चाणक्य**—आश्चर्य है कि एक चतुर खरीदार ने किसलिए यह सच्ची कल्पना नहीं की ! मणि वाले सर्प में भी विष होता है। नारी कितनी भी सुन्दर हो, उसके किसी न किसी भाग में गरल भी घुला रहता है।

चाणक्य की भाषा सुनते-सुनते सोमदेव के मुख की रेखाएँ बदलने लगीं किन्तु चाणक्य के मुख की एक भी रेखा न बदली; बल्कि वे उसी आकृति से अपने मुख की रेखाएँ बदलते हुए बोले—“वस्तुतः तुम्हारी यह भेंट आज की आई हुई सब भेंटों से सुन्दर है। हम इसे सहर्ष स्वीकार करते हैं।”

“साथ ही आई हुई भेंटों में से जो मूल्यवान भेंट है अपने सहयोगी राजा पर्वतक को भेंट करते हैं। हमारे सखे राजा पर्वतक ! सिन्धु पार की यह अद्भुत सुन्दरी भी हम तुम्हें भेंट में देते हैं।”

चाणक्य के मुख से अन्तिम वाक्य सुनते ही चन्द्रगुप्त के मुख पर उदासी की सन्ध्या दौड़ आई। पर जैसे ही उन्होंने चाणक्य के विशाल नेत्रों पर अपनी दृष्टि डाली, वैसे ही वे ऐसे दुबक कर बैठ गये जैसे बाज को देखकर लवा पक्षी छिप जाता है।

दूसरी ओर राजा पर्वतक ने गर्व से अपना वक्ष उभारा और प्रसन्नता से बोले—ऐसी सुन्दर नर्तकी की वस्तुतः हमारे महल में कमी भी थी। आचार्य चाणक्य की इस भेंट को पाकर हम अत्यन्त हर्षित हैं।

**चाणक्य**—हम तो यही चाहते हैं कि आप सदा फलते-फूलते रहें।

अधिकारियों की ओर देखते हुए—इस अनुपम छवि के भेंटकर्ता

सौदागर सोमदेव से हमें विदेशी वस्तुओं के सम्बन्ध में कुछ बातें करनी हैं, इसलिए ये दो दिन तक हमारे अतिथि रहेंगे। इनको राजमहल में रखा जाये।

**सोमदेव**—आपके इस सम्मान के लिए आभारी हूँ, पर आपको इतना कष्ट देना मेरे लिए अशोभनीय है। जिस समय आपकी आज्ञा होगी, मैं आ जाऊँगा।

**चाणक्य**—आप जैसे पृथ्वी-प्रदीक्षक को अपना अतिथि रखकर हमें पुण्य-लाभ होगा। आप कल तक हमारे ही अतिथि रहेंगे।

कहते हुए सभा विसर्जन करके चाणक्य चन्द्रगुप्त को लेकर चल दिये और अधिकारियों के संरक्षण में सोमदेव को राजमहल में ला रखा गया।

इधर सोमदेव चिन्ता में थे, चन्द्रगुप्त पश्चात्ताप कर रहे थे और उधर पर्वतक के महल में रंगीनियाँ आ रही थीं। विश्वमोहिनी के नृत्य के प्रत्येक पग पर राजा का तार-तार झनझना उठता था। इसी तरह झूमते-झूमते रात गहराई से घिरने लगी। अँधेरे के मौन वातावरण में जब सब कुछ मौन हो जाता है तब मनुष्य के अन्तर-स्वर मचलते हैं। सब सो गये, पर पर्वतक का हृदय न सोया। कामना की उड़ान के साथ ही साथ उनके अन्तर में तूफान जाग उठा। हृदय का वेग जब बढ़ता है तो रोकने से नहीं रुकता।

एक प्रबल झंझा की तरह पर्वतक उठे और उस अद्वितीय सुन्दरी की शैया के पास जा पहुँचे। काँपते हुए हाथ से उन्होंने सुन्दरी का स्पर्श किया। एकदम बिजली दौड़ पड़ी। कामातिरेक में पागल होकर राजा स्वयं को भूल गये।

जब नयी सुबह आई तो मातमी गीत लेकर आई। सुन्दरी की शैया पर राजा पर्वतक मरे पड़े थे। हवा की तरह राजा साहब की मृत्यु की खबर सब ओर पहुँची। सूचना मिलते ही चाणक्य घटना-स्थल पर पहुँचे। मृतक के पास पहुँचते ही चाणक्य ने जलते हुए नेत्रों से उस अद्वितीय सुन्दरी की ओर देखते ही कहा—कैसे हुई मृत्यु?

**सुन्दरी**—मैं नहीं जानती।

**चाणक्य**—शव नीला पड़ गया है, अवश्य ही तुमने इनको विष दिया है।



**सुन्दरी**—नारी अमृत देती है, विष नहीं।

**चाणक्य**—तो क्या तुमने इनको अमृत दिया है ?

**सुन्दरी**—नारी कुछ नहीं देती, पुरुष जो कुछ चाहता है ले लेता है।

**चाणक्य**—तुम्हारी बातें पहेलियाँ-सी लग रही हैं। प्रहरियो ! इस सुन्दरी को बन्दी बना लिया जाये।

विश्वमोहिनी विषकन्या बन्दी बना ली गई और चाणक्य विशाल नेत्रों से चारों ओर देखते हुए तेजी से अपने गृह पर पधारे। इधर से चाणक्य अपने घर पहुँचे, उधर से चन्द्रगुप्त आये। आते ही घबराये हुए उन्होंने कहा—सूचना मिली है कि परमपूज्य शकटार सहसा मूर्छित हो गये हैं। आप तुरन्त चलिये।

कुछ उत्तर दिये बिना ही चाणक्य चन्द्रगुप्त के साथ चल दिये और बात की बात में वहाँ आ गये जहाँ शकटार अधखुले नेत्रों से अर्धमूर्च्छावस्था में पड़े थे।

सुवासिनी अपने पिता के माथे पर औषधि का लेप कर रही थी और कात्यायन श्रद्धेय शकटार के मुँह में जल डाल रहे थे।

चाणक्य कुछ चिन्तित-से शकटार की शैया के निकट बैठ गये। उन्होंने धीरे से अपनी उँगलियों से शकटार की पलकें खोलीं। आँखे खुलते ही शकटार ने निर्निमेष पुतलियों से चाणक्य की ओर देखा और फिर अपना काँपता हुआ हाथ उठाकर उनके सिर पर रखते हुए कहा—बेटा कौटिल्य अब मेरा अन्तिम समय है। मैं अब बहुत थोड़ी देर के लिए इस धरती का अतिथि हूँ। पर हृदय में असंख्य घाव होते हुए भी मैं इस समय प्रसन्नता से मर रहा हूँ। मेरे जीवन की एक ही इच्छा रही और वह यह कि मगध की अक्षय कीर्ति पर कोई आँच न आने पाये। मैं नन्द का शत्रु भी इसलिए बना कि वह मगध की स्वतन्त्रता के लिए अभिशाप बनने लगा था। मगध के लिए मैंने अपने परिवार का बलिदान दिया, पर मगध के लिए पाप कभी न बना। मैं सदैव भारतहितैषी रहा हूँ और उसी के लिए तिल-तिल जलता रहा। अब मैं शान्ति से विदा होना चाहता हूँ, लेकिन मरने से पहले बिल्कुल मुक्त होने की इच्छा है। इसलिए तुम मुझे वचन दो कि तुम मेरी आज्ञा और दूसरी प्रार्थना स्वीकार करोगे।

**चाणक्य**—ये कैसी बातें कर रहे हैं पूज्यवर ! चाणक्य का रोम-रोम आपका ऋणी है। वह एक बार अपनी आत्मा की आवाज चाहे न सुने, किन्तु आपकी आज्ञा से उसके कान बन्द नहीं रह सकते। मैं वचन देता हूँ कि आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

**शकटार**—मुझे तुम पर ऐसा ही विश्वास था। तो मेरी आज्ञा है कि मेरे मगध के महामात्य का आसन तुम सुशोभित करना !

**चाणक्य**—किन्तु मेरे जीवन का अन्तिम लक्ष्य राजधर्म ही तो नहीं है। मैं पारलौकिक सत्य को भी प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। अतः जैसे ही भारत एक सुदृढ़ सुरक्षित राज्य के रूप में हो जायेगा, वैसे ही मैं इस भौतिक संसार से नाता तोड़ आध्यात्मिक वन में जा तपूँगा।

**शकटार**—क्या इस समय तुम किसी तपस्वी से कम हो ? आयु में तुमसे चाहे जितने भी बड़े हों, पर तप में तो हम तुम्हारे समान सौ जन्मों में भी नहीं हो सकते। कभी-कभी तुम्हारे तेज को देखकर लगता है मानो दिव्य ज्योति-सम्भूत शक्ति अवतीर्ण हो गई।

**चाणक्य**—पर मुझे तो सन्तोष नहीं। मनुष्य जहाँ सन्तोषी हो जाता है, वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है।

**शकटार**—तो तुम्हारी इच्छा के लिए मैं इतना कर सकता हूँ कि जब तक भारत में सुख और शान्ति का एकसूत्र राज्य स्थापित न हो जाये तब तक तुम संन्यास नहीं ले सकते। और मेरी दूसरी प्रार्थना है कि सुवासिनी को तुम स्वीकार कर लो !

**चाणक्य**—आज्ञा शिरोधार्य है, पर प्रार्थना के सम्बन्ध में सोचने का अवसर चाहता हूँ।

उत्तर में शकटार ने तुतलाते हुए कहा—तुम...सोचते...रहना...पर...मैं...तो...अब...जा रहा...।

हिचकी आई और हंस उड़ गया।

सुवासिनी पर बिजली गिर पड़ी। उसकी आँखें उन झरनों की तरह बरसने लगीं जो लगातार झरते ही रहते हैं। उसने बिलखते हुए कहा—“इससे अधिक दुःख भी क्या कभी किसी पर पड़ा है। मेरी आँखों के सामने ही मेरे माता-पिता-भाई मर गये, लेकिन मुझे अभी तक मृत्यु नहीं आई। हे ईश्वर ! अब मैं भी दुनिया में नहीं रहना चाहती, मेरी चिता भी पिताजी के साथ ही साथ जलेगी।”



कहते-कहते सुवासिनी ने बिलखते हुए अपने बाल नोच डाले। उसने रोते-रोते ऐसा श्वास रोका मानो मृतक का श्वास रुका हो। वह आज अपनी दुनिया धधकती हुई देख रही थी।

चाणक्य ने धैर्य देते हुए कहा—“शान्त हो जाओ सुवास! यहाँ किसी का वश नहीं।” और कहते-कहते उन्होंने आँखें भरते हुए मगध के गौरवपूर्ण महामात्य शकटार के मुँह पर वह वस्त्र ढक दिया जो मनुष्य के मुख से फिर नहीं हटाया जाता। यही तो जीवन और मृत्यु का संगम है।

मृत्यु यह नहीं देखती कि कौन बड़ा है और कौन छोटा है। वह किसी पर दया नहीं करती। एक न एक दिन सभी का अन्त है। इतिहास के पृष्ठों पर जितनों की कहानी शेष है उनसे न जाने कितने अधिक मर कर ऐसे मर चुके कि नाम तक का भी पता नहीं। कितना सत्य है मृत्यु में! फिर भी जीवन को पराजित यह आज तक भी नहीं कर सकी। मृत्यु डसने का क्रम नहीं छोड़ती और संसार का सृजन-क्रम चलता ही रहता है। चाणक्य ने एक उँगली से अपना आँसू पोंछा और दूसरे हाथ से शकटार की अर्थी उठाई।

“मनुष्य का एक पैर श्मशान-यात्रा में रहता है और दूसरा संसार में। चलते-चलते जीवन निकट आता है या मृत्यु, कुछ नहीं कहा जा सकता। मृत्यु डरावनी विभीषिका आध्यात्मिक स्वप्न दिखाकर मनुष्य को छलना चाहती है। कमजोर मृत्यु के जाले में उलझ जाते हैं, लेकिन जिनका जीवन पर विश्वास है वे संसार में सौन्दर्य खोजते हुए अपने जीवन का सौन्दर्य विश्व पर समर्पण कर जाते हैं।”

“कठोर से कठोर दुःखों में भी जो आँसू नहीं लाता, वही महामानव है। उमड़ते हुए हृदय को जिसने समय के सत्य से रोक लिया, वह अजेय है। चाणक्य! जीवन एक हवनकुण्ड है, जिसमें धूप से भी अधिक तपन होती है। निराशा के गीत गा-गा कर रोने वाले जीवन का दाँव हार बैठते हैं। इस धरती में एक शकटार क्या करोड़ों शकटारों की धूलि इतिहार की तरह अमर है।”

जीवन का शास्त्र मन ही मन में पढ़ते हुए चाणक्य ने श्मशान-यात्रा समाप्त कर पुनः जीवन-पथ पर चरण रखा।

शकटार की मृत्यु पर राज्याधिकारियों के मध्य बोलते हुए चाणक्य ने कहा—“पूज्य शकटार जैसे देशभक्त और बुद्धिमान महामात्य इतिहास

में कम हुए हैं। भारतवर्ष के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन ही नहीं अपने परिवार तक का जीवन अर्पण कर दिया। हमारे हृदय में उनकी स्मृति देशभक्ति बनकर सदैव सजग रहेगी। उनका स्मारक ईट-पत्थरों के स्मारक से परे का स्मारक है। हम उनकी याद ईट-पत्थरों में जीवित न रखकर चेतन मनुष्यों में जीवित रखना चाहते हैं। जो भी भारत-हितैषी हैं वे चाहे हमसे प्रसन्न हों या नाराज, पर हम उनका आदर करते हैं, उनको अपने में मिलाना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि मगध के भूतपूर्व अमात्य और आज हमारे शत्रु बने हुए मान्यवर राक्षस भी हम में मिल जायें। इस प्रकार आपस की फूट मिटाकर जब हम सारे भारतवासी एक हो जायेंगे तो मानवता की सुगन्ध से सारा संसार महक उठेगा।”

“प्रिय चन्द्रगुप्त! अब हम विश्राम करेंगे।” कहते हुए चाणक्य चन्द्रगुप्त के कन्धे पर हाथ रख अपने कक्ष में आ गये। शार्ङ्गरव वहाँ पहले ही से विद्यमान थे। चाणक्य को देखते ही वे पूजा-भाव से खड़े हो गये और जब गुरु गोविन्द बैठ गये तो पैरों के पास चन्द्रगुप्त तथा शार्ङ्गरव भी विराजे।

बैठते ही चाणक्य ने कहा—प्रिय शार्ङ्गरव! देशभक्तों में श्रेष्ठ अपने पिता शकटार की मृत्यु से सुवासिनी बहुत दुखी है। उधर राजकार्यों की अधिकता के कारण हम उसे अधिक सान्त्वना भी नहीं दे सकते। तनिक उसे यहीं बुलाओ!

शार्ङ्गरव ने प्रतिहारी को आज्ञा दी और बात की बात में सुवासिनी वहाँ आ गई। चाणक्य द्वार से ही सुवासिनी के मुँह की ओर गम्भीरता से देखने लगे। सुवासिनी ने शोकनिमग्न मुस्कान के साथ नमस्कार करते हुए कहा—कहिये, किस आज्ञा से कृतार्थ करने के लिए आपने मुझे याद किया?’

**चाणक्य**—कुछ नहीं सुवासिनी! सोचा कि तुम अपने कक्ष में एकाकी बीते सत्यों को याद करके रो रही होंगी। अवकाश न होने के कारण मैंने तुमको इसलिए यहाँ बुला लिया।

सुवासिनी बहुत प्रयत्न करके ऐसे हँसी जैसे वह बिना यत्न के हँस रही हो। हँसते हुए उसने कहा—‘जीवन में आपत्तियों पर रोना कैसा! आपदाएँ तो मनुष्य को राह दिखाने आती हैं। मुझे तो जन्म से ही दुःख सहने का अभ्यास है। पग-पग पर दुःख आये, पर मैं कभी



निराश नहीं हुई। हाँ, अपने सभी भाइयों की एकसाथ मृत्यु का समाचार सुनकर मेरी आँखों से आँसू अवश्य निकल पड़े थे। जब कभी मन भर-भर कर आता है, तभी मैं उसे विवेक से रोक लेती हूँ।'

कहते-कहते सुवासिनी ने जो चाणक्य की आँखों की ओर देखा तो वे डबडबाने लगी थीं। सच है जो अपने दुःख से आप नहीं रोता उसके दुःख से संसार रोने लगता है। चाणक्य की आँखें छलछलाई देख सुवासिनी की आँखों में भी नमी आने लगी। पर इतने में ही एक प्रहरी ने प्रवेश करते हुए कहा—“प्रधान सेनापति ने सूचना भेजी है कि सिन्ध नदी के पार सेल्यूकस एक बड़ी सेना लेकर आ पहुँचा है! इस बार उसके साथ ईरान और अरब के राजा भी हैं। सुना है तक्षशिला में अवस्थित हमारे अन्तर्गत राजा ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है।”

सुनते ही चाणक्य की डबडबाई आँखें उबलने लगीं। उनके नेत्र निकलते हुए बालारुण की तरह लाल हो गये। क्रोध से खड़े होकर उन्होंने कहा—“एक बड़ी सेना लेकर तुम उसे झेलम के पार ही रोको! मार्ग के सभी सम्बन्धित राजाओं को आज्ञा भेज दो कि अपनी-अपनी सेना लेकर हमारे साथ युद्ध में चलने के लिए घोड़ों पर सवार हो जायें।”

“सुवासिनी! तुम राजमहल में जाओ। यह समय शोक का नहीं, विपत्तियों के पहाड़ों को रोकने का है। महल में राजमाताओं की देख-रेख बुद्धिमानी से करती रहना। उन्हें कोई कष्ट न होने पाये और वे कोई आपत्ति भी न उठा सकें।”

आज्ञा सुनते ही चन्द्रगुप्त ने अपनी दिशा की और सुवासिनी ने अपने मार्ग की राह पकड़ी। उनके जाने के बाद चाणक्य अट्टहास करते हुए आप ही आप बोले—“आकाश से चाहे कितना ही पानी बरसे, पर पृथ्वी उसे पी ही जाती है। चाहे कितने भी तूफान उठें, किन्तु चाणक्य का चरण नहीं चीर सकते।”

“वह यूनानी कीड़ा भारत की स्वच्छ वायु दूषित करने फिर रेंगता हुआ चला आ रहा है। विनाश के समय मनुष्य पागल हो जाता है। सोने के भूखे शैतान सेल्यूकस! हम तुम्हारा स्वागत करने के लिए तैयार हैं।”

कहते-कहते चाणक्य ने चारों दिशाओं की ओर निहारते हुए भीषण

अट्टहास किया। भयानक हँसी में उनका मुख ऐसा डरावना दिखाई देने लगा मानो भीम ने दुःशासन-वध के पश्चात् रक्त-पान किया हो। रक्त वर्ण में आँखें निकालते हुए वे आप ही आप कहने लगे—“मगध के क्रूर राजा महानन्द को मैंने मसल डाला! जिस किसी ने भी इस देश पर कुदृष्टि डाली उसकी आँखें चाणक्य की आँखों से मिलने के पूर्व ही राख हो गई। राक्षस! सेल्यूकस! तुम चाणक्य को पराजित करना चाहते हो। पर चाणक्य पराजित होने के लिए पैदा नहीं हुआ है! जो स्वयं अपने लिए न जीकर दूसरों के लिए जीता है, उसे कौन जला सकता है! चाणक्य की वाणी पर सरस्वती, बुद्धि में बृहस्पति, हृदय में विष्णु, आँखों में अग्नि, भुजाओं में दुर्गा और रोम-रोम में जल का निवास है। दिशाएँ उसके पैरों में समायी हुई हैं, त्याग उसका तप है, उसके तेज में मनुष्य की ज्योति है। जिस समय कोई अनाचार उसे ललकारता है तो चाणक्य आग और पानी में बदल जाता है।”

चाणक्य आवेश में और भी कुछ कहते, किन्तु सैनिक वेशभूषा में कवचधारी चन्द्रगुप्त ने प्रवेश करके उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया। श्रद्धा और विश्वास से चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को अभिवादन किया। चाणक्य ने अपना वरद हस्त सिर पर फेरते हुए कह—अभियान के समय तुम पर न्यौछावर होने को मन करने लगता है, चन्द्रगुप्त!

**चन्द्रगुप्त**—सब गुरुदेव का ही रूप है, पूज्यवर!

**चाणक्य**—जाओ, तुम्हारी जय होगी।

चन्द्रगुप्त ने गुरुदेव के चरण छू अभिवादन के लिए तैयार खड़ी सेना के मध्य गमन किया। जैसे ही चन्द्रगुप्त सेना में पहुँचे कि प्रस्थान शंख बज उठा। धूल उड़ते हुए रणबाँकुरे सिपाहियों के अश्व दौड़ चले। एक भीषण तूफान जो यूनान से चला आ रहा था, उसे स्वयं में समाने के लिए मानो जलप्लावन बढ़ चला हो।

इस दौड़ते हुए तूफान को राक्षस ने छत पर से देखा और चमत्कृत हो आप ही आप यह कहते हुए तेजी से नीचे उतरे—“जान पड़ता है समय ने कोई नई करवट बदली।”





पहाड़ियों के अन्तराल में गुहाओं जैसे घर, दूर-दूर तक फैले हुए खड्ड, कहीं-कहीं हजारों वर्ष की कथाएँ कहते हुए सूखे पेड़, ऊपर नीला आकाश और नीचे चढ़ाव एवं ढलाव की खतरनाक पगडंडियाँ। यहाँ कठोर जीवन में भी सुख की अनुभूतियों का संगीत है।

आजकल चाहे यहाँ एक बड़ा नगर बस गया है, पर बहुत पहले बीहड़ पहाड़ियाँ ही थीं। कुछ निर्धन जहाँ-तहाँ अपने रहने के टूटे-फूटे स्थान बनाये हुए थे। कोई सम्पन्न व्यक्ति उन गरीबों की बस्ती में जाने का साहस भी नहीं कर सकता था। यह स्थान भयावना भी था। जंगली जानवर प्रायः यहाँ चले आते थे। बिचारे निर्धन पहाड़ी कुछ आलू आदि पैदा कर पेट भर लेते थे। इन क्षेत्रों में भोले पहाड़ी वीरता और कठोरता का लौह-जीवन व्यतीत करते थे। वीर इतने थे कि रीछ और शेर जैसे खूंखार पशुओं को भी प्रायः दराँती से ही काट डालते थे।

ऐसे बीहड़ और भयावने स्थान पर एक पहाड़ी की आड़ में राक्षस पंचनदपति पुरु से किसी गूढ़ विमर्श में तल्लीन थे। अपना माथा तर्जनी उँगली से ठोकते हुए राक्षस ने कहा—हम वाणी के धनी हैं। एक बार जिसे अपना कह देते हैं, जीवन भर उसके साथ निर्वाह करते हैं। हम पर विश्वास रखो, वह दिन हमारी प्रतीक्षा में आँखें बिछाये बैठा है जब कुमार मलयकेतु मगध के शासक होंगे। यदि विधाता ने साथ दिया तो शीघ्र ही कुमार मलय सारे भारत के सम्राट् होंगे तथा देश और विदेश पर उनकी पताका फहरा उठेगी।

**पुरु**—मुझे आपको शब्दों पर सन्देह नहीं, पर चाणक्य की चतुरता से डरता हूँ। वह ब्राह्मण न जाने किस मिट्टी का बना हुआ है कि आग उसे जला नहीं पाती और जो पानी उसे बहाना चाहता है वह स्वयं उसमें डूब जाता है। देखने में वह देवता दिखाई देता है, पर परिणाम में वह साक्षात् शनिदेव का अवतार जान पड़ता है। जिस पर उसकी कठोर दृष्टि पड़ी कि पीढ़ियों तक के लिए विनाश ने उसके घर में डेरा डाल लिया। कहीं आपकी और हमारी सन्धि का रहस्य खुल गया तो हमें हमारा कल्याण नहीं दीखता।

**राक्षस**—मनुष्य का कल्याण स्वयम् की मुट्ठी में बन्द है। जो तूफान के भय से सागर में नाव छोड़ते हुए डरते हैं, वे किनारे पर खड़े रह कर भी जीवित नहीं रह सकते। मानव के पास शक्ति की कमी नहीं, कमी उसकी भावना में होती है। हार कर जो मौन बैठ जाता है, जीत उसी को देखकर हँसती है। सारे संसार का गौरव तुम्हारे चरणों में नमस्कार करने को प्रस्तुत है, चाहे तो इस सुनहरे अवसर को गले लगा लो और चाहे घर आई लक्ष्मी को लात मारकर निकाल दो।

**पुरु**—नहीं, नहीं, मैं घर आई लक्ष्मी को लात नहीं मारूँगा। मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार है। मैं मलय को आपकी भेंट कर चुका। क्योंकि अब पंचनद का वही अधिकारी है, इसलिए पंचनद भी आपके इंगित पर चलेगा। आज से मैंने आपको पंचनद का मन्त्री स्वीकार किया।

**राक्षस**—आपकी कृपा के लिए धन्यवाद! मैं आपकी सेवा के लिए जी-जान से उपस्थित हूँ, पर कुमार का मन्त्री-पद तो उसी दिन स्वीकार करूँगा जिस दिन मलय भारत के एकछत्र सम्राट् होंगे।

**पुरु**—लो, वह कुमार मलय भी आ गये। पर बात क्या है, कुछ घबराये से जान पड़ते हैं।

इतने में कुमार मलय पास आ गये। आते ही उन्होंने माथे से श्रम-कण पोंछते हुए कहा—परिस्थितियाँ जटिल होती जा रही हैं। चन्द्रगुप्त यूनानियों से लड़ते-लड़ते बहुत दूर तक बढ़ गये हैं। उस बड़ी सेना से वे कुछ छोटे-छोटे साथी राजाओं के साथ कब तक लड़ते रहेंगे! यदि समय पर कुमुक न पहुँची तो उनके प्राण संकट में पड़ सकते हैं।

**पुरु**—बहुत अच्छा होगा, साँप भी मर जायेगा और लाठी भी न टूटेगी।

**राक्षस**—नहीं, परिणाम यह होगा कि साँप भी नहीं मरेगा और लाठी भी टूट जायेगी।

**पुरु**—क्या अर्थ?

**राक्षस**—अर्थ यही है कि विदेशी दोस्त से घर का दुश्मन अच्छा होता है। कहीं चन्द्रगुप्त की मृत्यु के बाद सेल्यूकस सारे भारत पर न छा जाये।

**पुरु**—लेकिन यदि हमने चन्द्रगुप्त की सहायता के लिए सेना



भेजी तो फिर जो हम चाहते हैं वह न हो सकेगा। अच्छा तो यही है कि चन्द्रगुप्त को वहाँ खप जाने दो। फिर यूनानियों को तो हम सरलता से भगा देंगे। उसके बाद आप जो चाहते हैं वह स्वयमेव हो जायेगा।

**राक्षस**—यह हो सकता है कि यूनानियों से लड़ता-लड़ता चन्द्रगुप्त मर जाये, पर इससे चाणक्य पराजित नहीं होंगे। वे जिसके सिर पर अपना हाथ रख देंगे वही चन्द्रगुप्त बनकर हुँकार उठेगा। हमारी जीत चन्द्रगुप्त की मृत्यु में नहीं है। जब तक चाणक्य नहीं मरते तब तक हमारी जीत में हार है।

**मलय**—घर के झगड़े हम बाद में आप सुलझा लेंगे, पहले हमें मिलकर विदेशी शत्रु से छुटकारा पा लेने दो।

पुरु कुछ कहने के लिये मुँह खोलना ही चाहते थे कि लहू में लथपथ घबराये हुए सेनानायक ने प्रवेश करते हुए कहा—एक ही तूफान में काया पलट गई। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को बन्दी बना लिया। पता नहीं इस युद्ध में चन्द्रगुप्त ने किन शक्तियों का प्रयोग किया कि यूनानी जीतते-जीतते हार गये और...

राक्षस ने आवेश में खड़े होकर गर्जते हुए कहा—और क्या ?

**नायक**—और उन्होंने चाणक्य की आज्ञानुसार सन्धि के नियमों को तोड़ सेल्यूकस से मिलने वाले राजा आम्भी और उनके पुत्र को चौराहे पर फाँसी दे दी।

सुनते ही पुरु क्रोध से काँपते हुए उठे और बोले—क्या उन दोनों को निर्दयता से मार डाला ?

**नायक**—हाँ। यही नहीं महाराज ! गुप्तचरों से सूचना मिली है कि तुरन्त ही वे पंचनद पर भी अधिकार कर लेंगे।

**पुरु**—क्या सचमुच ? जान पड़ता है चाणक्य को हमारे कुचक्रों का पता चल गया।

**नायक**—न जाने क्यों अकस्मात् चन्द्रगुप्त के पक्ष वालों को हम पर अविश्वास हो गया। जिस समय चन्द्रगुप्त यूनानियों से घोर युद्ध कर रहे थे उस समय हम समय पर सहायता के लिए पास ही तैयार खड़े थे। कुमुक के लिए अपने प्रधान सेनापति की आज्ञा की प्रतीक्षा मात्र थी, पर जब बहुत दूँढ़ने पर भी प्रधान सेनापति का पता न चला तो हम क्या करते ! युद्ध करते हुए चन्द्रगुप्त की सेना में सहायता के लिए

सांकेतिक शब्द हुआ, पर जब हम न पहुँचे तो तुरन्त ही एक दूसरी आवाज हुई और हमने देखा कि न जाने किधर से चन्द्रगुप्त के छिपे हुए कुछ आदमियों ने विशेष प्रकार का धुआँ उड़ाया। हम अभी समझने का प्रयत्न ही कर रहे थे कि बात की बात में चन्द्रगुप्त की जय का शंख बज उठा और दूसरे ही क्षण चन्द्रगुप्त की एक सेना हम पर टूट पड़ी। हमारे बहुत-से वीर सिपाही इस आकस्मिक युद्ध में काम आ गये। हम कुछ बड़ी कठिनता से प्राण बचाकर आप तक आ सके।

**पुरु**—तुम जाओ सेनानायक, अपने घावों की मरहमपट्टी कराओ!

**राक्षस**—और तुम भी जाओ मलय! राजधानी और राज्य में सुरक्षा के लिए लोहे के जवानों को लगा दो, हम भी शीघ्र ही आते हैं।

आज्ञा सुनते ही सेनानायक और मलयकेतु चले गये। पुरु ने राक्षस की ओर चिन्ता से देखते हुए कहा—अब क्या होगा?

**राक्षस**—होगा क्या, हमारी जय होगी।

**पुरु**—कैसे महामना!

**राक्षस**—यदि चाणक्य ने पंचनद की ओर पग बढ़ाने का दुःसाहस किया तो ईंट से ईंट भिड़ जायेगी। महाराज पुरु! तुरन्त कुलूत के राजा चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद, कश्मीर नरेश पुष्करनयन, सिन्धुपति सिन्धुसैन और पारस के बलशाली नृपति मेघाक्ष को सेना सहित पधारने का निमन्त्रण भेज दो। हम प्रत्यक्ष युद्ध की घोषणा करेंगे। चाणक्य! अब तुम संभलो, तुम्हारी आग की ओर प्रलयंकर रूप धारण कर समुद्र आ रहा है। दबे हुए कोयले अब बिजलियाँ बन कर टूटेंगे। यदि तुमने युद्ध-धर्म के विरुद्ध वैज्ञानिक शक्तियों का प्रयोग किया तो यह न भूलना कि राक्षस की आँखें उस ओर से बन्द हैं। वह विष को विष से उतारना भी जानता है।

**पुरु**—आपका साहस देखता हूँ तो लगता है कि वह कल का राजनीतिज्ञ फूस-सा ब्राह्मण आपके सामने ऐसे ही है जैसे किसी भयंकर ज्वाला के सामने कोई तिनका। पर जब चाणक्य के छोटे-से जीवन और उसमें प्राप्त हुई सफलताओं को देखता हूँ तो मेरी बुद्धि की तोल बदल जाती है।

**राक्षस**—किसी की हार का अर्थ यह नहीं होता महाराज! कि वह कम बुद्धिमान् और कायर है। विधाता जब विपरीत होता है तो



शक्ति-सम्पन्न सत्य भी असत्य से हार जाता है। संसार विजय की अंधी आँखों से देखता है। वह जीतने वाले की पूजा करता है और हारने वाले को पापी कहकर पुकारता है। पर जीत के अन्धकार में छिपी हुई पराजय की सत्यता जब किसी साहित्यकार की कलम से प्रत्यक्ष होती है तो संसार की आँखें खुल जाती हैं। न जाने क्यों हर बार सोचते कुछ हैं और हो कुछ जाता है। क्रिया कुछ होती है और कुछ निकलता है। शत्रु के लिए विष बोता हूँ पर मृत्यु उलटी अपनी ही हो जाती है। लेकिन देखता हूँ इस बार चाणक्य मेरे हाथों से कैसे बचता है। मैं उसे नष्ट कर डालूँगा।

**पुरु**—हम सदल-बल आपके साथ हैं।

**राक्षस**—तो विधाता की कृपा से जय भी अवश्य होगी। अब आप विश्राम करिये! मैं इन पहाड़ियों की छाया में अपने अत्यन्त विश्वस्त सूत्रों के साथ आगामी रूपरेखा निर्मित करूँगा। आप इस सम्बन्ध में विशेष सावधान रहिये कि कोई अविश्वस्त हमारे इस गुप्त स्थान तक न आने पाये।

पुरु राजधानी की ओर चले गये और राक्षस ने गुप्त गुहा की ओर प्रवेश किया। एक चौरस शिला पर बैठने के बाद उन्होंने पास खड़े अपने रहस्यमय गुप्तचर की ओर देखते हुए कहा—तुम्हारी सफलता पर हम तुम्हें बधाई देते हैं। तुमने हमारे घाव पर वह मरहम लगाया है कि जिससे चीस एकदम बन्द हो गई और आशा है कि अब घाव भरने में अधिक समय न लगेगा।

**जीवधर्म**—यह सब आपकी कृपा का प्रसाद है स्वामी! यह दास तो अपने को उसी दिन धन्य समझेगा जिस दिन आपकी खोयी हुई राजलक्ष्मी आपके चरणों में आ गिरेगी।

**राक्षस**—राज-रमा बड़ी चंचल होती है जीव! यह गुणों और अवगुणों को नहीं देखती। मूर्खों के हाथ में आकर न जाने इसने कितनी बार विद्वानों का तिरस्कार किया है। कितनी चकाचौंध है इसकी चमक में।

**जीवधर्म**—चिन्ता न करें स्वामी! असत् सत् पर बहुत दिनों तक विजयी नहीं रहता। आपने सत्य से स्वामी और देश की सेवा की। आपकी इच्छा के प्रतिकूल शत्रु की सफलताएँ बहुत दिनों तक नहीं टिक सकतीं।

**राक्षस**—हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। पर क्या करें! बहुत अधिक श्रम और असफलताओं से हमारा सिर दुखने लगता है। समझ में नहीं आता क्या करें, कैसे उस कुटिल ब्राह्मण चाणक्य को चित किया जाये।

**जीवधर्म**—शत्रु को शत्रु के ही विष से मारा जा सकता है।

**राक्षस**—वह कैसे?

**जीवधर्म**—कुटिल शत्रु के साथ जब तक विषाक्त क्रियाओं का प्रयोग न किया जाये, तब तक शत्रु सिर पर चढ़ा ही रहता है। अब हमें चाणक्य को चाणक्य का ही गरल पिलाना होगा।

**राक्षस**—पर वह तो ऐसा शिव है जो हर विष को पचा जाता है।

**जीवधर्म**—प्रबल से प्रबल शत्रु को अजेय मानकर हम अपना उत्साह भंग कर लेते हैं, मन्त्रियों में शिरोमणि!

**राक्षस**—फिर तुम बताओ जीव! चाणक्य को कैसे जीता जाये?

**जीवधर्म**—मैंने चाणक्य द्वारा रचित राजनीति के सम्बन्ध में सारा “कौटिल्य-अर्थशास्त्र” पढ़ा है। उसमें शत्रु-नाश के लिए अन्त में विषैले औषधि-प्रयोगों का उल्लेख है। उन औषधि-प्रयोगों से ही शत्रु का नाश करेंगे। छाया की तरह हमारे गुप्तचर अदृश्य अञ्जन आंज कर विपक्षियों के कण-कण में छा जायें। इधर हम छल से शत्रु पर छा जायेंगे, उधर आप सामूहिक आक्रमण से हारे हुए राज्यों पर अधिकार कर लेना। मैं यत्न करूँगा कि औषधि-प्रयोगों से आपस में लड़ाकर शत्रु के सेनापतियों का नाश हो जाये। राज्याधिकारियों और मन्त्रियों में स्वार्थ का बीज बोकर फूट पैदा कर दी जायेगी।

**राक्षस**—जीव! सचमुच तुम सच्चे स्वामिभक्त हो। यदि आज हम मगध के महामात्य होते तो तुम्हारी इस सूझ-बूझ पर हम तुम्हें निहाल कर देते।

**जीवधर्म**—आपका दिया हुआ मुझ पर क्या नहीं है स्वामी! लालची सेवक स्वामी का सच्चा हित नहीं कर पाता। समय पड़ने पर स्वार्थी सेवक शत्रु से मिल जाता है। मुझे तो आपके पगों की धूलि ही सब कुछ है।

कहते-कहते जीव चमत्कृत हो उठा, ध्यान से कान लगाते हुए उसने कहा—“कोई संकेत-ध्वनि कर रहा है, जान पड़ता है कोई आवश्यक बात है।”



**राक्षस**—कहीं कोई शत्रु-पक्ष का न हो, हमारे गुप्त स्थान को देखने के लिए षड्यन्त्र रचा हो।

**जीवधर्म**—आप चिन्तामुक्त होकर थोड़ा दूध पी लीजिये! मैं देखता हूँ, क्या बात है।

**राक्षस**—दूध तभी पीऊँगा जब स्वामी की हत्या का प्रतिशोध ले लूँगा। आजकल तो शोक में मैं अपना सभी कुछ भूल गया हूँ।

राक्षस मौन होकर मन ही मन सोचने लगे, “रात्रि के घने सूने पहर में जिसे सुवासिनी की सुवास झँझोड़ डालती थी, आज ऐसे मैं उसे एक ही उद्देश्य स्मरण है और वह है परम प्रतापी, महापराक्रमी, राक्षस के हृदय-स्वामी महानन्द की क्रूरता से की हुई हत्या का बदला!”

राक्षस मन ही मन में और भी न जाने क्या-क्या सोचते रहे पर जीवधर्म कुछ सोचे बिना ही किसी गुप्त राह से चल दिये। थोड़ी ही देर बाद दिखाई दिया कि सिर पर सूखी चुगी हुई लकड़ियों का बोझ रखे एक बूढ़ा पहाड़ी खुले हुए पहाड़ी क्षेत्र में आया। यहाँ एक दूसरा पहाड़ी अपनी कोहनी पर सिर रखे लेट रहा था। लकड़ी वाले पहाड़ी ने विशेष भाषा में कुछ कहा। उत्तर में लेटा हुआ पहाड़ी तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उसने भी उसी तरह की भाषा में न जाने क्या कहा।

जब दोनों ओर के शब्द एक-दूसरे के कान में पड़ गये तो लकड़ी वाले परम चतुर विराध ने कहा—कहो सर्वार्थ, क्या सूचना है?

**सर्वार्थ**—सूचना बड़ी खराब है, जीवधर्म जी! हमारे गुप्तचराधिकारी परम चतुर विराध चाणक्य ने बन्दी बना लिये।

**जीवधर्म**—क्या विराध बन्दी हो गये! चलो, शीघ्र मन्त्रियों में शिरोमणि स्वामी राक्षस के पास चलते हैं, वहीं सब सुन-सोचकर नया पग उठायेंगे।

पहाड़ियों का चक्कर काटते हुए जीवधर्म सर्वार्थसिद्ध को साथ ले राक्षस के पास पहुँचे। पास पहुँचते ही सर्वार्थ ने राक्षस के पैर छुए और कहा—परम चतुर विराध बन्दी हो गये। चन्द्रगुप्त को मारने के लिए जो विषकन्या भेजी थी, चाणक्य ने चतुरता से वह राजा पर्वतक के पास भेज दी। पहाड़ी राजा प्रथम दिन ही उसके संग से मृत्यु को प्राप्त हो गये और चाणक्य ने यह घोषित कर दिया कि राक्षस ने यह दुष्कर्म किया है।

राक्षस ने ठण्डी आह भरी। निराशा के श्वास लेते हुए वे कहने लगे—सुन रहे हो जीवधर्म ! दैव हमारे कितना प्रतिकूल हो रहा है। जो विषकन्या हमने शत्रु को मारने के लिए भेजी थी वह उलटी हमारे लिए मृत्यु और शत्रु के लिए जीवन हो गई। आधे राज्य के अधिकारी राजा पर्वतक को चाणक्य ने किस चतुरता से मार डाला। हा दैव ! तू राक्षस के इतना प्रतिकूल क्यों हो रहा है ?

**जीव**—आप धैर्य रखें स्वामी ! मैं कुसुमपुर जाकर किसी न किसी तरह उसको छुड़ा लाऊँगा। मैंने ऐसा प्रयोग तैयार कर लिया है कि जिसमें मैं सबको देख सकता हूँ और मुझे कोई नहीं देख सकता। अमावस्या की रात के काले अँधेरे में मैं सिद्ध मंत्रौषधि से कारा के प्रहरियों को सुला विराध को छुड़ा लाऊँगा।

“विराध छूट आये, महामात्य !” सहसा घाटी के द्वारपाल ने प्रवेश करते हुए कहा और दूसरे ही क्षण विराध एक पतले-दुबले नवयुवक के साथ सामने दिखाई दिये।

देखते ही राक्षस भरे हृदय से उठे और उन्हें अपनी छाती से लगा लिया। उनके आँसू से विराध का हृदय भीग गया। विराध ने भी अपनी अविरल आँसू-लड़ियों से राक्षस के पद प्रक्षालित किये। राक्षस और विराध के इस भरत मिलाप को देखकर चट्टान से भी कठोर जीवधर्म के भी आँसू न रुके। रुद्ध कंठ से राक्षस ने कहा—“हम आग इसलिए जलाते हैं कि शत्रु जल जाये, पर घर हमारा जल जाता है। न जाने दैव हमारे विपरीत क्यों हो रहा है !”

**विराध**—यह समय का फेर है स्वामी ! जब दिन उलटे आते हैं तो राजा भिक्षुक बन जाता है। अवतार रूप में पूजे जाने वाले राम राजा बनते-बनते फकीर बन गये थे। पर निराश होना मनुष्य का धर्म नहीं। हर हारे हुए मनुष्य के हाथ में कल का भविष्य रहता है। आज हार है तो कल जीत भी !

**राक्षस**—अच्छा यह तो बताओ कि तुम उस क्रूर चाणक्य की कारा से छूटे कैसे ?

**विराध**—इस नवयुवक की कृपा से, जिसने अपने प्राणों पर खेलकर मुझे कैद से छुड़ाया है।

**राक्षस**—हम इस नवयुवक को मुँह माँगा पुरस्कार देंगे। यह युवक कौन है विराध !



**विराध**—यह कुसुमपुर का एक ब्राह्मण है, जो नन्द-वंश का आप ही की तरह भक्त है। इस युवक के पुरखाओं ने नन्द-वंश से बड़े-बड़े दान पाये हैं। अपने परिवार में अब यह अकेला युवक है। इसके पिता ने मरते समय इस युवक से कहा था कि महाराज नन्द की भलाई में अपने प्राण तक दे देना। साथ ही इस परिवार का और चाणक्य के पुरखाओं का पुराना वैर चला आ रहा है। चाणक्य के बाबा ने इस युवक के बाबा को एक बार कूटनीति से तर्कशास्त्र में परास्त किया था। तब से इस कुटुम्ब में घोर आग धधकती चली आ रही है। इस नवयुवक ने प्रतिज्ञा की है कि जब तक चाणक्य के चीथड़े नहीं कर डालूँगा। तब तक चैन से नहीं बैठूँगा।

**राक्षस**—हमें ऐसे नवयुवक की उत्सुकता से प्रतीक्षा थी। नवयुवक! हम तुम्हारा स्वागत करते हैं। क्या नाम है तुम्हारा?

**युवक**—सेवक को निपुणक कहते हैं, महामना!

**राक्षस**—तुम सचमुच निपुण हो। इतने कठोर पहरे से विराध को छुड़ा कर तुमने हमें मृत्यु से बचा लिया।

**निपुणक**—यह कठोर पहरा क्या, मुझे ऐसी-ऐसी विद्याएँ आती हैं कि लोहे का बड़े से बड़ा दरवाजा पलक मारते ही खोल सकता हूँ, बैलों की गाड़ी को हवा में उड़ा सकता हूँ। मैं जहाँ चाहूँ वहाँ दृश्य और अदृश्य हो सकता हूँ।

**राक्षस**—वाह, तब तो तुम बड़े काम के हो!

**निपुणक**—पर मैं आपकी सेवा करने से पहले एक वचन चाहता हूँ।

**राक्षस**—कहो, तुम क्या चाहते हो?

**निपुणक**—मैं चाहता हूँ कि चाणक्य का चौराहे पर अपने हाथ से सिर काटूँ, उसके रक्त से अपने प्यासे पुरखाओं का तर्पण करूँ और फिर उसके शव को चौराहे पर डाल दूँ, जहाँ कौवे, गिद्ध और श्वान नोच-नोच कर बताएँ कि किसी ब्राह्मण को अधर्म से परास्त करने का क्या परिणाम होता है। तभी मेरी धधकती हुई छाती शीतल होगी।

**राक्षस**—हम यदि विजयी हुए तो तुम्हारी यह इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

**निपुणक**—मैं सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ। आज्ञा कीजिये!

**राक्षस**—तुम कुछ विश्राम करके फिर कुसुमपुर जाओ ! वहाँ चाणक्य की गतिविधियों का पता रखो । अवसर मिलने पर वहाँ चाणक्य के प्रति घृणा का प्रचार करो और चाणक्य की शक्ति के केन्द्रों में जैसे भी हो आग लगा दो । अपने साथ तुम हमारे सेवक करभक को भी लेते जाओ ।

जीवधर्म की ओर देखते हुए—“ जीव ! कुमार से निपुणक को जितना धन यह चाहे दिला दो ! ”

निपुणक को लेकर जीव राजधानी में कुमार मलय के पास आये और उनसे उन्होंने निपुणक का परिचय करा कर राक्षस का सन्देश कहा ।

कुमार ने कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा—“ निपुणक को जितना धन चाहिये दे दो ! ”

माल देखकर निपुणक के मुँह में पानी भर आया, पर मनुष्य समेटेगा तो उतना ही जितना उसके हाथों में समायेगा । उसने हीरे और मोतियों के कंठाभरण अपने गले में डाल लिये और फिर जीवधर्म की ओर देखते हुए कहा—“ आप विश्राम कीजिये मैं कुसुमपुर जाता हूँ । आवश्यकता पड़ने पर करभक को बुला लूँगा । ”

जीवधर्म अपनी राह पर और निपुणक अपने मार्ग पर चले । थोड़ी दूर सुने में जाकर निपुणक ने कुछ खाकर अपने शरीर पर न जाने क्या मला कि उसका मुँह और शरीर एकदम स्याह हो गया, ऐसा काला जैसे वह जन्म से ही काला हो ।

रूप बदलकर निपुणक हाथ में यमपट ले जहाँ-तहाँ घूमने लगा । थोड़ी देर में उसने देखा कि सिरघुटा युवक उँगली घुमाता हुआ चला आ रहा है । निपुणक दौड़कर उसके सामने पहुँचा और यमपट आगे कर कहने लगा—मुझे दान दो, यमराज तुम्हें जीवन देंगे ।

**सिरघुटा**—हम तो स्वयं यमराज हैं, यमराज हमको क्या जीवन देगा ! चल हट, हमको जीवन नहीं चाहिये । भला ऐसा जीवन भी किस काम का जिसमें खाने को लड्डू न मिलें ।

**निपुणक**—अजी, लड्डूओं की चिन्ता क्यों करते हो, मैं तुम्हारे लिए मोतीचूर के लड्डू पहले ही बाँध लाया हूँ, भासुरक जी !

**भासुरक**—अरे, तुम मेरा नाम भी जानते हो ! सचमुच तुम कोई



ज्योतिषी हो।

**निपुणक**—जी हाँ! मैं ज्योतिषियों का चचा और आपका भतीजा श्री १०८ ब्रह्मचारी निपुणक हूँ, जिसे आचार्य चाणक्य ने कूड़े से उठाकर विद्यादान दे इस योग्य बनाया। भूल गये, मैं ही आपके भोजन की थालियाँ माँजता था।

**भासुरक**—अरे निपुणवे तू! और तू काला भूत कैसे हो गया?

**निपुणक**—ये सब महात्मा चाणक्य की करामातें हैं, चचा!

**भासुरक**—सचमुच भतीजे! गुरुदेव ने तो तुझे हमारा चचा बना दिया।

**निपुणक**—अच्छा चचा, ये चाचा-भतीजे की चोंच तो फिर लड़ा लेंगे। अब तुरन्त गुरुदेव का सन्देश सुन लीजिये और यहाँ के हाल-चाल मुझ से कह डालिये।

**भासुरक**—सिद्धों के सिद्ध महात्मा चाणक्य की आज्ञा तुरन्त निवेदन करो!

**निपुणक**—प्रथम तो उन्होंने कहा कि चन्द्रगुप्त के पराक्रम की ऐसी धाक फैलाओ कि पंचनद के निवासी भयभीत हो उठें और कोई भी ऐसा पल न हो जो राक्षस और मलयकेतु के पास हमारे गुप्तचर न रहें। उनका कोई भी भेद हमसे छिपा नहीं रहना चाहिये।

**भासुरक**—गुरुदेव को नमस्कार करके कहना कि भासुरक बिना लड्डू खाये भूखा रहकर रात-दिन आपकी आज्ञा-पालन में लगा हुआ है। पर पग-पग पर ऐसी दीवारें खड़ी हैं कि कोई भी क्षण ऐसा हो सकता है कि जब भागुरायण और भासुरक राक्षस के हाथों सूली पर चढ़ा दिये जायें। छिपे रहना कठिन हो गया है। बहुत बार सन्देहात्मक दृष्टि से बाल-बाल बचते हैं और रहस्य यदि हम जान भी लें तो गुरुदेव तक पहुँचाना तो असम्भव हो गया है।

**निपुणक**—आप भेद अपनी खोपड़ी में जमा करते रहिये, पहुँचाने का काम मेरा है। इस कठिनाई के कारण ही तो गुरुदेव ने नया कुचक्र रचकर मुझे राक्षस का विश्वासपात्र बना दिया है। अब मैं राक्षस का परम हितैषी गुप्तचर बनकर पाटलिपुत्र जा रहा हूँ।

**भासुरक**—राक्षस के परम हितैषी बनकर! वाह भतीजे! तुमने तो चचा को भी चूना लगा दिया। हमें तो अब यह भी पता नहीं कि

राक्षस कहाँ है, क्या करते हैं, तुम उनके हितैषी बन गये !

**निपुणक**—हाँ, यह सब गुरुदेव की बुद्धि का प्रसाद है। वे अपने आसन पर बैठे-बैठे ही ऐसी क-ल घुमाते हैं कि राक्षस की सारी बुद्धि चित हो जाती है।

**भासुरक**—तो क्या तुम्हें यह पता है कि राक्षस कहाँ है ?

**निपुणक**—पता तो अवश्य है, पर पहुँच नहीं सकता। कुछ ऐसी चक्करदार पहाड़ियों में रहता है कि बाप रे बाप ! चलते-चलते घुटने टूट गये।

**भासुरक**—गुरुदेव चाणक्य तो सिद्धों के सिद्ध हैं ही, पर राक्षस भी न जाने कौन-से नीतिशास्त्र के बने हुए हैं कि सुलझने में ही नहीं आते। जितना सुलझाओ उतने ही उलझ जाओ। विचित्र इन्द्रजाल है !

**निपुणक**—कुछ बात नहीं चचा ! इन दो हाथियों के बीच में हमें और तुम्हें पिसना है।

**भासुरक**—सर हथेली पर लिये फिरते हैं भैया ! जैसे कभी-कभी मेरे मुँह में लड्डू दब कर चूरा-चूरा हो जाता है, ऐसे ही यदि किसी दिन काल के मुँह में फँस गये तो राक्षस हमारी खोपड़ी को चबा डालेगा।

**निपुणक**—चिन्ता क्यों करते हो चचा ! कभी-कभी मरने में भी मजा आता है।

**भासुरक**—अच्छा, अब अधिक देर बातें न करो, नहीं तो मरने की तैयारी हो जायेगी। यदि किसी ने देख लिया तो यहीं काल-देवता आ जायेंगे। अब जो कुछ सुनना है सुनकर नौ दो ग्यारह हो जाओ। तुम अपनी राह पकड़ो और मैं अपनी राह पकड़ूँ। देखो, यह जो सामने से भिखारी गाता हुआ चला आ रहा है यह राक्षस का घुटा हुआ गुप्तचर है। तुम भी यमपट दिखाकर माँगना शुरू कर दो। इसका यहाँ आना बहुत ही बुरा होगा।

**निपुणक**—यमराज के नाम पर मुझे सवा सेर घी, सवा सेर आटा और सवा सेर बूरा दो, यमराज तुम्हें जीवन देंगे।

**भासुरक**—मलयकेतु के राज्य में देवताओं की कमी नहीं। सेठ सम्पतराय के यहाँ चले जाओ, जो माँगोगे वही मिलेगा।

धीरे से—भागुरायण कुमार मलय की सेवा में है। पंचनद के राजा



अन्य पाँच राजाओं को लेकर शीघ्र ही मगध पर आक्रमण करने वाले हैं। सचेत हो जायें! राक्षस अब हमारी आँखों से बिल्कुल ओझल हैं।

चलते हुए—अब तुम भिखारी की आँख में धूल झोंकते हुए राजधानी से बाहर हो जाओ, मैं चला।

**निपुणक**—मेरी चिन्ता न करो चचा! मैं बहुत चौकस हूँ।

चलते-चलते कहते हुए यमपूजक निपुणक ने अपनी दिशा बदली।

घूमते-घूमते निपुणक एक बीहड़ वन में पहुँचे जहाँ उनके आह्वान करते ही बैलगाड़ी उपस्थित हो गई, जिस पर सवार हो वे हवा से बातें करते हुए कुसुमपुर आ पहुँचे।

यमपट लिये भिक्षुक-वेश में ही निपुणक महामात्य चाणक्य की प्रहरियों से सुरक्षित कुटी के पास आये। दूर से ही द्वारपाल ने उन्हें रोकते हुए कहा—‘आगे न बढ़ो! महामात्य की कुटी तक कोई नहीं जा सकता। उनकी आज्ञा है कि हम से मिलने कोई न आये।’

**निपुणक**—महामात्य चाणक्य से कहो कि पाँच नदियों के जल में स्नान करके यमराज का भक्त आया है। उसके पास मरते हुए कुसुमों को जिलाने का अमृत है। दर्शन देने की कृपा करें।

एक प्रहरी ने दूसरे और दूसरे ने तीसरे के द्वारा प्रहरी से प्रहरी पर पहुँचते हुए यह सन्देश चाणक्य तक भेजा। सन्देश सुनते ही चाणक्य ने तुरन्त आज्ञा प्रेषित की कि यमभक्त को भेज दिया जाये।

आज्ञा पाते ही निपुणक चाणक्य के सामने जा पहुँचे। उन्होंने बैठने से पहले ही कहा—बहुत ही शीघ्र राक्षस के संरक्षण में कुमार मलय और पाँच अन्य राजा कुसुमपुर पर आक्रमण करने वाले हैं।

चाणक्य ने मुँह ऊपर उठाया, ऊपर से नीचे तक निपुणक को देखा और फिर गम्भीर होकर यह कहते हुए चले गये कि “तुरन्त उलटे पैरों फिर पंचनद जाओ और मृत्यु के मुँह में घुसकर भी जो गुप्त रहस्य तुम्हें मिले उसे जैसे भी हो हम तक भेजो!”

□□

महामात्य चाणक्य के प्रवेश करते ही राजसभा में सन्नाटा छा गया। तीक्ष्ण आँखों से वे जिस ओर भी निहारते, उस ओर का शब्द सुन्न हो जाता था। चारों ओर पैनी दृष्टि से देखते हुए महामात्य अपने आसन पर पहुँचे। शान्ति और शक्ति के अवतार—से जब वे अपने स्थान पर विराजमान हो गये, तब चन्द्रगुप्त सिंहासन पर पधारे एवं फिर क्रमशः अन्य अधिकारी और राजागण भी अपने-अपने आसन पर बैठ गये।

सबके बैठने के बाद चन्द्रगुप्त फिर उठे और उन्होंने दीनता से चाणक्य की ओर देखते हुए कहा — गुरुदेव एवं मगध के महामात्य महात्मा चाणक्य की आज्ञा हो तो बन्दी सेल्यूकस को उपस्थित किया जाये।

**चाणक्य**—यूनान के विजेता सेल्यूकस से भेंट के लिए ही हम पधारे हैं। सम्राट्! उन्हें ससम्मान उपस्थित किया जाये।

चन्द्रगुप्त ने मुख्य सेनानायकों की ओर देखते हुए आज्ञा दी—सेल्यूकस को सादर और सुरक्षा सहित लिवा लाओ!

थोड़ी ही देर में गर्दन झुकाये सेल्यूकस राजसभा में धीरे-धीरे आये। उनके आते ही कौतूहल जाग उठा। पर चाणक्य की प्रथम पैनी दृष्टि पड़ते ही कौतूहल गम्भीरता में बदल गया। महामात्य ने मगध के बन्दी को ऊपर से नीचे तक देखा।

सेल्यूकस ने भी झुकी आँखों से चाणक्य को निहारा। यशस्वी चाणक्य को देखते ही उनकी रही-सही कान्ति भी जाती रही। चाणक्य सेल्यूकस के मन के भाव पढ़ते हुए अत्यन्त अपनत्व के शब्दों में बोले—यूनान के सम्राट् और हमारे अतिथि! हम तुम्हारा हृदय और प्रेम से स्वागत करते हैं।

**सेल्यूकस**—क्या महामात्य व्यंग्य से मुझे शर्मिन्दा कर रहे हैं?

**चाणक्य**—अपने अतिथि को जो लज्जित करता है, हमारे यहाँ उसे पापी कहते हैं।

**सेल्यूकस**—लेकिन मैं तो आपका बन्दी हूँ।



**चाणक्य**—तुम हमारे बन्दी हो, पर लोहे की जंजीरों के नहीं, हृदय की जंजीरों के। हम तुम्हें ऐसे बन्धन में बाँधना चाहते हैं जिससे यूनान और भारत सदा-सदा के लिए एक हो जायें।

**सेल्यूकस**—आपको दया के लिए धन्यवाद! लेकिन मैं तो विश्वासघात कर चुका हूँ।

**चाणक्य**—सुनहरे स्वप्न मनुष्य से बहुत-से अपराध करा डालते हैं, पर वास्तव में मनुष्य का हृदय अशुद्ध नहीं होता। आप तो वीर हैं, जो साम्राज्य-वृद्धि के लिए हार कर भी फिर आगे बढ़ें। किन्तु हम भारतीय तो मैत्री के भण्डार हैं, हम अपने कोश में शत्रु नाम का शब्द नहीं रखना चाहते। हम विशाल हृदय के हैं और प्रत्येक को हृदय में स्थान देते हैं। बीती बातों को भूल जाओ सेल्यूकस! बँध जाओ भारत के साथ एक ऐसे रिश्ते से जो किसी तलवार से न कट सके।

**सेल्यूकस**—हार कर दोस्ती करने और प्राणों की भीख लेने में कोई अन्तर नहीं होता महामात्य! संसार में जो हारता है वह घृणा का पात्र होता है, जो जीतता है उसकी पूजा होती है।

**चाणक्य**—हार और जीत जीवन में होती रहती है। वह धन्य है जो सदुद्देश्यों के लिए जीवन भर हारता-हारता मर जाता है; और वह जीवित ही मृतक है जो हार कर जीवन का दाँव हार बैठता है। वीर वही है जो मृत्यु से भी अपने उद्देश्यों को जीत ले। लेकिन यूनानाधिप! वह बल किस काम का जो अपने से छोटों को कुचलता हुआ अपनी कुत्सित महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी करे। साम्राज्यवादी भावना एक पैशाचिक आकांक्षा है। साम्राज्य-वृद्धि की इच्छा ही तो निरीह मनुष्य के शवों पर दाँत चलाती है। बताओं, इतने नरसंहार और नगरों को नष्ट करके तुम्हें मिला क्या? जीवन भर धूल छानता हुआ सिकन्दर भी जीवन में अपनी आशा का चित्र पूरा न कर सका। तृप्ति एवं शान्ति यदि कहीं है तो वह भारत की आध्यात्मिकता में ही। जियो ओर जीने दो! शत्रुता की फुँकारती हुई सर्पिणी को मित्रता की उस बीन पर मुग्ध कर दो जो हमारे और तुम्हारे लिए जीवन है! गरल को अमृत बनाना ही मानव का धर्म है।

**सेल्यूकस**—शत्रुता और मित्रता स्वार्थ के ही दो नाम हैं। विजयी से सब मित्रता करना चाहते हैं, पराजित को सब शत्रुता की दृष्टि से देखते हैं। मैं पराजित हूँ, महामात्य चाणक्य का बन्दी! सुना है चाणक्य के संसार में क्षमा का कोई स्थान नहीं होता और मैं क्षमा चाहता भी

नहीं। बहादुर सेल्यूकस भारत के गौरवशाली महामात्य से मित्रता उसी समय कर सकता था जब वह राजा होता। इस समय की मित्रता इतिहास में दया की भीख के नाम से पुकारी जायेगी।

**चाणक्य**—चाणक्य को संसार ने न आज समझा है और न कभी समझेगा। कौन जानता है कि पाषाण चाणक्य में फूल का हृदय है। उसके लिए शत्रु वही है जो अत्याचार करता-करता भी नहीं थकता। जो बदल सकता है, चाणक्य उसे बदलना चाहता है। बीती बातों को भूल जाओ सेल्यूकस! जिन्दगी के नये मोड़ पर नया पग रखने का समय है।

**सेल्यूकस**—मुझे सोचने का समय चाहिये।

**चाणक्य**—स्वयं ही सोचोगे या किसी से परामर्श भी करना चाहते हो?

**सेल्यूकस**—हाँ वजीरेआजम! मैं अपनी प्यारी बेटी कौरनेलिया हेलन से मिलना भी चाहता हूँ।

**चाणक्य**—अपनी प्यारी पुत्री से परामर्श की हम तुम्हें पूरी स्वीकृति देते हैं। तुम्हें बन्दी बनाने के बाद तुम्हारी प्यारी बेटी हेलन हमारे संरक्षण में सुरक्षित है। अतिथि-दुर्ग में हमारे अतिथि अपनी बेटी से भेंट कर सकते हैं। एक सेनानायक की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—“यूनानाधिश सेल्यूकस को ससम्मान उनकी पुत्री हेलन के पास पहुँचा दो!” कहते हुए राजसभा समाप्त करके चाणक्य एक ओर को चले गये और सेल्यूकस अपनी बेटी के पास पहुँचे।

पिता को देखते ही पुत्री ‘अब्बाजान!’ कहकर उनके गले से लिपट गई। सेल्यूकस ने रोती हुई बेटी का माथा चूमा और सिर पर हाथ फेरते हुए कहने लगे—भयानक खूनखराबे के बाद भी सेल्यूकस की मुट्ठी खाली है। जो कुछ हमारे हाथ में था वह भी खो दिया। युद्ध का परिणाम यही तो होता है!

**हेलन**—मैंने आपसे बहुत कहा, पर राज्य-लिप्सा में आपने एक न मानी और बात यहाँ तक बिगाड़ ली कि अब किसी भी तरह नहीं बन सकती।

**सेल्यूकस**—बात जब बिगाड़ सकती है तो बन भी सकती है।

**हेलन**—वह कैसे?



**सेल्यूकस**— भारत के गौरवशाली उदार आचार्य महामात्य चाणक्य ने हमें दोस्ती का निमन्त्रण दिया है। क्या हम यह रिश्ता स्वीकार कर लें?

**हेलन**— चाणक्य इस युग के बड़े चतुर कूटनीतिज्ञ है। हो सकता है घर के झगड़ों को देखते हुए उन्होंने हमारे साथ सन्धि का प्रस्ताव रखा हो और फिर कल वही हो जो महानन्द के साथ हुआ। सुना है चाणक्य किसी को क्षमा नहीं करते। इसलिए यदि रिश्ता जोड़ना है तो...

हेलन कहते-कहते रुक गई। सेल्यूकस अपनी बेटी की मुद्रा देख संजीदगी से बोले—जबान पर आई हुई बात रुक क्यों गई बेटी! जो कुछ कहना हो शर्म और भय छोड़कर कहो!

**हेलन**— सुना है भारतवासी धर्म के बड़े कट्टर होते हैं। जातीय पक्षपात ने उनको जकड़ रखा है। चाणक्य यदि हम से सम्बन्ध जोड़ना ही चाहते हैं तो क्यों न ऐसा सम्बन्ध जोड़ लिया जाये जो संसार के इतिहास में ऐसा अमर हो जो तोड़ा न जा सके, यूनान और भारत की संस्कृति एक ही हो जाये।

**सेल्यूकस**— वह तो होगा ही।

**हेलन**— नहीं अब्बाजान! यह तभी होगा जब...

**सेल्यूकस**— कहते-कहते फिर क्यों रुक गई बेटी!

**हेलन**— बेटी अपने विवाह की बात कभी स्पष्ट नहीं कहती।

**सेल्यूकस**— क्या! क्या मैं अपनी बेटी बेचकर चाणक्य से सन्धि करूँ? क्या हमारी बेटी हमारे मुँह पर स्याही का वह टीका लगाना चाहती है जो यूनान के माथे से कभी न धुल सके।

**हेलन**— यह स्याही का टीका नहीं है अब्बाजान! बल्कि इन्सानियत का एक ऐसा टीका है जिसकी लाली कभी फीकी नहीं पड़ती। अगर सारे संसार से जाति-भेद मिटकर एक ही मानव-जाति की स्थापना हो जाये तो युद्ध की विभीषिका सदा-सदा को शान्त हो सकती है। संसार में सबसे बड़ा रिश्ता मानवता का है। मानवता के नाम पर शादी होना पाप नहीं है। क्या हानि है यदि आपकी बेटी भारत की राजरानी बन जाये?

सेल्यूकस ने कुछ देर के लिए सोचा फिर अत्यधिक गम्भीर होकर

बोले—यदि हम इस बात को स्वीकार भी कर लें तो यह धर्म के कट्टर पुजारी इसे कभी स्वीकार नहीं करेंगे। चाणक्य ब्राह्मण हैं, वह कठोर ब्राह्मण यह विवाह धर्म के विपरीत कह कर ठुकरा देगा।

**हेलन**—अगर वे आपका प्रस्ताव ठुकरा देंगे तो हम उनके दिये हुए दण्ड सह कर खाक में मिल जायेंगे, पर उनसे हाथ मिलाने का रिश्ता कभी न जोड़ेंगे।

**सेल्यूकस**—तो फिर सेल्यूकस मगध के महामात्य के सामने अपनी बेटी का यह प्रस्ताव अन्तिम रूप से रख देता है।

**हेलन**—मालिक पर भरोसा रखकर एक स्वतन्त्र शहंशाह की तरह अपनी बात चाणक्य से कहो!

चिन्तित से सेल्यूकस एक नया स्वप्न देखते हुए द्वार पर आये, जहाँ से प्रहरियों के साथ महामात्य चाणक्य के निवास की ओर चले। मध्य के मार्ग में वे भारतीय शिल्पकला को बड़े ध्यान से देखते जा रहे थे। स्थान-स्थान पर प्रस्तर मूर्तियों एवं जहाँ-तहाँ रंगीन चित्रों ने यूनान के बहादुर की आँखें खोल दीं। सेल्यूकस मन ही मन में कहने लगे—“क्या खूब कारीगरी है! वास्तुकला के आदर्श कुसुमपुर के ये दुर्ग ही कहे जा सकते हैं। मूर्तिकला और चित्रकला के ये चमत्कार कलाकारों ने कितने श्रम से बनाये होंगे! और कितनी भयंकर होती है युद्ध की डायन जो अपने खूनी दाँत चलाकर एक ही हमले में सौन्दर्य के इन नमूनों को नष्ट कर डालती है! क्या खूब हैं ये!”

कला के ये सुन्दर रूप देखते हुए सेल्यूकस न जाने कितनी दूर तक चले जाते, पर प्रहरियों ने महामात्य के द्वार पर आते ही उनका ध्यान अपने भीतर प्रवेश की सूचना से भंग कर दिया। उन्होंने एक सधी हुई आवाज में कहा—“हे परम पुनीत महाबुद्धिमान, नीतिकारों में कुशल नीतिज्ञ, आचार्य महात्मा महामात्य चाणक्य!” यूनान के राजा तथा मगध के अतिथि सेल्यूकस आपके दर्शनों को आ रहे हैं।”

चाणक्य ने आँखें ऊपर उठाकर संकेत से आने की स्वीकृति दे दी। सेल्यूकस के पास आते ही चाणक्य ने उठने की सी मुद्रा करके मानो उनका स्वागत किया फिर निकट बैठा मौन हो गये। कुछ देर सन्नाटा रहा। जब चाणक्य कुछ न बोले तो सेल्यूकस ने बार-बार मुँह में आई बात बाहर निकाली। बार-बार यत्न करते हुए सेल्यूकस ने कहा—“हम आपसे रिश्ता जोड़ सकते हैं, पर तभी जब आप और हम



तन-मन से एक हो जायें।''

**चाणक्य**—हम तो पहले ही तन-मन से एक हैं, आप अपने सन्तोष के लिए जैसे चाहें परीक्षा कर लें !

**सेल्यूकस**—परीक्षा नहीं, प्रस्ताव है। मैं चाहता हूँ कि मेरी प्यारी बेटी कौरनेलिया हेलन की शादी चन्द्रगुप्त से हो जाये।

सुनते ही चाणक्य चिन्ता में पड़ गये। बहुत देर प्रतीक्षा करने के बाद भी जब सेल्यूकस को कोई उत्तर नहीं मिला तो वे आवेश में बोले—क्या युग का सबसे बड़ा पुरुष निरुत्तर हो गया ?

**चाणक्य**—संसार में बहुत से ऐसे प्रश्न आ पड़ते हैं जब मनुष्य तो क्या ईश्वर के साक्षात् अवतार को भी उत्तर सोचना पड़ता है। मुझे सोचने का अवसर चाहिये। आज मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता।

**सेल्यूकस**—सोच लीजिये, खूब अच्छी तरह से विचार लीजिए। सेल्यूकस ने भारत के सामने वह ज्वलंत सम्बन्ध पेश किया है जो समय की धार से कट नहीं सकता।

**चाणक्य**—आप विश्राम कीजिये।

प्रहरियों के साथ सेल्यूकस अपने बन्दीगृह में चले गये और चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को बुलाया। जब चन्द्रगुप्त आ गये तो चाणक्य ने संकेत से अन्य सभी को उस कक्ष से पृथक् कर दिया। सबके चले जाने के बाद चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को प्यार से पास बैठाकर कहा—वत्स ! परिस्थितियों की कठोरता में हमने कभी तुमसे यह न पूछा कि तुम्हारे जीवन की सबसे बड़ी इच्छा क्या है। हम जानना चाहते हैं कि सामूहिक जीवन से पृथक् चन्द्रगुप्त की व्यक्तिगत आकांक्षा क्या है ?

**चन्द्रगुप्त**—राजा को व्यक्तिगत इच्छा छोड़नी पड़ती है। चन्द्रगुप्त भी स्वयम् को समष्टि में घोल चुका है। पर कृपण के धन की तरह अन्तर में छिपी हुई एक इच्छा मुझे दिन-रात मथे जाती है। कितनी ही बार आप से कहना चाहा, पर कहीं गुरुदेव क्रूद्ध होकर चन्द्रगुप्त से दूर न चले जायें, इसलिए आँसू आँखों में रोक लेता हूँ।

**चाणक्य**—तुम्हारी वीरता और भक्ति से यह ब्राह्मण प्रसन्न है। हम तुम्हें अभय-दान देते हैं, जो चाहो कह सकते हो।

चन्द्रगुप्त ने अपनी गर्दन झुका ली और पृथ्वी की ओर देखते हुए कहा—‘चन्द्रगुप्त चाहता है कि यूनान की नवनीत से भी कोमल और

फूलों की सुगन्ध से भी पवित्र गुणवती कौरनेलिया हेलन से उसका विवाह हो जाये।'

चाणक्य ओठों के अन्दर ही अन्दर मुस्कराये और धीरे से बोले—  
 “जीवन में कोई ऐसा प्राणी नहीं जिसे प्रणय की प्यास ने न सताया हो।  
 प्रेम धर्म और जाति को नहीं देखता। प्रेम जब हो जाता है तब फिर  
 किसी भी प्रकार पृथक् नहीं हो पाता, किन्तु मनुष्य वही है जिसने  
 कर्तव्य की किसी भी दशा में अवहेलना नहीं की। कर्तव्य-निष्ठ इष्ट  
 को प्रसन्न करके अपना अभीष्ट भी पा लेता है। हम वत्स से बहुत  
 प्रसन्न हैं। तुमने वीरता और कर्तव्यपरायणता से हमारे हृदय में मोह की  
 शिखा प्रज्वलित कर दी। चाणक्य चन्द्रगुप्त की इच्छा अवश्य पूरी करेगा।  
 यूनान की राजकुमारी भारत की सम्राज्ञी बनेगी। हेलन का चन्द्रगुप्त से  
 विवाह होगा।”

X

X

X

“यह क्या पाप नहीं है? हेलन से चन्द्रगुप्त का विवाह होगा!  
 विदेशी और विजातीय कन्या से सम्राट् चन्द्रगुप्त का परिणय किया  
 जायेगा! कलंक, घोर पाप! धर्म नष्ट किया जा रहा है।” हवा की तरह  
 यह चर्चा चारों ओर सुनाई देने लगी

एक ने दूसरे से और दूसरे ने तीसरे से कह-कह कर वितण्डा  
 खड़ा कर दिया। धर्म के कट्टरपंथी ब्राह्मण बिगड़ उठे। एक बड़े  
 आन्दोलन का रूप लेकर विरोध खड़ा हो गया।

पहुँचते-पहुँचते चाणक्य के कानों में भी विरोध की आवाज पहुँची।  
 चाणक्य ने एक भयंकर अट्टहास किया और अपने प्रिय शिष्य शार्ङ्गरव  
 से बोले—घोषणा करा दो कि विरोध करने वाले जितने भी धर्मान्ध  
 पण्डित हैं वे अपना-अपना तर्क लेकर हमसे भेंट करें। हम खुली सभा  
 में उनकी आपत्ति पर न्यायसंगत निर्णय करेंगे।

जनता भी बड़े विचित्र स्वभाव की होती है। एक ही क्षण में वह  
 बादलों के रंग की तरह बदल जाती है। बुद्धिमान जनता को सरलता से  
 खेलते हैं। जिसने बुद्धि से जनता को अपने अनुकूल बना लिया, वह  
 विजयी होता है।

चाणक्य की घोषणा से जनता ने करवट ले ली। पहले क्षण विरोध  
 की जो ज्वाला जाग उठी थी वह चाणक्य की खुले अधिवेशन में  
 विचार-विमर्श की बात सुनकर शान्त होने लगी। दूसरे दिन दुर्ग के



एक बड़े चौक में राज्य के बड़े-बड़े पण्डित अपने-अपने तर्क लेकर चाणक्य के पास पहुँचे। चाणक्य ने आदर से आगन्तुक महानुभावों को आसन दिया, अभिनन्दन करते हुए उनके गलों में फूलों की मालाएँ डालीं और फिर विनीत भाव से अत्यन्त सरल होकर बोले—

“आदरणीय पण्डितवृन्द ! आपके दर्शन कर मैं धन्य हुआ। आप जैसे विद्वानों की विद्या से ही इस देश की संस्कृति और जय जाज्वल्यमान है। मुझे अपने देश के आचार्यों पर गर्व है। आप निर्भय होकर अपनी आपत्ति कहें, मैं सुनने को प्रस्तुत हूँ।”

चाणक्य के शब्दों में कुछ ऐसा आकर्षण था कि एक पण्डित दूसरे से उनकी प्रशंसा करने लगा। ब्राह्मण-समूह में उनके गुणों की कानाफूसी होने लगी। बहुत झिझकते हुए एक हष्ट-पुष्ट ब्राह्मण उठे और काँपते हुए क्रुद्ध वाणी में बोले—

“हमने सुना है कि यूनान की राजकुमारी विजातीय कन्या हेलन से मगध-सम्राट् चन्द्रगुप्त का विवाह किया जा रहा है। यह अधर्म है, इससे वर्णसंकर बढ़ेगा। हम इस घोर अनर्थ को नहीं होने देंगे।”

ब्राह्मण की गर्जती हुई वाणी सुन उपस्थित ब्राह्मणों में गर्व की लहर दौड़ गई। क्षण भर पूर्व जो चाणक्य की प्रशंसा कर रहे थे वे उनकी निन्दा करने लगे। वक्ता पण्डित के साथ ही साथ आवाजें उठ खड़ी हुई—“यह विवाह नहीं हो सकता। यह नहीं होने देंगे।”

आवाजें सुनकर चाणक्य के भाल पर भी त्रिबली बल खाने लगी। पर क्रोध को दबाते हुए उन्होंने गम्भीरता से उत्तर दिया—“जनता जो नहीं चाहती वह चाणक्य भी नहीं चाहेगा पर यदि आप डूबना चाहेंगे तो चाणक्य अपने प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेगा। धर्म का अर्थ विनाश नहीं है। धर्म वही है जिसमें मानव-समाज का कल्याण हो। सामाजिक नियम अदलते-बदलते रहते हैं। जाति की विभिन्नता का अर्थ कर्म की विभिन्नता है। विवाह के लिए धर्म का कोई अनादि सिद्धान्त नहीं है। विवाह का सम्बन्ध मनुष्य के हृदय से है। जिसके गुण, कर्म, स्वभाव जिससे मिल जायें उसी से उसका विवाह कर देना चाहिये। यूनान की राजकुमारी किसी भारतीय शिक्षिता से कम नहीं। भारतीय साहित्य का अध्ययन उसकी वाणी पर है। वह एक आदर्श राजकुमारी है, जिससे चन्द्रगुप्त का विवाह कर हम मानवता के नाते का विस्तार करेंगे।”

चाणक्य और भी कुछ कहते पर बीच में ही उठकर वह हृष्ट-पुष्ट पण्डित धर्माधिकारी दाँत पीसता हुआ बोला—‘शत्रु की पुत्री से विवाह कर हम अपने देश को मृत्यु के मुँह में डाल देंगे। इन विदेशी छलनाओं का क्या भरोसा!’

**चाणक्य**—मैं आँखें बन्द करके राजकाज नहीं चलाता धर्माधिकारी जी! राजनीतिक दृष्टि से इस परिणय का जो शुभ परिणाम होगा उसकी कल्पना भी आप नहीं कर सकते। व्यर्थ की रूढ़ियों में आँखें बन्द कर आप देश के भविष्य को डुबाना चाहते हैं।

**धर्माधिकारी**—देश को हम डुबा रहे हैं या आप? आपने नन्द को मार डाला, राक्षस जैसे सुयोग्य मन्त्री को अपना शत्रु बना लिया और अब धर्म को डुबाने चले हैं! लेकिन जब तक हमारे दम में दम है हम अधर्म कभी न होने देंगे।

चाणक्य अन्दर ही अन्दर उबल उठे। अन्तर की ज्वाला से उनका रोम-रोम कम्पायमान हो गया, पर गम्भीरता से बोले—“राजनीति रूढ़ि से ऊपर है। मैं नहीं चाहता था कि नगर-पण्डित धर्माधिकारी के पन्ने पलटूँ। पर तुमने विवश कर दिया है। मेरे पास एक-एक व्यक्ति का चिट्ठा लिखा हुआ है। क्यों धर्माधिकारी जी! उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ था जब महानन्द ने नायन जाति की मुरा स्त्री को अपने घर में रख लिया था, जिस किसी स्त्री को सुन्दर देखते थे वे जबरदस्ती पत्नी बनाकर अपने घर में रख लेते थे?”

**धर्माधिकारी**—उनके इस काम की हमने कभी प्रशंसा नहीं की।

**चाणक्य**—पर किसी ने उनका विरोध भी नहीं किया।

**धर्माधिकारी**—विरोध न करते तो किसकी शक्ति थी कि उनका वध कर देता! महानन्द जैसा गुणी और बली राजा यदि कामी और मद्यप न होता तो चन्द्रगुप्त कभी सम्राट् नहीं हो सकते थे।

**चाणक्य**—मनुष्य की दुर्बलता ही उसके विनाश का कारण होती है। लेकिन तनिक विशाल हृदय से सोचो, यह विवाह प्रतिकूल नहीं अनुकूल है।

**धर्माधिकारी**—नहीं, यह नहीं हो सकता।

चाणक्य ने मन ही मन में सोचा कि सीधी उँगलियों से घी नहीं निकलेगा, समझाने से ये पण्डित नहीं बदल सकते, फिर तो कुटिलता



का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

सोचते-सोचते चाणक्य ने आँखें ल ल कर लीं और गर्जते हुए बोले—“टूट्टे की आड़ में छिपे हुए व्याध निरीह हिरन को नहीं देखते।”

कहते हुए चाणक्य ने उँगली में अपनी शिखा लपेटी, जिसे देखते ही उन पण्डितों के मध्य से एक पण्डित ने उठते हुए कहा—चोटी फटकार कर क्या हमें भी धननन्द की तरह डराना चाहते हो? हम ब्राह्मण हैं, हमारे तेज में वह शक्ति है जिसे तुम्हारी तलवार काट नहीं सकती।

**चाणक्य**—रहने दो ब्राह्मण देवता! तुम्हारा तेज तो मन्दिर की उस परिक्रमा तक है जिसमें तुम्हारी काली करतूतों का इतिहास लिखा हुआ है। सबकी आँखों से चाहे छिपा हो, लेकिन चाणक्य की आँखों में तुम्हारी वह घटना है जो तुमने दया की भीख के पर्दे से छिपाई हुई है! यदि अपना तेज सबको दिखाना ही चाहते हो तो उस कुमारी कन्या को बुलाऊँ जिसका चरित्र तुमने मन्दिर की मूर्ति के पीछे नष्ट कर डाला।

सुनते ही ब्राह्मण घबरा उठा। काँपते हुए उसने कहा—“नहीं नहीं...”

**चाणक्य**—नहीं, नहीं, क्या! अभी तो एक ही पृष्ठ पलटा है।

**ब्राह्मण**—बस, बस!

सब ब्राह्मण एक साथ—यह तो बड़ा भ्रष्ट ब्राह्मण है, इसने तो ब्राह्मणों की गौरवशालिनी उज्ज्वलता पर स्याही लगा दी।

**धर्माधिकारी**—इसका बहिष्कार कर दो! काला मुँह करके गधे पर चढ़ा कर बाजार में निकालो!

**ब्राह्मण**—जा-जा, बड़ा आया काला मुँह करने वाला! पहले अपने मुँह की स्याही तो पोंछ। मैंने ही तुझे उस दिन सोमाहुति की पत्नी से बचा लिया, नहीं तो वह तुझे कच्चा चबा डालती। मेरे पास तुम्हारे काले इतिहास का एक-एक अक्षर लिखा हुआ है। चाहे ये सब ब्राह्मण उस शूद्रा को न जानते हों जिसके यहाँ तुम्हारा खाना, पीना, सोना सब कुछ है; पर मैं जानता हूँ।

**धर्माधिकारी**—यह सब झूठ है।

**ब्राह्मण**—अपने पापों को कौन झूठ नहीं कहता! कहो, तुमने उस

सेविका की षोडशी कन्या के साथ अपनी इच्छा-पूर्ति करके और फिर औषधियों द्वारा उसके पेट में बैठे हुए अपने पाप को नहीं छिपाया ?

**सब ब्राह्मण—**छी: छी: छी:, यह हम क्या सुन रहे हैं। घोर कलियुग आ गया है।

**धर्माधिकारी—**कलियुग आ गया ! कलियुग तो तुम्हारे रोम-रोम में रम गया है जो तुम्हारे तेज से ब्राह्मण पर दोष लगाने वाला यह पापी जलकर राख न हो गया।

**ब्राह्मण—**ऐसे शिवजी महाराज थे तो तुम ही अपना तीसरा नेत्र खोलकर हमें जला डालते।

बातों-बातों में ब्राह्मण आपस में बुरी तरह लड़ने लगे। क्रोध से सभी का विवेक नष्ट हो गया। बात यहाँ तक बढ़ी कि गुत्थमगुत्था की नौबत आने लगी। जब चाणक्य ने देखा कि आग पूरी तरह लग चुकी है तो दोनों हाथ उठाकर कहा—“शान्त ब्राह्मणों, शान्त ! यह पशुता विद्वानों को शोभा नहीं देती। जो बात बीत गई उसे भूल जाइये और फिर मनुष्यों की तरह मानव के कल्याणार्थ सोचिये।”

“कौरनेलिया और चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध यूनान की शक्ति का भारत की चरण-सेविका बनने का नाता है। हेलन का चन्द्रगुप्त से विवाह का अर्थ यह होगा कि यूनान की लक्ष्मी हमारे पैरों में आ गिरेगी। वर्षों से चली आती हुई शत्रुता सम्बन्ध में बदलकर हम भावी भारत का सुन्दर निर्माण कर सकते हैं। तनिक गम्भीरता से यदि आप सोचें तो आप यूनान की संस्कृति को भारत की अधीनता स्वीकार करती पायेंगे। यह हमारे धर्म की श्रीवृद्धि है। संकटकालीन स्थिति में ब्राह्मण इतर किसी भी कन्या से क्षत्रिय राजा का विवाह धर्मसिद्ध है। राष्ट्रीय संकट के समय यह विवाह धर्मानुकूल है। ब्राह्मण के कन्धों पर ही भारत की गाड़ी खिंचती रहेगी। देश की, धर्म की और ब्राह्मण की वृद्धि चाहते हो तो यह सम्बन्ध मानना ही पड़ेगा।”

विचार और लज्जा से गर्दन झुकाते हुए ब्राह्मण शान्त हो गये। हततेज होकर सभी के कंठ से निकला—“हे महात्मा चाणक्य ! आप ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। आपकी वाणी से जो स्वर निकलता है, वह धर्म का स्वर है। मानव के कल्याण के लिए, देश के हितार्थ आप जो आदेश दें हम उसका पालन करने के लिए प्रस्तुत हैं।”

**चाणक्य—**आपके विवेक पर मुझे गर्व है। आपकी उदारता से



में हर्षित हुआ। अतः आप सबकी इच्छा से मैं घोषणा करता हूँ कि कल वसन्त पंचमी की तिथि को भारत के सम्राट् चन्द्रगुप्त का यूनान की राजकुमारी कौरनेलिया हेलन के साथ शुभ विवाह धर्मपूर्वक सम्पन्न होगा। इस शुभावसर पर सभी ब्राह्मणों को राजा की ओर से बहुत-सा धन दक्षिणा में दिया जायेगा। आप सभी देवतुल्य ब्राह्मण चन्द्रगुप्त के यश का वर्णन करते हुए इस धर्म विवाह के अनुकूल मंगल गान करें!

**सभी ब्राह्मण**—जय हो महात्मा चाणक्य की! जय हो सम्राट् चन्द्रगुप्त की! ऐसे राजा और ऐसे मन्त्री जिस देश में होते हैं, उसमें गरु, ब्राह्मण का ऐसे ही पालन होता है।

**चाणक्य**—अब आप जा सकते हैं। कल परिणयोत्सव में विधिपूर्वक पधारने की कृपा करें!

सभी ब्राह्मण 'अवश्य अवश्य' कहते हुए चल पड़े। वे आनन्द में आने वाले कल के गीत गाते हुए चले.....“वाह वाह! बड़ा धर्मात्मा मन्त्री है, बड़ा धर्मात्मा राजा है। शास्त्रों में जिस धर्म विवाह की चर्चा है, अक्षरशः सत्य वैसा ही धर्म विवाह कल सम्राट् चन्द्रगुप्त का होगा। हमारे यहाँ बहुत पहले से इस तरह के विवाह होते चले आ रहे हैं। सतियों में शिरोमणि 'गान्धारी' गान्धार देश की ही कन्या थी।”

ब्राह्मणों की वाणी से विरोध सहयोग में बदल गया। चारों ओर से मंगल-पुष्प बरसने लगे। वन्दनवारों में शुभकामनाओं की ध्वनि गूँज उठी 'हमारे सम्राट् का परम सुन्दरी विदेशी राजकुमारी से विवाह होगा। हमारे लिए यह अपूर्व गौरव की बात है।’

नागरिकों की बातों से उल्लास की वर्षा होने लगी। लग्न के समय सभी विवाह-मण्डप के समीप पहुँचे। ब्राह्मणों ने विधिवत् मंगल-चित्र पूरे हुए थे। निर्धारित समय पर चाणक्य के साथ चन्द्रगुप्त, सेल्यूकस और कौरनेलिया इस प्रकार आये जिस प्रकार वसन्त ऋतु में बहारें आती हैं।

उनके आते ही राजसी बाजे बजे, मंगल गीत गाये गये तथा चारों ओर से सुमन-वर्षा होने लगी।

ब्राह्मणों ने मन्त्रोच्चारण कर कहा—“अब कन्या वर को जयमाला पहनाये।”

कौरनेलिया हेलन ने अपनी दोनों भुजाएँ उठाकर इस प्रकार चन्द्रगुप्त के कण्ठ में जयमाला डाली जिस प्रकार फूलों से लदी हुई दो डालियाँ

हवा के झोंके से ऊपर उठ वृक्ष को फूल-माला पहना देती हैं। जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है, संयोग उसे कभी न कभी मिला ही देता है। प्रेम तपस्या है। जो संयोग के लिए तप करता है, अथक श्रम और श्रद्धा से वही मिलन की सुगंध प्राप्त कर पाता है।

चन्द्रगुप्त ने राजोद्यान में हेलन का हाथ प्यार से सहलाते हुए कहा—‘आज मेरे हाथ में स्वर्ग का सौन्दर्य है। तुम्हारी सुन्दरता, मधुरता और गुणज्ञता से चेतन क्या जड़ भी स्वर पा जाते हैं। न जाने तुममें कैसा मधु है, जिसमें तृप्ति भी है और प्यास भी!’

हेलन—प्रणय प्यास और तृप्ति का ही दूसरा नाम है।

चन्द्रगुप्त—प्रेम अमृत है, फिर न जाने समाज क्यों उसे विष कहकर पुकारता है।

हेलन—वासना की जब आध्यात्मिक परिभाषा करनी होती है तो हम ‘प्रेम’ शब्द का प्रयोग लेते हैं। प्रेम वासना का ही आध्यात्मिक नाम है।

चन्द्रगुप्त—राजा और प्रेमी में कौन सुखी है ?

हेलन—आप तो राजा और प्रेमी दोनों ही हैं, अपनी अनुभूति से ही उत्तर ले लो।

चन्द्रगुप्त—मैं समझता हूँ कि राजा से प्रेमी अच्छा है, जो प्यार के मधु के सहारे उजाड़ को भी फूलों में बदल सकता है। राजा का जीवन भी क्या जीवन है ! हर समय अधिकार के लिए लड़ते रहना, रक्त की धार में नहाते हुए अपने पर गर्व करना, कितनी विभीषिका है राजसुख में।

हेलन—आश्चर्य है कि प्राणेश प्रेमी होकर प्रेम के सत्य को न पहचान सके ! प्रेम वीरत्व और दुःख का दूसरा नाम है।

चन्द्रगुप्त—तुम्हारे लिए दुःख होगा, लेकिन मेरे लिए तो यह सबसे बड़ा सुख है। मैं इस समय ऐसा अनुभव कर रहा हूँ जैसे मेरे पास कोई अभाव नहीं।

हेलन—नाथ इसलिए सुख का अनुभव कर रहे हैं कि दुःख के चरम को पार कर चुके।

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव तो कहते थे कि दुःख सीमाहीन है; जीवन में जो दुःख की इति चाहता है वह भूल करता है।



**हेलन**—परम पूज्य गुरुजी सत्य कहते थे। आपने प्रेम में दुःख उठाकर सुख की अनुभूति की है, पर जब प्रेम असीमित दुःख देगा, तब दुःख की परिभाषा पहचान सकोगे।

**चन्द्रगुप्त**—वह दुःख प्रत्यक्ष नहीं तो क्या परोक्ष में भी उसका कोई अस्तित्व नहीं है? यदि है, तो मैं सुनना चाहता हूँ।

**हेलन**—सुनना चाहते हो तो कल्पना करो कि हेलन मर गई।

चन्द्रगुप्त ने कहती हुई हेलन के ओठों पर उँगली रखते हुए कहा—  
ऐसा न कहो! यह मैं कभी नहीं होने दूँगा।

**हेलन**—मृत्यु से कोई नहीं बचता, स्वामी!

**चन्द्रगुप्त**—यह तुमने क्या कह दिया हेलन! इसकी कल्पना से ही मेरा रोम-रोम काँप उठा। आज तुम्हारे राजा का जन्म-दिवस है। इस शुभ त्यौहार पर ये कैसे शब्द उच्चारण कर रही हो!

**हेलन**—आपमें तो प्रेम का वीरत्व है स्वामी! वीरों में शिरोमणि प्राणेश्वर! दुःख की कल्पना से कायर काँपते हैं। आप तो दुःखों में जीने वाले साकार दुःख महात्मा चाणक्य के शिष्य हैं। मनुष्य को हर दुःख का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिये।

देखिये, सामने से देवी सुवासिनी आ रही है। उनकी आँखों में आवेश झाँक रहा है, जान पड़ता है कुछ नाराज हैं।

हेलन और कुछ कहती, इससे पहले ही सुवासिनी वहाँ आ गई। वह आते ही ओजस्वी वाणी में बोली—“महामात्य ने सम्राट् को याद किया है। प्रतीक्षा के बाद वे मुझे यहाँ तक भेजने को विवश हुए।”

**चन्द्रगुप्त**—निःसन्देह मुझसे भूल हुई। गुरुदेव ने मुझसे कहा था कि मध्याह्न के तुरन्त बाद मुझसे मिलना, पर मैं प्यार के सिन्धु में गोता लगाता रह गया।

कहते हुए चन्द्रगुप्त तेजी से महामात्य चाणक्य के कक्ष की ओर चले।

भावना और भय के तर्क-वितर्क में उतरते-चढ़ते चन्द्रगुप्त शंकित-से प्रणाम करके गुरुदेव के सामने खड़े हो गये। चाणक्य ने अपनी अंगारे-सी आँखें उठाते हुए चन्द्रगुप्त की ओर देखा और सिंह-से दहाड़ते हुए बोले—जान पड़ता है तुम जीवन से ऊब चुके हो!

**चन्द्रगुप्त**—चूक हो गई गुरुदेव! क्षमा चाहता हूँ।

**चाणक्य**—राजा की तनिक-सी चूक सारे राष्ट्र की मृत्यु बन जाती है।

**चन्द्रगुप्त**—प्यार परिणाम को भूल जाता है गुरुदेव!

चाणक्य गुस्से से दाँत पीसते हुए खड़े हो गये। उन्होंने अपनी मुट्ठी दूसरी मुट्ठी पर इस तरह मारी जिस तरह कोई पत्थर पर पत्थर मारता है और फिर काँपते हुए अधरों से बोले—‘राजमद में गुरु का गुरुत्व ही भूल बैठा! कल का छोकरा मुझे पढ़ाने चला! बुद्धिमान पहले परिणाम निश्चित करते हैं बाद में क्रिया। चाणक्य के कोश में ‘असफल’ शब्द का जन्म नहीं हुआ। जो प्यार जीवन को गति नहीं देता वह प्यार नहीं, मरण है। यदि तुम अपनी इच्छा से ही चलना चाहते हो तो सँभालो अपना राज्य, मैं चला!’

कहते हुए चाणक्य ने चलने के लिए अपना पैर उठाया, चन्द्रगुप्त बालक की तरह उनके पैरों में लिपटकर रोने लगे—क्षमा कर दो गुरुदेव! अब ऐसी भूल कभी नहीं होगी।

**चाणक्य**—चाणक्य कभी किसी को क्षमा नहीं करता।

**चन्द्रगुप्त**—क्षमा नहीं करते तो चन्द्रगुप्त भी जीवित नहीं रहना चाहता।

कहते हुए चन्द्रगुप्त ने अपने हीरे की अँगूठी अपने मुँह की ओर बढ़ाई कि चाणक्य ने उसका हाथ पकड़ लिया। तुरन्त ही वे आग से पानी हो गये। चन्द्रगुप्त को उठाते हुए उन्होंने कहा—“पंचनद में मगध पर चढ़ाई की पूरी तैयारियाँ हो चुकी हैं। पाँच बड़े राजाओं को लेकर राक्षस और पुरु मगध पर आये ही चाहते हैं।”

**चन्द्रगुप्त**—जान पड़ता है उनकी मृत्यु उन्हें यहाँ ला रही है। आज्ञा हो गुरुदेव! मैं अपनी विशाल सेना लेकर उन पर टूट पड़ूँ और गुरुदेव के चरणों में सातों के सिर लाकर रख दूँ।

**चाणक्य**—मनुष्य के लिए आवेश में कहना जितना सरल होता है, करना उतना ही कठिन होता है। बात लड़ने से नहीं बनेगी।

**चन्द्रगुप्त**—तो फिर क्या, गुरुदेव!

**चाणक्य**—बात मेरे और तुम्हारे लड़ने से बनेगी।

**चन्द्रगुप्त**—नहीं गुरुदेव! यह कभी नहीं हो सकता।

**चाणक्य**—होगा यही होगा!



**चन्द्रगुप्त**—यह आप क्या कह रहे हैं ! आप यदि चन्द्रगुप्त के साथ न रहे तो चन्द्रगुप्त और साधारण मनुष्य में कोई अन्तर नहीं रहेगा ।

**चाणक्य**—अन्तर हो या न हो, तुम्हारे द्वारा महामात्य चाणक्य अपमानित होकर पदच्युत होगा ।

**चन्द्रगुप्त**—यह मैं कैसे कर सकूँगा ?

**चाणक्य**—जिस प्रकार परशुराम ने अपनी माँ का सिर काटा था । बस, अब तुम दरबार में जाओ ! मैंने अपनी आज्ञा से राजाज्ञाओं को रोक दिया है, तुम्हें इस अपराध के बदले के मुझे पदच्युत करना होगा ।

□□

ज्योति-स्तम्भों में प्रच्छन्न दाह ! तुम्हारा मौन कितना भव्य है ! तुम पथिकों को प्रकाश देते हो और सम्राटों को स्वागत, पर क्या किसी ने तुम्हारे अन्तश्चेतन के पीड़ा भरे पृष्ठ पढ़े हैं ? शायद शलभ तुम्हारी वेदना में तादात्म्य होने के लिए ही शहीद होते हैं ।

जगमगाते मार्गों में होते हुए सम्राट् चन्द्रगुप्त सम्राज्ञी हेलन के साथ राजदरबार में आये । दरबार में आते ही चारों ओर देखते हुए उनकी आँख लाल हो गई । क्रोध से लाल हुए सम्राट् ने कहा—‘हमारी वर्षगाँठ पर मातम की झनकार क्यों आ रही है ? क्यों नहीं केले के द्वार लगाये गये ? क्यों नहीं फूलों से राज-प्रासाद सजाया गया ? क्यों नहीं सुरभि उड़ती ? क्यों नहीं नृत्य की रुनझुन सुनाई पड़ती ? गायक, नृत्य, कलाकार सब कहाँ मर गये ?’

राजसभा में सन्नाटा छा गया । किसी के मुख से एक शब्द भी न निकला । अन्तोगत्वा वृद्ध अमात्य कात्यायन उठे और विनम्रता से बोले—परम पूज्य महामात्य चाणक्य की आज्ञा से समारोह स्थगित कर दिया गया ।

**चन्द्रगुप्त**—राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाले चाणक्य कौन होते हैं ? सम्राट् मैं हूँ न कि चाणक्य ।

**कात्यायन**—शान्त, सम्राट् शान्त ! कहीं चाणक्य ने सुन लिया और उन्हें क्रोध आ गया तो परिणाम भयंकर निकलेगा ।

**चन्द्रगुप्त**—चाणक्य से तुम डरो, मैं नहीं डरता । मुझे राजा उन्होंने नहीं बनाया, अपनी भुजाओं से राजा बना हूँ ।

हेलन काँपती हुई धीरे से बोली—यह आपको क्या हो गया है स्वामी ! खुले अधिवेशन में महात्मा चाणक्य का अपमान कर रहे हैं ।

**चन्द्रगुप्त**—चुप रहो सम्राज्ञी ! राजकार्य में हम किसी का परामर्श नहीं चाहते ।

एक अधिकारी की ओर देखते हुए कहा—‘जाओ, महामात्य चाणक्य से कहो कि सम्राट् ने तुरन्त उपस्थित होने की आज्ञा दी है ।’

अधिकारी काँपता हुआ चला गया ।



चाणक्य अपने कक्ष में कुछ पढ़ रहे थे। अधिकारी ने अभिवादन करके लड़खड़ाती हुई वाणी में कहा—“सम्राट् ने आपको याद किया है।”

**चाणक्य**—सम्राट् से कहो कि चाणक्य एक बड़े कार्य में व्यस्त हैं, वे अभी नहीं आ सकते।

**अधिकारी**—उन्होंने आज्ञा दी है कि तुरन्त उपस्थित हों।

चाणक्य ने माथे में बल डालते हुए अपनी आँखें ऊपर उठाईं। अधिकारी उन्हें देखते ही जड़वत् खड़ा हो गया। दाँत पीसते हुए वे बोले—“क्या चन्द्रगुप्त ने आज्ञा दी है? उस कल के बच्चे राजा की यह शक्ति! जान पड़ता है चन्द्रगुप्त की मृत्यु निकट आ गई।”

सुनते ही अधिकारी मृतक-सदृश खड़ा रह गया और चाणक्य धधकते हुए वैश्वानर की तरह राजदरबार में पहुँच चन्द्रगुप्त के सामने खड़े हो गये। व्यंग्यात्मक मुस्कराते हुए वे बोले—“कहिये सम्राट्! क्या आज्ञा है?”

चाणक्य को नीचे से ऊपर तक देखते ही चन्द्रगुप्त अन्तर शरीर से ऐसे ही काँप उठे जैसे भूकम्प से धरती काँप उठती है। बड़ा साहस करके उन्होंने कहा—“मैं जानना चाहता हूँ कि आजकल दिन-प्रतिदिन मेरी आज्ञाओं का उल्लंघन क्यों हो रहा है?”

**चाणक्य**—चन्द्रगुप्त! चाणक्य से जो उत्तर माँगता है, वही अपनी मृत्यु को निमन्त्रण देता है। तुम इस प्रकार खुले अधिवेशन में चाणक्य का अपमान करके क्या वही फल भोगना चाहते हो जो महानन्द ने भोगा था?

**चन्द्रगुप्त**—इन धमकियों से डरने वाले साहसी चन्द्रगुप्त नहीं। चाणक्य ने मेरे पिता को मारकर भी भारी अपराध किया है। वह आग अभी तक शान्त नहीं हुई। अपराध पर अपराध करके मेरी आग धधकाते न जाओ, नहीं तो...।

**चाणक्य**—नहीं तो क्या?

**चन्द्रगुप्त**—मैं तुमको पदच्युत कर दूँगा।

चाणक्य ने गुस्से से उबाल खाया। वे चक्कर काटती हुई आग-से दिखाई देने लगे। फैलती हुई ज्वाला की तरह फैलते हुए वे बोले—“जिसे मैंने राजा बनाया वही मुझे पदच्युत करने की धमकी दे रहा है!

पदच्युत होने का भय तो उसे होता है जिसे अधिकार की चाह होती है। यह ले अपना अधिकार ! जिसने तुझे राजा बनाया है वह तुझे सिंहासन से उतार भी सकता है ।”

कहते हुए चाणक्य अधिकार-चिह्न फेंक तेजी से चले गये। चन्द्रगुप्त अपने पूरे बल से अन्तर भावों को दबाते हुए उठे और गम्भीरता से बोले—हमारा राज्य किसी व्यक्ति-विशेष की चाह से नहीं चलता। चाणक्य चले गये तो चले जायें।

**कात्यायन**—ऐसे विषम काल में नीतिकार चाणक्य का हम से रूठ जाना अच्छा नहीं हुआ सम्राट् !

**चन्द्रगुप्त**—अच्छा नहीं हुआ तो तुम भी रूठ जाओ !

**कात्यायन**—आज आपको क्या हो गया सम्राट् ! आपकी बातों पर जाऊँ तो पलभर में नाराज हो सकता हूँ, लेकिन मगध राज्य की नींव को देखकर मौन हो जाता हूँ। यह वह नींव है जिसमें मेरे बुजुर्गों की अस्थियाँ गड़ी हुई हैं। जिस पौधे को अपने हाथ से सींचा, उसे अपने हाथ से उखाड़ते मुझे दुःख होता है। सँभलो सम्राट् ! सँभलो, अब भी समय है, बिगड़ी हुई बात बना लो !

**चन्द्रगुप्त**—तुम्हारा अर्थ है कि चाणक्य के पैर चूमूँ ! नहीं, यह नहीं हो सकता। उस घमंडी ब्राह्मण की बहुत सेवा कर चुका। अब देखता हूँ, वह मेरा क्या करता है।

**कात्यायन**—प्रतीक्षा की बहुत आवश्यकता न होगी। पंचनद से काले बादल चले आ रहे हैं। जब कल दिन में रात देखोगे तो चाणक्य को याद करके रोओगे।

**चन्द्रगुप्त**—तुम चिन्ता न करो, चन्द्रगुप्त के हाथों की तलवार अभी जीवित है। प्रधान सेनापति ! सेना हर समय तैयार रहे, हम किसी भी क्षण पंचनद पर आक्रमण की आज्ञा दे सकते हैं।

कात्यायन गहरी चिन्ता में पड़ गये और चन्द्रगुप्त अकड़ते हुए महल में चले गये। इधर चन्द्रगुप्त महल में पहुँचे, उधर शत्रुओं के शिविरों में घी के दीपक जलने लगे।

विराध हर्ष से उछलते हुए चिन्ता में चित्रखिंचित-से विराजमान राक्षस के निकट गये और एक ही श्वास में कह गये—आपने सुना, चाणक्य और चन्द्रगुप्त में गहरी लड़ाई हो गई ! दोनों एक-दूसरे के प्राणों के ग्राहक बन बैठे हैं।



सुनते ही राक्षस अपनी चौकी पर खड़े हो गये और धड़कते हुए हृदय से बोले—क्या सच ?

**विराध**—सच, बिल्कुल सच ! हर ओर आज यही चर्चा है ।

राक्षस उत्तर में कुछ कहते इससे पहले ही जीवधर्म ने धमकते हुए कहा—चाहे सारे संसार की वाणी पर इसकी चर्चा क्यों न हो, पर मुझे तो इसमें कुछ रहस्य जान पड़ता है ।

**राक्षस**—रहस्य कुछ नहीं, चाणक्य क्रोधी ब्राह्मण है । चन्द्रगुप्त की तनिक सी ही बात पर उसने रुद्र रूप धारण कर लिया होगा ।

**विराध**—बिल्कुल यही बात है । सुना है चन्द्रगुप्त ने राजमद में चाणक्य का अपमान कर दिया, इससे क्रुद्ध होकर उन्होंने मन्त्री-पद का त्याग कर दिया है । विश्वस्त सूत्र से यह भी पता चला है कि चाणक्य अब चन्द्रगुप्त का विनाश करने के लिए कटिबद्ध है ।

**राक्षस**—विनाश के समय बुद्धि उलटी हो जाती है । निस्सन्देह अब चाणक्य के नाश के दिन आ गये । हमें अब आक्रमण में देर नहीं करनी चाहिए ।

**विराध**—देर की क्या आवश्यकता है !

**जीव**—कभी-कभी पीछे हटता हुआ शत्रु भी झपट कर आक्रमण कर बैठता है । इतनी जल्दी ही क्या है ! तनिक इस क्रिया की प्रतिक्रिया देख कोई चरण उठाना उचित होगा ।

**राक्षस**—जीवधर्म भी ठीक कहते हैं । शीघ्र ही कुछ करने से पहले भली-भाँति विचार कर लेना चाहिये । तुम महाराज पुरु के पास जाओ और उनसे पूछो कि इस सहसा मिले शुभावसर पर आपकी क्या सम्मति है !

विराध पुरु के पास चल दिये । विराध अभी द्वार तक ही पहुँचे थे कि भागुरायण पहले ही सूचना पाकर द्वार पर दौड़ते हुए आये और हर्षातिरेक में बोले—सुनहरे भविष्य के लिए आपको बधाई है ! अब वह दिन दूर नहीं जब आप सारे भारत के एकमात्र गुप्ताधिकारी होंगे ।

**विराध**—अवसर आने दो, सहायक अधिकारी तुमको भी बना दिया जायेगा । हम महाराज पुरु के पास जा रहे हैं, क्या कर रहे हैं वे ?

**भागुरायण**—गहरी नींद में सो रहे हैं । यह सूचना सुनकर कुमार भी उनसे मिलना चाहते थे, बहुत जगाया पर जागे नहीं । कहीं अस्वस्थ

न हो जायें, इसलिए उनको सोने ही दिया गया। यदि बहुत आवश्यक कार्य है तो आप जाकर जगा लीजिये।

विराध महाराज पुरु के शयन-कक्ष की ओर चल दिये और भागुरायण ने अपनी कोठरी की ओर प्रस्थान किया। राह में उनको रसोइया मिला, जिससे उन्होंने धीरे से पूछा—पुरु कब तक सोते रहेंगे?

रसोइया—तीन दिन तक किसी भी दशा में नहीं जाग सकते।

भागुरायण—वाह भासुरक! अब जय हमारे हाथ में है।

भासुरक—तो खिलाइये इसी बात पर लड्डू!

भागुरायण—लड्डू तो पाकशाला में रहने से अब हर क्षण ही खाते रहते होंगे, घी बूरा खाते-खाते तुम्हारा पेट निकलने लगा है। अच्छा, अब तुम जाओ! जिस दिन पूरी सफलता मिलेगी उस दिन मोतीचूर के लड्डूओं में तुम्हें दबा दिया जायेगा।

रसोइया चला गया और भागुरायण कुमार मलय के पास पहुँचे। पूरी तरह से मलय के सामने भी न हो पाये थे कि राह से ही कहना शुरू किया—गजब हो गया महाराज! गजब हो गया!

मलय—क्या है भागुरायण!

भागुरायण—महाराज पुरु को न जाने किसी ने क्या खिला दिया है कि जगाने से जागते ही नहीं।

मलय—क्या महाराज को किसी ने कुछ खिला दिया?

कहते हुए वे भागुरायण के साथ महाराज की शैया के पास आये। महाराज की शैया के पास पहले से ही विराध उपस्थित थे। उनको देखते ही भागुरायण ने कहा—आप जानते हैं इनको क्या हो गया?

विराध—पता नहीं महाराज को क्या हो गया?

भागुरायण—मेरा ख्याल है महाराज को किसी ने विष खिलाया है।

कुमार—जब से भोजन किया है, तब से इसी प्रकार पड़े हैं।

भागुरायण—अवश्य ही रसोइये की कोई करतूत है।

तुरन्त ही रसोइये को बुलाया गया। काँपता हुआ रसोइया पुरु के शयन-कक्ष में आया। उसने देखते ही कुमार ने आँखें निकालते हुए कहा—महाराज को क्या खिलाया है?

रसोइया—कुछ नहीं महाराज! मैंने तो कुछ नहीं खिलाया।



**भागुरायण**—तो फिर किसने खिलाया है ?

**रसोइया**—मुझे तो परिचारिका ने एक गोली लाकर दी थी, कहा था कि यह राक्षस ने भेजी है, इसको महाराज को भोजन में खिला देना, इससे महाराज की आयु बढ़ जायेगी।

**कुमार**—क्या राक्षस ने गोली भेजी थी ?

**विराध**—नहीं, यह झूठा है।

**भागुरायण**—झूठ और सच का पता अभी लग जायेगा। राक्षस को बुला लीजिये; पर उनको यह पता न चले कि क्यों बुलाया जा रहा है। तब तक इस मोटे रसोइये को बन्दी बना लिया जाये।

रसोइया बन्दी बना लिया गया और राक्षस ससम्मान उपस्थित किये गये। उनके आते ही कुमार ने कहा—रसोइया कहता है कि आपने महाराज को विषैली गोली खिलाई है।

**राक्षस**—रसोइया झूठ कहता है।

**भागुरायण**—मुझे एक उपाय सूझता है कुमार ! इस रसोइये और राक्षस की तलाशी ली जाये। जिसके पास विषैले चिह्न निकलें उसे दण्ड मिलना चाहिये।

**राक्षस**—धूर्त ! मेरा नमक खाता है और मेरी ही जड़ें काट रहा है।

**भागुरायण**—मैं तो न्याय की बात कर रहा हूँ राक्षसराज ! आपकी पवित्रता सिद्ध करने के लिए ही मैंने यह सोचा है। यदि आप निर्दोष हैं तो आपको आपत्ति क्या है ?

**राक्षस**—मुझे कुछ आपत्ति नहीं है।

**भागुरायण**—कुमार ! देखो राक्षस के वस्त्र और लो इस रसोइये की झाड़ाबुहारी।

कुमार ने दोनों की झाड़ाबुहारी लेनी शुरू की। पर बहुत देर न लगी कि राक्षस के वस्त्रों में गोलियों की एक पुड़िया निकली और उसी प्रकार की एक गोली भासुरक की जेब से निकाली गई। तलाशी के बाद जैसे ही परीक्षा के लिए वह गोली कुत्ते को खिलाई गई, वैसे ही वह सो गया।

घोर विष-प्रयोग देखते ही राक्षस नीचे से ऊपर तक काँप उठे। शंका और क्रोध से वे आपे में न रहे, काँपती हुई वाणी से बोले—

“निस्सन्देह यह शत्रु का षड्यन्त्र है।”

**कुमार**—सच को झूठ और झूठ को सच बनाना मनुष्य की बुद्धिमानी का प्रमाण है।

**राक्षस**—आप सोचिये, मैं यह सब क्यों करता।

**भागुरायण**—राज्य के लालच में मनुष्य अनुचित से अनुचित कर्म भी कर बैठता है।

**कुमार**—अब क्या करें?

**भागुरायण**—मेरे विचार से जब तक महाराज सचेत न हों तब तक राक्षस और रसोइये को बन्दी बनाकर रखना चाहिये।

**राक्षस**—धूर्त! कपटी! जिस हाँडी में खाता है उसी हाँडी में छेद कर रहा है।

**भागुरायण**—नमक हलाली का प्रमाण तो महाराज की मूर्च्छा प्रत्यक्ष है।

**राक्षस**—विधाता जब किसी का अनिष्ट करता है तो हाथ में आया हुआ हंस भी उड़ जाता है। कुमार! इस कुचक्र में पड़कर तुम अपने सोने के दिन मिट्टी में बदल रहे हो।

**कुमार**—जब तक महाराज सचेत न हों तब तक मैं कुछ नहीं कर सकता।

कुमार कुछ और भी कहना चाहते थे कि सेनानायक हवा की तरह दौड़ा हुआ आया और एक ही श्वास में कहने लगा—“उलटी गंगा बहने लगी कुमार! जो पाँच राजा हमारे साथ मिलकर मगध पर आक्रमण करने वाले थे, उनमें से कश्मीर नरेश, कुलूताधिपति और सिन्धुसेन कुटिल चाणक्य के कहने से हमारे शत्रु हो गये हैं। शेष दो राजा चाणक्य के साथ इन तीनों बड़े राजाओं की सन्धि होने के कारण आपसे आप डर गये। उनके पत्र आ गये कि हम युद्ध में भाग लेने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं।”

तुरन्त ही एक दूसरा सेनानायक आ धमका और उसने भी एक श्वास में कहा—“चाणक्य ने पत्र भेजा है कि या तो पंचनद को हमारे अधीन कर दो अन्यथा ईट से ईट बजा देंगे। हम छोटे-छोटे राज्यों में भारत को बँटा हुआ नहीं देख सकते। तुम्हें साथ लेकर हम गर्वीले चन्द्रगुप्त का अभिमान भी भंग करेंगे। उसके बाद सारे भारत पर एक



झंडा लहरायेगा।”

सुनकर मलय को क्रोध आ गया, आवेश में अपनी तलवार खींचते हुए उन्होंने सेनानायक से कहा—सेना तैयार करो! मृत्यु या जय—हम दो में से एक को चुनेंगे।

राक्षस ने अपना माथा ठोका और फिर शान्त से बोले—षड्यन्त्र और क्रोध में अब स्वयं को खोने की अपेक्षा सुबुद्धि से काम लो! अब भी समय है।

**कुमार**—समय कुछ नहीं है, जान पड़ता है आप शत्रुओं से मिले हुए हैं, तभी तो नये-नये फूल खिल रहे हैं।

**राक्षस**—शत्रु और सखा की पहचान जिसे नहीं होती, वह मझदार में डूबता है।

**कुमार**—जो डूबने से डरता है उसे पार जाने की चाह नहीं करनी चाहिए। जो केवल परिणाम को ही सोचता रह जाता है, वह सदैव हारता है। हमने जब भी हार के भय से पैर पीछे हटाया तभी जय हम से दूर हट गई। जो दूसरों के सहारे चलना चाहते हैं, वे अपने लिए नहीं जीते। कुमार को अपनी तलवार पर विश्वास है। इस रुधिरप्रिया के सामने किसकी शक्ति है जो सिर उठा सके! एक चाणक्य क्या, सौ चाणक्य मिलकर पंचनद के वीर जवानों को नहीं जीत सकते। ये वे वक्ष हैं जिन पर सिकन्दर जैसों के भाले टूट चुके हैं। आप पर जो विश्वास करता है, वह भूल करता है।

सुनते ही राक्षस की आँखें गीली हो गईं। वे अन्दर ही अन्दर अपने भाग्य को फटकारते हुए कहने लगे—“जिसके बुरे दिन आते हैं उसकी भली बात भी बुरी हो जाती है। विधाता की जैसी इच्छा!”

कुमार आवेश में कुछ असंयत-से हो गये! चारों ओर विचित्र आँखों से देखते हुए उन्होंने आज्ञा दी—इस रसोइये को बन्दी बना लिया जाये!

राक्षस की ओर देखते हुए आप विश्राम कर सकते हैं।

**राक्षस**—और कुमार?

**कुमार**—कुमार की चिन्ता अब आपको नहीं करनी चाहिए, उसकी चिन्ता के लिए उसके हाथ की तलवार पर्याप्त है। यह तलवार लेकर मैं युद्ध-भूमि में शिव की तरह ताण्डव-शून्य करूँगा।

कहते हुए मलय तलवार फड़फड़ा कर सेना-शिविर की ओर चल दिये। राक्षस ने भागुरायण की ओर भृकुटी तान कर देखा, भागुरायण ने भी उत्तर में वैसे ही आँखें निकालीं। राक्षस समझ गये कि भागुरायण हो न हो हममें मिला हुआ कोई गुप्तचर है।

कुछ कहे बिना ही राक्षस प्रहरियों के मध्य गर्दन झुकाये विश्राम-गृह की ओर आ गये। यहाँ विराध और जीवधर्म पहले ही उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अपने स्वामी राक्षस की आकृति एकदम बदली हुई देखकर जीव ने कहा—जान पड़ता है कोई नई बिजली चमक उठी।

**राक्षस**—बिजली चमक ही नहीं चुकी, टूट भी चुकी।

**जीव**—इतने निराश क्यों हैं स्वामी!

**राक्षस**—आशा की अब कोई किरण शेष नहीं रही। जिस पेड़ की छाया में विश्राम की आशा थी, वही प्रलय बनकर हम पर टूट पड़ा।

**जीव**—हमने पेड़ को पहचानने में चूक की होगी स्वामी!

**राक्षस**—संसार में कौन वह मनुष्य है जो चूक नहीं करता!

**जीव**—संसार में क्या नहीं है स्वामी! चाणक्य ऐसा ही मनुष्य है जो चूक नहीं करता।

**राक्षस**—हमारे सामने शत्रु की प्रशंसा करके क्या हमारे ही सेवक हमारा उत्साह भंग कर रहे हैं।

**जीव**—नहीं स्वामी! यह कहकर सेवक चाहता है कि स्वामी चाणक्य की तरह विश्वास को अपना सहचर बना लें। आत्म-विश्वास सबसे बड़ा साथी है।

**राक्षस**—इस संकटकालीन स्थिति में क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

**जीव**—आप कहीं छिप जाइये, मैं अकेला मृत्यु के मुँह में कूदकर शत्रु का नाश कर दूँगा।

**राक्षस**—तुम्हारी स्वामिभक्ति से मैं धन्य हूँ। लेकिन यह सब तुम कैसे करोगे?

**जीव**—जो एक वीर स्वामिभक्त को करना चाहिए। मोम, मिट्टी का तेल और कपूर आदि डालकर शत्रु के शस्त्रागार में आग लगा दूँगा।



**राक्षस**—आग लगाकर निकलोगे कैसे ?

**जीव**—जिस तरह चक्रव्यूह में जाकर अभिमन्यु नहीं लौटा था, उसी प्रकार जीव भी नहीं आयेगा। मैं शस्त्रों की आड़ में छिप कर बैठूँगा और वहीं आग लगाकर यह नश्वर शरीर भी नष्ट कर दूँगा। अब सोचने की आवश्यकता नहीं है स्वामी ! सुना है शत्रु ने मोर्चाबन्दी कर ली है, कल सुबह ईंट से ईंट बजाने की कामना से शत्रु सुख की नींद जाग रहा है। मुझे आज्ञा दो स्वामी ! और आप उधर चन्द्रगुप्त को अपने साथ मिलाने का यत्न करो। यहाँ मैं चाणक्य के कुचक्र असफल करता हूँ, उधर आप चन्द्रगुप्त से सन्धि कर लो और उसे साथ लेकर गर्वीले राज्य-लोलुप राजाओं पर चढ़ाई कर दो।

कहकर जीवधर्म स्वामी के चरण छू चल पड़ा। चलते-चलते वह वहाँ आ पहुँचा जहाँ कठोर पहरे में शत्रु का शस्त्रागार था। चारों ओर से जाने का कोई मार्ग न देखकर वह बहुत देर तक तो सोचता रहा कि क्या करूँ ! जब कोई राह न निकली तो उसने अपने बदन पर मिट्टी का तेल छिड़का, हाथ में मोम की पेटी ली और उसी पेटी में मिट्टी के तेल की बोतलें रखीं। एक झटके के साथ वह धरती और आकाश को देख मृत्युञ्जय की तरह खड़ा हो गया। शस्त्रागार के पास जब वह प्रहरियों से कुछ ही दूर रह गया तो उसने तुरन्त अपने बदन में आग लगाई और दावानल की तरह शत्रु के शस्त्रागार की ओर दौड़ा। आग को देखते ही किसी सैनिक का साहस न हुआ कि उसे पकड़े।

सब इस टूटती हुई बिजली को देखते ही रह गये कि आग का पुतला शस्त्रागार में घुस गया। डेरों में आग लगी और भयंकर विस्फोट होने लगे। आक्रान्ता इस आकस्मिक आक्रमण से घबराकर भाग खड़े हुए। उनके पैर रोकने से भी न रुकते थे। बड़ी कठिनता से वे एक सुरक्षित स्थान पर जाकर रुके।

बात की बात में भयंकर विस्फोट का समाचार सब जगह फैल गया। राक्षस ने जब सुना तो उनकी एक आँख से आँसू और दूसरी से हर्ष की फुहारें बरसने लगीं। उन्होंने विराध की कमर पर हाथ रखते हुए कहा—विजय तो मिली, पर वीर जाता रहा ! जीव जैसा स्वामिभक्त जीवन में दूसरा नहीं मिला। कहो, चन्द्रगुप्त का क्या समाचार है ?

**विराध**—चन्द्रगुप्त चिन्ता में हैं कि चाणक्य के चले जाने पर इतना बड़ा राज्य कैसे संचालित हो।

**राक्षस**—यह शुभावसर निकलना नहीं चाहिये। चन्द्रगुप्त यदि किसी तरह से हमारे चंगुल में आ जाये तो चाणक्य को सरलता से पराजित किया जा सकता है।

**विराध**—लो वे सामने से कुमार भी आ रहे हैं, मुख-मुद्रा से प्रसन्नता बरस रही है।

कुमार ने आते ही राक्षस का अभिवादन किया और हर्षोद्रेक से बोले—“प्रकृति ने हमारा साथ दिया, शत्रु के शस्त्रागार में आग लग गई, आक्रान्ता अपनी आग में स्वयमेव जल गये। महाराज भी मूर्च्छा से जाग चुके हैं, पर मूर्च्छा का रहस्य अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका।”

**राक्षस**—दैव जब अनुकूल होता है तो प्रतिकूल भी अनुकूल हो जाते हैं। लेकिन कुमार! तुम नहीं जानते इस जय का कितना मूल्य चुकाना पड़ा है। मेरा प्राण जीवधर्म इस जय की बलि चढ़ गया।

**कुमार**—हमें क्षमा कर दीजिये अनजाने में आपका अपमान हो गया।

**राक्षस**—शुभचिन्तक अपनों के साथ अपमान होने पर भी बुराई नहीं करते। देख लिया राक्षस से शत्रुता करने का परिणाम! चाणक्य हमारे ही साथियों को लेकर हमको जीतना चाहते थे! धूर्त राजा राज्य के लालच में अन्धे होकर राक्षस के सामने तलवार खींचकर खड़े हो गये! अब चाणक्य के साथ केवल चित्रसेन रह गये हैं। मैं शीघ्र ही चन्द्रगुप्त से सन्धि करके चाणक्य को बन्दी बना लूँगा और चित्रसेन शूली पर टँगा हुआ होगा।

राक्षस सम्भवतः कुछ और भी कहते, पर एक स्वेदस्नात सैनिक ने प्रवेश करते हुए कहा—“गजब हो गया कुमार! चन्द्रगुप्त के संरक्षण में एक विशाल सेना पंचनद की ओर बढ़ी चली आ रही है। सुना है चित्रसेन भी उसके साथ है।”

**राक्षस**—जान पड़ता है चन्द्रगुप्त और चाणक्य का झगड़ा बनावटी था। इस कुटिल ने हम मिले हुए राजाओं को आपस में लड़वा कर मारने के लिए यह भयंकर षड्यन्त्र रचा था।

**कुमार**—किन्तु अब क्या किया जाये?

**राक्षस**—जो वीर को करना चाहिये। दुर्ग की रक्षा के लिए रणबाँकुरे वीर सैनिकों को लोहे की दीवारों की तरह खड़ा कर दो! पल भर भी



कुछ और सोचने का अवसर नहीं है। जय या मृत्यु, जो भी मिले उसे गले लगा लो !

मलय ने तलवार खींचकर क्रोध में हुँकारते हुए कहा—वीर सेनानायक ! तुम अपनी सेना लेकर चन्द्रगुप्त को राह में रोको, मैं अपनी सेना सहित दुर्ग के द्वार पर जा रहा हूँ। आज या तो रात का चाँद हमें नहीं देखेगा या चन्द्रगुप्त का सिर पंचनद की मिट्टी में लुढ़कता दिखाई देगा। जय रुधिरप्रिया ! जय चण्डी !

आज्ञा पाते ही सेनानायक चल दिये। किन्तु द्वार से बाहर भी न निकले थे कि एक सैनिक ने आकर सूचना दी—चन्द्रगुप्त की विशाल सेना से हमारे थोड़े-से सिपाही भूखे शेरों की तरह लड़े, किन्तु परिणाम मृत्यु के अतिरिक्त कुछ न निकला। चन्द्रगुप्त की सेना मारती-काटती दुर्ग की ओर बढ़ी चली आ रही है।

**सेनानायक**—चली ही नहीं आ रही, आ गई ! वह देखो, घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई दे रही है। सेना के पैरों से उड़ती हुई आँधी हमें मिटाने को मृत्यु की तरह आ रही है। किन्तु हम मृत्युञ्जय हैं, मरने से पहले मौत को भी मार देंगे। सैनिक ! तुम कुमार से कहो कि वे महाराज को लेकर गुप्त राह से बाहर निकल जायें, मैं चन्द्रगुप्त से लोहा लेता हूँ।

सैनिक उधर गया कि चन्द्रगुप्त की सेना ने दुर्ग घेर लिया। पहले ही आक्रमण में सेनानायक वीरगति को प्राप्त हो गये और सेना दुर्ग में घुस गई।

सैनिक अपनी पूरी बात कुमारी से कह भी न पाया था कि कुछ सैनिकों के साथ रक्त भीगी हुई तलवार हाथ में लिये चन्द्रगुप्त ने प्रवेश करते हुए कहा—अब तलवार निकालने का प्रयत्न न करो, नहीं तो यह हरा-भरा राज्य रक्त की धारा में बदल जायेगा।

**कुमार**—विश्वासघाती ! अच्छा हुआ तू ही यहाँ आ गया। जिस आस्तीन के साँप को दूध पिलाया था, आज उसका सिर काट कर अपनी ज्वाला शान्त करूँगा।

**चन्द्रगुप्त**—तुम भूल रहे हो, चन्द्रगुप्त कभी किसी के साथ विश्वासघात नहीं करता। वह केवल देशद्रोही का शत्रु है। तुम यदि गले मिलो तो मैं आज भी गले मिलने के लिए प्रस्तुत हूँ।

**कुमार**—मैं और तुम तो आज तलवार से गले मिलेंगे।

कहते हुए कुमार ने तलवार खींची और दोनों का प्रत्यक्ष युद्ध होने लगा। दोनों ही वीर थे। चन्द्रगुप्त की तीखी तलवार अवसर पाकर मलय के दाहिने हाथ में घुस गई, किन्तु तुरन्त ही कुमार ने तलवार बायें हाथ में सँभाल चन्द्रगुप्त की दाहिनी भुजा घायल कर दी।

दोनों बाँके वीरों की तलवारें रक्त की लाल विभीषिका मचा ही रही थीं कि सहसा दौड़ती हुई छाया दोनों के बीच में आकर खड़ी हो गई।

दोनों की तलवारें टकराकर रुक गईं। मलय ने कड़कते हुए कहा—  
तुम बीच से हट जाओ, छाया!

**छाया**—बहिन की आँखों के सामने एक ही देश के निवासी दो भाइयों का युद्ध नहीं हो सकता। यदि दोनों को तलवार ही चलानी है तो पहले मेरी गर्दन काटो!

छाया को देखते ही चन्द्रगुप्त के रोम-रोम में पूर्व स्मृति जाग उठी। कुमार ने चन्द्रगुप्त को देखा और चन्द्रगुप्त ने कुमार को। दोनों की ही आँखों में छाया ने न जाने क्या भर दिया कि शत्रुता सोचने लगी। झनकार करती हुई तलवारें झुक गईं। चन्द्रगुप्त ने अपनी तलवार म्यान में डाली और कुमार ने भी अपनी तलवार म्यान में डाल ली।

□□



कुसुमपुर के गगनचुम्बी दुर्ग पर मौर्य राज्य की जय-पताका फहरा रही थी। ध्वजा की छाया में हाथों में फल-फूल लिये भूमि परिक्रमा कर रही थी। फहरते ध्वज की महात्मा चाणक्य ने आँखों से आरती उतारते हुए आप ही आप कहा—“ब्राह्मण का कार्य पूरा हो गया। भूमण्डल पर आज भारत के गौरव का प्रभाव है। चाणक्य चाहता था कि टुकड़ों में बँटा हुआ भारत एक झण्डे के नीचे एकतन्त्रात्मक लोकहितकारी राज्य हो। उसकी वह इच्छा पूरी हुई। चाणक्य की भावनाओं की जय-पताका कुसुमपुर पर लहरा रही है।

“हमारा लौकिक उद्देश्य पूरा हुआ। अब हम इस चमकते हुए संसार से दूर आध्यात्मिक जगत में निवास करेंगे।” कहते हुए चाणक्य ने आसन पर पड़ा अपना फटा हुआ कटि-वस्त्र उठाया और उसे सीने लगे।

दूर से आते हुए चन्द्रगुप्त ने परिधान सीते महात्मा चाणक्य को देखा और अपने सारे साम्राज्य को धूलि समझते हुए कहने लगे—“आचार्य चाणक्य की महानता से बड़ा तो स्वर्ग का राज्य भी नहीं हो सकता। इतने बड़े राज्य में एकमात्र संस्थापक महात्मा चाणक्य श्रमिक के अभाव से भी तुच्छ इस कुटी में प्रसन्नता से निवास कर रहे हैं। सचमुच सम्राट् और सन्त की कोई तुलना नहीं।”

निकट आकर भारत-सम्राट् ने सन्त चाणक्य के चरणों में मस्तक नवाते हुए कहा—“जिन महात्मा ने अपने त्याग और बल से इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित किया, वे इस कुटिया में निवास कर राजमुकुट को लज्जित कर रहे हैं।”

**चाणक्य**—राज्य को प्राप्त कर जो जनहित में रत नहीं होता, जनता एक दिन ऐसे राजा से राज्य छीन लेती है। मैंने राज्य भोगने के लिए नहीं लिया, अपितु मानवता के रक्षण की कामना से इस नये राज्य की स्थापना की है। यह धरती पर कोटि-कोटि पुत्रों की सम्पत्ति है। मेरा कार्य पूरा हो चुका। अब तुम और तुम्हारा राज्य फले-फूले! यह ब्राह्मण आगामी एकादशी को वन-गमन करेगा।

**चन्द्रगुप्त**—क्या कह रहे हैं गुरुदेव ! आपके बिना मैं यह इतना बड़ा राज्य कैसे सँभाल सकूँगा ! आप न रहे तो किसी भी तूफान के एक ही झोंके से चन्द्रगुप्त की धूलि का पता न लगता ।

**चाणक्य**—इस विशाल राज्य की नींव अब इतनी दृढ़ हो चुकी है कि शताब्दियों तक कोई आँच नहीं आ सकती । मेरे स्थान पर भविष्य में परमगुणी, चरित्रवान, देशभक्त, ब्राह्मण राक्षस सुशोभित होंगे और मैं कहीं भी रहूँ मेरा हृदय मानव के साथ ही रहेगा ।

**चन्द्रगुप्त**—लेकिन वे तो किसी शर्त पर भी तैयार नहीं हैं । लाख कहने पर भी वे इस विशाल राज्य की स्थापना अपनी भारी पराजय मान रहे हैं ।

**चाणक्य**—सामूहिक जय में व्यक्तिगत पराजय पराजय तो नहीं होती, पर अपनी हार बड़ी से बड़ी जीत में भी चुभती ही रहती है । राक्षस को अपना बनाने के लिए मुझे अपने जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा अर्पित करनी होगी ।

**चन्द्रगुप्त**—वह क्या गुरुदेव !

**चाणक्य**—वह सब गर्भ में है । राक्षस इस समय कहाँ हैं ?

**चन्द्रगुप्त**—राजभवन में बन्दी राजा की तरह कठोर पहरे में सुरक्षित हैं । पंचनद की जय के बाद वे उसी महल में लाकर रखे गये थे, तब से वे वहीं हैं । उनके साथ हर श्रेष्ठ व्यवहार होते हुए भी न जाने वे क्यों हर समय उदास रहते हैं । केवल पाव भर दूध, सवा सेर पानी और दो नींबू लेकर वे जीवन चला रहे हैं ।

**चाणक्य**—धन्य हो राक्षस ! तुम्हारे जैसे चरित्र के राजभक्त इतिहास में यत्किंचित ही हुए हैं । चन्द्रगुप्त ! यह घोषणा कर दी जाये कि चाणक्य राज-पद त्याग कर मानव-हित के लिए वनवास ले रहे हैं । हमने भौतिक संसार त्यागने का निश्चय कर लिया है ।

चन्द्रगुप्त की आँखों से आँसू छलछला आये । उसने पैर पकड़कर कहा—‘नहीं राजर्षि ! अभी नहीं ।’

**चाणक्य**—हमने जो आज्ञा दी है उसका पालन करो । चाणक्य पर किसी की इच्छा का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता । वह किसी करुणा से न टूटने वाला एक कठोर पत्थर है । जाओ, वह सामने से सुवासिनी आ रही है ।



चाणक्य आगे कुछ कहने भी न पाये थे कि सुवासिनी अपने ही हाथ बुनी हुई एक साधारण-सी धोती पहने ऐसे आई जैसे भोर की श्वेत साड़ी पहन उषा धरती पर आ उतरी हो। आकर सुवासिनी कुछ कहे उससे पहले ही चन्द्रगुप्त ने कहा—तुमको यह सुनकर हर्ष होगा कि महात्मा चाणक्य राज-पद त्याग कर वन जा रहे हैं।

सुवासिनी धीरे से मुस्कराई और फिर गम्भीर होकर बोली—महात्मा की हर भाषा में रहस्य होता है। इनको बहकाना बहुत आता है।

**चाणक्य**—बहकने वाले साधारण-सी बात से भी बहक जाते हैं। पर तुमको तो मैंने कभी नहीं बहकाया सुवासिनी! मैं सचमुच आध्यात्मिक जगत में जा रहा हूँ। इस नश्वर संसार में मनुष्य का झूठा मोह-बन्धन है।

**सुवासिनी**—संसार की कठोरता से हारा हुआ मनुष्य ऐसी ही बात करता है। आध्यात्मिकता का अर्थ संसार से भागना नहीं है। आध्यात्मिकता यह नहीं कहती कि संसार छोड़ दो। सबसे बड़ा आध्यात्मिक मनुष्य वही है जो संसार में रहकर प्राणीमात्र के कल्याण में रत है। वन में भटक कर शून्य से बातें करने वाला संन्यासी जगत में रहकर मानव-कल्याण करने वाले चाणक्य से ऊँचा न हो सकता है।

**चाणक्य**—मनुष्य के पास उत्तर हर बात का है, पर प्रत्येक सर्वशुद्ध ही नहीं होता! चन्द्रगुप्त! हमने तुमसे यहाँ रुककर समय नष्ट करने को नहीं कहा।

**चन्द्रगुप्त**—चूक हुई, गुरुदेव!

कहता हुआ चन्द्रगुप्त चला गया और चाणक्य ने आगे कहा—लक्ष्य तक पहुँचने के बाद राही विश्राम चाहता है। चाणक्य के लिए शान्ति यदि कहीं है तो वह शून्य की गोद में ही। लेकिन वहाँ भी उसे सब की अशान्ति से दुःख ही होगा। शान्ति की खोज में मनुष्य को न जाने कहाँ-कहाँ भटकना पड़ता है।

**सुवासिनी**—पुरुष शब्दों का बड़ा छलिया होता है। एक दिन आप कहा करते थे कि “सुवास! प्रतिज्ञा पूरी होने के बाद मैं तुम्हारी छाया में शान्ति के श्वास लिया करूँगा” और आज आप शून्य में सुख पाने जा रहे हैं।

**चाणक्य**—प्रत्यक्ष में परोक्ष की भाषा स्पष्ट नहीं होती। बहुत से सुखी दीखने वालों के सुख दुखियों की आहों से भी करुण होते हैं। चाणक्य ने जीवन में कभी सुख नहीं देखा, दुःख ही उसके जीवन की उपलब्धि है। खैर छोड़ो सुवासिनी! क्या रखा है इन बातों में। तुम तो जानती ही हो कि चाणक्य कभी किसी के साथ भलाई नहीं करता। वह बहुत कठोर है। उसकी हर बात में छल होता है। मैंने तुमसे भी छल ही किया है, मुझे तुमसे प्यार नहीं है।

**सुवासिनी**—यह क्या कह रहे हैं आप! मुझे आपकी इस भाषा में भी धोखा लग रहा है। नहीं, नहीं! यह कभी नहीं हो सकता। तुम कभी ऐसे कठोर नहीं हो सकते। एक ही आशा के सहारे मैंने इस देह को आज तक रखा है। कहीं ऐसा न हो कि आपकी सफलता पर सुवासिनी का शव आँसू बहाता दिखाई दे।

**चाणक्य**—सुवासिनी! तुम जानती हो चाणक्य को किसी के मरने-जीने का दुःख-सुख नहीं होता। उसकी आँखों में आँसू निकलना बहुत पहले बन्द हो चुका है।

**सुवासिनी**—कौन कहता है चाणक्य की आँखों में आँसू नहीं। पलकों की ओट में छिपे आँसू सुवास देख रही है। मैं आज तक इसी सहारे जीवन को वरदान मानती रही कि एक दिन फूल से भी कोमल और वज्र से भी कठोर चाणक्य की चरण-सेविका बनने का शुभावसर मिलेगा। लेकिन यदि मुझे यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ तो मैं जीवन को अभिशाप समझ कर उसे इस कठोर भूमि पर बलिदान कर दूँगी।

**चाणक्य**—सचमुच सुवासिनी! तुम मुझसे प्यार करती हो। मैंने तो जो कुछ कहा था, सब स्वयं को समझाने के लिए कहा था। तो क्या तुम मेरी हर बात मानने को तैयार हो

**सुवासिनी**—मैं स्वयं जिनसे पृथक् नहीं, उनकी कोई भी बात अस्वीकार कैसे हो सकती है!

**चाणक्य**—वचन देती हो?

**सुवासिनी**—क्या विश्वास नहीं होता?

**चाणक्य**—चाणक्य को विश्वस्त से विश्वस्त पर भी विश्वास नहीं होता, पर तुम पर न जाने क्यों अविश्वास नहीं होता! इसलिए मैं चाहता हूँ कि राक्षस से विवाह कर लो। इसी में चाणक्य की सिद्धि है।



सुवासिनी के मुँह से उत्तर में शब्द नहीं निकला। उसके मौन आँसुओं ने जो कुछ कहना था कह दिया। चाणक्य ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—“तुमने वज्र से भी कठोर मेरे शब्दों का प्रहार सहन किया है, पर तुम्हें यह करना ही होगा। तुम्हारे इस त्याग के बिना राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार नहीं करेंगे। जब तक राक्षस और चाणक्य एक नहीं हो जाते तब तक चन्द्रगुप्त का राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता। राक्षस के हृदय में पराजय का घाव सर्पदंशन की तरह कसक रहा है। वह समय पाकर कभी भी विष उगल सकता है। कुमार मलय और राक्षस आज हमारे अधीन अवश्य हैं, पर सैकड़ों बिच्छुओं के काटे हुए मनुष्यों की तरह वे श्वास लेते हैं। वैर का विष उतारने के लिए चाणक्य के पास दो ही उपाय हैं—सुवासिनी का राक्षस से विवाह तथा छाया का चन्द्रगुप्त से परिणय। शक्ति से जीते हुए मनुष्यों को प्रेम के आत्मैक्य में बाँधे बिना जय पराजय से भी तुच्छ है।”

सुवासिनी ने उत्तर में अब कुछ नहीं कहा। वह इस प्रकार मूक हो गई जैसे बोलता-बोलता मनुष्य मर जाता है। चाणक्य ने सुवासिनी की आँखों में आँखें डालते हुए कहा—“इन आँखों में देखो सुवास! छलछला कर छिपे हुए आँसू क्या कह रहे हैं!”

सुवासिनी से अब रहा न गया। वह फूट कर रो पड़ी। तड़पते हुए हृदय से धीमी श्वास लेती हुई वह बोली—“आपकी जय के लिए मुझे आपकी हर आज्ञा शिरोधार्य है। मैं राक्षस से विवाह करूँगी।”

चाणक्य ने अपनी दोनों हथेलियों से सुवासिनी का माथा अपने स्कन्ध पर दबाते हुए कहा—“तुम्हें यदि मुझसे प्यार न होता तो चाणक्य की जय कभी न होती। जाओ सुवास! राक्षस के हृदय से वैर और प्रतिशोध की भावना निकाल दो तथा उन्हें मौर्य राज्य के महामात्य-पद के लिए तैयार करो। शान्ति की दुनिया में जाने से पहले चाणक्य मौर्य राज्य को निष्कटक देखना चाहता है; और यह तभी हो सकता है जब राक्षस मौर्य राज्य के महामन्त्री बन जायें।”

चाणक्य के चरणों पर आँखों का अर्घ्य चढ़ा सुवास पीड़ा और सहिष्णुता की मूर्ति-सी चल पड़ी, मानो संध्या के गर्भ में दिनमान की किरण चली जा रही हो। चाणक्य ने स्वयम् से विदा होती हुई उस दिव्या को देखा और देखते ही रह गये। चाणक्य ने आज वह चोट भी सहन की जो मनुष्य तो क्या अवतार भी सहन नहीं कर पाते। कहने को

तो चाणक्य ने सुवास से कह दिया, पर जैसे ही वह आँखों से ओझल हुई वैसे ही उन्होंने अपना हृदय हाथ से मसोसते हुए कहा—“धरती पर मनुष्य को कैसा पाषाण बनना पड़ता है ! जय में मनुष्य की कितनी बड़ी हार होती है ! समष्टि के स्वार्थी को अपने स्वार्थ की बलि देनी पड़ती है । राम को भी सीता त्यागते समय दुःख हुआ था, पर उन्होंने सब कुछ सहन किया । जो मनुष्य हर दुःख नहीं सह सकता वह जी नहीं सकता, यह सत्य है; पर वियोग का दुःख तो देवताओं से भी सहन नहीं होता ।”

“न जाने मेरे हृदय में क्या होने लगा ! सुवासिनी के अलग होते ही जैसे मेरे प्राण मुझसे अलग हो गये । न जाने मेरा रोम-रोम शिथिल क्यों पड़ गया ! वाणी मूक हुआ चाहती है, आँखों को कुछ दिखाई नहीं पड़ता, बुद्धि उसी चिन्तन में लीन है । अच्छा, आँसू भी मुझ पर जय पाना चाहते हैं ! ठहरो, मनुष्य की कान्ति के अमर मोतियो ! आँखों में ही ठहरो । आँख से बाहर निकलकर अपना अपमान क्यों करना चाहते हो ? संसार में आँसू का मोल पत्थर की कठोरता मात्र है । यदि तुमने प्रकट होना चाहा तो मैं तुम्हारा गला घोट दूँगा ।”

तीव्र आवेग से स्वयं को झँझोड़ते हुए छाती पर मुक्के का पत्थर मार चाणक्य उठे और दिशाओं को देखते हुए एकदम गम्भीर हो गये । बहुत साहस करके वे अपने जीवन का अन्तिम अध्याय पूरा करने के लिए चारों ओर देखने लगे । सामने से चन्द्रगुप्त को आता देख वे इस प्रकार मुस्करा उठे जैसे कोई संन्यासी अभीष्ट पाकर खिल उठता है ।

चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को देखते ही कहा—आपकी आज्ञानुसार मैंने घोषणा कर दी है । लेकिन अब मुझसे राज्य-संचालन नहीं होगा । मैं राजा नहीं रहना चाहता । आज तक रक्तपात में नहाकर जिस बड़े साम्राज्य का राजा बन मैं गर्व करता रहा वह आज मुझे खाने को आ रहा है । आपके बिना मैं पागल हो जाऊँगा ।

**चाणक्य**—अधीर न हो चन्द्रगुप्त ! तुम वीर हो, वीर का धर्म कायर बनकर अधीन होना नहीं । धरा पर न मैं जीवित रहूँगा, न तुम; किन्तु तुम्हारी कीर्ति के गीत दिशाओं की दीवारों पर लिखे होंगे । धरती और आकाश तुम्हारे चरित्र के गुणों को गा-गा सुनाते रहेंगे । मेरी ओर न देखो ! आँखें उठाओ, इन चारों दिशाओं में चीत्कार करते हुए प्राणियों का करुण क्रन्दन सुनो ! निराश्रितों को आश्रय दो ! भूखों को रोटी और



बेकारों को काम देना राजा का धर्म है। तुम्हारे राज्य में कोई दुखी न हो, तुम्हारा राज्य अन्यायी का राज्य न हो, इसी से चाणक्य की आत्मा को शान्ति मिलेगी। तुम्हारा राज्य कलाओं की उन्नति करता हुआ समुन्नत हो, इसी में चाणक्य की महिमा है। तुम यहाँ सुख से रहो और मैं वहाँ मानव के लिए मधु खोजने जाता हूँ।

**चन्द्रगुप्त**—पर यह सब आपके बिना कैसे होगा! चन्द्रगुप्त तो नादान बालक है।

**चाणक्य**—लेकिन चन्द्रगुप्त के साथ शुद्ध धर्मनिष्ठ राक्षस तथा अन्य सुयोग्य मन्त्री जो होंगे।

**चन्द्रगुप्त**—राक्षस मौर्य राज्य का मन्त्रित्व कभी स्वीकार नहीं करेंगे।

**चाणक्य**—चाणक्य जो चाहता है वही विधाता चाहता है, इसलिए राक्षस मौर्य राज्य के महामात्य होंगे और अवश्य होंगे। उनके अतिरिक्त कात्यायन जैसे अनेक अनुभवी मन्त्री इस राज्य के दृढ़ स्तम्भ होंगे। चिन्ता न करो वत्स! कुमार कहाँ हैं?

**चन्द्रगुप्त**—राजप्रासाद में विश्राम कर रहे हैं। उठने ही वाले होंगे।

**चाणक्य**—हम उनसे मिलना चाहते हैं।

**चन्द्रगुप्त**—तो उनको यहाँ बुला लें।

**चाणक्य**—नहीं, हम स्वयं ही वहाँ चलेंगे।

चाणक्य ने कहा और चन्द्रगुप्त के साथ चल दिये। चिन्तन करते हुए बात की बात में वे कुमार के सामने आ पहुँचे। चाणक्य को देखते ही कुमार उठे और शिष्टाचार के नाते प्रणाम कर नतमस्तक हो बैठ गये। चाणक्य ने पलभर मौन रहने के बाद सरलता से कहा—गम्भीर और चिन्तित क्यों हो कुमार!

**कुमार**—अपनी पराजय पर कौन शान्त और सुखी रहता है!

**चन्द्रगुप्त**—कभी-कभी जय को पराजय समझने का भ्रम हो जाता है। यह तो तुम्हारी वह जय है जिससे परे कोई जय नहीं होती।

**कुमार**—वह हार हो सकती है जिससे परे सम्भवतः जय न हो।

**चाणक्य**—यदि यह भी मान लो तो भी तुम्हारी सबसे बड़ी विजय है।

**कुमार**—मनुष्य मन समझाने के लिए कुछ न कुछ सोच लेता है,

पर सोचने से पराजय जय में नहीं बदलती ।

**चाणक्य**—यदि तुम इस लक्ष्य को जय न कहकर पराजय ही कहोगे तो भविष्य में शब्दाकार को पराजय का अर्थ ही बदल देना होगा । सुनो कुमार ! हम तुम्हें और चन्द्रगुप्त को शरीर से भिन्न मानते हैं, पर आत्मा से एक ही समझते हैं । यदि मगध भारत का एक हाथ है, तो पंचनद दूसरा ।

**कुमार**—छल-कपट की भाषा से बार-बार छला नहीं जा सकता । जिस चन्द्रगुप्त की पंचनद ने आड़े समय में सहायता की, वही चन्द्रगुप्त शक्ति-सम्पन्न होकर हम पर चढ़ाई कर बैठा !

**चाणक्य**—अपनी भूल दूसरे के सिर मढ़ कर नई भूल न करो कुमार ! लोभ ने तुम्हारी आँखें बन्द कर दी थीं । यदि चन्द्रगुप्त समय पर तुम्हारा विष उतारने के लिए विष प्रयोग न करता, तो न आज मगध सुरक्षित होता और न पंचनद । दबे कोयले अधिक न उखाड़ो ! वैर को यहीं समाप्त कर दो तथा एक ऐसे सम्बन्ध में बँध जाओ जो तोड़ने से भी न टूट सके । तुम वीर हो, तुम्हारी शक्ति पर भारतवर्ष को गर्व है । तुम चाहो तो तुम्हें राजा और चन्द्रगुप्त को सेवक बनाकर भी मैं प्रसन्नता मानूँगा; अन्यथा तुम दोनों ही इस बड़े देश के प्रतिनिधि सेवक हो । सारे देश के विभक्त क्षेत्रों में तुम राजा नाम से प्रहरी हो । पंचनद तुम्हारा है, मगध भी तुम्हारा है । इस देश के जितने भी प्रदेश हैं, वे सब तुम्हारे हैं । तुम भारतमाता के वीर पुत्र हो । चन्द्रगुप्त और तुम दोनों गले मिलकर एक हो जाओ !

**कुमार**—मैं पिता जी और बहिन जी से पूछे बिना कुछ नहीं कह सकता ।

**चाणक्य**—पूछ लो और भली-प्रकार सोच-समझ लो ! चाणक्य जो कह रहा है उसमें न चन्द्रगुप्त का स्वार्थ है और न तुम्हारा, अपितु सारे देश का हित है ।

चन्द्रगुप्त की ओर गम्भीरता से देखते हुए—‘कुमार को राजकीय सम्मान के साथ विदा कर दो !’

चाणक्य ने कहा और चले गये ।

चन्द्रगुप्त ने गाजे-बाजे से कुमार की विदा के लिए ठाठ-बाट रचे ।

दूसरे दिन एक गौरवशाली प्रदर्शन के मध्य चन्द्रगुप्त कुमार को



बहुत दूर तक छोड़ने आये। सीमा से चन्द्रगुप्त वापस आ गये और कुमार अपनी राजधानी की ओर चले गये।

दुःख और सुख का संगम साथ लिए कुमार ने पिता को प्रणाम किया और बहिन को गले लगाया।

पिता ने पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—तुम कुशलपूर्वक आ गये, यह काँटों में फूल खिलने के तुल्य है।

कुमार—फूल का मूल्य तभी तक है जब तक वह डाल पर खिलता है। जब उसे तोड़कर किसी के चरणों में चढ़ा दिया जाता है तो वह मुरझाकर मर जाता है। हमारी दशा उस टूटे हुए फूल जैसी ही है जो किसी के पैरों में पड़कर अपना अस्तित्व खो देता है।

छाया—ये कैसी बातें कर रहे हो भैया।

कुमार—जैसी एक पराजित को करनी चाहिएँ।

छाया—कौन कहता है आप पराजित हैं! बहुत बार मनुष्य को अपनी जय पर भ्रम हो जाता है और वह जीत को हार समझकर दुःख मानने लग जाता है।

पुरु—इतने खिन्न क्यों हो कुमार।

कुमार—पराधीन खिन्न होने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता है। आज हम दास की तरह जीवन व्यतीत करते हैं।

पुरु—किसकी शक्ति है जो पुरु के जीवित रहते पंचनद को दास बना सके। हम मर सकते हैं, पर दास नहीं बन सकते।

कुमार—भारतवर्ष में आज कौन है जो चाणक्य के अधीन नहीं! उस ब्राह्मण ने बुद्धिबल से सारे भारतवर्ष पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। हम यदि उनसे युद्ध करते हैं तो जीत नहीं सकते। साथ ही उनसे इस समय युद्ध करना भारत के साथ भारी विश्वासघात भी है, क्योंकि कठिनता से एक हुए भारत को फिर से टुकड़ों में कर डालना समझदारी का प्रमाण नहीं।

छाया—ठीक कहते हो भैया! हम एक होकर सारे संसार पर राज्य कर सकते हैं और यदि हम टुकड़ों में बँट जाएँ तो सभी नष्ट हो जाएँगे।

बातचीत और भी चलती पर सन्देशवाहक ने प्रवेश कर पत्र देते हुए कहा—“कुसुमपुर से महात्मा चाणक्य ने प्रेषित किया है।”

कुमार पत्र लेकर पढ़ने लगे—

“हमारे परमप्रिय पड़ौसी !

आपके सौहार्द से हमारे देश का भविष्य जगमगा रहा है। आपको यह हर्ष समाचार सुनकर प्रसन्नता होगी कि मनुष्यों में गौरवशाली गुणी शुद्ध धर्मज्ञ राक्षस ने मगध राज्य का महामात्य पद स्वीकार कर लिया है। साथ ही कुमार मलयकेतु पर सारे भारतवर्ष का रक्षा-भार सौंपा गया है। शेष विभाग भी योग्यतानुसार गुणियों के सुपुर्द कर दिये गये हैं। पंचनद में आपकी इच्छानुसार राज्य-व्यवस्था चलती रहेगी। शेष राज्य भी अपने-अपने क्षेत्र में अपनी इच्छानुसार राज्य चलाएँगे। पर सम्पूर्ण भारतवर्ष के हित में कोई स्वतन्त्रता से आघात नहीं कर सकेगा।

इस नई व्यवस्था के अभिनन्दन हेतु आगामी कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को विजय दिवस पर सारे भारतवर्ष में एक भारी हर्षोत्सव मनाया जाएगा। भारत के केन्द्र कुसुमपुर में उसी दिन एक अद्वितीय समारोह का आयोजन किया गया है, जिसमें देश-विदेश के कलाकार, पूज्य विद्वान् एवं राजागण भाग लेंगे। राज्य की ओर से उस दिन बड़े-बड़े पुरस्कार दिये जाएँगे। इस समारोह में सम्राट् चन्द्रगुप्त ने महाराज पुरु, राजकुमार मलयकेतु और राजकुमारी छाया को सादर एवं सप्रेम निमन्त्रित किया है।”

कुमार ने पिता और बहिन की ओर देखा। महाराज पुरु ने स्वीकृतिसूचक गर्दन हिलाते हुए कहा—“बधाई और शुभकामनाओं का सन्देश भेज दो तथा लिख दो कि यदि कोई आकस्मिक परिस्थिति न आ पड़ी तो हम अवश्य समारोह में शामिल होंगे।”

उत्तर प्रेषित कर दिया गया। कुछ देर मौन रहने के बाद छाया ने कहा—“आपस की शत्रुता से यह देश सदा ही हानि को प्राप्त होता रहा है। हो सकता है इस देश के आन्तरिक संघर्षों से हम सभी भविष्य तिमिरावृत कर दें। चाणक्य का निर्मल चरित्र स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य है, जिसने स्वयं तप-तप कर सारे देश को एक सूत्र में बाँध सभी को प्रकाश दिया। अब पिछले वैर को भूलकर आपस में गले मिल जाओ!”

पुरु—हमारी बेटी ठीक कहती है।

कुमार—प्रणय के सुनहरे स्वप्नों में स्वाभिमान अपने हाथों से



जला दिया जाता है। हमारी बहिन को चन्द्रगुप्त की चिन्ता हमसे कम नहीं रहती।

**छाया**—यह सच है कि मैं मगध-नरेश को हृदय से चाहती हूँ। पर इसका यह अर्थ नहीं कि मैं अपने देश से विद्रोह भी करती रहूँ।

**कुमार**—सुन लिया पिता जी!

**पुरु**—सब कुछ सुन लिया और सब कुछ समझता हूँ। सोच केवल यह रहा हूँ कि उलझन सुलझाई कैसे जाये। छाया प्रतिज्ञाबद्ध है कि वह विवाह करेगी केवल चन्द्रगुप्त से। यदि यह हुआ तो छाया को छोटी रानी बनकर रहना पड़ेगा।

**छाया**—छोटे और बड़े के प्रश्न ने ही सारे संसार को विपत्ति में डाल रखा है। मुझे विश्वास है कि हमारा जीवन सुखी रहेगा।

**पुरु**—केकयी को भी स्वप्न में यह विश्वास न था कि मेरे मन में भी कभी ईर्ष्या का भाव जागेगा, पर होनी होकर ही रही। खैर, जो कुछ होना है उसे न मैं मिटा सकता हूँ और न यह। यह अवश्य है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों ही हाथ फैलाकर हमसे हमारी बिटिया माँग रहे हैं। अतः यह सम्बन्ध स्वीकार कर लेना चाहिये। इस सम्बन्ध के दो हृदयों से बन्धन के साथ ही बहुत पुरानी आती हुई वैर की नागिन भी मर जायेगी। चाणक्य को सूचित कर दो कि पंचनद की राजकुमारी से मगध नरेश चन्द्रगुप्त का परिणय स्वीकार है।

छाया सुहाग के सिन्दूर-सी चमकी और लज्जा से झुककर अपने एकान्त कक्ष में चली गई। गाते हुए उसने चन्द्रगुप्त का चित्र देखा और अपनी आँख में अपनी ही उँगली से सुरमा लगा चित्र में चन्द्रगुप्त के गाल पर एक छोटा-सा तिल बना दिया।

तथा फिर आप ही आप कहने लगी—“अब दृष्टि कैसे लगेगी!” लेकिन तुरन्त ही चमत्कृत होकर बोली—“सौन्दर्य तो और भी बढ़ गया। सच है सुन्दरता पर दाग भी सुन्दर लगने लगता है। तभी तो विधाता की तूलिका से छिटका हुआ छींटा तिल बनकर गौरांग पर सुशोभित हो उठता है।”

□□

“न आप चलते हैं, न बोलते हैं, न आज्ञा देते हैं! आपकी उदासीनता से हर्षोल्लास रुदन के आँसू बहा रहा है। उत्सव में यदि आप न चले तो मैं भी न जाऊँगा।” चन्द्रगुप्त ने चाणक्य के चरणों में सिर झुकाते हुए कहा।

चाणक्य ने मुँह ऊपर उठाकर आँखों में आँखें डालते हुए कहा—  
“अब न मेरे चलने की आवश्यकता है, न बोलने की और न कुछ आदेश देने की। मेरे जीवन का एक लक्ष्य पूरा हो चुका, दूसरे लक्ष्य के लिए सोच रहा हूँ। चन्द्रगुप्त भारतवर्ष का सम्राट् है, राक्षस इस देश के महामात्य हैं, यूनान की राजकुमारी और पंचनद की राजदुलारी राजरानी के रूप में तुम्हें आनन्द और देश को शक्ति दे रही है। भारत की सुषुम्ना-सी राजनीति से आज मानो इंगला और पिंगला का संगम हो गया है। चाणक्य को और क्या चाहिये! समष्टि को सब कुछ देकर ब्राह्मण अब व्यष्टि की त्रिकुटी में निवास करेगा।”

**चन्द्रगुप्त**—तो क्या जीवन भर आपने इसीलिए इतने दुःख उठाये? सब कुछ प्राप्त करके सभी कुछ मुझे दे चले।

**चाणक्य**—नहीं चन्द्रगुप्त! तुम्हें तो मैं सेवा का भार दे चला। मैंने जो कुछ प्राप्त किया था वह सब प्राणी मात्र का है, राजा तो उसका व्यवस्थापक मात्र होता है।

**चन्द्रगुप्त**—भूल से मैं अनुचित कह गया, मेरा अर्थ तो आपकी उदासीनता से था। आप इतनी प्रार्थना तो स्वीकार कर ही लीजिये कि जब तक चन्द्रगुप्त जीवित है, तब तक आप उसकी आँखों के सामने ही रहेंगे।

**चाणक्य**—संसार में कौन किसकी आँखों के सामने सदा रहता है! राज्य की आँखों से राजा एक दिन सदा के लिए पृथक् होता है, पत्नी से पति और पति से पत्नी एक दिन बिछुड़ते हैं। यहाँ संयोग का अस्तित्व अधिक से अधिक मृत्यु की चाप तक है। कौन है ऐसा जिसे बिछुड़ने का दुःख नहीं हुआ। पर छोड़ो यह सब, देखते हो सारा संसार तुम्हारी कीर्ति से जगमगा रहा है। आज एक बड़े राज्य में सारे छोटे



राज्य शामिल हो गये। तुम्हारे राज्य में दुःख मिटता जा रहा है, कलाओं से धरती का रूप ऐसा अद्वितीय हो उठा है कि अनन्त कलाकार उसे दृष्टि लगाना चाहता है। चन्द्रगुप्त! ऐसी जगमगाहट में चाणक्य जैसे पाषाण ब्राह्मण की अब क्या आवश्यकता है।

**चन्द्रगुप्त**—ऐसा न कहो गुरुदेव! नहीं तो मैं सम्पूर्ण राज्य को त्याग कर भस्म रमा लूँगा। त्यागियों में शिरोमणि! आपके बिना उजाला अन्धकार-सा लगता है। चले, चलो इस प्रभुत्व-सम्पन्न राज्योत्सव में चले चलो! यदि न चलोगे तो चन्द्रगुप्त को भीष्म-प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी।

**चाणक्य**—यदि तू हठ करता है तो ब्राह्मण समारोह-मण्डप में जाकर वहीं से वहाँ चला जायेगा जहाँ मानव कल्याण के लिए मौन साधना की जाती है।

“जब आप जा रहे हैं तो हम ही यहाँ रहकर क्या करेंगे! जहाँ गुरु, वहीं चले।” शान्ति से शार्ङ्गरव, भागुरायण और भासुरक ने प्रवेश करते हुए कहा।

**चाणक्य**—मेरे शिष्य नाम से भिन्न हैं, पर आत्मा से चाणक्य ही हैं। मैं जहाँ भी रहूँगा, वहाँ अपने जनों के लिए ही।

**शार्ङ्गरव**—जिस प्रकार जल के बिना मीन, सूर्य के बिना दिन और प्राणों के बिना देह नहीं रहती, इसी प्रकार गुरुदेव के बिना हम शिष्य भी नहीं रह सकते।

**भागुरायण**—भला अब हम यहाँ रहकर क्या करेंगे! हमारा कार्य पूरा हो चुका।

**चाणक्य**—काम पूरा नहीं हो चुका। अभी जय मिली है, विश्राम बहुत दूर है।

**भासुरक**—सच कहते हो गुरुजी! अभी गाय ब्याई है और चने पैदा हुए हैं, लड्डू बनने में देर है। चने कटेंगे, दाल दली जायेगी, बेसन पिसेगा और इधर गाय दूध देगी, दहि जमाया जायेगा, घी निकलेगा, तब कहीं लड्डू बनेंगे।

**चाणक्य**—लड्डू तो तब भी नहीं बनेंगे, क्योंकि जब गन्ना पैदा होगा, रस निकाला जायेगा, गुड़ बनेगा, शक्कर तैयार होगी, बूरा कुटेगी, तब कहीं मीठे लड्डू बनेंगे।

**भासुरक**—सच कहते हो गुरुजी, बिल्कुल सच कहते हो!

लड्डुओं के लालच में मीठे की बात तो मैं भूल ही गया।

**चाणक्य**—लड्डुओं की बात तो हो ली। अब चाणक्य की आज्ञा है कि आप सब भारत के नये राज्य की सुन्दर व्यवस्था के लिए यहीं रहेंगे और चाणक्य तुम्हारे लिए वनों में जायेगा।

**शार्ङ्गरव**—आपकी आज्ञा जीवन के अन्तिम श्वास से भी स्वीकार करेंगे, पर एक प्रार्थना है कि वनों में जाकर हम शिष्यों को भूल न जाना। भक्तों को कभी-कभी भगवान के दर्शन होते रहने चाहियें।

**चाणक्य**—तुम्हारी सेवा और भक्ति के सामने मेरी समस्त सिद्धियाँ साधारण हैं। तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी। चलो, अब उत्सव में चलते हैं। फिर वहीं से वन जायेंगे।

**चन्द्रगुप्त**—गुरुदेव! आप समारोह में चलेंगे, धरा धन्य हो जायेगी। प्रहरियो! घोषणा कर दो कि समारोह में नीतिकारों में सर्वश्रेष्ठ, महापुरुषों में ज्ञेय, तपस्वियों में शिरोमणि महात्मा चाणक्य पधार रहे हैं।

“महात्मा चाणक्य पधार रहे हैं। महापुरुष चाणक्य की जय! राजर्षि चाणक्य की जय! तपस्वी चाणक्य की जय!” हर ओर से यही आवाज दिशाओं में गूँज उठी।

दिशाओं में जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश फैल जाता है, उसी प्रकार चाणक्य की आभा समस्त भूमण्डल पर विकीर्ण हो गई। दिवाकर के दिव्य तेज के समान महात्मा शिष्यों सहित समारोह में उपस्थित हुए। जय-ध्वनि और फूलों की वर्षा से ऋषिवर आच्छादित हो गये। ऐसा भव्य व्यक्तित्व किसी विशेष युग में प्रायः एक ही हुआ करता है।

पर चाणक्य तो अब प्रदर्शन से बहुत दूर हो चुके थे, जैसे उनके लिए कहीं भी कोई आकर्षण ही नहीं। एक बार चारों ओर गम्भीरता से निहारती हुई उनकी दृष्टि राक्षस की आँखों में आकर रुक गई। दो पल तक मौन देखने के पश्चात् चाणक्य ने अत्यन्त मृदुल होकर कहा—  
“कहो, नीतिकारों में मान्य महामात्य! जीवन और राज्य में कोई क्लेश तो नहीं?”

**राक्षस**—बुद्धिमानों में शिरोमणि, त्यागियों में अग्रगण्य, ऋषिवर चाणक्य की सृष्टि में दुःख कहाँ से आ सकता है।

**चाणक्य**—सुख जितना बढ़ता है, दुःख उससे दो पग आगे बढ़ जाता है। सुख के लिए दुःख उठाना ही जीवन का ध्येय है। भारत के महामात्य राक्षस में दुःख उठाने की क्षमता है। मुझे विश्वास है कि



राक्षस के रहते यह सारा राज्य सुरक्षित है। यही विश्वास हमारी विदा में सबसे बड़ा सुख है।

**राक्षस**—और आपकी विदा ही हम सबके लिए मृत्यु के समान भारी दुःख है। मान जाओ ऋषिवर! इस वैभव-पूरित विशाल राज्य को छोड़कर वन में न जाओ, नहीं तो सारा प्रकाश वन की आग के समान तापकारी हो जायेगा। बैर के विष को पी जाने वाले महायोद्धा! आपका वियोग शत्रु भी सहन नहीं कर सकते।

**चाणक्य**—संसार जिसे सबसे भयंकर व्यक्ति समझता है, वह विष पीते-पीते भयानक हो जाता है। तब उसे विष उतारने के लिए विष प्रयोग करना पड़ता है। यही चाणक्य ने किया है। धरती का विष उतर चुका। अब यदि कभी विष चढ़ा भी तो आप जैसे विष उतारने वाले इस धरा पर हैं। भूल जाना राक्षस! कि भूमि पर कोई चाणक्य भी आया था। हम तुम्हें सुखी देखना चाहते हैं। हमारी तृप्ति महामात्य राक्षस की तृप्ति में है।

**राक्षस**—आपने सब कुछ देकर आज मेरा सब कुछ छीन लिया। मैं नहीं जानता था कि चाणक्य के चोले में दया और त्याग का कोष छिपा हुआ है। राज्य के समस्त सुखों में जीवन भर चाणक्य का अभाव खटकता रहेगा।

**चाणक्य**—अभाव भी संसार में एक मूल्यवान् धन है। अच्छा महामात्य, विदा!

चाणक्य ने कहा और सभा स्तब्ध हो गई। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य के चरणों में आँखें टेककर पग प्रक्षालित किये। राजाओं के राजमुकुट चरणों में झुक गये। राक्षस चाणक्य से चिपट गये। उन्होंने अपनी आँखों से कटि-वस्त्रधारी चाणक्य का शरीर भिगो दिया। कौन ऐसा था जिसकी आँखों में आँसू नहीं थे!

दीवारों पर बँधी हुई वन्दनवारें बरस-बरस कर राम-वनगमन का अध्याय लिखने लगीं, घटायें घिर-घिर कर विरह काव्य का सृजन करने को आतुर थीं, पेड़ों पर पक्षी वसन्त में पतझड़-गीत गा रहे थे।

जिस समय चाणक्य चले गौएँ रस्सी तोड़-तोड़ कर उनके साथ चल पड़ीं। चाणक्य के हाथों से सींचे हुए पौधे टूट-टूट कर उनके चरणों पर न्यौछावर हो गये। कलाकारों का स्वर शोकाकुल हो उठा। पर चाणक्य हर्ष और शोक से परे न जाने क्या देख रहे थे!

धीरे-धीरे चाणक्य भौतिक जगत से आध्यात्मिक जगत की ओर चले। जय बोलती हुई जनता युगपुरुष के साथ-साथ चल पड़ी। जैसे ही चाणक्य मुख्य द्वार पर पहुँचे, वैसे ही सुवासिनी ने आकर नमस्कार करते हुए कहा—“संसार आप से ऊब गया है या आप संसार से?”

**चाणक्य**—न मैं संसार से ऊबा हूँ और न संसार मुझसे।

**सुवासिनी**—तो फिर भयभीत होकर भाग क्यों रहे हो?

**चाणक्य**—चाणक्य संसार से हार मानकर नहीं भाग रहा, अपितु जय पाकर विश्व के लिए आध्यात्मिक अमृत निचोड़ने जा रहा हूँ। भौतिकता आध्यात्मिकता के बिना पिशाचिनी है। जब मनुष्य की आँखों पर भौतिक माया का पर्दा पड़ जाता है तो उसकी आत्मा अँधी हो जाती है। आत्मा के उत्थान के बिना मनुष्य का कल्याण नहीं होता देवि!

**सुवास**—और अपनी लौकिक हत्या करके भी मनुष्य कुछ नहीं पाता। अपने जीवन से पराजित मनुष्य ही संन्यस्त का आधार लेता है। कितने ऐसे संन्यासी हुए जो माया, मही और मानिनी के अभाव में संन्यासी नहीं हुए?

**चाणक्य**—किन्तु इस ब्राह्मण ने इन वस्तुओं का त्याग किया है।

**सुवास**—तो क्या ये वस्तुएँ त्याज्य हैं?

**चाणक्य**—नहीं।

**सुवास**—यदि नहीं तो फिर राज्य में क्यों नहीं रहते? क्यों वनों में जा रहे हो?

**चाणक्य**—इसलिए कि संसार का सुख अपनी आँखों में भर कर ले चला हूँ और वन का अमृत संसार के लिए निचोड़ने जा रहा हूँ।

**सुवास**—आशा के शब्द मधुर होते हैं, किन्तु वास्तविकता संसार के सत्यों में ही छिपी है।

**चाणक्य**—तपस्या का तेज दूर से ही प्रकाश देता है। सूरज आकाश में तप कर धरा पर अपनी किरणों का तेज फैला सुख मनाता है। मैं कहीं भी रहूँ, पर दुनिया मुझसे दूर नहीं रहेगी। जिस दिन देखूँगा कि स्वार्थ, घृणा, द्वेष और पाप प्रलय का रूप लेकर मानव की सुन्दर सृष्टि डुबाने के लिए दौड़ पड़े हैं तो चाणक्य की शिखा शिव की जटाओं की तरह प्रलय को पीने के लिए फिर खुल जायेगी।

**सुवास**—यदि मनुष्य का शिव वनों के अन्तराल में ही छिपा है



तो हम भी वहीं चलें !

**चाणक्य**— भाषा के तर्क-जाल और मोह में चाणक्य को बाँधने का प्रयत्न व्यर्थ है ।

कहते हुए चाणक्य ने अपनी दिशा पर पग बढ़ाया । बहुत दूर तक सभी उनके पीछे-पीछे चलते रहे । सुवासिनी भी चली जा रही थी । चाणक्य ने जब देखा कि कोई भी वापस जाना नहीं चाहता तो शान्त भाव से सबकी ओर देखते हुए बोले—“ आप सबके प्रेम का भार अब चाणक्य नहीं संभाल सकता । मेरे पीछे आने से अब कोई लाभ नहीं, वापस चले जाओ ! वहाँ जाओ जहाँ सहारा नहीं है, वहाँ जाओ जहाँ आँसुओं का आधार न हो । तुम्हारी आवश्यकता वहाँ है जहाँ सरस्वती का सम्मान नहीं । दुखी को सुख दो, गिरे हुए को उठाओ, भेद-भाव की भूख को मिटा डालो ! बस, चाणक्य को अमर शान्ति के लिए अब अकेला छोड़ दो ! ”

सब मौन देखते रहे और चाणक्य वन की गहराई में घुसते चले गये । वे चले जा रहे थे और कोटि-कोटि भीगी आँखें उन्हें निहार रही थीं । पर चाणक्य ने पीछे फिर न देखा । मन्थर गति से बढ़ते हुए वे क्षितिज में लीन होते गये ।

और इधर कोटि-कोटि आँखों में उस महायात्री की प्रतिछाया बसती जा रही थी । जन-जन की भरी हुई आँखें एक नया समुद्र उगलना चाहती थीं । सम्राट् चन्द्रगुप्त से लेकर साधारण जन तक में चाणक्य ही चाणक्य फैले हुए थे ।

इस पुण्य पर्व पर एक भी ऐसा नहीं था जो निर्निमेष न हो । धरा की तरह समस्त प्राणी जगत मौन था । किन्तु नीरवता में भी महामात्य राक्षस चिन्तन और चेतन में जागरूक थे । मौन भंग करते हुए जैसे ही सुवासिनी के कन्धे पर हाथ रख महामात्य राक्षस ने कहा, ‘चलो देवि !’ वैसे ही सुवासिनी की मूर्च्छित देह राक्षस के हाथों में आ गई ।

तृप्ति भी कितनी कोमल होती है, जैसे कोई निराश्रित शिशु ! भटकता हुआ राही क्रीड़ा करता है, भावनाएँ मूर्च्छित देह का तरह-तरह से शृंगार करती हैं, पर असंतोष की क्या कभी तृप्ति होती है ! सुख की प्रतिमा दुःखों के चौराहे पर भटकती रही है और भटकती रहेगी ।

□□

स्वर्ण से चमकते हुए संसार से दूर मिट्टी में न जाने क्या खोजते हुए चाणक्य चले जा रहे थे। उनके पैरों में विचित्र गति थी। देखने वाले को लगता था मानो वे नहीं चल रहे अपितु मार्ग उनकी ओर बढ़ा चला आ रहा है। इधर सोने की दुनिया थी और उधर वन की ओर बढ़ते हुए पग, वह वन जहाँ मनुष्य जाता हुआ भय खाता है। पर तेजस्वी चाणक्य निर्भीक चले जा रहे थे।

मनोविज्ञान से चाहे ईश्वर का रहस्य खुल जाये पर चाणक्य के अन्तर की भाषा नहीं पढ़ी जा सकती। वे न जाने क्या सोचते और क्या चाहते चले जा रहे थे। कभी मुस्कराने लगते और कभी गम्भीर हो जाते, कभी उनके माथे में बल पड़ जाते और कभी चिन्तातुर दृष्टि से चारों ओर देखने लगते।

वे देखते हुए चले जा रहे थे कि उनका पग एक मरणासन्न घायल से टकराया। चाणक्य ने रुककर उस लहलुहान मनुष्य को देखा। जख्मी से दूर रक्त में भीगी एक कटार पड़ी थी। एक पल सोचते हुए चाणक्य ने आप ही आप कहा—“जान पड़ता है इसे डाकुओं ने कत्ल कर दिया। बड़ा दुःख है, जिस राज्य में दस्यु से मनुष्य की रक्षा नहीं हो सकती, वह राज्य शक्तिहीन है।”

कहते हुए चाणक्य ने घायल के पास पाँच मिनट तक मौन रहकर मन ही मन में न जाने क्या पढ़ा और फिर घायल के मुँह में जल डालते हुए बोले—“बोल, तू कौन है?”

एक भयंकर आवाज घायल के मुख से निकली—“एक राही, जो द्विरागमन कराकर अपनी पत्नी के साथ चाव भरा घर जा रहा था, जिसे राह में डाकुओं ने काट डाला और उस बिचारी की न जाने क्या दुर्दशा हो रही होगी। सुना था, चन्द्रगुप्त और चाणक्य के राज्य में कोई भय नहीं है, पर परिणाम यह भोगना पड़ा।”

चाणक्य ने घायल को सान्त्वना देते हुए कहा—डाकू किस दिशा की ओर गये हैं?

घायल—अभी-अभी उत्तर की ओर।



**चाणक्य**—तुम अब पल भर के अतिथि हो, कोई इच्छा हो तो कहो।

**घायल**—उस बिचारी की रक्षा और यदि कर सको तो डाकुओं से मनुष्य की रक्षा करना।

**चाणक्य**—जब तक धरती पर मनुष्य अरक्षित है तब तक चाणक्य का होना व्यर्थ है। तुम चिरनिद्रा में शान्ति लो राही! धरा डाकुओं से अवश्य मुक्त होगी।

घायल ने कराहते हुए कहा—वह देखो, वे डाकू उसे लिये जा रहे हैं। रक्षा करो, उस सती की राक्षसों से रक्षा करो!

चाणक्य घायल को कराहते हुए छोड़ उस ओर चल दिये जिस ओर दस्यु देवी को लेकर गये थे। उनके पैरों में पवन की गति आ गई। कुछ दूर जाकर उन्होंने देखा कि उस घायल की पत्नी को डाकू खींचे लिये जा रहे हैं। चाणक्य ने योग-दृष्टि से डाकुओं को देखा, चाणक्य को देखते ही डाकू चक्कर खाकर गिर पड़े। चाणक्य उनके सामने जाकर गर्जती हुई वाणी में बोले—“निरीह नारी पर अत्याचार करने का साहस और वह भी चन्द्रगुप्त के राज्य में!”

डाकुओं ने देखा जैसे कोई जलता हुआ पेड़ उनके सामने खड़ा है अथवा सूर्य नीचे उतर आया है। पापियों की आँखें न उठ सकीं।

देवी की ओर देखते हुए चाणक्य ने कहा—“अब डरने की कोई बात नहीं है बेटी! तुम्हारे पिता तुल्य चाणक्य तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हैं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त के राज्य में जो पापी किसी को सताता है उसको कठोर दण्ड मिलता है।”

“लो यह रक्त भीगी कटार और इन डाकुओं के सिर काटकर अपने पति की हत्या का प्रतिशोध ले लो!”

चाणक्य को सामने देखते ही डाकू कान्तिहीन होकर थर-थर काँपने लगे, पैरों में गिर कर उनसे क्षमा याचना की। क्रोध और घृणा से उनको ठुकराते हुए चाणक्य ने कहा—“अपराधी को क्षमा करके उसको प्रोत्साहन दिया जाता है। चाणक्य पापी को क्षमा करना नहीं जानता। देर न करो देवि काट डालो इन पापियों के सर।”

कटार लेकर सती भूखी सिंहनी-सी झपटी और एक-एक करके सब डाकुओं के सिर काट डाले। सिर काटने के बाद लहूवर्णा सती



साक्षात् दुर्गा-श्री दिखाई देने लगी। चाणक्य ने नमस्कार करते हुए कहा—“कालीरूपा माँ! चाणक्य तुम्हें बार-बार नमस्कार करता है। जाओ, इन कटे हुए सरीरों की चोटी से चोटी में बाँधकर सम्राट् चन्द्रगुप्त को दर्शन दो, जिससे चन्द्रगुप्त के राज्य में शक्ति का संचार हो सके। शक्तिरूपा दुर्गा की कृपा से देश में दूँदूने से भी कोई पापी न मिले, यह गुप्त पुजारी की आकांक्षा है। इच्छा पूरी हो माँ!”

एक भीषण स्वर तरदान के रूप में गूँज उठा—‘तथास्तु!’ और चाणक्य ने देखा कि चारों ओर देवी दुर्गा का रूप नृत्य कर रहा है।

प्रणाम करके चाणक्य चल दिये। वायु-वेग से चलते हुए वे बात की बात में गंगा-तट पर आ पहुँचे। यहाँ उन्होंने अपने लिए एक चाय-फूस का आसन बिछा लिया।

एक दिन बीता, दो दिन गये और तीसरा दिन भी समाप्त हो गया, पर चाणक्य ने जल तक न पिया। पुण्य नक्षत्र में व्रत पर व्रत करते रहे। शक्ति, ज्ञान और तपस्या में महात्मा प्रकृति रूप होने लगे। साधना से सिद्ध होकर वे ऐसे दीखते थे जैसे भगवान हो गये हों। पर इन सिद्धियों को प्राप्त करते-करते उनके शरीर में रक्त न रहा, वे सूख कर अस्थि-पिंजर मात्र रह गये। तप और व्रत में उन्होंने अपने आपको सुखा डाला।

अस्थिमय प्राण लेकर वे शान्ति की इच्छा से एकाकी आनन्द खोजने लगे। पर संघर्षों के संसार में तृप्ति के आनन्द कहाँ! तृप्ति में जीवन की गति रुक जाती है। सम्भवतः अतृप्ति में ही आनन्द है।

चाणक्य न जाने किस मिट्टी के बने हुए थे कि कोई भी क्षण ऐसा नहीं होता था जिसमें हार उनसे हार न मान लेती हो। श्मशान में एक जलती हुई चिता को देखकर चाणक्य अट्टहास करते हुए कहने लगे—“मृत्यु! तू मानव की हार बनकर उस पर खिलखिलाती है! कितनी भयंकर है तेरी विभीषिका! तेरी कल्पना से ही मनुष्य निराश हो बैठता है। श्मशान! तुझमें न जाने कितनों की मिट्टी निराशा के गीत सुना रही है। लेकिन मानव! तू मृत्यु की छाती पर पैर रखकर जीना सीख! मनुष्य में मृत्यु को भी मारने का बल है। मरता वही है जिसकी आशा मर जाती है।”

“आशा! कितना प्रकाश है इसमें! मानव! तू धरती के लिए अमृत खोज, अजेय कर दे मानव को जिससे काल का विकराल नृत्य



मनुष्य की मिट्टी पर न थिरके।”

आकाश की ओर देखते हुए—“भूमि, आकाश और रसातल कैसी विडम्बना हैं ये ! अग्नि, जल, वायु, अमर शक्तियाँ हैं; पर कौन है वह जिसके पगों में ये सारी शक्तियाँ झुक सकती हैं ?”

जोर से हँसते हुए—“मनुष्य, जिसके पौरुष के सामने अन्य सभी बल नतमस्तक हैं। विजय के पग अभी शेष हैं। चलो चाणक्य ! अग्नि पर विजय पाओ, जल और पवन पर भी विजय प्राप्त करो !”

कामना करके चाणक्य फिर तपस्यारत हो गये। आग ने उनको जलाना चाहा पर न जले, पवन ने उनको हटाने का प्रयत्न किया पर हार गया, जल ने उनको डुबाना चाहा पराजित होकर लज्जा से स्वयं नीचे रह गया।

और फिर एक दिन जब चाणक्य ने आँखें खोलीं तो धरती, आकाश और रसातल मिले हुए दिखाई दिये। चाणक्य त्रिलोक के चरणों में नमस्कार करते हुए उठे तथा फिर किनारे-किनारे चल दिये।

चलते-चलते वे सोचने लगे, “आखिर जय की इति कहाँ है ? कहाँ है वह लक्ष्य जहाँ पूर्ण सन्तोष रहता है ? क्या मन को मारने अथवा संन्यासी बनने में सुख है ? संभवतः हो, पर न जाने क्यों आत्मा में विश्वास नहीं होता। विश्वास केवल दृश्य जगत की ज्योति पर होता है।”

“किन्तु कितनी भयंकर लीला है इस दृश्य जगत की ! रूप, रस, गन्ध और न जाने क्या-क्या मनुष्य को मारना चाहते हैं, लेकिन चाणक्य मरेगा नहीं। न उसे रूप मार सकता है और न रस, न वह स्पर्श का दास है और न गन्ध का। चाणक्य अपने विश्वास पर दृढ़ है, समष्टि के कल्याण का रूप है।”

सोचते हुए चाणक्य कुछ और आगे बढ़े फिर विचारों में डुबे हुए द्रुतगामी चाणक्य का विचार किसी की संगीत भरी ध्वनि ने भंग कर दिया। चाणक्य ने देखा कि एक अद्वितीय सुन्दरी गाती हुई उनके पास चली आ रही है। चाणक्य चमत्कृत होकर ठिठक गये और मृदुल स्वर से बोले—“तुम कौन हो ? इस बीहड़ वन में अकेली क्यों घूम रही हो ? इस शून्य में गा-गा कर क्या चाहती हो ?”

सुन्दरी के अधरों पर हल्की-सी एक स्मित-रेखा खिंच गई। उसने

विद्युत से दमकते हुए रूप को और दमकाते हुए कहा—“मैं एक अनाथ बालिका थी, वन के क्रोड़ में एकाकी पलती रही। यहीं मैंने सरिता के स्वर से संगीत सीखा, पवन से मदालस लिया, फूलों से सुरभि और सौन्दर्य तथा पल्लवों से प्राणी-पालन। अभी कुछ पल पूर्व आस-पास से ध्वनि आई कि वन के प्रांगण में परम तपस्वी चाणक्य ऋषि चले आ रहे हैं। दर्शन और आराधना के लिए अन्तर की आरती सजाये चली आ रही हूँ।”

चाणक्य मुस्कराये और फिर गम्भीर होकर कहने लगे—जान पड़ता है कि प्रकृति के नीरव सौन्दर्य ने तुम्हें सर्वांगीण सौन्दर्य दे दिया। अच्छा हो यदि अब तुम वनों का यह सत्य मानव के हितार्थ संसार में ले जाओ।

**सुन्दरी**—नहीं, संसार में जो भी जाता है उसकी पवित्रता पर आँच आ जाती है। यह निर्मल सौन्दर्य संसार की कालिमा से काला हो जायेगा।

**चाणक्य**—तो फिर साधना से प्राप्त किये हुए इस अमृतमय सौन्दर्य का क्या करोगी? क्या वन के फूल की तरह खिलता-खिलता यह भी किसी दिन मर नहीं जायेगा? इसलिए यदि अमर होना चाहती हो तो अपना जीवन जगत के कल्याण में लगा दो!

**सुन्दरी**—लेकिन मैं तो यह नहीं चाहती।

**चाणक्य**—तो तुम क्या चाहती हो?

**सुन्दरी**—मैं जो चाहती हूँ वह मेरे सामने है। मैं चाहती हूँ कि वन की इस पवित्र छाया में परम पुरुष के चरण चापती रहूँ; जीवन भर जिसने संसार के लिए स्वयम् को तपाया है, उसको अपनी सेवाओं से शान्ति दे सकूँ।

**चाणक्य**—चाणक्य को शान्ति देना चाहती हो! नहीं, वह शान्ति नहीं चाहता और न ही उसे कोई शान्ति दे सकेगा। सन्तोष कहीं है, इस पर भी विश्वास नहीं होता। हर शान्ति के बाद नई अशान्ति खड़ी हो जाती है। व्यष्टि की शान्ति यदि कहीं है तो वह समष्टि में है, इसलिए सर्वहित में स्वयम् को बलिदान कर दो!

**सुन्दरी**—उपदेश सुनने में बहुत मीठे होते हैं, पर यथार्थ की छाती पर उपदेशों के नृत्यों का अस्तित्व क्षणस्थायी भी नहीं होता। छोड़ो ये



व्यर्थ की बातें और आओ मेरे साथ ! मैं तुम्हें वन में स्वर्ग का आनन्द दूँगी । मेरे पास मुक्ति की तृप्ति है । अपने संगीत और रूप की एक ही घूँट से मैं तुम्हें नया जीवन दे सकती हूँ । मेरे साथ आओ, एक ही पल में जीवन जगमगा उठेगा । मेरे अधरों में अमृत है, आँखों में आनन्द है और आलिंगन में इच्छा की पूर्ति । बहुत कुछ कल्याण कर चुके संसार का, अब कुछ अपने लिए भी ले लो !

कहते हुए सुन्दरी ने विचित्र दृष्टि से देखते हुए उनका हाथ पकड़ लिया । हाथ का स्पर्श होते ही चाणक्य चंचल हो उठे । उनके तेज और तप ने मानो रूप के सामने हाथ बाँध दिये हों । उनके रोम-रोम में स्पंदन हो उठा ।

चाणक्य विचित्र परिस्थिति में आ गये । वे दोराहे पर खड़े थे । एक तरफ रूप उन्हें खींचे लिये जा रहा था और दूसरी ओर कठोर तप । एक पल के लिए आँख मींचकर चाणक्य ने ईश्वर का स्मरण किया और फिर आँख खोलकर देवी की ओर देखते हुए बोले—“प्रणाम माँ !”

सौन्दर्य को नमस्कार कर चाणक्य नई सिद्धि प्राप्त कर चल दिये और रूप लज्जित होकर देखता रह गया ।

□□

“रोको, उनको रोक लो ! नहीं, मैं तुम्हें न जाने दूँगी। पिता जी चले गये, माँ छोड़ गई, भैया बिछुड़ गये, तभी तो तुम भी मुझसे दूर चले गये। ठहर जाओ, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। जीवन भर परार्थ के लिए चलने वाले राही ! मुझे भी अपने साथ लेते चलो। जीवन में जो कुछ भी पाया तुमने वह सभी दूसरों दे दिया, अपने लिए कुछ तो रख लेते ! कितनी कठोर है यह दुनिया ! दाता को दुःख देकर सब कुछ छीन लेती है। आज तक आग पर चलते रहे, पर आह का एक शब्द भी न निकला। तुम्हारी जिन्दगी पानी-पानी होकर हिम की तरह गलती रही, पर कभी कुछ नहीं कहा। जब सुख के दिन आये तो मानव के कल्याणार्थ अपनी अन्तिम इच्छा की भी बलि दे डाली। बहुत दुःख सह चुके हो, अब मैं तुम्हें और दुःख न उठाने दूँगी। स्वामी ! मगध के महामात्य ! मुझे वहाँ ले चलो जहाँ तपपुञ्ज चाणक्य गये हैं।”

रुग्ण-शैया पर पड़ी सुवासिनी और भी न जाने क्या-क्या बहक रही थी तथा राक्षस भीगी आँखों से बहकती और ढलती हुई सुवासिनी का मुख देख रहे थे। देखते ही देखते उनकी आँखों का वेग उमड़ पड़ा। उन्होंने अपनी आँखों की बरसात अपने घुटनों में दबाते हुए कहा—“यह तुम्हें क्या हो रहा है सुवासिनी ! चाणक्य के लिए तुम मोमबत्ती की तरह जल रही हो। मैं जानता हूँ, तुम्हारे हृदय में उनके लिए प्रेम की दीपशिखा अब भी जल रही है। मैंने बड़ा पाप किया जो तुम्हारी बात मान ली, अन्यथा चाणक्य मौर्य राज्य के महामात्य होते और सुवासिनी को अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती। मेरे ही कारण न जाने किस-किस को दुःख उठाने पड़े !”

“अब तो मैं भी जीवन से ऊब गया हूँ। जी चाहता है जीवन त्याग दूँ, पर कर्तव्य कहता है छाती पर पत्थर रखकर भी जी !”

**सुवासिनी**—आप ऐसा क्यों सोचते हैं स्वामी ! संसार में कोई किसी को दुःख-सुख नहीं देता, सब अपने कर्मों का भोग है। आपकी श्रेष्ठता पर जो स्याही लगाये, वह पापी है। आप तो सभी को सुख देना चाहते हैं, पर जिसके भाग्य में ही दुःख लिखे हैं उसके लिए आप क्या



करें। आप सबके सुख की चिन्ता करते हैं, पर आपको ही जीवन में कब सुख मिला!

**राक्षस**—उस मनुष्य के लिए दुःख भी सुख हो जाते हैं जिसके साथ दुःख में मन की सुनने वाला कोई अभिन्न साथी होता है।

**सुवासिनी**—तुम्हारे साथ मैं हूँ तो स्वामी! मैं तुम्हारे प्राण प्यार से सींचूँगी, मैं गा-गा कर तुम्हारे सारे दुःख हर लूँगी। अब दुखी न होओ नाथ! तुम दुखी हुए तो मैं अच्छी नहीं होऊँगी स्वामी।

**राक्षस**—मनुष्य भाषा का नहीं, भावना का आधार चाहता है। मैं देख रहा हूँ जैसे तुम्हें बिच्छुओं के काटने की पीड़ा हो रही है, पर तुम अपनी स्थिति को दबाकर मेरे मन की भाषा में बोल रही हो। अच्छा छोड़ो ये बातें अब तो किसी भी तरह तुम स्वस्थ हो जाओ! तुम स्वस्थ न हुई तो मैं जीवन भर के लिए रोगी हो जाऊँगा सुवास!

सुवासिनी की आँखें छलक उठीं। उसका मन स्वामी के प्यार से भीग गया। उसने राक्षस का हाथ प्रेम से दबाते हुए आँखों में आँखें डाल दीं। अपने दूसरे हाथ से राक्षस की आँख का आँसू पोंछते हुए उसने कहा—अब तो मैं आपकी दासी हूँ नाथ! रोओ मत मेरे स्वामी! मैं अब इन विशाल नेत्रों में आँसू नहीं देख सकती। रोओ मत प्राण! मैं अच्छी हो जाऊँगी।

**राक्षस**—संसार में रोना कौन चाहता है! मनुष्य स्वयं नहीं रोता, उसे रुलाया जाता है। वह वक्ष जो भालों की नोक से भी नहीं छिदता, प्यार की हार से टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। छोड़ो इन बातों को सुवास! विश्व में कोई ऐसा मनुष्य नहीं जो यह कह सके कि मैं सबसे अधिक दुखी हूँ। हर दुखी से बड़ा दुखी हर समय रहता है। दूसरे दुखी को देख कर मनुष्य को सन्तोष कर लेना चाहिये। चाणक्य, जिनके जीवन का हर क्षण दुःख का एक विस्तृत इतिहास है, जिनके लिए राक्षस के हृदय में प्रतिशोध की एक भीषण ज्वाला धधक रही थी, आज मेरे लिए सबसे अधिक श्रद्धा के पात्र बन गये। जब से वे अपनी सबसे अधिक प्रिय सुवासिनी भी देश-हित के लिए राक्षस को दे गये तब से मैं उनके विषय में ही सोचता रहता हूँ। वे न जाने कहाँ होंगे, किन दुःखों के पहाड़ों से टकरा रहे होंगे! उनको हर समय मानव के हित की चिन्ता रहती है। वे अपने लिए नहीं, प्राणी मात्र के लिए जीते हैं।

**सुवासिनी**—यह क्या नाथ! उनकी स्मृति में आपकी आँखें

छलछला गई! मैं यह नहीं समझ सकी कि आप दोनों भिन्न हैं या अभिन्न। चाणक्य यदि महान् हैं तो मेरे स्वामी उनसे कम महान् नहीं। सुवासिनी की पूजा के पुष्प या तो उन परम पुरुष के जीवन पर चढ़े हैं या अपने स्वामी के चरणों में। स्वामी! पता नहीं इस संसार में मनुष्य किस क्षण किससे पृथक् हो जाये, इसलिए यदि काल के कठोर प्रहार के कारण आपकी सेविका आपसे अलग कर दी जाये तो उसकी आपसे यह प्रार्थना है कि इन बड़ी-बड़ी आँखों में कोई आँसू कभी न देखे। संसार आपके और चाणक्य के इतिहास पर गर्व करे, यही मेरी अन्तिम इच्छा होगी।

**राक्षस**—ये कैसी बातें कर रही हो सुवास! तुम्हारी वाणी से निराशा के शब्द क्यों निकल रहे हैं? क्या तुम भी राक्षस से पृथक् हो जाओगी? नहीं, यह नहीं हो सकता। यदि तुम न रहों तो मैं इस विशाल राज्य का मन्त्रित्व किस प्रकार संभाल सकूँगा!

राक्षस के प्यार से सुवासिनी का रोम-रोम खिल उठा। उसने अपने दोनों हाथ लेटे ही लेटे राक्षस के कंठ में डाल दिये और फिर भिगो दिया उनका अक्ष अपने अश्रु-प्रपात से।

प्रेम की यह गङ्गा और भी न जाने कब तक बहती रहती कि प्रतिहारी ने आगमन की सूचना देकर प्रवेश करते हुए कहा—“राजमाता मुरा ने आपको इसी समय स्मरण किया है।”

“अभी आते हैं,” कहते हुए राक्षस ने सुवासिनी की ओर इस दृष्टि से देखा कि वह जाने की स्वीकृति दे दे।

सुवासिनी चमकती हुई बिजली की तरह मुस्करा उठी और मुस्कराते हुए उसने कहा—“जाओ, बहुत देर करके न आना, मैं प्रतीक्षा में रहूँगी।”

सुवासिनी को देखते हुए महामात्य शयन-कक्ष से बाहर निकले और एक झूमते हुए मस्त गज की तरह वहाँ आ पहुँचे जहाँ मुरा उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। मुरा को देखते ही महामात्य ने राजसी अभिवादन करते हुए कहा—“कहिये, राजमाता ने हमें किसलिये स्मरण किया है?”

**मुरा**—सुवासिनी का क्या हाल है? मैं स्वयं वहाँ आ रही थी, पर यहाँ राजमहल की स्थिति ऐसी दीख रही है कि मेरा यहाँ से पल-भर को हटना भी भयानक हो सकता है, इसलिये आपको यहाँ तक आने



का कष्ट दिया है।

**राक्षस**—क्या बात है, राजमाता !

**मुरा**—बात यह है कि अन्य सभी रानियाँ प्रत्यक्ष में तो मुझसे बहुत प्रसन्न रहती हैं, पर अप्रत्यक्ष में उनको बड़ी ईर्ष्या है। घर की इस प्रच्छन्न कलह में मुझे अपना जीवन अखरने लगा है। मगध के बुद्धिमान महामात्य ! राजमाता का यह महत्त्वपूर्ण मुकुट अब मुझसे न पहना जा सकेगा। राजमहल की चिकनी मिट्टी मेरे लिये तपते हुए पत्थर से भी कठोर है। मेरी बहिनें राजमाता रहें और मैं राज्य-सेवा करती रहूँ, मेरी यह इच्छा है। इसलिये मैं जन-सेवा के लिये स्त्री जाति के विकासार्थ नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में जा रही हूँ।

मुरा कुछ और भी कहती कि सुनन्दा ने सहसा वहाँ आकर गम्भीरता में चहल-पहल प्रस्तुत कर दी। आते ही उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—  
“हमारी बहिन मुरा हमसे पृथक् होकर जा रही है। फूट के जिस बीज ने आज तक इस हरे वृक्ष की जड़ें उखाड़ फेंकी हैं, क्या आज भी उस बीज को फलने-फूलने दिया जा सकेगा ? नहीं, यह नहीं हो सकता। राक्षस ! निस्सन्देह यह नहीं हो सकता। जब तक बड़ी माँ जीवित हैं तब तक घर में कोई विस्फोट नहीं होगा।”

**मुरा**—लेकिन मैं तो हर पल किसी न किसी से कुछ सुनती ही रहती हूँ। कभी कोई कहती है कि माधवी तुम्हारी निन्दा कर रही थी, कभी कोई कहती है कि विचक्षणा तुमसे घृणा करती है, कभी किसी से सुनती हूँ सुनन्दा को तुम पर भारी रोष है।

**सुनन्दा**—कहने वाले कहते हैं और सुनने वाले सुनकर अपना घर बिगाड़ लेते हैं। आश्चर्य है कि मुरा जैसी चतुर राजमाता पर किसी के कहने और सुनने का प्रभाव कैसे पड़ गया !

**मुरा**—आपके प्रेम में न जाने क्या है बड़ी बहिन ! द्वेष और घृणा आपमें कभी नहीं देखी। कड़वे से कड़वा विष भी आप पचा लेती हैं।

**सुनन्दा**—जो विष नहीं पी सकता उसे अमृत पीने का अधिकार नहीं है। खैर, छोड़ो इस आलोचना-प्रत्यालोचना को। चलें, पहले सुवासिनी का उपचार अनिवार्य है। फिर चाहे किसी भी सेवा में चलना, हम तुम्हारे साथ चलेंगे।

महामात्य के साथ राजमाताएँ उस कक्ष में आ गईं जिसमें सेविकाएँ सुवासिनी की सेवा में रत थी।

राजमाता को देखते ही सुवासिनी ने श्रद्धा से प्रणाम किया। महारानी सुनन्दा ने पास बैठते हुए कहा—कैसी है सुवास !

**सुवासिनी**—अच्छी हूँ माँ !

**मुरा**—तो फिर खाट पर क्यों पड़ी है ?

**सुवासिनी**—ईश्वर की इच्छा ।

हाल-चाल पूछे ही जा रहे थे कि राक्षस को पुनः सम्राट् ने बुला भेजा। जैसे ही प्रतिहारी ने कहा, 'सम्राट् ने आपको स्मरण किया है', वैसे ही यह कहते हुए राक्षस चल दिये—“सेवावृत्ति चाहे साधारण पद की हो या महामात्य पद की, बराबर ही है। अधिकार से बड़ा दुःख शायद संसार में दूसरा नहीं। यह वह आकर्षण है जिसमें मनुष्य को हर समय चिन्ता रहती है। राजसेवा भी कैसी कठोर है ! इसमें किसी क्षण भी तो शान्ति नहीं मिलती।”

सोचते-सोचते महामात्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के सामने आ पहुँचे। महामात्य को देखते ही चन्द्रगुप्त ने श्रद्धा से झुकते हुए कहा—आपको सहसा इसलिए स्मरण किया है कि अभी-अभी ऐसा हर्ष समाचार मिला जिसे हम पल-भर के लिए भी पचा न सके।

**महामात्य**—वह क्या, सम्राट् !

**चन्द्रगुप्त**—हमारे अन्वेषकों ने मगध की भूमि से वे खानें खोजकर निकाली हैं, जिनसे हम धन से भरपूर हो जायेंगे।

**महामात्य**—धरती रत्नगर्भा है, इसमें से मनुष्य जो चाहे वह प्राप्त कर सकता है। हाँ तो राजन् ! खोजकर क्या-क्या रत्न निकले ?

**चन्द्रगुप्त**—अभ्रम, कोयला, लोहा यहाँ से बंग तक की भूमि में भरा पड़ा है। अब भारत कभी निर्धन नहीं रह सकता।

**महामात्य**—भारत न पहले निर्धन रहा, न अब निर्धन है और न आगे निर्धन रहेगा। समुद्र का पानी कभी नहीं सूखता। हाँ तो सम्राट् ! उन अन्वेषकों को मालामाल कर दो, जो भूमि की सतह के रत्न-भण्डार निकालते हैं इतना धन दे दो कि कोई श्रमिक निर्धन न रहे।

**चन्द्रगुप्त**—जैसी महामात्य की आज्ञा !

**महामात्य**—श्रीसम्पन्न राज्य में यदि किसी एक को आर्थिक अभाव है तो वह राज्य किसी न किसी दिन नष्ट हो जाता है। हमारे राज्य में छोटा-बड़ा कोई भी निर्धन नहीं रहना चाहिए।



**चन्द्रगुप्त**—आपकी कृपा से राज्य में किसी को अभाव नहीं है।

**महामात्य**—मेरी कृपा से नहीं, तपस्वी चाणक्य की कृपा से कहो जिनके तेज से यह भूमि जगमगा रही है और जगमगाती रहेगी।

**चन्द्रगुप्त**—सचमुच, वे भूमि के भगवान न जाने क्यों हमें छोड़कर चले गये!

**महामात्य**—महात्मा चाणक्य का कोई कार्य ऐसा नहीं होता जो मानव-हित का न हो। उनके वन-गमन में भी कोई न कोई रहस्य अवश्य है।

**चन्द्रगुप्त**—गुरुदेव सूर्य की तरह तप-तप कर प्रकाश देते हैं। जी चाहता है कि यह राज्य छोड़कर वे संन्यासी जहाँ भी हों उनके चरणों में जा पड़ूँ।

**महामात्य**—वस्तुतः महर्षि चाणक्य के चरणों में जितनी शान्ति है उतनी शान्ति मणि-मण्डित राजसिंहासन पर नहीं, किन्तु सामूहिक हित में व्यक्तिगत शान्ति दीप-शिखा की तरह जलानी पड़ती है।

**चन्द्रगुप्त**—राज्यश्री भी कैसी अद्भुत होती है! बड़ा कड़वा स्वाद होता है इस मधुरता में।

**महामात्य**—राजसिद्धि विषपान से कम कठिन नहीं होती राजन्! किन्तु आज इस समय यह विचित्र तर्क आपके मस्तिष्क में कैसे उपस्थित हो गया।

**चन्द्रगुप्त**—राज्य में कोई विशेष कार्य न होने से मन एकाकीपन अनुभव करने लगा था, बैठे-बैठे मस्तिष्क में जब अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए तो सोचा कुछ क्षण महामात्य से बातें करके जीवन में कुछ अधिक प्राप्त कर लूँ।

**महामात्य**—राजा के लिए हर समय व्यस्त रहना आवश्यक है। खाली मनुष्य अपनी ही खोपड़ी को खाने लगता है। सम्राट् के पास तो कौरनेलिया और छाया दो ऐसे बोलते हुए अनश्वर फल हैं जिनसे जीवन के सब अंगों की पूर्ति हो सकती है। सम्राट् को वैराग्य की बातें नहीं सोचनी चाहियें।

**चन्द्रगुप्त**—जब से देवतारूप गुरु चाणक्य गये हैं तब से बहुत लगाने पर भी चित्त नहीं लगता।

**महामात्य**—यदि मन अधिक व्यग्र हो तो कवि-शिरोमणि भास

से काव्य श्रवण कर लिया करो। भौतिकता और आध्यात्मिकता का तृप्ति-संगम काव्य धारा से ही होता है। कवि श्रेष्ठ भास का एक-एक पद हजार-हजार राज्यों के सुख से भी अधिक सुखदायी है। मेरा चित्त तो चाहता है कि हर समय कवीश्वर से काव्यामृत पान करता रहूँ, पर राज्य की उलझनों से अवकाश ही नहीं मिलता। बहुत दिनों से कविराज के दर्शन तक नहीं हुए।

**चन्द्रगुप्त**—न जाने क्यों कविराज कभी इधर आये ही नहीं।

**महामात्य**—वह कवि ही क्या जो राजा के सामने याचक की तरह पहुँच जाये! वह राजा अभागा होता है, जिसके राजमुकुट को कवि की कुटिया का प्रसाद नहीं मिलता। राजा से कवि की अमरता नहीं, कवि से राजा की अमरता होती है।

**चन्द्रगुप्त**—महामात्य का अर्थ सम्भवतः यह है कि गुणी और कलाकारों के आदर के लिए चन्द्रगुप्त को स्वयं उनके घर जाना चाहिए।

**महामात्य**—बुद्धिमान के लिए संकेत पर्याप्त होता है। देखो, वह सामने से प्रतिहारी घबराई हुई आ रही है। जान पड़ता है सुवासिनी की दशा कुछ अधिक बिगड़ गई है।

**चन्द्रगुप्त**—हाँ, बातों ही बातों में मैं यह तो पूछना ही भूल गया, बड़ी बहिन कैसी हैं?

**महामात्य**—न जाने कैसी हैं, कुछ समझ में नहीं आता।

इतने में प्रतिहारी ने आकर कहा—“परम विदुषी सुवासिनी ने महामात्य को तुरन्त स्मरण किया है।”

सुनते ही महामात्य और चन्द्रगुप्त चल दिये तथा हवा के प्रबल झोंके के सदृश पलक मारते ही उस कक्ष में आ गये जिसमें सुवासिनी ढलती हुई चाँदनी-सी मुस्करा रही थी। महामात्य को देखते ही वह इस तरह हँसी जैसे बादलों की रात में किसी पल बादल हट जाने पर ज्योत्स्ना दमक उठती है। किन्तु दूसरे ही क्षण रोग रूपी मेघों ने चमकते हुए चाँद को फिर ढक लिया।

महामात्य और सम्राट् सुवासिनी की शैया के पास बैठ गये। बैठते ही दोनों की आँखें कुछ भर-सी आईं, किन्तु सुवासिनी ने बलात् मुस्कान भरी आँखों से देखते हुए कहा—“यह क्या, आपकी आँखों में पानी! मगध के सम्राट् और महामात्य होकर आँखें भर लाये! संसार रोने के लिए नहीं, हँसने के लिए है।”



महामात्य ने कुछ उत्तर न दिया, किन्तु सम्राट् से मौन न रहा गया। उन्होंने रूँधे कण्ठ से कहा—“तुम इस राज्य की दीपिका हो बड़ी बहिन! तुमने जीवन भर जल-जल कर हमें ज्योति दी है और आज जब मगध के सारे सुख आपकी आरती उतारना चाहते हैं तो ईश्वर की कठोरता ने आप पर आक्रमण कर दिया। जब तक तुम अच्छी न होगी तब तक महामात्य और हम सबकी आँखें गीली ही रहेंगी।”

**सुवासिनी**—वियोग जीवन का चरम सत्य है। एक न एक दिन सभी को पृथक् होना पड़ता है। यहाँ तक कि आत्मा और शरीर का भी बिछोह है। भीगी आँखों से हर मनुष्य को यह कठोर सत्य सहना पड़ता है।

**चन्द्रगुप्त**—तुम्हारी महिमा मगध के कण-कण में अंकित है। इस राज्य की स्थापना में तुम्हारा बलिदान सूर्य के तप की तरह तेजवन्त है। मगध राज्य की दृढ़ता में तुम्हारे कुटुम्ब की हड्डियाँ नींव की ईंट की तरह लगी हुई हैं।

**सुवासिनी**—किसी देश के निवासी के लिए इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है कि उसका अन्तिम श्वास भी मानव-हित के लिए ही निकले। जीवन का धर्म जीवन के लिए है।

सुवासिनी कहती जा रही थी और चाँदनी धीरे-धीरे ढल रही थी। देखते ही देखते महामात्य की आँखों से आँसू निकल पड़े। सुवासिनी ने महामात्य की आँख अपने काँपते हुए हाथ से पोंछते हुए कहा—“लौहपुरुष होकर आँखें न भरो यदि दुःख में आप ही रो दिये तो फिर साधारण मनुष्यों की आँख के आँसू कौन पोंछेगा? साहस रखो स्वामी! और फिर अभी तो मैं जीवित हूँ। हँसो नाथ! हँसो सम्राट्! मरने से पहले जितना भी हँस सकते हैं, हँस लें। वह देखो, महात्मा चाणक्य शून्य में हँसते हुए जा रहे हैं। राह के काँटों ने उनके पैर छलनी कर दिये, पर वे मृत्यु और दुःख पर मृत्युञ्जय की तरह चले जा रहे हैं। हँसो, सब मिलकर ऐसे हँसो कि दुःख डर कर भाग जाये।”

कहते-कहते सुवासिनी ऐसे हँसी जैसे दीपक की बत्ती बुझने से पहले हँसती है।



“सुख और तृप्ति की खोज में मनुष्य जीवन भर भटकता है। किन्तु क्रान्ति और शान्ति का संघर्ष कभी नहीं रुकता। सुख के लिए संघर्ष का अर्थ है—दुःख। दुःख के बिना सुख नहीं मिलता। जो दुःख सहने का अभ्यासी है, उससे बड़ा सुखी क्या कोई हो सकता है” दुःख और सुख की आलोचना करते हुए चाणक्य जैसे ही गंगा-तट पर स्नान के लिए रुके, वैसे ही अपार समूह के मध्य राजसी गरिमा के साथ उन्होंने दूर से आती हुई एक अर्थी देखी। जैसे-जैसे अर्थी आगे आती गई वैसे ही वैसे तपस्वी चाणक्य का हृदय उमड़ने लगा।

शव के साथ प्रायः सभी परिचित थे। चन्द्रगुप्त, महामात्य राक्षस, प्रधान सेनापति तथा अन्य मन्त्रीगण आँसुओं से भीगा मुख लटकाये चले आ रहे थे। पीड़ा की पराकाष्ठा में और अधिक देर न लगी। राक्षस मृत्यु के शोक में दौड़े हुए आ चाणक्य के गले लग लम्बी हिचकी भरते हुए बोले—“सुवासिनी!”

चाणक्य ने अपनी उँगली से राक्षस के आँसू पोंछते हुए हृदय पर वज्र रखकर कहा—धैर्य रखो, पुरुष को किसी भी दुःख में आँसू नहीं गिराने चाहियें। राक्षस जैसे लौह-पुरुष पर चाणक्य को ही नहीं सारी दुनिया को गर्व है।

**राक्षस**—धैर्य के शब्द बहुत मीठे होते हैं ऋषिराज! पर धीरज धरना सरल नहीं होता। राक्षस आज इतने बड़े राज्य का महामात्य होते हुए भी निर्धन की ठोकर से भी तुच्छ है।

**चाणक्य**—जानता हूँ परम गुणी! तुम्हारा दुःख मेरे हृदय का दुःख है। मुझे भी जीवन में चन्द्रगुप्त और राक्षस से उतना ही स्नेह है जितना राक्षस को सुवासिनी से। पर अब क्या हो सकता है! बड़े से बड़ा राज्य खोकर पुनः प्राप्त किया जा सकता है, पर मृत्यु की गोद में सोये हुए सगे को पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता। न राम सीता को पा सके और न मन्दोदरी रावण को। सावित्री और सत्यवान की कहानी आदर्श के लिए सुनने में अच्छी लगती है, पर सत्य मृत्यु की निर्ममता ही जानती है। अतीत के गर्भ में न जाने कितने तुम्हारे और मेरे इतिहास



छिपे पड़े हैं। प्रेम का नाता अपरिमित होते हुए भी बहुत छोटा है। सुरभि-सी सुन्दर सुवासिनी से संसार का इतना ही नाता था।

कहते हुए चाणक्य ने कंधे का सहारा देते हुए सुवासिनी की अर्धो गंगा-तट पर रखी। मुँह का कपड़ा उठाकर चाणक्य ने सुवासिनी को देखो, देखते ही उनकी आँखें उमड़ आईं। उँगली से आँसू पोंछते हुए वे धीरे-धीरे सिसकते हुए कहने लगे—“मरण का क्षण कितना दार्शनिक होता है! आदर्श और यथार्थ का यह कितना कठोर संगम है! मृत्यु की गोद में जीवन के सारे स्वप्न सो जाते हैं। इस बिचारी ने जीवन भर तपस्या करके क्या पाया! न जाने कितने इसी तरह आँखों में आँसू लेकर सदा के लिए सो जाते हैं।”

दुःख जब असह्य होता है तो हिमालय भी फूट पड़ता है। चाणक्य की आँखों में पहले कभी किसी ने आँसू नहीं देखे थे। जब चिता जलती है तो आग और पानी का संगम होता है। आँख से आँसू बहते रहे और चिता जल उठी।

रूप, श्रृंगार और सृजन अपनी कहानी चिता के किनारे छोड़कर चले जाते हैं। संसार के सारे सम्बन्धों की इति यहीं तक है। सोने जैसा शरीर जलकर राख की एक ढेरी मात्र रह गया। गंगा के निर्मल जल में चाणक्य के देखते-देखते राक्षस ने मानो जीवन की आशाएँ सदा के लिए डुबा दीं। दोनों ने गंगा के पवित्र नीर में अपनी आँखों के नीर के साथ ही साथ सुवासिनी की राख प्रवाहित की तथा सदा के लिए अपनी छाती पर मृत्यु की शिला रख ली।

विरह में निराशा की कथा पढ़ते हुए राक्षस ने कहा—“अब मैं राज्य में वापिस नहीं जाऊँगा। संन्यासी बनकर इसी तट पर सुवासिनी की स्मृति में सारा जीवन बिता दूँगा।”

सुनकर चाणक्य गम्भीर हो गये। पल भर मौन रहने के पश्चात् उन्होंने कहा—दुखी तुम ही नहीं हो महोदय! धरती के कण-कण से पीड़ा की पुकार आ रही है। ईश्वर ने तुम्हें दुःख इसलिए दिया है कि तुम दुखी को समझ सको। मानव मानव की पीड़ा पहचान सके, यही तो मनुष्य का धर्म है! तुम्हें राज्य में वापस जाना ही होगा। अपने लिए नहीं, अपितु उन कोटि-कोटि पीड़ितों के लिए जिनके आँसू पत्थरों पर गिर कर बार-बार टूट जाते हैं।

**राक्षस**—लेकिन मुझसे राजकार्य अब नहीं हो सकेगा महात्मा!

मेरा हृदय टूट चुका है।

**चाणक्य**—पर बुद्धि तो नहीं टूटी। जाओ महामात्य! राजा और महामात्य को अपने घर की मृत्यु नहीं, प्रजा के घर का दुःख देखना चाहिए।

**राक्षस**—कितना कठोर होता है राजकार्य! जो जितना बड़ा होता है उसके दुःख भी उतने ही बड़े होते हैं। जाना तो पड़ेगा ही महात्मा! कर्तव्य बड़ा कठोर होता है। भावुकता अपनी ओर खींचती है और कर्तव्य अपनी ओर। मनुष्य इन दोनों के बीच दो हथिनियों के मध्य हाथी की तरह कभी इधर जाता है और कभी उधर।

**चाणक्य**—हर आने वाली आपत्ति को जो हँस कर भुला नहीं देता वह दुनिया में जी नहीं सकता। जाओ ब्राह्मण शिरोमणि! तुम राज्य की ओर जाओ और मैं शून्य की ओर जा रहा हूँ। यह न समझना कि मैं संसार से भागकर जा रहा हूँ, अपितु शून्य को मुखर करने के लिए शून्य के अन्तर से शब्द निकालने जा रहा हूँ।

राज-परिवार के साथ महामात्य राक्षस आँखों में आँसू लिए राजधानी की ओर चल पड़े और चाणक्य ने सुवासिनी के दाहस्थान की एक चुटकी मिट्टी वक्ष पर मल शून्य की ओर प्रस्थान किया।

X

X

X

चलते-चलते चाणक्य कभी हँसते और कभी उमड़ पड़ते। उनके हृदय में बार-बार ज्वार-सा उठता था—“क्या सत्य है, क्या असत्य है? क्या मनुष्य इसीलिए इतना बड़ा नीड़ बनाता है? नहीं, नहीं! मृत्यु की विभीषिका से हार नहीं माननी चाहिए। युग-युगान्तरों से मनुष्य मृत्यु की छाती पर जीवित रहा है और रहेगा। तो फिर तुम इतना बड़ा राज्य छोड़कर क्यों चले आये? क्या सुवासिनी तुम्हारे आदर्श की भेंट नहीं चढ़ी? व्यर्थ हैं संसार के कठोर आदर्श! जीवन में वही क्षण अपना है जिसमें मनुष्य सुखी है।”

“आत्मा का विस्तार वनों की रिक्तता में नहीं, नगरों की सज्जा में है। लेकिन आत्मा यदि केवल भौतिकता में डूब जाये तो मनुष्य एक दिन वनचर भेड़िये से भी भयंकर हो जायेगा! वनों के अन्तराल से उठती हुई ऋषियों की आवाज आत्मा को बल देती है।”

दार्शनिक चिन्तन करते हुए चाणक्य वन की गहराई में घुसते चले गये, नीरवता जहाँ शान्ति की कथा कह रही थी, प्रकृति जहाँ मौन



सन्देश देती थी। प्रकृति में डुबे हुए चाणक्य जैसे-जैसे शून्य में बढ़ते गये, वैसे-वैसे वन के अन्तर से प्रति क्षण ध्वनि गूँजने लगी।

“परम तेजस्वी महात्मा चाणक्य की जय! युगनिर्माता राजर्षि की जय! नीतिकारों में श्रेष्ठ परम बुद्धिमान् महात्मा चाणक्य की जय! त्यागी महामानव चाणक्य की जय!”

चाणक्य जैसे ही और आगे बढ़े वैसे ही शून्य के अन्तराल से अनेक ऋषि चाणक्य की जय बोलते हुए उनके सामने आ पहुँचे। चाणक्य अभिवादन के लिए झुकना ही चाहते थे कि इससे पहले ही आगन्तुक ऋषियों ने महात्मा चाणक्य को साष्टांग प्रणाम किया।

चाणक्य ने लज्जा से अपनी वाणी अत्यधिक मृदुल कर कहा— ‘हे ऋषिवृन्द! आपके दर्शन कर पापी भी मुक्त हो जाते हैं। आप मनुष्यों में श्रेष्ठ और त्यागियों में शिरोमणि हैं। शताब्दियों का इतिहास आपकी तपस्या पर लिखा हुआ है। युग आये और चले गये, किन्तु आप अमर हैं। मैं तो आपके सामने मर्त्यलोक का साधारण मनुष्य हूँ, जिसका इतिहास आध्यात्मिकता के पृष्ठों पर छल की स्याही से लिखा हुआ है, जिसे क्रोधी और कुटिल समझकर मनुष्य भय खाता है, जिसके जीवन में आग और आँखों में पानी है, जो आपके चरणों में शान्ति की चाह से आया है। उसे इस प्रकार लज्जित करके और बोझल क्यों करते हो?’

**ऋषि**—जिसके प्रकाश से भौतिक संसार ज्योतिवन्त है, जिसने तप-तप कर मनुष्य जाति का उत्थान किया, जो दुःखों के पहाड़ पार करता हुआ यहाँ तक आया है, जिसकी कीर्ति और क्रान्ति का इतिहास दिशाओं की दीवारों पर लिखा हुआ है, जो मनुष्यों में महान् और ऋषियों में श्रेष्ठ है, जिसके चरणों में बड़े-बड़े पर्वत झुक जाते हैं, उस देव पुरुष को अपने मध्य पाकर हम सब धन्य हुए। आओ ब्राह्मण शिरोमणि! यह ऋषि समाज आपका अभिनन्दन करता है।

**चाणक्य**—आपने मुझे अपनाया तो मैं कृतार्थ हो गया। अब आप मुझ कुटिल ब्राह्मण को अपने आश्रम में रखकर ऋजु-पथ दिखाइये! मैं जानना चाहता हूँ मनुष्य की तृप्ति कहाँ है, मनुष्य के सुखों की इति कहाँ होती है? मैं मानव की शान्ति और मुक्ति खोजने आया हूँ।

**ऋषि**—मनुष्य की मुक्ति और शान्ति चाणक्य के चरित्र में है, जो दुःख सहकर हँसना और हँसाना जानता है, जो गरल पीकर अमृत उगलता है। उसके पास प्राणीमात्र का शिव है। उससे मनुष्य तो क्या

ऋषि भी अमृत प्राप्त करते हैं।

**चाणक्य**—जो पाठ पढ़ता और पढ़ाता चला आ रहा हूँ, जिस अध्याय को रटता-रटता मैं अतृप्त हूँ, क्या उसी अध्याय का पाठ करने के लिए मैं इस ऋषि-आश्रम में आया हूँ? नहीं, मैं भौतिकता के उल्वण वातावरण से दूर अब परम शान्ति चाहता हूँ। बोलो ऋषिगण! कहाँ है परम शान्ति, कहाँ है शाश्वत मुक्ति?

**ऋषि**—कर्मयोगी! हम तो स्वयम् आपसे यह पूछने आये हैं। तपस्या करते-करते हमारा शरीर अस्थि-मात्र रह गया, तपते-तपते हम कितनी ही बार बूढ़े हो चुके, लेकिन धरती का दर्शन अभी तक तो समझ में नहीं आया। नाश और निर्माण का रहस्य अभी तक अपरिचित है। समझ में नहीं आया कि क्या साकार है और क्या निराकार!

**चाणक्य**—सुना है वनों के गर्भ में, पहाड़ों की गुफाओं में त्रिकालदर्शी ऋषि रहते हैं। उनके पास जो कुछ अप्रत्यक्ष है वह सब प्रत्यक्ष है। वे जीवन और मृत्यु को प्रत्यक्ष देखते हैं। वे अपने आसन पर बैठे ही बैठे आकाश से परे पहुँच जाते हैं, धरती के अन्तराल में भ्रमण कर लेते हैं। पलक मारते ही पृथ्वी की परिक्रमा उनका एक श्वास मात्र है। वे फूँक मारते ही संसार को भस्म कर सकते हैं, आँख मींचते ही संसार बसा सकते हैं। चाणक्य उनके इस रूप के दर्शन करना चाहता है।

**ऋषि**—सुना तो हमने भी यही था, पर प्रत्यक्ष नहीं देखा, प्रत्यक्ष दर्शनार्थ साधना करते-करते बार-बार बाल सफेद हुए, पर रहस्य अभी तक रहस्य ही बना हुआ है।

**चाणक्य**—तो फिर यहाँ भस्म रमाकर तपस्या करने का उद्देश्य क्या शरीर को सुखाना मात्र ही है?

**ऋषि**—नहीं, तपस्या का उद्देश्य मानव का अहम् है अथवा कोई ऐसा रहस्य है जिसे ऋषि भी नहीं जानते। संन्यस्त में कोई ऐसा मौन आकर्षण दीखता है जिसके सामने प्रत्येक आकर्षण को तुच्छ कहा जाता है।

**चाणक्य**—निराशा से थका हुआ मनुष्य किसी चिरन्तन सत्य की आकांक्षा से तपस्या करता है, पर प्रत्यक्ष देखने से पता चला कि झूठी है वह तपस्या जो गेरुए वस्त्र और नाखूनों तक की दाढ़ी से स्वयम् को छलती है। वस्तुतः तपस्या का अर्थ प्राणी के लिए सुख का अनुसंधान



है। ऋषि, तपस्वी, महात्मा इन सबका एक ही अर्थ है और वह है मानवता का सच्चा स्वरूप।

**ऋषि**—प्राणी के दो रूप दुनिया में देखने को मिलते हैं। एक वह जिसमें उसे देवता कहते हैं, दूसरा वह जिसमें उसे पिशाच के नाम से पुकारा जाता है। ऋषि सम्भव है इनसे पृथक् कोई आर्ष प्राणी हो।

**चाणक्य**—ऋषि जीवन का उद्देश्य मानव-हित होना चाहिये, इससे तो आप सब समर्थित हैं न ?

**ऋषि**—मानव ही नहीं, प्राणी मात्र का हित साधु पुरुष का धर्म है।

**चाणक्य**—तो फिर वनों में रमते हुए कोटि-कोटि साधु प्राणी के कल्याण हेतु कर्मठ बनकर धरा पर ही स्वर्ग का निर्माण क्यों नहीं करते ? क्यों मुक्ति और स्वर्ग के स्वप्नों में भटकते फिरते हैं ? क्यों नहीं अपने परिश्रम और बुद्धि के प्रताप से भूमि को ऐसा प्रकाश देते जिससे यह अँधेरा उजाले में बदल जाए ? उठो ऋषिवृन्द ! प्राणी के हितार्थ धरती के सुख, स्वर्ग के सौन्दर्य और मुक्ति के सत्य का संगम कर दो ! मानव लोक और देवलोक के बीच की दीवार हटाकर अमृत की लहर को सर्वत्र जीवन देने दो ! जब तक पतन उत्थान में परिवर्तित नहीं होगा, जब तक उत्थान पतन को अपने उजाले से उज्ज्वल नहीं करेगा, जब तक ऋषि धरती को मृत्यु-लोक कहकर मृत्यु के भय से वनों में भागते फिरेंगे तब तक मानव पराजित ही रहेगा। समाधि में सोने वाले महात्मा ! जागो, सर्वोदय की शिवाराधना में ही ऋषि-जीवन की सफलता है।

**ऋषि**—यह सफलता सर्पदर्शन से भयंकर और आत्मग्लानि से भी अधिक घृणित है। भौतिक संसार में जाकर कौन कलंकित नहीं हुआ !

**चाणक्य**—अग्नि-प्रवेश से जो डरता है, वह कच्चा तपस्वी है। ऐसे साधु से तो जड़ स्वर्ण ही अच्छा है जो ज्वाला में तप-तप कर दमक उठता है। संसार अभिशाप नहीं, वरदान है ऋषिवृन्द ! मानव के उद्धारार्थ यदि हजार बार नरक में ही जाना पड़े तो भी जाना चाहिये। तुच्छ है स्वर्ग का वह देवता, जिसके कानों में नरक के पीड़ित प्राणियों का 'त्राहि-त्राहि' स्वर आ रहा है ! व्यर्थ हैं देवलोक के वे राजा जो अपनी नींद में दूसरे के दुःख का शब्द नहीं सुनते। चाणक्य मानव-लोक से ऋषि-लोक में इसी हेतु आया है कि व्यक्तिगत आनन्द की साधना में लीन साधु-समाज मनुष्य से दूर ईश्वरत्व-प्राप्ति का व्यर्थ प्रयत्न न करे। इस मध्य रेखा के पार प्राणी को विज्ञान-पुरुष खींचे लिये जा रहा

है। यदि आध्यात्मिकता के आर्ष सिन्धु में भौतिक प्राणी को ऋषियों ने परम शान्ति का पथ न दिखाया तो सम्भव है एक दिन ऐसा भी आ जाये जब मनुष्य निरीह मनुष्य के वध को धर्म कहकर घमण्ड करेगा।

**ऋषि**—आप विज्ञान और आध्यात्मिकता के संगम हैं ज्ञान-पुरुष! कहिये, हम प्राणी की क्या सेवा कर सकते हैं?

**चाणक्य**—पेड़ों और पत्तों का स्वर सुनो जो चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं, 'बचाओ, हमें बचाओ! लोहे के रथ पर चढ़ा हुआ सोने का मनुष्य हमें चीरता चला आ रहा है। हम जीवों के हत्यारे भविष्य के पृष्ठों पर हिंसा के वे अक्षर खोद रहे हैं जो ऋषियों के बलिदानों से भी नहीं मिट सकते।' अभी समय है, नये भविष्य के सुन्दर निर्माणार्थ मानव-लोक की ओर चलो!

**ऋषि**—डूबती हुई धरती बचाने के लिए ही संसार से झुलसे हुए प्राणी वनों के अन्तराल में आ बसते हैं जहाँ से सारी भूमि को प्रकाश मिलता है।

**चाणक्य**—अब तक वनों की छाया में छिपे रहे, अब मानव की आँखों के सामने आ जाइये!

**ऋषि**—क्या मनुष्य के पास हमें पहचानने वाली आँखें हैं?

**चाणक्य**—हाँ ऋषिवृन्द! धर्मात्मा राजा चन्द्रगुप्त के राज्य में ऋषियों से अधिक पूज्य और कोई नहीं। वहाँ आपको सत्य, धर्म और प्रेम का सुन्दर संगम मिलेगा। भूल जाओगे वन की इस शान्ति को। चन्द्रगुप्त के राज्य में चन्द्रलोक जैसी शान्ति और स्वर्ग जैसा आनन्द है।

**ऋषि**—चाणक्य के अथक तप से स्थापित किया हुआ चन्द्रगुप्त का राज्य मानव के लिए शिव हो! परन्तु महात्मा! भौतिक बवण्डर में मनुष्य क्षणोपरान्त ही मनुष्यता खो बैठता है। धरती पर जितने भी युग आये, जितने भी राजा हुए, सभी को वैषम्य का विष पीना पड़ा है। रूप, रंग, रस, गन्ध और स्पर्श की दुनिया में चाणक्य को छोड़कर और कौन ऐसा ऋषि हो सकता है जो काँटों में फूल की तरह खिले!

**चाणक्य**—धरा के कठोर काँटे जिसके वक्ष में नहीं चुभे उसे संसार का ज्ञान नहीं हो सकता।

**ऋषि**—आपकी बुद्धि के प्रकाश के समक्ष हमारी ज्योति लघु है। हम आपकी आज्ञानुसार सेवा को प्रस्तुत हैं।

**चाणक्य**—तो चलो! मानव की आत्मा में सत्य का तेज भरने के



लिए, पीड़ित और प्रताड़ित प्राणी को शान्ति प्रदान करने के लिए कर्म-भूमि पर चलो! निष्काम कर्मयोग से बड़ा कोई दूसरा योग नहीं। निराश्रित मानव आश्रय की प्रतीक्षा कर रहा है। विषमता समता की छाती पर रक्तस्नान करना चाहती है। उसे अपनी समदृष्टि से समान कर दो!

“ऋषिराज चाणक्य की जय!” वन की नीरव दिशाओं में ऋषि-समूह का शान्त स्वर गूँज उठा और चाणक्य के पदचिह्नों पर चलने लगे। वे ऋषि जो प्रकृति के मौन आसन पर न जाने कब से तपस्या कर रहे थे। जैसे-जैसे ऋषि-समुदाय आगे बढ़ता गया, वैसे ही वैसे धरा धन्य होने लगी।

X

X

X

“वितस्ता के तट पर ऋषिवर चाणक्य परम तेजस्वी ऋषियों के साथ पधारे हैं। ये तपस्वी पहाड़ों की गुफाओं में युग-युग से तप कर आये हैं। धन्य भाग्य हैं हमारे जो परम पुरुष चाणक्य के प्रसाद से इन महर्षियों के दर्शनों का सौभाग्य मिल रहा है। इनके दर्शनों से जन्म सफल हो जायेगा, पाप पुण्य में बदल जायेंगे। धरती के इतिहास में यह परम पुण्य अवसर कभी ही आता है। ऐसा जान पड़ता है तेजस्वी चाणक्य अपनी श्रद्धा से कोटि-कोटि भगवान बुला लाये हैं।” सूर्य के प्रकाश की तरह दिशाओं में यह समाचार फैल गया। कोटि-कोटि जनता श्रद्धा के फल-फूल लेकर ऋषियों के दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। सम्राट् चन्द्रगुप्त नंगे पैर सम्राज्ञियों एवं राज्याधिकारियों सहित संन्यासी के चरण छूने चल पड़े।

परम पुरुष के आश्रय में पहुँच सम्राट् ने राजपरिवार सहित ऋषि-समुदाय को प्रणाम किया। परम प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त चरणार्चन में ऐसे लीन थे मानो स्वयम् को समर्पण कर रहे हैं।

चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की पीठ पर हाथ रखते हुए धीरे से कहा—  
राज्य में कुशल तो है ?

**चन्द्रगुप्त**—आपकी पदरज से जो अशुभ था वह भी शुभ हो गया। नर-नायक चाणक्य की पदरज जहाँ हो वहाँ अकुशल कहाँ से हो सकता है !

**चाणक्य**—भाषा और वस्तुस्थिति में बड़ा अन्तर होता है। कहीं तुम मुझे प्रसन्न करने के लिए तो यह सब नहीं कह रहे। चाणक्य चाहता है कि धरती पर कोई दुखी न हो।

चाणक्य यह कह ही रहे थे कि दूर से किसी का चीत्कार सुनाई दिया। 'त्राहि माम्!! त्राहि माम्!!!'

चाणक्य ने चकित होकर कहा—यह कैसा और किसका चीत्कार है ?

चन्द्रगुप्त ने सांकेतिक दृष्टि से एक अधिकारी की ओर देखा। वह जिधर से चीत्कार आ रहा था उस तरफ गया तथा थोड़ी देर बाद आकर बोला—“एक अपराधी है महात्मा ! जिसे कुछ उच्च ब्राह्मण पकड़ कर पीट रहे हैं।”

**चाणक्य**—क्या अपराध है उसका और वे श्रेष्ठ ब्राह्मण उसे क्यों पीट रहे हैं ? क्या राज्य ने उसे अपराधी घोषित कर दिया ?

**अधिकारी**—राज्य के समक्ष तो अभी उसका अभियोग नहीं चला है। वे ब्राह्मण कहते हैं कि यह शूद्र जाति का मनुष्य हम श्रेष्ठ ब्राह्मणों की बस्ती में रहने लगा है। इसने हमारा कुआँ एवं मन्दिर भ्रष्ट कर डाला और अब ऋषियों के दर्शनार्थ हमारे मार्ग से जाना चाहता है।

**चाणक्य**—क्या कुआँ और मन्दिर भी भ्रष्ट हो सकता है चन्द्रगुप्त ! क्या मनुष्य के चलने से पथ भी अपवित्र हो जाता है ! राह पर सभी का अधिकार है।

**चन्द्रगुप्त**—जहाँ जाकर अपवित्र भी पवित्र हो जाते हैं, वह स्थान कभी अपवित्र नहीं हो सकता।

**चाणक्य**—तो फिर जाकर देखो, क्यों उस निर्बल को सताया जा रहा है। जब तक न्याय से किसी को दण्डित न किया जाये, तब तक कोई दण्ड भोगने का अधिकारी नहीं और न कोई दण्ड देने का अधिकारी है। जाओ अधिकारी ! उस विषण्ण और उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को हमारे समक्ष उपस्थित करो !

सैनिकों के साथ अधिकारी चला गया और चाणक्य ने कहा—“जिस राज्य में दुखी और दुर्बल को सहायता नहीं मिलती वह राज्य किसी दिन दुखियों और दुर्बलों की सामूहिक शक्ति के सामने नष्ट हो जाता है।”

इतना कहकर चाणक्य मौन होकर कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर बाद अधिकारी के साथ लहलुहान एक मनुष्य चीत्कार करता हुआ चाणक्य के चरणों में आ गिरा।





घायल और पीड़ित के घाव अपनी आँखों से धोते हुए चाणक्य ने चन्द्रगुप्त से कहा—क्या यही तेरा राज्य है ? क्या तेरे राज्य में निरीह मनुष्य पर इस प्रकार अत्याचार होते हैं ? चाणक्य ने वन से लौटकर देखा तो यह देखा कि मनुष्य मनुष्य से घृणा कर रहा है ! मानव मानव पर अत्याचार करे और राजा देखता रहे !

**चन्द्रगुप्त**—सब कुछ करने की शक्ति होते हुए भी कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ कुछ करने से चन्द्रगुप्त विवश है पवित्रात्मा ! रूढ़ियों में जकड़े हुए राष्ट्र से छुआछूत का भूत नहीं छूटता । धर्मान्धता के कोहरे से भारत भूमि ढकी हुई है । इस देश के कोने-कोने में भ्रमण करने वाले कोटि-कोटि सिरघुटे साधु द्वार-द्वार पर फिरते हैं । चन्द्रगुप्त चाहते हुए भी कुछ नहीं कर सकता । यदि तलवार उठाता है तो साधुओं के रक्त से धरती लाल हो जाने का भय है । और यदि शान्ति से परिवर्तन के लिए वाणी खोलता है तो ब्राह्मणों के पत्थर बरसने लगते हैं ।

चाणक्य की आँखें लाल हो गईं, शान्त और गम्भीर महामानव का मुख एक बार फिर तमतमा उठा । चाणक्य का चेहरा देखते ही चन्द्रगुप्त किसी अपरिचित भावी आशङ्का से काँप उठे । क्रुद्ध तेजस्वी वाणी में चाणक्य ने धीरे से कहा—‘राष्ट्र की स्वतन्त्रता तब तक परतन्त्रता से भी तुच्छ है जब तक उसमें कुरीतियों और कुपुरुषों का अधिकार बना हुआ है । चाणक्य वनों की धूल छानने इसी हेतु गया था कि सारे राष्ट्र को एक ध्वजा के नीचे लाने के पश्चात् एक धर्म के अन्दर ला दे । जब तक देश भर के ढोंगी कर्मनिष्ठ नहीं बन जायेंगे, तब तक चाणक्य अशान्त रहेगा ।’

चाणक्य की अशान्ति के साथ ही साथ दूसरी ओर ब्राह्मण समाज में भी अशान्ति फैल गई । राजनीति बड़ी विचित्र रूपवती होती है । उसकी एक आँख में अमृत होता है और दूसरी में विष । जनता की दृष्टि भी बहुत हल्की होती है । पल भर पहले जिसकी पूजा करती है, दूसरे ही पल उसको ठोकर लगाने के लिए भी प्रस्तुत हो जाती है ।

चाणक्य ने उस सताये हुए घायल मनुष्य को शरण क्या दी कि क्रोध का एक बवण्डर उठ खड़ा हुआ । क्रुद्ध ब्राह्मण समाज चाणक्य

की कुटी पर आ धमका और एक भयानक स्वर सभी के मुँह से निकाल, “चाणक्य ने एक अछूत को शरण दी है, एक पापी को स्थान दिया है, उसे दण्ड दिया जाये।”

सुनते ही चन्द्रगुप्त को क्रोध आ गया, किन्तु चाणक्य शान्त रहे। हो सकता था कि यदि चाणक्य की अनुपस्थिति में कोई यह कहता कि चाणक्य को दण्ड दिया जाये तो चन्द्रगुप्त उसकी खाल खींच लेता, पर चाणक्य की गम्भीर शान्ति ने सम्राट् के हाथ रोक दिये।

चाणक्य ने चारों ओर सरलता से देखते हुए कहा—“धर्माधिपति ब्राह्मणो ! जान पड़ता है अमृत-पान के बाद भी विष का प्रभाव बाकी रह गया है। धर्म क्या है, यह चाणक्य भली-भाँति जानता है। अधर्म को धर्म मानकर कोई बड़ा ब्राह्मण नहीं बन सकता। ब्राह्मण का सबसे बड़ा धर्म अधर्मी को धर्मात्मा बनाना है। प्रथम तो जिस मनुष्य पर आप सबकी कोप-दृष्टि है, वह विधर्मी नहीं। उसका अधर्म यही है कि वह बड़ों के द्वारा निर्मित की हुई छोटी जाति में पैदा हुआ है। अपराध तो आपका है जो एक शरणागत को शरण न देकर सताते हो। स्वयं को बदलो, नहीं तो चमकने वाला सूर्य अन्धकार से ढक जायेगा, सर्वश्रेष्ठ पूज्य ब्राह्मण जाति एक दिन पैरों की धूलि से भी तुच्छ हो जायेगी। ब्राह्मण का अस्तित्व सुरक्षित रखना है तो ब्रह्म-धर्म का पालन करो। ब्राह्मण का अर्थ है ब्रह्म-धर्म, जड़ चेतन सब कुछ जिसमें समाया हुआ है। फिर मानव की मानव से घृणा कैसी ! एक ही धूलि से सब पैदा हुए हैं और एक ही धूलि में सबको लय होना है। जान पड़ता है आज का ब्राह्मण विद्या-धन छोड़कर पशु-बल अपनाना चाहता है।”

सुनकर ब्राह्मण क्रोध से तमतमा उठे। आग की तरह भभकते हुए एक ब्राह्मण ने कहा—“यह सारी ब्राह्मण जाति का अपमान है। चाणक्य को आवश्यकता से अधिक घमण्ड हो गया है। वह समझता है कि राजनीति, दर्शन, योग सबका अधीश्वर मैं ही हूँ। हमने आदर देकर इसे ऊँचा क्या उठाया यह तो हमारे सिर पर ही चढ़ बैठा।”

**चाणक्य**—इतना क्रोध न करो ब्राह्मण ! कोई किसी को ऊँचा नहीं उठाता। ऊँचा तो वह उठता है जो दूसरों को ऊँचा उठाता है। चाणक्य ने तो जो कुछ प्राप्त किया था वह सब आपको सौंप कर चला गया, पर दुःख तो यह है कि आप जनता की थाती का भोग कर रहे हैं। चाणक्य ब्रह्मत्व की रक्षा हित ही भूमि की परिक्रमा करता रहा है और



आज प्रसाद रूप में आपसे अपशब्द पा रहा है। क्या यही धर्म-पालक विद्वान् ब्राह्मणों का धर्म है ?

चन्द्रगुप्त को पहले ही क्रोध आ रहा था, चाणक्य की वाणी सुनकर वह तमतमा उठा और गर्ज कर बोला—ऋषि श्रेष्ठ गुरुदेव की आज्ञा हो तो राज-विरोधी ब्राह्मणों को बन्दी बना लिया जाये ?

**चाणक्य**—नहीं, चाणक्य अपने विरोधी से राज्य द्वारा प्रतिकार लेना नहीं चाहता। ब्राह्मणों ! अब चाणक्य परिवर्तन का इच्छुक है। वह नहीं चाहता कि राज्य का कोई भी शस्त्र राष्ट्र के किसी भी नागरिक पर उठे ! चाणक्य की अब दूसरी भीष्म प्रतिज्ञा यही है कि इस देश में कोई भेद-भाव नहीं रहेगा। आप ब्राह्मण हैं तो गिरे हुएों को गले लगाइये ! आप इस मनुष्य से क्षमा माँगिये जिसे आपने नोच डाला है।

ब्राह्मण फिर आग बबुला हो गये। एक ब्राह्मण ने 'दुर्वासा' की तरह काँपते हुए कहा—हम और इस नीच पुरुष से क्षमा माँगे ! हम तुझे शाप दे देंगे, तू अभी भस्म हो जायेगा। तेरे द्वारा स्थापित किया हुआ राज्य अब नहीं टिक सकता। चन्द्रगुप्त नाश को प्राप्त होगा।

**चाणक्य**—यही तो दुःख है कि आज के ब्राह्मण का शाप नहीं फलता।

**ब्राह्मण**—देखते क्या हो, इससे अपने अपमान का प्रतिशोध लो ! चाहे हमें शूली पर ही क्यों न टांग दिया जाये, लेकिन हम धर्म विरोधी चाणक्य को जिन्दा जला देंगे।

**ऋषि**—समुदाय जो अब तक शान्त था चाणक्य के प्रति विषैले वाक्यों से मुखर हो उठा, मानो सौर्य-मण्डल का चमत्कार बोलना चाहता है। गम्भीर किन्तु तेजस्वी भाषा में ऋषि-समुदाय में से एक दिव्य वाणी गूँज उठी—“धिक् धिक् ! किस भूमि पर आ गये हम ! चाणक्य जैसे परम तेजस्वी ऋषि का जहाँ अपमान हो वहाँ ठहरना पाप है। ब्राह्मणो ! तुम में अपना कोई प्रकाश नहीं। तेजवन्त चाणक्य की ज्योति से ही तुम ज्योतिवन्त हो। कहीं अपने कठोर वाक्यों का परिणाम सारी धरती के लिए पाप न बना देना ! !”

पर ब्राह्मण तो क्रोध में पागल थे। उनकी मृतक आत्मा में ऋषियों के आर्ष शब्द न पहुँचे।

जलती हुई आँखें लेकर ब्राह्मण चाणक्य की ओर बढ़े। एक हल्की

मुस्कान के साथ चाणक्य ने उन्हें देखा। उनकी दृष्टि के तेज से ब्राह्मणों के बढ़ते हुए पग जड़ हो गये। उन्होंने देखा जैसे बारह सूर्य भूमि पर उतर आये हैं। समस्त ऋषियों का प्रकाश चाणक्य के पीछे जगमगा रहा था।

अद्भुत चमत्कार से ब्राह्मण चमत्कृत हो उठे। उनके क्रोध ने हार मान ली। शान्त होकर सब विनम्र हो गये। एक विलक्षण शक्ति के सामने आँखें झुकाते हुए ब्राह्मण बोले—“मद में हम भूल बैठे थे, आप हमें अँधेरे से उजाले में ले आये। दिव्य ब्राह्मण! हमारा गर्व आपकी महान् शक्ति से पराजित हो गया। आपके एक हाथ में आग और दूसरे में पानी की धारा है। आप असत् के लिए आग और सत्य के लिए अर्घ्य हैं। हम अपने पाप के प्रायश्चित्त हेतु प्रस्तुत हैं।”

बादलों के हटने पर जिस प्रकार सूर्य प्रकट होते हैं, उसी प्रकार चाणक्य ने समक्ष होते हुए कहा—“चाणक्य जो चाहता है आप उसके लिए उपस्थित हैं तो आपका प्रायश्चित्त पापी की मृत्यु में नहीं, पाप की मृत्यु में है। आपके कन्धों में वह बल है जो मानव समाज की गाड़ी खींच सकता है। तुम चाहो तो स्वर्ग और मर्त्य की वह सुन्दर सन्धि कर सकते हो जिसमें देवता और मनुष्य का भेद मिट सकता है।”

“फैल जाओ इस देश के कोने-कोने में और फूँक डालो असत्य की काली चादर! बरस पड़ो कण-कण में इस तरह की धरती भर से पीड़ा का कलंक धुल जाये। ऋषि, ब्राह्मण, परोपकारी वे नहीं जो साधु-वस्त्र मात्र धारण करते हैं। धरती ने मनुष्य को बहुत कुछ दिया है, अब तुम धरती को सच्चा मनुष्य दो, सुखी मनुष्य दो, यही हमारा धर्म है और यही हमारा कर्तव्य।”

ब्राह्मण स्वीकृतिसूचक मुद्रा में लज्जा से नत और आज्ञा से उन्नत दिखाई देने लगे। एक शान्त स्वर समस्त भूमण्डल में गूँज उठा—“मर्त्य और स्वर्ग का भेद अब नहीं रहेगा।”

तथा तभी मनुष्य ने देवता को और देवता ने मनुष्य को धरती और आकाश की दूरी से देखा।



लोकोत्तर आनन्द में चाणक्य ने मुस्करा कर फहराया हुआ ध्वज देखा और पास खड़े चन्द्रगुप्त को देखते हुए बोले—जान पड़ता है आज ध्वज पूर्ण प्रसन्नता से लहरा रहा है।

**चन्द्रगुप्त**—राज्य में जब कोई दुखी नहीं रहता तो जड़ में भी हर्ष की लहरें दौड़ने लगती हैं, फिर झण्डा तो हारी चेतन भावनाओं का प्रतीक है।

**चाणक्य**—यह हम तुम्हारे मुँह से अपने मन की बात सुन रहे हैं। सब ओर शान्ति और सुख देखकर आज चाणक्य हर्षातिरेक से गर्वित है! इस आनन्द के समय हमारी इच्छा शार्ङ्गरव, भागुरायण और भासुरक से मिलने की है। तनिक उन्हें बुलाओ तो चन्द्रगुप्त! हम उनसे भेंट करना चाहते हैं।

**चन्द्रगुप्त**—राज्य के गुप्तचर विभाग में वे हर समय व्यस्त रहते हैं। सचमुच वे देश के राजा से भी बड़े कर्मठ सेवक हैं। कई दिन हो गये मैंने भी इन पुजारियों को नहीं देखा। अभी बुलाता हूँ।

**चाणक्य**—बुलाने की आवश्यकता नहीं। चलो, हम ही उनके निवास पर चलते हैं।

समूह से बचकर चाणक्य और चन्द्रगुप्त शार्ङ्गरव के निवास-कुंज पर आये। राजा और महात्मा ने शान्ति से सरल किन्तु अद्भुत उपवन में प्रवेश किया। कितने ही पौधे, पेड़ और हरी झोंपड़ियाँ पार कर वे उस स्थान पर आये जहाँ शार्ङ्गरव अपने आसन पर खुरटि भर रहे थे।

राजा और महात्मा कुछ देर तो मौन खड़े रहे, लेकिन जब शार्ङ्गरव ने करवट भी नहीं बदली तो चन्द्रगुप्त ने आवाज दी—उठो सहपाठी! देखो गुरुदेव पधारे हैं।

चन्द्रगुप्त ने दो बार आवाज दी, तब कहीं शार्ङ्गरव की आँखें खुलीं गुरुदेव को खड़ा देख वे चमत्कृत होकर उठे और चरण छूकर आँख मलते हुए बोले—मैं तो स्वप्न देख रहा था, पर यह तो प्रत्यक्ष ही दर्शन हो गये।

**चाणक्य**—तुम्हारी सेवा और भक्ति का जोड़ नहीं शार्ङ्गरव! पर

हमें आश्चर्य है कि राज्य का सबसे बड़ा रक्षक इस प्रकार घोड़े बेचकर कैसे सो रहा था !

**शार्ङ्गरव**—ढूँढ़ने से कोई चोर नहीं मिलता, लाख यत्न करने पर भी कहीं कुचक्र का बीज दिखाई नहीं देता, असत्य कहीं है ही नहीं, इसलिए कभी-कभी धोखे में सत्य बन्दी हो जाता है। बहुत ढूँढ़ा पर दुख नहीं मिला। बहुत पैर तोड़े पर कोई आक्रान्ता दिखाई न दिया। तब फिर क्या करते ! लम्बी तान कर सो गये।

**चाणक्य**—जब मनुष्य जागता रहता है तो चोर नहीं आते। पर जब मनुष्य सो जाता है तो उजाले में से भी अँधेरा फूट पड़ता है। तुम वर्षों की थकान के बाद सुख की नींद सो रहे थे, जगाने से हमें पीड़ा हुई। लेकिन चाणक्य नहीं चाहते कि शार्ङ्गरव जैसे चिन्तामुक्त होकर सो जायें। भागुरायण और भासुरक कहाँ हैं ?

**शार्ङ्गरव**—वे भी बराबर की पर्णकुटी में विश्राम कर रहे हैं। अभी जगाता हूँ।

कहते हुए शार्ङ्गरव ने वहीं से आवाज दी, “भागुरायण ! भासुरक !”

उत्तर में कुटी से भासुरक की आवाज आई—“क्या है शार्ङ्गरव जी ! सोने क्यों नहीं देते ? गले तक लड्डू अड़े हुए हैं। उठते ही उलटी होने का भय है, इसलिए शोर न करो !”

**शार्ङ्गरव**—“शोर न करो के भैया ! शीघ्र आओ, सम्राट् और गुरुदेव पधारे हैं।”

“क्या, सम्राट् और गुरुदेव !” कहते हुए भागुरायण उठे और प्रणाम कर परम गुरु चाणक्य के समक्ष आ खड़े हुए।

अपने प्रिय आज्ञाकारी शिष्य आज शान्ति के वातावरण में देख पुनीत पुरुष चाणक्य के मुख पर अरुणाई झलक उठी। शिष्यों की कमर पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—“चाणक्य की सफलता उसके प्रिय शिष्यों की सेवाओं से ही हुई है। तुम दिन-रात खूब अथक श्रम करते रहे, तुम्हारे सत्य और विवेक ने ही इस देश में शक्ति और शान्ति स्थापित की है। चाणक्य तुमसे बहुत प्रसन्न है ! तुम उससे जो चाहो वह तुम्हें देने को प्रस्तुत है। पर तुम जागते रहो, यह तुमसे चाणक्य अवश्य चाहता है।”

**शार्ङ्गरव**—हम आपके शिष्य जागते हुए सोने का बहाना कर



सकते हैं, पर सोते हुए भी सोते नहीं।

**चाणक्य**—तभी तो मैं अब राज्य की ओर से निश्चिन्त हूँ, क्योंकि मेरे शिष्य धर्म, कर्म, राज और तन्त्र विद्या में निपुण हैं। अब मैं चिन्ता-रहित होकर अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष करने जा रहा हूँ। हो सकता है इस खोज में मैं ही कहीं खो जाऊँ। इसलिए चलते समय शिष्यों को देखने चला आया। अतः जो तुम्हारी इच्छा हो तो वह मुझसे माँग लो!

दूसरा कोई कुछ कहे उससे पहले ही भासुरक उछल कर गुरु के चरणों में बैठता हुआ बोला—चन्द्रगुप्त को आपने इतना बड़ा राज्य दे दिया, शार्ङ्गरव को सारे राज्य का प्रधान गुप्तचराधिपति बना दिया, भागुरायण को अनेक विद्याओं में निपुण कर इस बड़े देश का ज्योतिषाध्यक्ष बना डाला, लेकिन हम भासुरक तो बाबा जी के बाबा जी ही रहे। चलते समय इस सिरघुटे शिष्य पर भी तो कुछ कृपा हो जाये!

चाणक्य ने मुस्कराते हुए कहा—तुम्हें देखकर श्मशान को भी हँसी आ जाती है। कहो प्रिय भासुरक! तुम क्या चाहते हो?

**भासुरक**—जय हो गुरुदेव की! आपका यह आज्ञाकारी प्रिय शिष्य चाहता है कि उसकी लड्डुओं की हँडिया सदा भरी रहे। आपका यह गोल-मटोल शिष्य आनन्द से मोदक भक्षण करता रहे, यही उसकी इच्छा है।

**चाणक्य**—तथास्तु! लो, तुम्हें वह विद्या देता हूँ जिससे तुम्हारा लड्डुओं का पात्र सदा भरा रहेगा। तुम तीन रात व्रत करके पुष्य नक्षत्र में शस्त्र से कटे हुए पुरुष की खोपड़ी में मिट्टी भर कर गुंजा बो देना और फिर बासी पानी से सींचते रहना। जब वे उत्पन्न हो जायें तब अमावस्या या पूर्णिमा को पुष्य नक्षत्र के दिन उन बेलों को उखाड़ लेना। उन बेलों के घेरे में जो लड्डुओं से भरे हुए पात्र तुम रखोगे, वे कितने भी खाना और खिलाना पर कभी खाली नहीं होंगे।

**भासुरक**—वाह! गुरुजी! वाह आपके पास तो एक से एक सिद्ध मन्त्र हैं। पर मुझे सबसे क्या लेना, मैं तो इस मन्त्र में तृप्त हूँ। भागुरायण जी! तुम क्या देख रहे हो? सारे जीवन में यही शुभावसर आया है। माँग लो गुरु जी से तुम्हें भी जो कुछ माँगना है।

**भागुरायण**—गुरुदेव की दया ने मुझको सब कुछ दिया हुआ है।

**चाणक्य**—फिर भी इस विदा-वेला में जो तुम्हारी इच्छा हो

कहो !

**भागुरायण**—जो माँगना चाहता हूँ, वह सम्भवतः मिल नहीं सकता ।

**चाणक्य**—चाणक्य का वचन कभी असफल नहीं होता ।

**भागुरायण**—यदि गुरुदेव की इतनी ही दया है तो मैं चाहता हूँ कि जब भी गुरुदेव को याद करूँ, वे तभी मुझे दिखाई दे जायें ।

चाणक्य सोच में पड़ गये, पर पल भर बाद ही बोले—ऐसा ही होगा । तुम तो त्राट योग के पूर्व अभ्यासी हो । यह तो तुम्हारी इच्छा पूरी हुई । अब मैं तुम्हें अपनी इच्छा से वह तन्त्र विद्या देता हूँ जिससे तुम साकार और निराकार दोनों रहकर गुप्त से गुप्त रहस्य को भी पा सको, जल तुम्हें छू न सकेगा, आग तुम्हें जला न पायेगी ।

**भागुरायण**—गुरुदेव की करुणा का कौन चित्रण कर सकता है !

**चाणक्य**—शार्ङ्गरव ! तुम मौन क्यों हो ?

**शारंगरव**—मुझे कुछ नहीं चाहिये गुरुदेव ! केवल आपके चरणों की धूलि चाहता हूँ ।

कहते हुए शार्ङ्गरव ने गुरु के पैर के नीचे की मिट्टी उठाई और माथे से लगा ली ।

गुरुदेव के प्रेम से सबकी आँखें छलछला आईं, मानो देह और प्राण का संयोग एवं वियोग अवसर था ।

आँसू पोंछते हुए चन्द्रगुप्त ने चाणक्य के चरण छुए । आशीर्वाद में चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को शासन-विधान देते हुए कहा—तुम्हारे राज्य में किसी को कोई दुःख न हो, राजन् !

**चन्द्रगुप्त**—जिस राज्य में परमगुरु चाणक्य का विधान है उस राज्य में किसी को दुःख कैसे हो सकता है ।

**चाणक्य**—तो अब हम जायें वत्स !

**चन्द्रगुप्त**—आप कहाँ नहीं हैं, जहाँ जायेंगे ! कण-कण में आपका शब्द व्याप्त है ।

**चाणक्य**—सुना है सृष्टि के आग और पानी दो शत्रु हैं, जो निर्माण पर नाश का नृत्य करते हैं । यह ब्राह्मण अब इन दो तत्त्वों को आत्मसात् करना चाहता है, जिससे जल और ज्वाला जीवन को मृत्यु न देकर मृत्यु को जीवन प्रदान करते रहें, प्रलय की प्रचण्डता पर प्राणों



की तरी तैरती रहे। आनन्द से रहो वत्स !

आशीर्वाद का प्रसाद देकर चाणक्य चल पड़े। इधर शिष्य उनको तब तक देखते रहे जब तक पुनीत गुरु आँखों से ओझल नहीं हो गये।

जैसे ही दिव्य पुरुष आँखों से ओझल हुए थे वहाँ प्रचण्ड काला तूफान दिखाई देने लगा। पलक मारते ही दिन में घन ऐसे घिर आये जैसे अमावस्या की काली रात हो। भीषण बवण्डरों से धरा और आकाश का रंग एक होने लगा। हवा का भीषण शब्द, बादलों की घोर गर्जना, बिजली की डरावनी कड़क, नदियों के वेग, विद्युत से भी विलक्षण शब्द ब्रह्माण्ड में कम्पन करने लगे।

शार्ङ्गरव ने घबराते हुए कहा—प्रलयंकर तूफान आ गया, गुरुदेव उसमें फँस गये जान पड़ते हैं।

**भागुरायण**—जान पड़ता है मानव की विजय पर प्रकृति ईर्ष्या से क्रुद्ध हो उठी है।

**भासुरक**—सोच क्या रहे हो, शीघ्र भागो ! नदियों में बाढ़ आनी शुरू हो गई, मूसलाधार वर्षा होने लगी, बिजलियाँ टूटना चाहती हैं, आकाश गर्ज कर गिरने को है। प्रलय के इस प्रचण्ड प्रकोप से मानव की रक्षा अब कैसे होगी राजन् !

**चन्द्रगुप्त**—गुरुदेव के प्रताप से क्या नहीं हो सकता ! जब तक साहस मनुष्य के साथ है, तब तक शिव उसके साथ रहता है। हम कोटि-कोटि मनुष्य मिलकर प्रलय की विभीषिका को प्राणों से रोक देंगे।

**भागुरायण**—पर यह क्या सम्राट् ! अन्धकार जहाँ था वहीं रुका हुआ है, तूफान आगे नहीं बढ़ पा रहा।

**सम्राट्**—और यही नहीं, तूफान इस प्रकार पीछे हट रहा है जैसे कोई उसे धकेल कर पीछे हटा रहा हो।

**शार्ङ्गरव**—यह क्या ! अन्धकार की छाती पर यह बिजली से भी तीक्ष्ण कैसी ज्योति फैलती जा रही है ! आप यहीं ठहरें, मैं जाकर देखता हूँ।

कहकर शार्ङ्गरव द्रुत गति से चल पड़े। लेकिन जितना वे आगे बढ़ते थे, प्रकाश उतना ही दूर होता जाता था।

न जाने कब तक शार्ङ्गरव चलते रहे, वह तेज न पकड़ सके।

हारकर शार्ङ्गरव गिर पड़े और ज्योति को नमस्कार करते हुए बोले—  
“क्या यह चमत्कार अभेद्य ही बना रहेगा ? यह कैसा रहस्य है ? यह  
अद्भुत कौतुक प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता गुरुदेव ! तुम कहाँ हो ?”

दिव्य तेज में से एक व्यापक वाणी सर्वत्र गूँज उठी—“क्षितिज  
की छाती पर, सूर्य की रश्मियों में, वायु की गति भर, मिट्टी की सुगन्ध  
लिये, प्रलय की पीड़ा से क्रीड़ा कर रहा हूँ।”

□□□